नयोजन तथा आर्थिक विकास

(Planning and Economic Development)

(भारत, सोवियत रूस व जापान के विशेष सन्दर्भ में)

(राजस्थान विश्व-विद्यालय के बी. ए. फाइनल के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमानुसार)

लेखक

बी० एल० ओझा

एम० ए०, एम० काम, आर० ई० एम०

अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कोटा

पंचम संस्करण

1981

आदर्श प्रकाशन

चौड़ा रास्ता, जयपुर-3

पंचम संस्करण की भूमिका

चार संस्करणों का छात्र एवं प्राध्यापक वर्ग ने जो अपार स्वागत किया उससे प्रेरित होकर यह संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण आपके सामने प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष है।

राजस्थान विश्व-विद्यालय के टी. डी. सी. अन्तिम वर्ष वाणिज्य (T. D. C. Final Year Commerce) के नवीन पाठ्यक्रमानुसार इस कृति का सृजन किया गया है। इसके अन्तर्गत आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों का विवेचन भारत, रूस व जापान के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में किया गया है। चूंकि आर्थिक विकास एक सतत अथवा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है और आर्थिक नियोजन विकास मे सुनिश्चितता, विवेक व साधनों के समुचित प्रयोग द्वारा आर्थिक विकास की दर में तीव्रता लाता है। भारत के सन्दर्भ में नियोजित अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र रूस तथा पूंजीवादी परिवेश में औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र जापान के आर्थिक विकास के क्रांतिकारी घटकों का शृंखलाबद्ध, तार्किक एवं विशद विवेचन इस प्रकार किया गया है कि आर्थिक नियोजन के द्वारा विकासशील राष्ट्र भारत के तीव्र आर्थिक विकास के लिए मार्ग-दर्शन मिल सके ताकि आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक समानता व पर्याप्त रोजगार का स्वप्न साकार हो सके। इस कृति को अनावश्यक विषय-सामग्री से मुक्त रखा गया है ताकि बढते हुए कागज मूल्यों का अधिक भार छात्रों पर न पड़े। आशा है यह कृति भी मेरी अन्य कृतियों की भांति लोकप्रिय होकर छात्र वर्ग व पाठकों को लाभान्वित करेगी।

मैं अपने सभी मित्रों व सहकर्मियो का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने मुझे शैक्षणिक कार्यानुकूल वातावरण उपलब्ध करके इस कृति के सृजन में सहयोग व प्रोत्साहन दिया है। मैं अपने प्रकाशक मैसर्स आदर्श-प्रकाशन के श्री आनन्द मित्तल का भी विशेष आभारी हूँ जिनके सौजन्य से यह संस्करण ठीक समय पर आपके हाथों में पहुँच पाया है।

मेरी सभी विद्वजनों व शुभचिन्तकों से नम्र निवेदन है कि वे अपने अमूल्य सुझाव देकर आगामी संस्करणों को अधिक उपयोगी बनाने मे लेखक को सहयोग कर अनुगृहीत करें।

बी० एल० ओझा

"वसुन्धरा"
38–A, प्रतापनगर,
चित्तौड़गढ़ (राज०)

SYLLABUS-UNIVERSITY OF RAJASTHAN

T D C Final Year Commerce

Paper I—Planning and Economic Development

SECTION—A

I Theory of Planning —Meaning and Importance of Planning Types of Planning Objectives, Techniques, Plan formulation, Execution and Evaluation

II Economic Development in India—Since Independence The State of Indian Economy on the eve of Independence, Objectives and achievements of Planning in India

Important developments since 1947 in the following sectors of the economy

(a) Agriculture Significance Land reforms Green revolution, Agricultural Marketing, Community development and new Agricultural strategy

(b) Industry Industrial policy Role of State Capital and Labour, Intensive Industries in India, Growth of the Public Sector with special reference to steel, petroleum and fertilisers

(c) Trade Commercial policy and balance of payments

(d) Transport A general review of the growth of transport with special references to rail road and air services

SECTION—B

III Lessons from Economic developments of U S S R and Japan with special reference to Agriculture, Industry, Trade and Transport

(a) Economic Development of U S S R (Since 1917) Soviet Economy on the eve of revolution War Communism, New Economic Policy Main objectives and achievements of the Plans in the field of Agriculture, Industry Trade and Transport, Lessons to be drawn from the Economic development of U S S R for developing Economies, with special reference to India and

(b) Economic Development of Japan (General background since 1868 with particular emphasis on developments after 1945) Significance of Meiji Restoration, Developments of Agriculture Industry trade and transport factors responsible for the rapid growth of Japanese economy after the Second World war Lessons to be drawn from the economic development of Japan for developing economies with special reference to India

विषय-सूची

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ स०
	भाग 1-नियोजन के सिद्धान्त एवं भारत मे आर्थिक नियोजन (Principles of Planning and Planning in India)	

भाग 4-जापान का आर्थिक विकास
(Economic Development of Japan)

भाग 1
(*PART ONE*)
नियोजन के सिद्धान्त एवं भारत में आर्थिक नियोजन
(PRINCIPLES OF PLANNING & PLANNING IN INDIA)

1

आर्थिक विकास में नियोजन का महत्व

(SIGNIFICANCE OF PLANNING IN ECONOMIC DEVELOPMENT)

आर्थिक नियोजन—एक परिचय

आज सम्पूर्ण विश्व मे नियोजन का बोलबाला है। चाहे विकसित राष्ट्र हो और चाहे विकासशील राष्ट्र, सभी आर्थिक नियोजन के द्वारा अपनी आर्थिक समस्याओ के निराकरण के लिए प्रयत्नशील ह। सभी भौतिक समृद्धि, आर्थिक स्थायित्व एव विकास के लिये नियोजन को अपना रहे हैं। इसी कारण प्रो० रोबिन्स ने ठीक ही कहा है। "**आर्थिक नियोजन हमारे युग की समस्त आर्थिक समस्याओं के निराकरण की एक अचूक रामबाण औषधि है ··कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति का एकमात्र साधन आर्थिक नियोजन ही है।**"[1]

विकसित राष्ट्र आर्थिक स्थायित्व व भावी विकास के लिए नियोजन का सहारा लेते हैं और विकासशील तथा अर्द्ध विकसित राष्ट्र अपने उपलब्ध साधनों के नियोजित विदोहन से आर्थिक विकास व समृद्धि के लक्ष्य से प्रेरित हैं ताकि निर्धनता, शोषण व बेकारी से मुक्ति मिले। '**विश्व के किसी भी भाग मे गरीबी विश्व शान्ति एव समृद्धि को खतरा है**" यही कारण है कि विकसित राष्ट्र व्यक्तिगत रूप म तथा सामूहिक रूप मे अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो के माध्यम से विकासशील एव अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिये आर्थिक, तकनीकी एव अन्य सहायता देने के लिए जागरूक एव सतत् प्रयत्नशील हैं।

साधनो की सीमितता और आवश्यकताओ की अनन्तता के कारण नियोजन राष्ट्र-धर्म बन गया है। अपने महत्व के कारण यह केवल सिद्धान्त ही नहीं वरन् व्यावहारिक नीतियों का अविभाज्य अङ्ग बन गया है। आज नियोजन के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का विवाद नही है, विवाद है तो केवल उसके स्वरूप पर। इसी कारण

---

1 Economic Planning is a grand panacea of our age Economic Planning is the only means of realising the ideal of a Welfare State
—L. Robbins

प्रो० लेविस ने लिखा है ' नियोजन के सम्बन्ध मे केन्द्रीय बात यह नहीं कि नियोजन होना चाहिये या नहीं—वरन् यह है कि नियोजन का स्वरूप क्या हो। अब निरपेक्षता की नीति (Policy of Laissez) की कल्पना पागल ही कर सकते है।"

आयोजन या नियोजन का अर्थ एव परिभाषायें
(Meaning and Defintions)

आर्थिक शब्दावली मे समाजवाद की भाति नियोजन शब्द का अर्थ भी विभिन्नताओ के भ्रम म उलझा हुआ है अत कोई सुनिश्चित एव सर्वमान्य धारणा सम्भव नहीं। सामान्यत आर्थिक नियोजन का अभिप्राय राष्ट्र की उस नियन्ति एव विवेकपूर्ण व्यवस्था से लिया जाता हे जिसमे आर्थिक क्रियाओ का सचालन पूर्व निश्चित उद्देश्यो के अनुरूप अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिये किया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से "किसी विशिष्ट आर्थिक उद्देश्य से किया गया राजकीय कार्य आर्थिक नियोजन कहलाता है पर यह बहुत ही सकीर्ण है। स्वर्गीय प० जवाहर लाल नेहरू के शब्दो मे नियोजन का अर्थ केवल कार्य-सूची बना लेने स नही और न यह कोई राजनैतिक आदशवाद है। आयोजन एक बुद्धिमतापूर्ण, विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक पद्धति है जिसके अनुसार हम अपने आर्थिक एव सामाजिक उद्देश्य निर्धारित करते हैं और प्राप्त करते है।" नियोजन के सम्बन्ध म विभिन्न विद्वानो के द्वारा दी गई परिभाषाओ का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

प्रो० रोबिन्स (L Robbins) के अनुसार "सच्चे मायन म सम्पूर्ण आर्थिक जीवन नियोजन स भरा है। आयोजन करने का अभिप्राय वायदे क साथ कार्य करना है चयन करना है और चयन ही आर्थिक क्रियाओ का सार हैं। अन्यत्र उन्होंने लिखा है कि आधुनिक शब्दावली म ' नियोजन का अभिप्राय राज्य द्वारा उत्पादन के साधनो पर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण है।"

ये दोनो ही परिभाषाये अपूर्ण है क्योंकि रोबिन्स ने नियोजन का अर्थ बहुत ही सकीर्ण दृष्टिकोण से लिया है जिसम राज्य के नियन्त्रण को ही नियोजन मान लिया है। केवल चयन करना ही पर्याप्त नहीं सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के बाद एक निश्चित अवधि म पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति क लिये उत्पादन, वितरण व उपभोग सब पर नियन्त्रण ही आयोजन कहलाता है।

प्रो० हेयक (Hayek) के शब्दो मे "आर्थिक नियोजन का अर्थ एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा उत्पादन क्रियाओ का निर्देशन है।"[1] प्रो० हेयक की परिभाषा भी अपर्याप्त है [illegible] नियोजन [illegible] तत्वो की उपेक्षा कर केवल निर्देशन तत्व पर ही ध्यान देती है।

1 The direction of productive activity by a Central authority is called Economic Planning —Prof Hayek

श्रीमती बारबरा वूटन (Mrs Barbara Wootton) के मतानुसार "किसी सार्वजनिक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक एवं जान-बूझकर आर्थिक प्राथमिकताओ के चयन करने की क्रिया को आर्थिक नियोजन कहते है।"[1] इस परिभाषा मे भी केवल प्राथमिकताओ के निर्धारण पक्ष पर जोर दिया गया है तथा स्वतन्त्र बाजार तन्त्र मे जान बूझकर हस्तक्षेप से एक अलग व्यवस्था कायम करने की बात कही। पर इन दोनो तत्वों के अतिरिक्त आर्थिक नियोजन के अधिक महत्वपूर्ण तत्वो की अवहेलना अनुपयुक्त है।

प्रो०एच०डी० डिकिन्सन (H D Dickinson) के अनुसार "आर्थिक नियोजन प्रमुख आर्थिक निर्णय करने की वह क्रिया है जिसम समस्त अर्थ-व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारक सत्ता द्वारा विचारपूर्वक निर्णय लिये जाते हैं कि क्या और कितना उत्पादन किया जाय, कैसे, कब और कहाँ उत्पादन किया जाये और इसका वितरण किनमे हो ?"[2]

प्रो० डिकिन्सन की यह परिभाषा बहुत ही उपयुक्त मानी जा सकती है क्योकि इसमे आर्थिक नियोजन के प्राय सभी तत्वो का समवेश है। इसमे केवल पूर्व निर्धारित उद्देश्यो व निश्चित अवधि के तत्वो को भुला दिया गया है।

प्रो० लुईस लार्विन (Lewis Larwin) के शब्दो मे 'नियोजित अर्थ व्यवस्था आर्थिक सगठन की एक ऐसी पद्धति है जिसके अन्तगत एक निश्चित अवधि मे जनता की आवश्यकताओ की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए समस्त उपलब्ध साधनो के प्रयोग के उद्देश्य से सभी व्यक्तिगत एव भिन्न-भिन्न कारखानो उपकरणो व उद्योगो को एक ही व्यवस्था की समन्वित इकाइयाँ माना जाता है।"[3]

लुईस लार्विन की इस परिभाषा मे भी नियोजन के प्राय सभी तत्व सन्निहित

---

1 "Planning may be defined as the conscious and delibrate choice of economic priorities by some public authorities"

—Mrs Barbara Wootton Plan or no Plan.

2 *Economic Planning is the making of major economic decision* What and how much is to be produced how, when and where is to be prouced and to whom it is to be allocated by the conscious decision of a determinate authority on the basis of a comprehensive survey of the economic systtm as a whole.

—H D Dickinson Economic of Socialism p 14

3 "Planned *economy is a scheme of economic* organisation in which individual and separate plants, enterprises and industries are treated as co-ordinated units of a single system for the purpose of utilising available resources to achieve the maximum satisfaction of the peoples' needs within a given time" —Lewis Larwin

(2) केन्द्रीय नियोजन सत्ता—आर्थिक नियोजन मे अर्थ-व्यवस्था का सचालन स्वत. बाजार-प्रक्रिया (Market Mechanism) द्वारा न होकर सरकार या राज्य की केन्द्रीय सत्ता द्वारा किया जाता है जो देश के उपलब्ध साधनो का सर्वेक्षण करती है, पूर्व निर्धारित लक्ष्यो के अनुरूप उनके प्रयोग का चयन व समन्वय करती है। विकास की योजनाओ का निर्माण, कार्यान्वित व मूल्यांकन व आवश्यक समन्वय बैठाने का कार्य भी केन्द्रीय नियोजन सस्था द्वारा किया जाता है।

(3) पूर्व निर्धारण उद्देश्य—देश की आर्थिक, राजनैतिक एव सामाजिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये आर्थिक नियोजन के उद्देश्य सुविचारित एव पूर्व निर्धारित होते हैं और केन्द्रीय सत्ता इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिय प्रयत्न करती है।

(4) प्राथमिकताओ का निर्धारण – आवश्यकताओ की अनन्तता और साधनो की सीमितता के कारण केन्द्रीय नियोजन सत्ता पूर्व निर्धारित उद्देश्यो के बीच प्राथमिकताओ का निर्धारण करती है।

(5) साधनो का आवंटन एव प्रयोग—आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत उत्पादन के सभी साधनो—चाहे वे निजी स्वामित्व मे हो और चाहे सार्वजनिक स्वामित्व मे—पर सरकार या नियोजन कर्त्ता सस्था का प्रभावी नियन्त्रण रहता है। सरकार इन साधनो का आवंटन एव प्रयोग पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये प्राथमिकताओ (Priorities) के आधार पर करती है।

(6) निर्धारित समय – आर्थिक नियोजन की एक महत्वपूर्ण विशेषता समयावधि निश्चित करना है। पूर्व निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति इस अवधि विशेष मे किये जाने का प्रावधान होता है। निश्चित समय मे उद्देश्यो की पूर्ति ही योजना की सफलता का द्योतक है।

(7) नियोजन एक निरंतर एव दीर्घकालीन प्रक्रिया है—नियोजन एक आकस्मिक एव अल्पकालीन प्रयास न होकर निरन्तर एव दीर्घकालीन प्रक्रिया (Continuous and long period process) होती है। अल्पकालीन योजनाओ को दीर्घकालीन योजनाओ से समन्वित किया जाता है।

(8) राज्य का हस्तक्षेप एवं साझेदारी—आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक क्षेत्र मे राज्य का हस्तक्षेप या राज्य की साझेदारी का तत्व विद्यमान होता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग राज्य द्वारा सचालित होते हैं। सयुक्त क्षेत्र मे राज्य व निजी उद्यमकर्त्ताओ के बीच साझेदारी व सहयोग होता है और निजी क्षेत्र के उद्योगो के सचालन पर राज्य का प्रभावी नियन्त्रण व हस्तक्षेप रहता है।

(9) आर्थिक नियोजन का व्यापक दृष्टिकोण—आर्थिक नियोजन सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो को समष्टि दृष्टिकोण के आधार पर देखता है और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर लागू किया जाता है। आंशिक नियोजन जो किसी क्षेत्र विशेष के लिये होता है उसकी सफलता सन्दिग्ध रहती है।

(10) **संरचनात्मक परिवर्तन**—विकासमान आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे समन्वय व एकीकरण के परिणामस्वरूप सरचनात्मक परिवर्तनो (Structural changes) का प्रादुर्भाव होता है। *अर्थ-व्यवस्था* का रूढिवादी ढांचा धाराशायी होकर नवीन प्रगतिशील सस्थाओ को जन्म देता है।

(11) जन-सहयोग—आर्थिक नियोजन की कल्पना जन सहयोग पर आधारित है और यही नियोजन की सफलता का आधार स्तम्भ है। जन-सहयोग के अभाव मे योजनाओ की सफलता सन्दिग्ध ही रहती है।

(12) अन्तिम उद्देश्य—आर्थिक नियोजन का अन्तिम उद्देश्य देश के उपलब्ध एव सम्भावित साधनो के समुचित प्रयोग से अधिकतम सामाजिक कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति करना है।

आर्थिक नियोजन की आवश्यक्ता व लोकप्रियता के कारण
(Need of Economic Planning & Causes of its Popularity)

अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित जे० बी० से० का पूर्ति नियम (Supply *creates its own Demand*) और *एडम स्मिथ के आर्थिक निरपेक्षता* (*Laissez* Faire) एव स्वहित के थोथे सिद्धान्त 20वी शताब्दी की राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ म जटिल झौंको मे धराशायी हो गये तो आर्थिक जीवन मे नियोजन की आवश्यकता बढी। अर्थ व्यवस्था म स्थायित्व एव विकास के लिये आर्थिक नियोजन की आवश्यक्ता महसूस हुई है। प्रो० रोबिन्स ने तो 'आर्थिक नियोजन को हमारे युग की समस्त आर्थिक समस्याओ के निराकरण की अचूक रामबाण औषधि" माना है। अत नियोजन अब केवल सिद्धान्त ही नही वरन् यह सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक जीवन का अविभाज्य अग बनता जा रहा है। "आर्थिक नियोजन एक साध्य नही बल्कि साधन मात्र है। इसकी आवश्यक्ता योजना निर्माण मे ही नही *बल्कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति मे निहित है ताकि राष्ट्रीय आय, उत्पादन* रोजगार व जीवन-स्तर मे वृद्धि हो। *अर्थ-व्यवस्था* मे स्थायित्व, सुरक्षा व विकास का मार्ग प्रशस्त हो। आधुनिक युग मे नियोजन की आवश्यक्ता व बढती हुई लोकप्रियता के निम्न कारक है—

(1) **पूँजीवादी एव स्वतन्त्र उपक्रम व्यवस्था के दोषों का निवारण**—नियोजन की लोकप्रियता का प्रमुख कारण उसमे पूँजीवाद के दोषो के निराकरण की क्षमता है। पूँजीवाद म व्याप्त आर्थिक असमानता, शोषण, व्यापार चक्रो के दुष्प्रभाव, बेकारी, सम्पन्नता म विपन्नता, साधनो का अपव्यय आदि दोषो का निराकरण आर्थिक नियोजन मे ही निहित है। यही कारण है कि लार्ड केन्स (J M Keynes) ने *पूँजीवाद की बुराइयो के समापन के लिय राज्य-हस्तक्षेप का समर्थन किया।* समाजवादी डर्बिन (E F M Durbin) के शब्दो मे "केवल नियोजन ही पूँजीवाद की बुराइयो को दूर करने का एक मात्र साधन और आशा प्रदान करता है।"

(2) सोवियत रूस व नाजी जर्मनी मे नियोजन की अप्रत्याशित सफलतायें—विश्व के विकासशील व विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक नियोजन की लोकप्रियता का दूसरा कारण रूस व जर्मनी मे इसकी अभूतपूर्व सफलता थी। 1917 की क्रांति के बाद रूस ने आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाकर अपनी पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था को बहुत ही समृद्ध एव शक्तिशाली बनाकर सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया। इसी प्रकार 1933 मे जर्मनी म व्याप्त बेरोजगारी के निवारण के लिये बनाई गई चार-वर्षीय योजना पर्याप्त सफल रही। अत सभी राष्ट्रो मे आर्थिक नियोजन के प्रति आकर्षण निरन्तर बढता गया।

(3) युद्ध मे विजयश्री व पुनर्निर्माण का अनुभव—विश्व युद्ध मे सलग्न इन राष्ट्रो ने युद्ध जीतने के लिये अपने सीमित साधनो के विवेकपूर्ण ढग से सैनिक तथा नागरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये आर्थिक आयोजन की अनिवार्यता महसूस की। और प्रभावी नियन्त्रण लागू किये जो युद्धो की समाप्ति के बाद भी किसी न किसी रूप मे चालू रहे। ताकि युद्ध जर्जरित अर्थव्यवस्थाओ का पुनर्निर्माण किया जा सके।

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका से जर्जरित यूरोपीय देशो की अर्थ-व्यवस्थाओ के पुनर्निर्माण व पुनर्विकास के लिये *मार्शल योजना (Marshal Plan)* लागू की गई तथा उनकी सफलता के परिणामस्वरूप आर्थिक नियोजन की लोकप्रियता और बढी।

(4) व्यापार चक्रों से मुक्ति—1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने सम्पूर्ण विश्व अर्थ-व्यवस्थाओ को चकझोर दिया और मन्दी से उत्पन्न बेकारी, भुखमरी व *यातनाओ से मुक्ति पाने के लिये राज्य हस्तक्षेप की दुहाई दी जाने लगी।* अमेरिका मे न्यू डील (New Deal) व ब्रिटेन मे आर्थिक स्थिरीकरण की नीतिया इसकी परिचायक हैं अत व्यापार चक्रो से मुक्ति पाने के लिये आर्थिक नियोजन की आवश्यकता व लोकप्रियता बढी।

(5) अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे विकास के प्रति जागरूकता—द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त जब अफ्रीका व एशिया के बहुत से अर्द्ध-विकसित राष्ट्र औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुये तो उनकी स्वतन्त्र जनता मे विकास की प्रबल भावना जागृत हुई। *अर्द्ध विकसित देशो की जनता ने तीव्र आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय व समानता,* आर्थिक शोषण से मुक्ति व समृद्ध आर्थिक जीवन के लिये आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया। अत आर्थिक नियोजन की आवश्यकता अर्द्ध-विकसित व विकासशील राष्ट्रो के तीव्र गति से आर्थिक विकास माग प्रशस्त करने के लिये है और इसी कारण *इसकी लोकप्रियता बढना स्वाभाविक है।*

(6) आर्थिक नियोजन की विचारधारा (Ideology) का प्रसार—आर्थिक नियोजन की आवश्यकता महसूस कराने तथा उसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय उन

प्रो० रोबिन्स ने कहा है कि "आर्थिक नियोजन हमारे युग की आर्थिक समस्याओं के निराकरण की अचूक रामबाण औषधि है।" इसी परिप्रेक्ष्य में आर्थिक नियोजन के निम्न लाभ उसके पक्ष के प्रबल तर्क हैं—

(1) साधनों का सर्वोत्तम उपयोग एवं तीव्र आर्थिक विकास (Optimum Utilisation of Resources & Rapid Economic Development)—आर्थिक नियोजन के द्वारा देश में उपलब्ध साधनों व सम्भावित साधनों का प्रयोग प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाता है। उनके अपव्यय को रोका जाता है। प्रयोग में द्विगुणन (Duplication) को रोक उचित समन्वय बैठाया जाता है। उपयोग पर प्रभावी नियन्त्रण होने से उनका सर्वोत्तम उपयोग तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

(2) अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum Social Welfare)—नियोजित अर्थ-व्यवस्था व्यक्तिगत लाभ व स्वहित की भावना से प्रेरित न होकर अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum good of Maximum Number) के लक्ष्य से प्रेरित होती है। शोषण, कृत्रिम कमी व पराश्रितता को समाप्त कर आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की व्यवस्था की जाती है। आर्थिक विकास के लाभों का समाज के अधिकतम हित में वितरण होता है जिससे अधिकतम सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

(3) साधनों का अनुकूलतम वितरण व अपव्यय पर रोक (Optimum Distribution of Resources & Control over Wastage)—पूंजीवाद की अनियोजित अर्थ व्यवस्था में साधनों का निजी लाभ के लिए निर्दयतापूर्ण दुरुपयोग होता है। साधनों का प्रयोग धनिकों की विलासिताओं में कर निर्धनों की अनिवार्यताओं की उपेक्षा की जाती है। अमेरिका में शिक्षा व सामाजिक सुरक्षा पर 5 अरब डालर के खर्च के मुकाबले शराब पर 7 अरब डालर खर्च को नियोजित अर्थ व्यवस्था बर्दाश्त नहीं कर सकती क्योंकि नियोजित अर्थ-व्यवस्था में समस्त प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का उत्पादन व उपभोग में वितरण अनुकूलतम करने का भरसक प्रयास होता है। सरकार साधनों के वितरण पर प्रभावी नियन्त्रण रखती है।

(4) आर्थिक विषमताओं की कमी (Reduction in Economic Inequality)—आर्थिक नियोजन के अभाव में स्वतन्त्र मूल्य यन्त्र प्रणाली साधनों का वितरण धनिकों के पक्ष में करती है जिसमें धनिक और अधिक धनी तथा गरीब अधिक गरीब होते जाते हैं। जबकि आर्थिक नियोजन के द्वारा प्रगतिशील करारोपण व सामाजिक व्यय से आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयास रहता है।

(5) निर्णयों व कार्यों में समन्वय (Co-ordination in Actions & Decisions)—एक अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में असंख्य उत्पादकों व्यापारियों व उपभोक्ताओं के अलग-अलग कार्यों व निर्णयों में परस्पर समन्वय न होने से व्यापार-चक्रों का जन्म होता है। प्रो ए. के लर्नर (A K Lerner) के शब्दों में,

"अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना एक चालक विहीन मोटर से की जा सकती है जिसमे सभी यात्री इसके स्टियरिंग व्हील को अपनी इच्छानुसार घुमाने का प्रयास करते हैं।" परिणामस्वरूप परस्पर संघर्ष व संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जबकि नियोजित अर्थव्यवस्था अधिकांश कार्यों व निर्णयों मे केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा यथासम्भव समन्वय स्थापित कर साधनो का आदर्शतम उपयोग व वितरण किया जाता है।

(6) दूरदर्शितापूर्ण निर्णय (Far Sighted Decisions)—एक नियोजित अर्थव्यवस्था अनियोजित स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था की अपेक्षा कहीं अधिक दूरदर्शी होती है। इसी कारण नियोजित अर्थव्यवस्था को एक खुले नेत्र वाली अर्थव्यवस्था (An Economy with open Eyes) कहा जाता है। अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे असंख्य उत्पादक, व्यापारी व उपभोक्ता अपने-अपने अल्पकालीन लाभ के लिये भावी भविष्य को भूल जाते है जबकि नियोजित अर्थव्यवस्था मे केन्द्रीय नियोजन सत्ता प्रत्येक आर्थिक निर्णय को भावी भविष्य के परिप्रेक्ष्य म परखती है। प्रो डविन ने केन्द्रीय नियोजन सत्ता की तुलना सेनापति और असंख्य स्वतन्त्र उत्पादकों, व्यापारियों व उपभोक्ताओं की तुलना सैनिकों से करते हुए लिखा है, 'एक पहाडी पर खडा सेनापति युद्ध पंक्ति मे खड़े सैनिकों की अपेक्षा अधिक देखने योग्य होता है" अत स्पष्ट है कि नियोजित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक निर्णय दूरदर्शी होते है।

(7) व्यापार चक्रों से मुक्ति एवं आर्थिक स्थायित्व (Freedom from Trade Cycles & Establishment of Economic Stability)—एक अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था म असंख्य मनमाने एव अदूरदर्शिता निर्णयों मे परस्पर समन्वय के अभाव म अर्थव्यवस्था मे व्यापार चक्रों का प्रादुर्भाव होता है और अर्थ-व्यवस्था मे अस्थिरता उत्पन्न होती है जबकि नियोजित अर्थव्यवस्था म विवेकपूर्ण एव दूरदर्शी निर्णयो, कार्यों व निर्णयों मे समन्वय तथा प्रभावी नियन्त्रण होने से आर्थिक तेजी-मन्दी के दुष्प्रभावों से मुक्ति मिलती है और अर्थव्यवस्थाओं मे स्थायित्व आता है।

(8) कट्टर प्रतिस्पर्द्धा के दोषों व सामाजिक लागतों का समापन (Abolition of Cut Throat Competition & Soial Costs)—एक नियोजित अर्थव्यवस्था मे गला घोट प्रतियोगिता साधनो के दुरुपयोग व अपव्यय को बढाती है। विज्ञापन, विक्रय कला पर भारी व्यय होता है। प्रो डविन के शब्दो मे "कट्टर प्रतिस्पर्धा की संस्था आर्थिक जीवन को बुद्धिमत्तापूर्ण दिशा मे नहीं ले जाती" अत नियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा को अत्यन्त सीमित कर देने से इसके दुष्प्रभावों से मुक्ति मिल जाती है। इसी प्रकार अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं म समाज को अनेक हानिकारक परिणामो का भार उठाना पड़ता है जो औद्योगिक बीमारियों, चक्रीय बेकारी, औद्योगिक गन्दी बस्तियों का निर्माण, धुआंदार अस्वस्थ वातावरण व दुर्घटनाओं के रूप मे होते हैं। प्रो पीगू ने इन्हे पूंजीवाद का दिवालियापन कहा है।

(9) शोषण से मुक्ति व सामाजिक परजीवियों का समापन (Abolition of

Exploitation & Social Parasites)—अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे निजी लाभ की भावना से श्रमिको, उपभोक्ताओ व निर्बल वर्गों का शोषण होता है। कृत्रिम अभावो का सृजन कर ऊँचे मूल्यो मे काला बाजारी की जाती है। धनी गरीबो का शोषण करते हैं और कई व्यक्ति उत्तराधिकार मे प्राप्त अपार सम्पत्ति के कारण भारी मात्रा मे लगान, ब्याज, लाभ बिना किसी परिश्रम के ही अर्जित करते हैं। इस अनार्जित आय (Unearned Income) के द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले समाज के खटमल है। नियोजित अर्थव्यवस्था मे निजी सम्पत्ति के स्वामित्व को सीमित कर देने से सामाजिक पराश्रितो (Social Parasites) का समापन कर दिया जाता है। वितरण पर सरकार का प्रभावी नियन्त्रण होने से कृत्रिम अभावो का भय समाप्त होता है। निजी लाभ के स्थान पर अधिकतम सामाजिक लाभ की प्रधानता के कारण शोषण नहीं हो पाता। स्पष्ट है कि नियोजित अर्थव्यवस्था मे शोषण से मुक्ति मिलती है और सामाजिक पराश्रितो का समापन होता है।

(10) सामाजिक न्याय और आर्थिक सुरक्षा(Social Justice & Economic Security)—नियोजित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक समानता, उचित मजदूरी लाभ का न्यायोचित वितरण, और रोजगार की पर्याप्त व्यवस्था के साथ साथ समाज के पाँच महान शत्रुओ—बेकारी, बीमारी, वृद्धावस्था, मृत्यु व दुर्घटनाओ पर विजय के लिये सरकार सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था भी करती है। इस प्रकार सामाजिक न्याय आर्थिक सुरक्षा व औद्योगिक शान्ति आर्थिक नियोजन मे ही निहित है। अनियोजित अर्थव्यवस्था मे असमान वितरण, शोषण, व्यापार चक्रो और सुरक्षा के अभाव मे सामाजिक न्याय कोरी कल्पना है।

(11) पूंजी निर्माण की ऊँची दर (High Rate of Capital Formation)—नियोजित अर्थव्यवस्था मे अनियोजित अर्थव्यवस्था की अपेक्षा पूंजी निर्माण की गति तेज होती है क्योकि साधनो के अनुकूलतम उपयोग से उत्पादन व विनियोग बढ़ते हैं और आय-बचत व विनियोग बढ़ते ही जाते हैं। उपभोग को नियन्त्रित कर पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाता है। रूस मे तीव्र गति से पूंजी निर्माण इसका परिचायक है।

(12) नवीन परिवर्तनो से शीघ्र सामजस्य व अधिकतम तकनीकी कुशलता (Speedy Adjustment with New changes & Maximum Technical Efficiency)—नियोजित अर्थव्यवस्था म वैज्ञानिक आविष्कार एव अनुसधानो से उत्पादन तकनीकी मे होने वाले परिवर्तनो के साथ शीघ्र सामन्जस्य बैठाया जाता है ताकि उत्पादन तकनीक से अधिकतम लाभ सम्भव हो सके। अर्थव्यवस्था में विवेकीकरण (Rationalisation), विशिष्टीकरण (Specialisation) तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) के लिये आर्थिक नियोजन द्वारा ही सस्थागत सरचना मे तीव्रगामी परिवर्तनो से नवीन परिवर्तनो के अनुरूप शीघ्र एव सुगम सामन्जस्य बैठाया जाता है। अनियोजित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे नवीन परिवर्तनो

के साथ शीघ्र सामन्जस्य बैठाने तथा अधिकतम तकनीकी कुशलता प्राप्त करने की प्रक्रिया धीमी होती है।

(13) युद्ध व राष्ट्रीय सकट के समय नियोजित अर्थव्यवस्था सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्था (*Planned Economy is most efficient system in War & National Emergency*)—युद्ध काल म शत्रु पर विजय पाने की दृष्टि से उपलब्ध साधनों का नियोजन द्वारा समुचित उपयोग किया जाता है तथा आर्थिक नियोजन से युद्ध-जर्जरित अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण व पुनरुत्थान भी तीव्र गति से हो सकता है। राष्ट्रीय सकटों का मुकाबला करने की क्षमता नियोजित अर्थव्यवस्था मे अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा अधिक रहती है। 1930 की विश्व व्यापी आर्थिक मदी मे जब समूचा विश्व बेकारी व भुखमरी से त्रस्त था रूस की नियोजित अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार व आर्थिक समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर थी। पूजीवादी राष्ट्र अमेरिका की भी न्यूडील, (New Deal) की नीति आशिक नियोजन का प्रतीक थी।

(14) अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे तीव्र आर्थिक विकास (*Rapid Economic growth in Under-Developed or developing Countries*)—आज विश्व के अनेक राष्ट्र गरीबी, भुखमरी, बेकारी, जनसख्या समस्या तथा सम्पन्नता मे विपन्नता के कुचक्र मे फसे हुए है। उनकी इन समस्याओ का निराकरण व तेजी से आर्थिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन ही एक मात्र उपयुक्त मार्ग है। रूस जो 1917 की क्रान्ति के समय पिछडा कृषि-प्रधान राष्ट्र था आर्थिक नियोजन के द्वारा आज विश्व की एक महान शक्ति के रूप मे उभर आया है। अनेक विकासशील राष्ट्र भी आर्थिक नियोजन व राज्य हस्तक्षेप के कारण रूढिवादी सामाजिक जडताओ को तोडकर सम्पन्न जीवन की प्रेरणा व उत्साह से आर्थिक विकास की ओर तेजी से बढते जा रहे हैं।

(15) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एव सुरक्षा—आज विश्व के विभिन्न राष्ट्रो के बीच वैमनस्यता व अज्ञात भय का कारण राजनैतिक नही वरन् आर्थिक है विश्व के किसी भी भाग मे गरीबी अन्तर्राष्ट्रीय समृद्धि, शान्ति एव सुरक्षा को सबसे बडा खतरा है। अत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एव सुरक्षा के लिये नियोजन द्वारा समूचे विश्व मे समृद्धि व सम्पन्नता का प्रयास प्रबल है।

(16) नैतिक उत्थान (Moral Uplift)—समाज मे चोरी, झूंठ, भ्रष्टाचार, वैश्यावृत्ति, उत्पात एव दगो के प्रमुख कारण निर्धनता, बेकारी, भुखमरी व व्यापक आर्थिक विषमता है। आर्थिक नियोजन इन समस्याओ का निराकरण कर अर्थव्यवस्था को आर्थिक समृद्धि व विकास की ओर अग्रसर करता है जिससे मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास व नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है।

उपर्युक्त तर्को से स्वय सिद्ध हो जाता है कि नियोजित अर्थव्यवस्था पूंजीवादी दोषो से दूर समाज के अधिकतम कल्याण की सर्वोत्तम व्यवस्था है। **प्रो० सुब्बाराव** के अनुसार "*नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे नई प्रणाली तथा नई कला से जो कुछ प्राप्त*

करने के लिये प्रयत्न किये जाते है वे उत्पादन कुशलता, आर्थिक स्थिरता और वितरण में न्याय के परिचायक है।" आज सम्पूर्ण आर्थिक जीवन आयोजन से ओत-प्रोत है। इस परिप्रेक्ष्य मे प्रो० लुईस का यह कथन उपयुक्त लगता है "अब निरपेक्षता की नीति (Laissez Faire Policy) मे विश्वास करने वाले पागलो के अतिरिक्त कोई नहीं है।"[1] नियोजन आज प्रत्येक राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था के सचालन का प्रमुख धर्म है। नियोजन का उपहास उडाने वाले पूंजीवादी राष्ट्र भी अब स्वय उसके पुजारी बन गये हैं। अमेरिका म न्यूडील, इगलैण्ड मे स्थिरीकरण व पूर्ण रोजगार के लिये नियोजन, युद्धोत्तर काल मे युद्ध जर्जरित अर्थ-व्यवस्थाओ के पुनर्निर्माण के लिये मार्शल योजना इस प्रवृत्ति के स्पष्ट परिचायक हैं।

आर्थिक नियोजन के सम्भावित दोष-हानियाँ—नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विपक्ष मे तर्क अथवा अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के तथाकथित लाभ-गुण (Probable Demerits of Economic Planning or Arguments against Planned Economy)

यद्यपि नियोजित अर्थ-व्यवस्था आर्थिक विकास, स्थायित्व व सामाजिक न्याय के लिये सर्वोत्तम व्यवस्था है फिर भी उसमे दोष सम्भावित हैं और इन दोषो के द्वारा पूंजीवाद के समर्थक आर्थिक नियोजन की कटु आलोचना करते है। प्रो० हेयक (Hayek) ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'Road to Serfdom" मे आर्थिक नियोजन को दासता का मार्ग कहा है जिसमे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है, अधिकारी तत्र, लालफीताशाही, भ्रष्टाचार व आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण होता है मूल्य तन्त्र के अभाव म आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार नियोजित अर्थ-व्यवस्था के विपक्ष म निम्न तर्क दिये जाते हैं—

(1) **नियोजन से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन**—नियोजित अर्थव्यवस्था म सब प्रमुख आर्थिक निर्णय केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा लिये जाते है। निजी व्यक्तियो की उपभोग, उत्पादन व व्यवसाय की सार्वभौमिकता समाप्त हो जाती है। इसी कारण प्रो० हेयक (Hayek) ने 'आर्थिक नियोजन को दासता का मार्ग कहा है (Planning is a Road to Serfdom)।"

यह आरोप पूर्णत सत्य नही है। नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे उपभोक्ताओ की सार्वभौमिकता सामाजिक हित म नियन्त्रित होती है। रूस जैसी साम्यवादी नियोजन व्यवस्था मे भी अब लोगो की उपभोग व व्यावसायिक अभिरुचियो को ध्यान मे रखकर ही निर्णय लिये जाते हैं। प्रजातन्त्रीय नियोजन मे तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता काफी होती है जैसे भारत मे दृष्टिगोचर होती है। श्रीमती बारबरा वूटन के शब्दो मे "जहाँ तक स्वाधीनता का सम्बन्ध है आर्थिक नियोजन का औचित्य यही है कि

1 There are no longer any believers in Laissez Faire except in the lunatic fringe —W Lewis

आर्थिक प्राथमिक्ताओ के सामूहिक एव जानबूझकर लिये गय निर्णयो द्वारा हमारी निराशाएँ कम होती हैं, स्वाधीनता बढती ह और जो हम करना चाहते है उसके लिये पर्याप्त अवसर बढते हैं।" पूँजीवाद की तथाकथित स्वतन्त्रता एव प्रभुसत्ता आथिक असमानता की दशा मे केवल सुखद स्वप्न है क्योंकि काम चुनने की स्वतन्त्रता होती है पर काम नही मिलता और उपभोग की स्वतन्त्रता होती है पर निर्धनो के पास क्रय शक्ति नही होती। अत स्वतन्त्रता का सीमित हनन पूजीवाद के बेरोजगारी भुखमरी आथिक शोपण व निधनता से कही अच्छा है।

(2) नियोजित अर्थ व्यवस्था एक अस्त व्यस्त अर्थ व्यवस्था (Muddled Economy) होती है—आर्थिक नियोजन के अन्तगत स्वतन्त्र मूल्य यन्त्र (Free Price Mechanism) के स्थान पर कृत्रिम मूल्य प्रणाली मनमाने ढग से निश्चित की जाती है अत स्वतन्त्र मूल्य यन्त्र के अभाव म वितरण व उत्पादन सम्बन्धी निर्णय अविवेकपूण होते है जिससे साधनो व उत्पादन की वितरण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती हे और समूची अथव्यवस्था अस्तव्यस्तता के दल दल म फस जाती है।

यह आलोचना भी व्यावहारिक सत्यता से काफी परे है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था म सामाजिक हितो के अनुरूप कृत्रिम मूल्य प्रणाली साधनो का उत्पादन व उपभोग म समुचित वितरण कर व्यापार चक्रो से होने वाले दुष्प्रभावो से बचाती है और इसी अथ व्यवस्था गडबडियो से मुक्त हो जाती है।

(3) तानाशाही प्रवृत्ति का विस्तार—नियोजित अथ व्यवस्था म समस्त प्रमुख आर्थिक निणय केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा लिय जाते है अत सरकार के पास राजनैतिक सत्ता क साथ साथ आर्थिक सत्ता का भी केन्द्रीयकरण हो जाता है और इससे सरकार की तानाशाही प्रवृत्ति को बढावा मिलता ह। नियोजन क अन्तगत देश म सरकार ही सर्वेसवा और सवशक्तिमान हो जाती ह। जैसा चीन रूस व अन्य साम्यवादी देशो म दृष्टिगोचर होता है।

यह आरोप प्रजातान्त्रिक नियोजन प्रणाली म सही नही उतरता क्योंकि वहाँ नियोजन जनता के द्वारा जनता के लिये जनता की इच्छानुरूप होता ह।

(4) अधिकारी तन्त्र और लाल फीताशाही का भय (Dangers of Bureaucracy & Red Tapism)—नियोजित अथ व्यवस्था म अथ व्यवस्था का सचालन एव नियन्त्रण केन्द्रीय नियोजन सत्ता क सरकारी कमचारियो की इच्छा और आदेशो क अनुसार होता ह अत सरकारी अधिकारियो व बाहुल्य म अधिकारी तन्त्र पनपता है और निणयो म विलम्ब से लाल फीताशाही का बोलबाला बढता है। यह नियोजित भारतीय अथव्यवस्था के प्रत्यक्ष क्षत्र म स्वय स्पष्ट ह। वैसे यह दोष नियोजन का नही वरन् प्रशासनिक कुशलता एव सरकार की ढीली ढाली नीति का दुष्परिणाम ह। अब देश मे आपात स्थिति की घोषणा क बाद प्रशासन म कुशलता बढी ह।

(5) भ्रष्टाचार एव अकुशलता को बढावा—नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सरकार आर्थिक एव राजनैतिक सत्ता का केन्द्रीकरण कर लेती है उससे सरकारी एव कर्मचारी स्तर पर भ्रष्टाचार को बढावा मिलता है। "सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट बनाती है और पूर्ण सत्ता उसे पूर्ण भ्रष्ट बना देती है" (Power corrupts the man and Absolute power corrupts the man absolutely) की कहावत सत्ता के केन्द्रीयकरण पर, शासको, अधिकारियो व कर्मचारियो पर भी चरितार्थ होती है जैसा हम भारत मे हर क्षेत्र मे अनुभव कर रहे है। भ्रष्टाचार व सत्ता केन्द्रीयकरण मे अकुशलता को भी प्रोत्साहन मिलता है क्योकि लाल फीताशाही और अधिकारी तन्त्र मे अनावश्यक विलम्ब, अकुशलता व भ्रष्टाचार पनपता है।

सही मायने मे यह आर्थिक नियोजन के दोष नही वरन् शासन पद्धति व प्रशासनिक व्यवस्था के दोष हैं।

(6) आवश्यक उत्प्रेरणाओ (Incentives) का अभाव—पूँजीवादी स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था मे "निजी लाभ" का जादू निजी साहस का प्रेरणा स्रोत होता है पर नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे "निजी लाभ" के तत्व का नितान्त अभाव होने से वेतन *भोगी सरकारी कर्मचारियो व श्रमिको मे नये साहस की प्रेरणा नही होती।* परिणाम-स्वरूप नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे अधिक परिश्रम, साहसी भावना व आविष्कार की योग्यताओ मे शनैं शनैं ह्रास होता है। पर इस कमी को दृष्टिगत रखते हुए आजकल नियोजित अर्थ-व्यवस्थाओ मे पारितोषिक, पदोन्नति व राष्ट्रीय सम्मान तथा अन्य मौद्रिक एव अमौद्रिक उत्प्रेरणाओ द्वारा श्रमिको की कार्यक्षमता, योग्यता व साहसी भावना को बढावा दिया जाता है।

(7) विशाल जन शक्ति का अपव्यय—प्रो० लुईस के अनुसार योजना बनाने, उसके लिये विस्तृत विवरण तैयार करने, योजना को कार्यान्वित करने तथा उसके मूल्याकन के लिये केन्द्रीय नियोजन सत्ता को विशाल सख्या मे विशेषज्ञो, अधि-*कारियो, कर्मचारियो व अन्य लोगो की आवश्यकता पडती है। कार्यकर्ताओ की यह* विशाल सख्या प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन मे योगदान नही करती। अत अर्थ-व्यवस्था मे विशाल जन-शक्ति का अपव्यय है जबकि अनियोजित अर्थ व्यवस्था मे स्वतन्त्र मूल्य प्रणाली समूची अर्थ-व्यवस्था को स्वय सचालित बनाकर इस अपव्यय को रोकती है।

यह तर्क भी भ्रमात्मक है क्योकि नियोजन म सलग्न कार्यकर्ताओ की विशाल सख्या साधनो के दूरदर्शितापूर्ण व विवेकशील उपयोग व वितरण से कही अधिक अपव्यय को बचा देती है जो पूँजीवादी स्वचालित अर्थ व्यवस्था म व्यापार चक्रो, बेकारी, भुखमरी व साधनो के दुरुपयोग से उत्पन्न होता है।

(8) दीर्घकालीन नियोजन खतरनाक हो सकता है—आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया म दीर्घकालीन योजनाओ मे अल्पकालीन योजनाओ का समावेश कर विकास

का मार्ग निश्चित किया जाता है पर भविष्य की अनिश्चितताओं और तीव्र गति से बदलती परिस्थितियों के कारण उद्देश्यों व तरीकों में अन्तर आ सकता है अत: दीर्घ-कालीन नियोजन निरर्थक एवं हानिकारक हो सकता है। यह आलोचना भी निरर्थक है क्योंकि नियोजन में पर्याप्त लोचता व संशोधनों की व्यवस्था से इस खतरे से मुक्ति मिल जाती है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की सम्भावना—**प्रो० रोबिन्स** के अनुसार विश्व के अनेक देशों द्वारा राष्ट्रीय नियोजन अपनाने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संकुचन, विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण, पूँजी तथा श्रम की गतिशीलता में बाधा तथा आर्थिक क्षेत्र में शक्ति परीक्षण से अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य एवं संघर्ष का जन्म होता है जो किसी भी समय युद्ध की चिनगारी भड़का कर विश्व शान्ति एवं सुरक्षा को खतरा उत्पन्न कर सकता है। यहाँ यह बताना उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष आर्थिक नियोजन से नहीं वरन् उग्र राष्ट्रवाद से उत्पन्न होता है, यह अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में भी सम्भव है।

(10) राजनैतिक अस्थिरता का भय—आर्थिक नियोजन प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था में राजनैतिक सत्ता के निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप होता है और राजनैतिक सत्ता में परिवर्तन के साथ ही आधारभूत नीतियों में भी परिवर्तन होने से अनेक पुराने कार्यक्रमों को बन्द कर अनेक नवीन आधारभूत नीतियों को क्रियान्वित किया जाता है। अतः नियोजन में अस्थिरता का भय व्याप्त रहता है। **प्रो० जेक्स** (Jewkes) के अनुसार राजनैतिक अस्थिरता के वातावरण में दीर्घकालीन औद्योगिक परियोजनाएँ नहीं पनप सकती। इस दोष का निराकरण सभी राजनैतिक दलों में नियोजन के प्रति सामूहिक सहमति व सदभावना में निहित है।

(11) संक्रमण काल में अव्यवस्था व जनता का असन्तोष—आर्थिक नियोजन कुछ मान्यताओं पर आधारित होता है पर दुर्भाग्य से प्राकृतिक विपदा, युद्ध अकाल बाढ़ या अन्तर्राष्ट्रीय संकट के कारण नियोजन के लक्ष्य पूरे नहीं हो पाते जबकि जन आकांक्षाएँ बढ़ जाती हैं तो अर्थ व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। जन विरोध व असन्तोष बढ़ता है जैसे 1974-75 के दो वर्षों में भारतीय अर्थ व्यवस्था आर्थिक अस्थिरता के ऐसे कुचक्र में फंस गई थी कि जन-आन्दोलनों का तांता लग गया और इस व्याप्त असन्तोष ने हिंसा, आगजनी लूटपाट का विध्वंसक मार्ग अपना लिया जिससे विकास व व्यवस्था के मार्ग में अनेक बाधायें उत्पन्न हो गई थी। इसका समापन आपात स्थिति की घोषणा से ही सम्भव हो पाया था

नियोजन के पक्ष एवं विपक्ष में दिये गये उपर्युक्त तर्कों के विवेचन से यह निष्पक्ष निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्थिक नियोजन आधुनिक युग की समस्त आर्थिक समस्याओं के निराकरण तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए अचूक रामबाण औषधि है। आज पूँजीवादी राष्ट्र भी आर्थिक नियोजन के द्वारा अपनी आर्थिक समस्याओं के हल में प्रयत्नशील हैं। आर्थिक नियोजन के सम्भावित दोषों का

निराकरण नियन्त्रित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, नियोजन की लोचता, कुशल सचालन व राजनैतिक स्थिरता मे निहित है। अब नियोजन सभी अर्थ-व्यवस्थाओं मे राष्ट्र धर्म बन गया है। आर्थिक नियोजन के लिए कोई विवाद नही, विवाद है केवल उसके स्वरूप पर। इसी कारण पीगू ने लिखा है 'यदि समाजवादी केन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली को प्रभावपूर्ण ढग से सगठित किया जाय तो यह हमारी वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली से कई बातो मे श्रेष्ठ होगी।" अत नियोजित अर्थ-व्यवस्था की श्रेष्ठता स्पष्ट है।

आर्थिक नियोजन की सफलता के मूल तत्व या आवश्यक शर्तें

(Essential Elements or Essential Conditions for Planning Success of Economic)

आर्थिक नियोजन एक स्वचालित व्यवस्था न होकर राज्य की एक सुसगठित एव सुसम्बद्ध प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य निश्चित अवधि म पूर्व निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति करना होता है। नियोजन की सफलता से आर्थिक समृद्धि, सामाजिक समानता व राजनैतिक सुदृढता बढने के कारण भावी नियोजन की प्रेरणा मिलती है और नियोजन की विफलता मे निराशा, निर्धनता और सामाजिक उत्पीडन होने स नियोजन की प्रक्रिया का हतोत्साहन होता है। अत आर्थिक नियोजन की सफलता एक अनिवार्य आवश्यकता है और यह निम्न तत्वो या शर्तों पर निर्भर करती है—

(1) सशक्त एव स्थिर शासन (Strong & Stable Government)—आर्थिक नियोजन मे केन्द्रीय नियन्त्रण को प्रभावी एव कुशल बनाने के लिए सशक्त एव स्थिर सरकार एक अनिवार्य घटक है। आन्तरिक शान्ति एव बाह्य सुरक्षा के वातावरण म ही नियोजन की सफलता निहित है जबकि ढीली एव अस्थिर शासन व्यवस्था मे प्रभावी एव कुशल नियन्त्रण के अभाव, आन्तरिक दगो व अव्यवस्था और बाह्य आक्रमणो के भय स नियोजन की सफलता सन्दिग्ध रहती है। यही कारण है कि तानाशाही शासन पद्धति स नियोजन प्रजातान्त्रिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक कुशल, प्रभावी एव सफल होता है। रूस और भारत इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। भारत म राज्यो म शासन की अस्थिरता से शासक कुर्सी की सुरक्षा के लिये आर्थिक नियोजन की उपेक्षा करते थ और अपने निजी राजनैतिक हितो की पूर्ति के लिए आर्थिक नियोजन के हितो की बलि दे देते थ। अत नियोजन की सफलता की प्रमुख शर्त देश मे सुदृढ, स्थिर एव ईमानदार सरकार होना है।

(2) यथार्थवादी उद्देश्य, प्राथमिकताए एव लक्ष्य (Realistic Objectives, Priorities & Targets)—आर्थिक नियोजन की सफलता की दूसरी महत्वपूर्ण शर्त यह है कि योजना के उद्देश्य, प्राथमिकताए एव लक्ष्य स्पष्ट एव यथार्थवादी होने चाहिए। उनका निर्धारण अर्थ-व्यवस्था के साधनो व आवश्यकताओ के अनुरूप विवेक

पूर्ण ढग से करना चाहिए। योजना बहुत अधिक महत्वाकांक्षी व वास्तविकता से परे होने अथवा उद्देश्यों व लक्ष्यों के बहुत नीचा निर्धारित करने मे नियोजन की विफलता इसके प्रति निराशा का वातावरण फैलाती है। अत नियोजन की सफलता के लिये *योजना क उद्देश्य, प्राथमिकता व लक्ष्यों को यथार्थवादी बनाना चाहिये।*

(3) साधनों का उचित मूल्यांकन तथा पर्याप्त विश्वसनीय सांख्यिकी आँकड़े (Proper Evaluation of Resources & Adequate Correct Statistical Data)—*नियोजन के अन्तर्गत साधनों के विदोहन, विभिन्न क्षेत्रों मे वितरण तथा* अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सामजस्य बैठाने की समस्या का समाधान समस्त साधना के सर्वेक्षण एव मूल्यांकन तथा तद्-सम्बन्धी पर्याप्त विश्वसनीय आँकड़ो पर निर्भर करता है। अत राष्ट्रीय आय, बचत, उपयोग, कच्चे माल, जनसंख्या, *खनिज सम्पत्ति, प्राकृतिक साधनो व पूंजीगत साधनों के बारे मे पर्याप्त विश्वसनीय* आँकड़े होने पर योजना का निर्माण, क्रियान्वयन व प्राथमिकताओ का निर्धारण सही-सही करने मे सहायता मिलती है और इनके अभाव मे अन्धकार मे कदम रखने के समान है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र मे कुशल सांख्यिकी सगठनों के अभाव मे विश्वसनीय आँकड़ो का अभाव योजनाओं की सफलता मे सदिग्धता का एक प्रमुख कारण रहा है। अब भारत म केन्द्रीय स्तर पर केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन (C.S.O) *तथा राज्य स्तर पर राज्य सांख्यिकी विभाग कार्यरत है। अन्य विभागीय सस्थायें भी इस काय मे रत है।*

(4) भौतिक तथा वित्तीय स्रोतो की निश्चितता व पर्याप्तता (Certainty & Adequacy of physical & Financial Resources)—योजना मे निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति के लिए विभिन्न कार्यक्रमो व परियोजनाओ को कार्यान्वित करने के लिये पर्याप्त मात्रा म भौतिक एव वित्तीय साधनो की आवश्यकता पडती है। भौतिक साधना (Physical Resources) के अन्तगत विभिन्न प्रकार की भौतिक वस्तुओ जैस मशीनें यन्त्र औजार, सभी प्रकार का कच्चा माल, इस्पात, सीमेन्ट, रसायन श्रमिक, प्रबन्धक साहसी तथा तकनीकी एव वित्तीय विशषज्ञो आदि *का समावेश* होता है जिनकी पूर्ति आन्तरिक साधनो व विदेशी आयातो पर निर्भर करती है जबकि वित्तीय साधनो (Financial Resources) के अन्तर्गत योजनाओ क लिये उपलब्ध आन्तरिक एव बाह्य मौद्रिक साधन आते है जिनकी पूर्ति राष्ट्रीय आय, बचत व विनियोग दर, करदान क्षमता, जन सहयोग, वित्तीय सस्थाओ के योग व बाह्य साधना म विदेशी भुगतान सन्तुलन पर निर्भर करती हैं। भौतिक एव वित्तीय साधन दोनो परस्पर पूरक एव सहायक साधन है, एक क अभाव मे दूसरे की पर्याप्त पूर्ति होने पर भी लक्ष्यो की पूर्ति सम्भव नही होती। अत *नियोजन की सफलता के लिय* भौतिक एव वित्तीय साधनो की पर्याप्त एव निश्चित पूर्ति होना आवश्यक शर्त है। भारत मे दोनो प्रकार के साधनो अपर्याप्त एव अनिश्चित पूर्ति के कारण योजना *की सफलता सदा सदिग्धता के सागर मे गोते लगाती है।*

(5) आर्थिक सगठन का उपयुक्त स्वरूप (Suitable Structure of (Economic Organisation)—वह सस्थागत सरचना जिसमे विभिन्न आर्थिक क्रियाओ--उत्पादन, वितरण, विनियम, उपभोग एव राजस्व का सम्पादन होता है आर्थिक सगठन कहा जाता है अत नियोजन की सफलता के लिए आर्थिक सगठन का उपयुक्त स्वरूप भी एक अनिवार्य शर्त है। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे नियोजन की सफलता सुनिश्चित होती है जबकि पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था मे नियोजन की सफलता सदिग्ध रहती है क्योकि प्रभावी नियन्त्रण का अभाव होता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था म सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो के साथ साथ काम करने से नियोजन की सफलता बहुत कुछ सरकार के प्रभावी नियन्त्रण व निजी क्षेत्र के सहयोग पर निभर करती है अगर प्रभावी नियन्त्रण न हो और निजी क्षेत्र निजी लाभ क पीछे सामाजिक हितो की उपेक्षा करे तो नियोजन विफल रहता है जैसा कि भारत की मिश्रित अथ-व्यवस्था मे नियोजन आशिक रूप से ही सफल रहा है। जबकि रूस व साम्यवादी राष्ट्रो म समाज वादी अर्थ व्यवस्था के कारण नियोजन सर्वाधिक सफल रहा है। अत भारत म नियोजन की सफलता के लिए आर्थिक सगठन को समाजवाद की ओर अग्रसर करना एक उपयुक्त कदम है। प्रो इर्विन के शब्दो मे 'आर्थिक नियोजन की समस्या मुख्यत वित्तीय समस्या नही बल्कि यह तो आर्थिक सगठन अथवा व्यवस्था की समस्य है।"

(6) योजना निर्माण क्रियान्वयन व मूल्यांकन की उचित व्यवस्था (Proper Machinery for plan Formation Implementation & Evaluation)—योजना की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निभर करती ह कि उनके निर्माण क्रियान्वयन व मूल्यांकन के लिए उपयुक्त मशीनरी हो, क्योकि आर्थिक नियोजन क विभिन्न कार्यक्रमो परियोजनाओ के निर्धारण, साधनो के उपयोग मे प्राथमिकताओ का निश्चित करना तथा विभिन्न क्षेत्रो मे सामन्जस्य व सन्तुलन बैठना तथा इन योजनाओ को मूतरूप देने म एक कुशल व उपयुक्त व्यवस्था आवश्यक होती है। यही नही योजना के पूर्व निर्धारित लक्ष्यो व वास्तविक प्राप्तियो के मूल्याकन की भी आवश्यकता पडती है ताकि आवश्यक सशोधन व सुधार किया जा सकें। भारत मे योजना निर्माण कार्य केन्द्रीय स्तर पर योजना आयोग (Planning Commission) तथा राज्य स्तर पर राज्य योजना बोर्डों (State Planning Boards) को सौंपा गया है। योजना आयोग देश की सर्वोच्च नियोजन सत्ता है। मूल्याकन का कार्य करने के लिये विशिष्ट विभाग है। क्रियान्वयन का काय विभागो पचायतो आदि मे विकेन्द्रित है।

(7) कुशल योग्य व ईमानदार प्रशासन (Efficient Competent & Honest Administration)—आर्थिक नियोजन का सफल क्रियान्वयन कुशल योग्य एव ईमानदार प्रशासन से ही सम्भव होता है। योजना निर्माण पक्ष प्रबल होन पर भी अगर क्रियान्वयन पक्ष दुर्बल अकुशल अयोग्य व भ्रष्ट हुआ तो योजना की विफलता

सुनिश्चित है। आज अर्द्ध-विकसित व विकासशील राष्ट्रों में कुशल, योग्य व ईमानदार प्रशासन के अभाव में अच्छी योजनाएं भी सफल नहीं हो पा रही हैं। भारत उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतः प्रो लुईस (W. A. Lewis) के शब्दों में "नियोजन में सर्वप्रथम सुदृढ़, योग्य एवं ईमानदार प्रशासन की आवश्यकता होती है।"[1]

(8) विपक्षी राजनैतिक दलों में नियोजन के प्रति सामान्य सहमति (General Acceptance of Planning by all Opposition Political Parties)—नियोजन की सफलता के लिए विभिन्न राजनैतिक दलों में आर्थिक नियोजन की आधारभूत नीतियों, उद्देश्यों व लक्ष्यों के प्रति एकमत एवं सामान्य स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा विपक्षी राजनैतिक दलों द्वारा सत्ताधारी दल की नियोजन नीति की कटु आलोचना जनता में भ्रम फैलाकर जन सहयोग व भावना को ठेस पहुंचा कर नियोजन को विफल बनाने में योग देगी। जैसे भारत में विभिन्न दलों में नियोजन की आधारभूत नीतियों उद्देश्यों लक्ष्यों व प्राथमिकताओं के बारे में काफी मतभेद नियोजन की सफलता में बाधक बनता है।

(9) उच्च राष्ट्रीय चरित्र व जनता में त्याग की तत्परता (High National Character & Preparedness for Sacrifices)—जनता की त्याग की तत्परता व उच्च राष्ट्रीय चरित्र सभी असम्भावनाओं को सम्भव बना सकता है। अगर देश के लोग परिश्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठ ईमानदार सहयोगी व राष्ट्रभक्त होंगे तो नियोजन की सफलता निश्चित है पर अगर आलसी भ्रष्ट देशद्रोही व कामचोर हुए तो अच्छी से अच्छी योजना भी विफल हो जायेगी। आज जापान के लोगों में उच्च राष्ट्रीय चरित्र उनकी आर्थिक समृद्धि का राज है। हमारी योजनाओं में विफलता का एक प्रमुख कारण हमारे में उच्च राष्ट्रीय चरित्र व त्याग की तत्परता की भावना का अभाव है। हम निजी लाभ व हितों के लिए राष्ट्रीय लाभ व हित की बलि देने को उद्यत हैं। **"बिना आंसू नियोजन की सफलता सम्भव नहीं।"**[2] अतः त्याग की तत्परता भी आवश्यक होनी है।

(10) नियोजन में व्यापक, लोचपूर्ण व दीर्घकालीन दृष्टिकोण—आर्थिक नियोजन एक अल्पकालीन प्रयास न होकर निरन्तर चलने वाली दीर्घकालीन प्रक्रिया है अतः नियोजन की सफलता के लिये नियोजन आंशिक न होकर व्यापक तथा कठोर न होकर लोचपूर्ण तथा अल्पकालीन न होकर दीर्घकालीन दृष्टिकोण से प्रेरित होना चाहिए। अल्पकालीन योजनाएँ दीर्घकालीन दृष्टिकोण में समायोजित की जानी है। परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ उनमें बदलने की लोचता होनी चाहिये। रूस में 20 वर्षीय योजना (1960–80) पंचवर्षीय योजनाओं के लिये दीर्घकालीन

---

1. In first place, Planning requires a strong, competent and incorrupt administration —W. A. Lewis
2. "Planning without tears is not successful —W. A. Lewis

दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। भारत मे भी योजना आयोग के अन्तर्गत एक दीर्घकालीन आयोजन विभाग (Pers,ective Planning Department) खोला गया है यह सही दिशा मे एक कदम है।

(11) जन सहयोग (Public Co-operation)—आर्थिक नियोजन ऐसी प्रक्रिया है जिसे दूसरो पर थोपा नही जा सकता। उसकी सफलता जनता की इच्छा, उत्साह व उसके सहयोग पर निर्भर करती है। प्रजातान्त्रिक मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे इसका महत्व और भी बढ जाता है। प्रो० लुईस (W A Lewis) के शब्दो मे 'जन-उत्साह नियोजन के लिय चिकना तेल (Lubricating Oil) तथा आर्थिक विकास का पेट्रोल दोनो है —यह एक ऐसी प्रावैगिक शक्ति है जो प्राय सब चीजो को सम्भव बनाती है।'[1] भारत मे जन-सहयोग की कमी के कारण प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था लागू की गई ताकि योजना का निर्माण व कार्यान्वियन ऊपर व नीचे दोनो स्तर से सम्भव हो। योजना का व्यापक प्रचार, उनम नियोजन के प्रति रुचि, जागृति एव उत्साह बढाकर नियोजन को सफल बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

(12) विविध शर्ते (Miscellaneous Conditions)—आर्थिक नियोजन की सफलता उपर्युक्त तत्वो के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्वो पर भी निर्भर करती है जैसे—(1) अनुकूल प्राकृतिक दशायें—ताकि लक्ष्यो की पूर्ति सम्भव हो सके पर अगर बाढ अकाल, आँधी, तूफान, शीत लहर आदि का प्रकोप हो तो नियोजन असफल हो जाता है जैसे भारत म समय-समय पर हुआ है। (2) आन्तरिक शान्ति एव सुरक्षा—अगर देश मे दगे, लूटपाट, हडतालें, तालाबन्दी, आगजनी, हत्यायें आदि का वातावरण हो तो योजना की सफलता सन्दिग्ध है पर अगर देश मे शान्ति व व्यवस्था बनी रहे तो नियोजन सफलता की ओर अग्रसर होता है। (3) बाह्य आक्रमणों की सुरक्षा—अगर देश को बाह्य आक्रमणो का भय रहता है तो सीमित साधनो का प्रयोग युद्ध की तैयारी के लिये व युद्ध पर भारी व्यय म लगाना पडता है तथा विकास कार्यो की उपेक्षा भी करनी पडती है जबकि सुरक्षा की अवस्था म देश अविरल गति से प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होता जाता है। भारत को चीनी आक्रमण, पाकिस्तानी आक्रमण व बगला देश की रक्षार्थ काफी क्षति उठानी पडी और योजना के लक्ष्य पूरे न हो सके (4) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग—देश के औद्योगिकरण व अन्य विकास कार्यों के लिये विदेशी सहायता व सहयाग की भी आवश्यकता होती है। अगर विकासशील राष्ट्र को विदेशी साधनो की पर्याप्त पूर्ति होती रहे तो नियो-

1 Popular enthusiasm is both the lubricating oil of planning and the petrol of Economic Devleopment a Dynamic force that almost makes all things possible W A Lewis -The Principles of Eco Planning p-182.

जन की सफलता सुगम हो जाती है (5) उपयुक्त समन्वय व सन्तुलन—अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर समन्वय व उपयोग में सन्तुलन बैठाना भी नियोजन की सफलता का आवश्यक तत्व है। इस प्रकार इन सब तत्वों से सामूहिक प्रभाव पर ही नियोजन की सफलता निर्भर करती है।

परीक्षोपयोगी प्रश्नमय संकेत

1. आर्थिक नियोजन किसे कहते हैं ? आधुनिक युग में इसके महत्व को समझाइये। (Raj. III yr. Com 1979)
(संकेतः—नियोजन का अर्थ एवं परिभाषायें देकर पुस्तक में शीर्षकानुसार महत्व देना है।)

2

आर्थिक नियोजन के प्रकार या विभिन्न रूप

(TYPES OF VARIOUS FORMS OF ECONOMIC PLANING)

ाज का युग आर्थिक नियोजन का युग है और यह आधुनिक युग के समस्त
गो की अचूक रामबाण औषधि मानी जाती है इसी कारण प्राय सभी
गालियो मे विकास, स्थायित्व अनुरक्षण अथवा पुनरुत्थान आदि के लिये
योजन का न्यूनाधिक रूप म बोलबाला है। इसकी इस लोकप्रियता व
के कारण ही प्रो० रोबिन्स ने लिखा है "आज वाद-विवाद नियोजन के होने
होने के बीच न होकर इसके विभिन्न प्रकारो के बारे मे है ।" अत आर्थिक
पने विभिन्न रूपो मे प्रस्फुटित हुआ है जिसका वर्गीकरण विभिन्न आधारो
ाया है। (देखें पृष्ठ 26)

आर्थिक नियोजन का यह वर्गीकरण पूर्ण अथवा अन्तिम नहीं है। यह तो
इसके स्वरूपो की मोटी रूपरेखा निश्चित करता है। इन स्वरूपो का सक्षिप्त विवरण
इस प्रकार है .

I सामान्य एव आशिक नियोजन
(General & Partial Planning)

सामान्य नियोजन General Planning)—इसके अन्तर्गत समूची अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिये सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था का नियोजन किया जाता है इसको व्यापक नियोजन या सम्पूर्ण नियोजन भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिय तथा सम्पूर्ण आर्थिक बुराइयो क निराकरण क लिए आर्थिक ढाँचे मे यथोचित तालमेल बैठाया जाता है। सब अल्प-विकसित राष्ट्रो तथा रूस द्वारा अपनाया गया नियोजन सामान्य नियोजन का ज्वलन्त उदाहरण है। यह अधिक कष्टप्रद होता है।

आशिक नियोजन—(Partial Planning)—इसमे अर्थ-व्यवस्था के सम्पूर्ण ढाँचे के विकास की योजना न होकर केवल किसी क्षेत्र या एक भाग विशेष के विकास व उसकी बुराइयो के निराकरण की योजना होती है। जैसे केवल कृषि विकास की योजना, या केवल परिवहन विकास की योजना। यह कम व्ययसाध्य तथा कम कष्टप्रद होता है, यह एक प्रकार से खण्डित नियोजन है जिसम विभिन्न क्षेत्रो मे समन्वय नही बैठाया जाता। इसी कारण प्रो० रोबिन्स न कहा है "आशिक नियोजन तो नियोजन

आर्थिक नियोजन के प्रकार या रूप (Types of Planning)

A	B	C	D	E	F
कार्य-क्षेत्र के आधार पर	आर्थिक संगठन के आधार पर	निर्णयों के आधार पर	अवधि के आधार पर	प्रकृति के आधार पर	अन्य आधार
1 सामान्य एवं आंशिक नियोजन	1 पूंजीवादी नियोजन	1 आज्ञा मूलक एवं प्रोत्साहन मूलक नियोजन	1 अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन नियोजन	1 भौतिक नियोजन एवं वित्तीय नियोजन	1 सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र नियोजन
2 सरचनात्मक एवं क्रियात्मक नियोजन	2 समाजवादी नियोजन	2 केन्द्रित तथा विकेन्द्रित नियोजन	2 स्थाई अस्थाई एवं आपात्कालीन नियोजन	2 गतिशील एवं स्थिर नियोजन	2 सन्तुलित तथा असन्तुलित नियोजन
3 सुधारवादी एवं विकासवादी नियोजन	3 प्रजातान्त्रिक नियोजन	3 ऊपर से नियोजन तथा नीचे से नियोजन			3 रचनात्मक एवं विस्थापन नियोजन
4 क्षेत्रीय राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन	4 फासिस्ट नियोजन				4 उदार अथवा अनुदार नियोजन
	5 गांधीवादी नियोजन				5 कृषि प्रधान या उद्योग प्रधान नियोजन
	6 साम्यवादी नियोजन				6 हीनार्थ या सीमित नियोजन
					7 पूंजी प्रधान या श्रम प्रधान नियोजन

न होने की स्थिति से भी खराब है" "Where there is partial planning the position is worse than it would be with no planning at all" पूंजीवादी राष्ट्रो मे यह पद्धति अपनाई जाती है ।

(2) संरचनात्मक एवं क्रियात्मक नियोजन
(Structural and Functional Planning)

संरचनात्मक नियोजन (Structural Planning) के अन्तंगत समाज के आर्थिक एव सामाजिक ढांचे मे आमूल चूल परिवर्तन कर नये आर्थिक एव सामाजिक ढाचे का निर्माण किया जाता है । यह पुरातन और रूढिवादी अवस्थाओ को समाप्त कर वैज्ञानिक तथा प्रगतिशील ढांचे का निर्माण करती है जिससे वांछित लक्ष्यो की प्राप्ति अल्पकाल मे हो सके । इसे **क्रान्तिकारी नियोजन** भी कहा जाता है । रूस म 1928 मे आर्थिक नियोजन का सूत्रपात इसका ज्वलन्त उदाहरण है । दूसरा उदाहरण साम्यवादी चीन का है ।

क्रियात्मक नियोजन (Functional Planning) मे विद्यमान सामाजिक एव आर्थिक ढांचे को विकासोन्मुख बनाये जाने के प्रयत्न किये जाते हैं । इसके अन्तर्गत सुधार के प्रयत्न किये जाते हैं पर इस प्रक्रिया मे वाछित लक्ष्यो की पूर्ति मे विलम्ब रहता है । यह पद्धति नियोजन का प्रभावपूर्ण ढग नही है । इसलिये **डा० लुडविग वान माईसेस** ने कहा है कि "पूंजीवाद और नियोजन पूर्णत असगत है । नियोजन तो स्वतन्त्र उपक्रम, निजी पहल, उत्पत्ति के साधनो का निजी स्वामित्व, बाजार अर्थ-व्यवस्था और मूल्य प्रणाली का प्रतिवाद है ।"

अत विकासशील राष्ट्रो के तीव्र विकास के लिये सरचनात्मक नियोजन ही महत्वपूर्ण है और इसी से निर्धनता के कुचक्र को तोडना सम्भव है । यद्यपि सरचनात्मक नियोजन बाद मे क्रियात्मक नियोजन का रूप धारण कर लेता है पर क्रियात्मक नियोजन को सरचनात्मक बनाने मे काफी समय लगता है इसी बीच मे असफलताओ से निराशा का वातावरण हो सकता है । सरचनात्मक नियोजन एक दीर्घकालीन नियोजन है । एक ही राष्ट्र मे दोनो प्रकार की पद्धतियो का सम्मिश्रण किया जा सकता है जैसे भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे ऐसा किया गया है ।

(3) सुधारवादी एव विकासवादी नियोजन
(Corrective and Development Planning)

सुधारवादी नियोजन (Corrective Planning) आर्थिक नियोजन की वह पद्धति है जो अर्थ-व्यवस्था मे उत्पन्न असन्तुलन अथवा प्रतिकूल प्रवृतियो के सुधार के लिये अपनाई जाती है ताकि अर्थ-व्यवस्था को उसके दुष्प्रभावो से मुक्ति मिल सके । विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ मे व्यापार चक्रो से उत्पन्न बकारी, भुखमरी आदि के निराकरण के लिये जो नियोजन होता है वह सुधारवादी कहा जाता है जैसे अमेरिका मे 1930 की विश्वव्यापी मदी के समय अपनाया गया न्यू डील (New Deal) तथा 1946 मे पारित रोजगार अधिनियम (Employment Act) तथा फ्रास मे

अपनाया गया श्रम प्रयोग सुधारवादी नियोजन के कतिपय उदाहरण है। सुधारवादी नियोजन की अन्य विशेषता यह होती है कि सरकार समाज के सामान्य जीवन में हस्तक्षेप न कर स्वयं चर्चा कर, सहायता देकर या प्रलोभन देकर मार्ग-दर्शन करती है।

विकासवादी नियोजन (Development Planning) में अर्थ-व्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिये सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का संस्थागत परिवर्तनों के साथ-साथ नियोजन किया जाता है। अर्द्ध-विकसित व विकासशील राष्ट्रों द्वारा आर्थिक विकास के लिए जो आयोजन पद्धति अपनाई जा रही है वह विकासवादी नियोजन का परिचायक है। रूस, चीन, भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों में इसी पद्धति का नियोजन है।

(4) क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन

(Regional, National & International Planning)

क्षेत्रीय नियोजन (Regional Planning) का अभिप्राय उस नियोजन से है जिसमें देश के किसी क्षेत्र प्रदेश व भाग के विकास, विस्तार व पुनर्निर्माण के लिये विशिष्ट योजना बनाकर उसे कार्यान्वित किया जाता है। क्षेत्रीय नियोजन सामान्यतः तब अपनाया जाता है जब क्षेत्रीय विषमता को समाप्त कर सन्तुलित विकास करना हो, अलग-अलग क्षेत्रों की परिस्थितियों में भिन्नता के कारण उनके लिये विशेष योजनायें बनानी हों या किसी क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का पूरा पू . विकास करना हो या उस क्षेत्र का सामरिक महत्व हो। नियोजन की यह अवस्था कभी-कभी राजनैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होती है। यह नियोजन अपने आप में अलग होते हुए भी राष्ट्रीय नियोजन का एक अविभाज्य अंग होता है। अमरीका में टेनसी वैली तथा भारत में दण्डकारण्य योजना, आदिवासी क्षेत्र योजना इसके कतिपय उदाहरण है।

राष्ट्रीय नियोजन (National Planning) वह है जो सम्पूर्ण देश के सर्वांगीण एवं सन्तुलित विकास के लिए सारे देश में लागू होता है अर्थात् नियोजन की परिधि सारे देश की अर्थ-व्यवस्था पर लागू होती है। राष्ट्रीय नियोजन में देश की श्रम, पूँजी प्रबन्ध प्रशासन, मूल्य आदि सभी नीतियों का समावेश होता है। भारत की पंचवर्षीय योजनायें राष्ट्रीय नियोजन का प्रतीक हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन (International Planning) नियोजन की वह पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक राष्ट्र मिलकर सामूहिक साधनों एवं सम्पत्ति का विदोहन, प्रयोग व विकास सामूहिक आर्थिक हितों के लिये किया जाता है पर यह तभी सम्भव होता है जब एक बड़ी शक्ति के अधिकार में अनेक छोटे-छोटे राष्ट्र आ जायें और वे अपनी सार्वभौमिकता को सामूहिक हित में त्याग दें पर आधुनिक युग में यह प्राय कठिन है इसी कारण आजकल अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन को दूसरे अर्थ में परिभाषित किया जाता है जिसमें अनेक राष्ट्र अपने कुछ चुने हुये उद्देश्यों की

पूर्ति के लिये परस्पर आर्थिक सहयोग की सामूहिक नीति अपनाते हैं और उसका सचालन प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के प्रभावी नियन्त्रण मे होता है। इस पद्धति मे प्रत्येक राष्ट्र का अलग-अलग अस्तित्व होता है पर स्वेच्छापूर्ण समझौते से वे कुछ निश्चित उद्देश्यो के लिये समान नीति अपनाते हैं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) विदेशी विनिमय नियन्त्रण व व्यापार वृद्धि का अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन है। प्रशुल्क दर व व्यापार का सामान्य समझौता (G.A.T T.) व्यापार व शुल्क दरो का अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन है। यूरोपीय साझा बाजार (European Common Market or E C. M) यूरोप के सात देशो फ्रान्स, इटली, जर्मनी, नीदरलैण्ड, लैक्सम-बर्ग, पुर्तगाल तथा ब्रिटेन के बीच आर्थिक नियोजन का सम्मिलित प्रयास है। इसके अतिरिक्त विश्व बैंक, कोलम्बो योजना आदि अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन के कतिपय उदाहरण है। अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है जबकि (i) उद्देश्य सीमित एव सामूहिक महत्व के हो। (ii) सम्बन्धित देशो मे परस्पर सहयोग हो, (iii) केन्द्रीय संस्था उसका सचालन करे और। (iv) केन्द्रीय सस्था का आन्तरिक व्यवस्था मे हस्तक्षेप केवल निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति तक सीमित रहे।

इनका उद्देश्य आर्थिक सघर्षो को रोकना, विश्व शान्ति को बढावा देना तथा अविकसित राष्ट्रो के विकास मे तकनीकी तथा आर्थिक सहायता देना होता है। सयुक्त राष्ट्र सघ के द्वारा आशिक रूप से आर्थिक नियोजन के प्रयत्न किये जाते हैं पर विश्व सरकार के अभाव मे सफलता मुश्किल है।

(5) पूंजीवादी नियोजन

(Capitalistic Planning)

"पूंजीवादी आर्थिक सरचना म आंशिक नियन्त्रक तथा सुधारवादी नियो-जन के सम्मिश्रण को पूंजीवादी नियोजन कहते है।" यह नियोजन आदेशमूलक न होकर प्रोत्साहन मूलक होता है। इसमे विकास कार्यक्रमो का भी समावेश होता है। ग्रेट ब्रिटेन म 1965-70 की योजना, अमेरिका म न्यूडील इसक उदाहरण है। इसमे सफलता आदेशो पर नही बलिक बाजार तन्त्र तथा प्रोत्साहन पर निर्भर करती है।

(6) समाजवादी नियोजन

(Socialistic Planning)

यह समाजवादी सिद्धान्तो पर आधारित आर्थिक प्रणाली मे अपनाई गई सामान्य आज्ञा मूलक, विकासवादी एव सरचनात्मक नियोजन की समन्वित पद्धति है। इसमे केन्द्रीय नियोजन सत्ता सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति क लिए प्रभावी नियन्त्रण एव कार्यान्वियन करती है। उद्यमो का प्रबन्ध सार्वजनिक निगमो द्वारा जनता की प्रतिनिधि सस्थाओ तथा मजदूरो द्वारा हाना है। पूंजीगत उद्योगो को प्राथमिकता दी जाती है। यह नियोजन पहले कष्टप्रद होता है। कभी-कभी इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। सोवियत रूस मे समाजवादी नियोजन है। इस नियोजन मे

आधारभूत एव मूल उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है। विदेशी व्यापार पर भी सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होता है। कुछ सीमा तक निजी उपक्रमो को सीमित स्वतन्त्रता होती है। इसे कभी-कभी अधिनायकवादी नियोजन (Totalitarian Planning) भी कहा जाता है।

(7) साम्यवादी नियोजन
(Communist Planning)

साम्यवादी नियोजन समाजवादी नियोजन का ही कठोर रूप है जिसमे समूची अर्थ-व्यवस्था पर सरकार का कठोर नियन्त्रण होता है। निजी स्वामित्व एव साहस समाप्त कर दिये जाते है। निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति मे निजी हितो की बलि दे दी जाती है जनता के आर्थिक जीवन के साथ साथ उसके सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक जीवन को भी नियन्त्रित किया जाता है। 'Each according to capacity and each according to need"—No work—No food आदि सिद्धान्तो का पालन किया जाता है। इसमे नियोजन की सफलता द्रुतगति से होती है। प्रारम्भ मे रूस का आर्थिक नियोजन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। चीन (साम्यवादी) इसका दूसरा उदाहरण है। यही कारण है कि इन देशो ने अल्पकाल मे जो प्रगति की है उस स्तर पर पहुचने के लिय पूँजीवादी राष्ट्रों को 200-300 वर्ष लगे।

(8) प्रजातान्त्रिक नियोजन
(Democratic Planning)

प्रजातन्त्रात्मक नियोजन जनता के द्वारा, जनता के लिय जनता का नियोजन है (Democratic planning is planning by the people, for the people and of the people) इस पद्धति मे जनता के प्रतिनिधि देश की नियोजन सत्ता के द्वारा निर्मित योजना को जनता की स्वीकृति से कार्यान्वित करती है। इसमे सामान्य, आदेशात्मक तथा प्रोत्साहनमूलक विकासोन्मुख कार्यक्रम जनता की सामान्य स्वीकृति व सहयोग से चलाये जाते है। वैसे यह धारणा पहले दृढ थी कि नियोजन तथा प्रजातन्त्र एक दूसरे के विरोधभास है पर भारत के प्रजातन्त्रात्मक नियोजन ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस पद्धति मे आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ मानवीय स्वतन्त्रता तथा संस्कृति समानता का अवसर मिलता है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रो को राष्ट्रहित मे नियमित करने की मिश्रित नीति का अनुसरण किया जाता है। निर्णय थोपे नही जाते पर सामान्य स्वीकृति से लागू किय जाते है।

(9) तानाशाही नियोजन
(Fascist Planning)

तानाशाही नियोजन मे सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओ का सचालन केन्द्रीय शक्ति या तानाशाही द्वारा किया जाता है। अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन के साधनो पर निजी क्षेत्र का अधिकार होता है पर प्रशासकीय अकुशो व निर्देशों से आर्थिक तथा राजनैतिक सकेन्द्रीकरण को रोका जाता है। साधनो के उपयोग एवं वितरण के सम्बन्ध मे राज्य

द्वारा सिद्धान्त तथा नियम निर्धारित कर दिये जाते हैं और आर्थिक क्रियाओ पर राज्य का कठोर नियन्त्रण रहता है। क्या उत्पादन करना है, कितना उत्पादन करना है। कितना उपभोग करना है आदि पूर्व निर्धारित होते हैं। जर्मनी मे हिटलर के समय मे आर्थिक नियोजन इसी प्रकार का था जिसमे भय, अकुश व कठोरता का बाहुल्य रहता है। यह पद्धति युद्ध, बदी आदि सकटो के समय अधिक उपयुक्त है।

(10) गाधीवादी नियोजन अथवा सर्वोदय नियोजन
(Gandhian Planing or Sarvodaya Planing)

गांधीजी के आर्थिक सिद्धान्तो—अहिंसा, सादगी, सद्भावना, सहयोग, श्रम के महत्व तथा सत्य पर आधारित यह नियोजन नागरिको के आर्थिक एव आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य शोषण रहित, आत्म निर्भर तथा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का निर्माण करना होता है जिसमे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास मानव व आध्यात्मिक विकास को प्रेरित करे। भारतीय नियोजन म इसके प्रमुख तत्वो का समावश किया गया है पर परिस्थितियाँ अनुकूल न होने से उद्देश्यो की पूर्ति केवल स्वप्न और कल्पना बनकर रह गई है।

(11) आज्ञामूलक एव प्रोत्साहनमूलक नियोजन
(Planing by Direction and Planning by Inducement)

आज्ञामूलक नियोजन (Planning by Direction) मे जिसे निर्देशात्मक अथवा आदेशात्मक नियोजन भी करते है, केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा प्रत्यक्ष आदेशो द्वारा नियोजित कार्यक्रमो को क्रियान्वित किया जाता है। इसमे कभी-कभी आदेश कठोर होते हैं तो जनता को कष्ट उठाना पडता है। अत इसे *आसुओं का आयोजन* (Planing With Tears) कहा जाता है और चूंकि यह आदशो स जनता पर लादा है इसलिय इसे 'ऊपर से आयोजन" (Planing from Above) तथा *अधिकारात्मक आयोजन* (Authoritative Planning) की भी सज्ञा दी जाती है। यह नियोजन अनेक प्रकार की कठिनाइयो से पूण तथा जटिल है। उत्पादन के क्षेत्र में लागू करना उपयुक्त रहता है पर उपभोग मे प्रभावी कम होता है। साम्यवादी एव समाजवादी आयोजन आज्ञामूलक नियोजन की श्रेणी मे आते है।

प्रोत्साहनमूलक नियोजन (Planing by Inducement) को प्रेरणामूलक तथा प्रेरणात्मक नियोजन भी कहा जाता है। इस पद्धति म सरकार आदेश जारी न कर आर्थिक क्षेत्र मे निजी साहस को अनेक प्रकार की सुविधायें तथा प्रलोभन देकर लक्ष्यो की पूर्ति को प्रोत्साहित करती है। इसके अन्तर्गत मौद्रिक एव अमौद्रिक प्रलोभनो से, मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतिया स अप्रत्यक्ष नियन्त्रण किया जाता है। इसे *नीचे से आयोजन* (Planning from Below) भी कहा जाता है। इसकी सफलता बहुत कुछ जन सहयोग पर निर्भर करती है।

भारतीय नियोजन मे दोनो पद्धतियो का सन्तुलित मिश्रण करने की नीति का अनुसरण किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र म आज्ञामूलक तथा निजी एव सहकारी क्षेत्र म प्रेरणामूलक नीतियाँ अपनाई गई हैं।

(12) केन्द्रित नियोजन एवं विकेन्द्रित नियोजन
अथवा
ऊपर से नियोजन एवं नीचे से नियोजन
(Centralised Planning and Decentralised Planing)
Or
(Planning from above and Planning from below)

केन्द्रित नियोजन के अन्तर्गत योजनाओं का निर्माण स्वीकृति क्रियान्वयन, निरीक्षण तथा मूल्यांकन का कार्य केन्द्रीय सत्ता के हाथ में होता है। इसमें जहाँ एक ओर नियोजन में एकरूपता तथा सामंजस्य बैठता है वहाँ दूसरी ओर इस पद्धति में जनता के सहयोग का अभाव क्षेत्रीय विकास कार्यों की प्राथमिकता में त्रुटि तथा सत्ता के केन्द्रीयकरण के दोष पाये जाते हैं। समाजवादी देशों में सामान्यतः यह पद्धति अपनाई जाती है। इसे ही **ऊपर से नियोजन** (Planing from above) भी कहा जाता है।

विकेन्द्रित अथवा नीचे से नियोजन आर्थिक नियोजन की वह पद्धति है जिसमें जन के अत्यधिक सहयोग के लिये योजना का निर्माण, स्वीकृति क्रियान्वयन, निरीक्षण तथा मूल्यांकन आदि कार्यों को विभिन्न क्षेत्रीय स्थानीय या प्रादेशिक संस्थाओं को सौंप दिया जाता है। फ्रांस तथा इंगलैंड में नियोजन का यही स्वरूप अपनाया गया है। इसमें योजनाओं का निर्माण यथार्थवादी तथा क्रियान्वयन व्यावहारिक होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

आजकल इन प्रणालियों में भेद करना कठिन हो गया है और प्रजातान्त्रिक देशों तथा समाजवादी देशों में इन पद्धतियों का सम्मिश्रण कर दिया गया है। योजना का फ्रेम वर्क केन्द्रित नियोजन में है और उसके बाद स्थानीय संस्थाओं की योजनायें उसी फ्रेम वर्क में प्रमुख अंग होती है।

(13) भौतिक नियोजन
(Physical Planning)

भौतिक नियोजन में योजनाओं की आवश्यकताओं तथा लक्ष्यों का वास्तविक वस्तुओं और सवाओं के रूप में व्यक्त किया जाता है। योजना आयोग के अनुसार 'भौतिक नियोजन वह प्रयत्न है जिसके द्वारा विकास सम्बन्धी प्रयत्नों को साधनों के वितरण एवं वस्तुओं की उपलब्धियों के रूप में प्रकट किया जाता है जिससे आय व रोजगार में वृद्धि होवे। भौतिक नियोजन में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की स्थिति एवं उपलब्धि के बारे में जानकारी प्राप्त कर योजना की आवश्यकताओं को भौतिक साधनों में मूल्यांकन करते हैं जैसे 3 महाविद्यालयों के लिये कितना पत्थर, कितना सीमेन्ट, चूना मजदूर लोहा पानी, रेत इत्यादि। फिर विभिन्न उत्पादन लक्ष्य—जैसे 12 करोड़ टन खाद्यान्न 300 मील रेलवे लाइनें, 1500 मील पक्की सड़कें, 40 लाख टन सीमेंट 90 लाख टन इस्पात आदि। जैसे तृतीय योजना

मे भौतिक योजना 8600 करोड रुपयो की थी। पर वित्तीय योजना 7500 करोड रुपयो की थी। अत भौतिक योजना के लक्ष्यो की प्राप्ति हतु वित्तीय साधन जुटाने को वित्तीय योजना बनाई जाती है। समाजवादी राष्ट्रो मे भौतिक नियोजन का महत्वपूण स्थान होता है। प्रो० डोब तथा प्रो० महालनोबिस देश मे उपलब्ध साधनो के विदोहन के लिये भौतिक आयोजन पर जोर देते हैं। सोवियत रूस की प्रगति का मूलमन्त्र भौतिक नियोजन की प्रधानता है।

(14) वित्तीय नियोजन
(Financial-Planning)

वित्तीय नियोजन का अर्थ-आर्थिक योजनाओ की आवश्यकताओ तथा लक्ष्यो आदि को द्रव्य के रूप मे व्यक्त करना है। इसमे लक्ष्यो की प्राप्ति के लिय वित्तीय साधनो का निर्धारण एव प्रबन्ध की व्यवस्था की जाती है। जैसे प्रत्यक भौतिक लक्ष्य की प्राप्ति पर कितना कितना द्रव्य व्यय होगा और यह द्रव्य कैसे जुटाया जायेगा। जैसे शिक्षा के क्षेत्र मे महाविद्यालयो, शैक्षणिक सस्थाओ, अध्यापको पर क्रमश 100 करोड रु०, 200 करोड रु० तथा 50 करोड रु० व्यय होगा। उसमे से 200 करोड रु० करो से, 100 करोड रु० ऋणो तथा 50 करोड रु० घाटे की वित्त व्यवस्था इसके सक्षिप्त उदाहरण हैं। इस प्रकार इस पद्धति मे लक्ष्यो की भौतिक गणना के बाद उसे मुद्रा मे मूल्याकित किया जाता है तथा विभिन्न स्रोतो से मौद्रिक आय का अनुमान लगाया जाता है। डा० बी० आर० शिनाय ने भौतिक नियोजन से अधिक महत्व वित्तीय नियोजन को दिया है और उनका यह मत है कि वित्तीय नियोजन बचत कोष पर निर्भर करता है। बचत पर ही विनियोग सम्भव है अत विनियोग बचत से अधिक होने पर मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है जो विकास म बाधक बनती है।

पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे वित्तीय नियोजन परमावश्यक है क्योकि भौतिक साधनो पर निजी व्यक्तियो का स्वामित्व होता है और सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र मे लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये व्यय करना पडता है। वित्तीय साधनो के अभाव मे लक्ष्यो की पूर्ति करना कठिन हो जाता है।

भौतिक नियोजन और वित्तीय नियोजन के उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकालना त्रुटिपूर्ण होगा कि दोनो एक दूसरे से पृथक व असम्बन्धित है। वास्तव मे ये दोनो एक सिक्के के दो पहलू हैं प्रो० जे० के० मेहता के अनुसार भौतिक व वित्तीय नियोजन दोनो एक अविभाज्य प्रक्रिया के ही दो अग हैं।

डा० बालकृष्ण के अनुसार "भौतिक तथा वित्तीय नियोजन के बारे मे वाद-विवाद निरर्थक है क्योकि दोनो मे वास्तव मे परस्पर विरोध नही है। भौतिक आयोजन प्रयासो को मूर्तरूप देन के लिये नितान्त आवश्यक है लेकिन भौतिक नियोजन को गतिमान करने के लिये वित्त आवश्यक है। दोनो मे परस्पर मेल के अभाव

मे न तो वित्तीय और न भौतिक नियोजन ही लाभप्रद हो सकता है।"[1]

साधनो की कमी से कभी-कभी लक्ष्यो मे परिवर्तन करना पडता है और अगर लक्ष्यो को प्राप्त करने का दृढ निश्चय किया गया है तो उन्हे प्राप्त करने के लिये अतिरिक्त साधन जुटाने पडते है। विकासशील राष्ट्रो मे साधनो का अभाव है और उनके विकास के निम्न स्तर को देखते हुए आर्थिक सम्पन्नता के लिये महत्वाकाक्षा योजनाय बनाने पर वित्तीय साधन न होने पर लक्ष्यो की पूर्ति कठिन हो जाती है। पर डा० शिनाय के अनुसार *बिना बचत विनियोग बढाना वास्तविक* साधनो मे वृद्धि के बजाय मुद्रास्फीति के दुष्प्रभावो को आमन्त्रित करना है। मै इस कथन से पूणतया सहमत नही हूँ क्योकि मुद्रा स्फीति का जन्म तभी होता है जबकि मौद्रिक आय म तो वृद्धि हो जाती है पर विनियोग का प्रतिफल दीघकाल तक नही मिलता। अगर हीनाय प्रबन्ध से साधन जुटाकर उनका उपयोग शीघ्र फलदायिनी योजनाओ मे व्यय किया जाता है तो मौद्रिक आय के साथ साथ भौतिक साधनो की भी वृद्धि होती है। अल्पकालीन स्थिति पर नियन्त्रण के लिये उपभोग वस्तुओ की पूर्ति विवेकपूण कर पद्धति व बचत योजनाओ से उन पर काबू पाया *जा सकता है जैसे प्रथम योजना मे प्रावधान से अधिक अर्थात्* 420 करोड रुपये हीनाय प्रब ध से जुटाय गय फिर भी सामान्य मूल्य स्तर मे गिरावट आई यद्यपि 1955 के अन्त मे पुन तेजी का दौर प्रारम्भ हो गया था। चौथी योजना के भौतिक लक्ष्यो की पूर्ति क लिये आकार बडा किया गया है। तीसरी योजना मे वित्तीय साधनो की योजना सावजनिक क्षत्र के लिये केवल 7500 करोड रु० की थी *पर वास्तविक व्यवस्था 8577 करोड रु० की गई अर्थात्* इसके अन्तर्गत देश म नियोजन को सुरक्षात्मक तथा विकासोन्मुख (Defence cum Development oriented) बनाने के लिये अतिरिक्त साधन जुटाने ही पडे। जबकि द्वितीय योजना म व्यय को स्रोत के अभाव म प्रावधान से कम ही करना पडा और भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति नही हो सकी।

(15) अल्पकालीन एव दीर्घकालीन आयोजन
(Short Period Planning and Long Period Planning)
अथवा
निकट भविष्य आयोजन एव सुदूर भविष्य आयोजन
(Prospective Planning and Perspective Planning)

अल्पकालीन आयोजन को निकट भविष्य आयोजन भी कहते हैं। इस पद्धति म प्राय 3 से 7 वष की अवधि के लिये कायक्रम बनाये जाते हैं जो दीर्घकालीन आयोजन स सम्बद्ध होते है। इस अवधि के कायक्रम को भी प्राय वार्षिक योजना के रूप मे बाँटा जाता है ताकि प्रतिवष का प्रगति की समीक्षा से अगले वष का कायक्रम

1 *The controversy between Financial and Physical Planning is needless as* the two are not really contradictory Physical Planning is absolutely essential for giving concreteness to effort, but Financial is the mobiliser of Physical Planning Neither Financial nor Physical Planning can set things going without an integration between them Dr Bal Krishan

सशोधित किया जा सके, तथा उसमे यथार्थ तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जा सके।

दीर्घकालीन आयोजन (Perspective or Long period Planning) को सुदूर भविष्य आयोजन भी कहा जाता है। इसके अन्तगत अर्थव्यवस्था के भावी विकास की 15–20 साल की अवधि की प्रगति की मोटी रूपरेखा निर्धारित की जाती है और अल्पकालीन योजनाये उन दीर्घकालीन उद्देश्यो के अनुकूल ढाली जाती हैं।

आर्थिक नियोजन की यह पद्धति भी अल्पकाल की योजनाओ को प्रभावित करती है। ये दोनो परस्पर सम्बद्ध हैं। जिस प्रकार एक व्यक्ति को 30 मील की यात्रा करनी है। उसे पहले घन्ट मे कितना चलना है—दूसरे मे कितना—जबकि उसे पहुचने के लिये 10 घन्टे दिय हो। अत वह अपनी यात्रा को इन दस घन्टो मे समायोजन करेगा। ठीक उसी प्रकार से दीर्घकालीन योजना 15–20 साल की होती है उसे पहले पचवर्षीय योजनाओ (या जैसा चाहे) मे विभाजन करेगा, फिर इनको वार्षिक योजनाओ मे भारत मे भो दोनो प्रकार की योजनाओ का सम्मिश्रण है। रूस मे भी 20 वर्षीय योजना (1960-80) सप्तम, अष्टम् नवम् तथा दसवी–इन चार योजनाओ की सम्मिलित दीर्घकालीन योजना है।

(16) स्थायी नियोजन तथा आकस्मिक या आपातकालीन नियोजन
(Permanent Planning & Emergency Planning)

स्थायी नियोजन—दीर्घकालीन दृष्टिकोण पर आधारित वह नियोजन प्रक्रिया होती है जो अर्थ-व्यवस्था मे निरन्तर चलती रहती है तथा आर्थिक जीवन का सामान्य एव अविभाज्य अङ्ग बन जाती है जैसे रूस मे 1928 से प्रारम्भ किया गया नियोजन निरन्तर चल रहा है और आगे भी अबाध गति से चलता रहेगा। भारत मे भी 1951 से स्थायी नियोजन का मार्ग अपनाया गया है।

अस्थायी आकस्मिक या आपातकालीन नियोजन (Emergency Planning)–आयोजन की वह पद्धति है जो अर्थ व्यवस्था मे तात्कालिक सकट या अल्पकालीन आर्थिक असन्तुलन के निराकरण के लिये अपनाई जाती है और उस सकट के बाद अर्थ-व्यवस्था का सचालन अपने सामान्य ढग से होता है। उदाहरण के तौर पर 1933 मे अमेरिका का न्यू-डील, युद्ध जर्जरित अर्थ व्यवस्था के पुन निर्माण की मार्शल योजना युद्ध व सकट का मुकाबला करने के लिये अपनाया गया आयोजन इसी श्रेणी मे आते हैं।

(17) गतिशील व स्थिर नियोजन
(Dynamic or Static Planning)

गतिशील या प्रावैगिक नियोजन (Dynamic Planning) के अन्तर्गत नियोजन मे पर्याप्त लोचता एव परिवर्तन क्षमता होती है जिससे कि परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तन सम्भव होता है। यह बहुत ही व्यावहारिक एव समयानकूल होता है।

स्थिर नियोजन (Static Planning)—नियोजन की वह कठोर पद्धति होती है जिसमें समय स्थान एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन की क्षमता नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि नियोजन की कठोरता में व्यावहारिकता की बलि दे दी जाती है।

(18) सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन तथा निजी क्षेत्र का नियोजन

सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन (Public sector Planning) का अभिप्राय सरकार द्वारा देश की) सार्वजनिक (परियोजनाओं व कार्यक्रमों सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन से है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के सिंचाई एवं विद्युत खनिज व उद्योग यातायात एवं परिवहन समाज कल्याण, शिक्षा, परिवार नियोजन आदि के कार्यक्रम आते हैं। भारत जैसी मिश्रित अर्थ व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन आर्थिक विकास का प्रमुख अंग है।

निजी क्षेत्र नियोजन (Private Sector Planning)—अर्थ-व्यवस्था के निजी क्षेत्र के उत्पादन विनियोग बचत उपभोग, वितरण आदि के नियोजन से सम्बन्धित होता है। यह सम्पूर्ण नियोजन का महत्वपूर्ण भाग होता है।

(19) उदार एवं अनुदार नियोजन
(Liberal & Conservative Planning)

उदार नियोजन (Liberal Planning) व्यापक दृष्टिकोण पर आधारित वाह्य एवं आन्तरिक साधनों ऋणों तथा विदेशी सहयोग व ऋणों के द्वारा आर्थिक विकास के लिये आयोजन होता है अतः विकास की दर अधिक तथा विकास के लिये आर्थिक तकनीकी सहायता सुलभ हो जाती है। विश्व के सभी विकासशील राष्ट्र व भारत ने उदार नियोजन अपनाया है। अनुदार नियोजन (Conservative Planning) संकुचित दृष्टिकोण पर आधारित स्वयं के आन्तरिक साधनों से विकास के लिये नियोजन अपनाया जाता है। विदेशी सहायता व ऋणों का सहारा नहीं लिया जाता परिणामस्वरूप विकास की दर नीची और आत्म-निर्भरता में समय लगता है।

(20) कृषि प्रधान या उद्योग प्रधान नियोजन

आर्थिक नियोजन की जिस योजना में कृषि कार्यक्रमों की प्रधानता व कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी होती है, उसे कृषि प्रधान नियोजन (Agricultural Planning) कहा जाता है पर जब उद्योगों के विकास तथा तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों की प्रधानता व उनको सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है उसे उद्योग प्रधान नियोजन (Industrial Planning) कहते हैं।

21 पूंजी प्रधान या श्रम प्रधान नियोजन

जब नियोजन प्रक्रिया में पूंजी विनियोग व पूंजी प्रयोग की प्रधानता होती है। तो ऐसी आयोजना को पूंजी प्रधान नियोजन (Capital Oriented Planning) कहते हैं पर जब नियोजन में श्रम के उपयोग व श्रम के रोजगार अवसरों की वृद्धि को प्राथमिकता दी जाती है तो उसे श्रम प्रधान नियोजन (Labour Oriented Planning) कहते हैं। भारत में दोनों का उपयुक्त सम्मिश्रण किया गया है।

(22) सन्तुलित बनाम असन्तुलित नियोजन
(Balanced V/S Unbalanced Planning)

जब आर्थिक नियोजन के द्वारा अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों उत्पादन-उद्योगों व उपभोग-उद्योगो का साथ-साथ विकास किया जाता है तो उसे सन्तुलित नियोजन (Balanced Planning) कहा जाता है पर जब नियोजन मे पूंजीगत एवं उत्पादक उद्योगों के तीव्र विकास मे उपभोग व वितरण की उपेक्षा की जाती है तो उसे असन्तुलित नियोजन कहा जाता है। विकासशील राष्ट्रो मे सीमित साधनो के द्वारा असन्तुलित नियोजन की व्यवस्था ऊँची विकास दर के लिय उपयुक्त मानी जाती है पर प्रारम्भिक व्यवस्था मे कष्ट उठाना पड़ता है।

(23) रचनात्मक एवं विस्थापन नियोजन

जब अर्थ-व्यवस्था मे नियोजन के द्वारा निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति के लिये रचनात्मक कार्यों—नये आविष्कारो, नवीन उद्योगो, नयी उत्पादन पद्धतियो, नवीन बाजारो व नये कच्चे माल की खोज आदि का सहारा लिया जाता है तो उसे रचनात्मक नियोजन (Constructive Planning) कहा जाता है। पर अगर पूर्व निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति के लिये अर्थव्यवस्था मे विघटन, तोड-फोड व नीतियो मे आमूल-चूल परिवर्तनो का रास्ता अपनाया जाता है तो उसे विस्थापन के द्वारा नियोजन (Planning Through Dislocation) कहते हैं।

(24) हीनार्थ एवं सीमित नियोजन
(Deficit & Restricted Planning)

जब नियोजन कार्यक्रमो के क्रियान्वयन के लिये वित्तीय व्यवस्था मे हीनार्थ प्रबन्ध (घाट की वित्त व्यवस्था) का उदारता से प्रयोग किया जाता है तो उसे हीनार्थ नियोजन कहा जाता है पर जब योजना के भौतिक लक्ष्यो को देश मे उपलब्ध साधनो से सीमित किया जाता है तब घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा नहीं लिया जाता है। उपलब्ध साधनो की कमी होने पर कार्यक्रमो को भी कम कर दिया जाता है। इसी कारण ऐसे नियोजन को सीमित नियोजन (Restricted Planning) कहा जाता है।

विभिन्न आधारो पर नियोजन के वर्गीकरण के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आर्थिक नियोजन का यह वर्गीकरण सापेक्षिक एव परस्पर निर्भर है इसी कारण किसी भी देश के नियोजन मे उसके अनेक रूपो का सम्मिलित एव समन्वित रूप अपनाया जाता है। जैसे भारत मे प्रजातान्त्रिक नियोजन सामान्य, सरचनात्मक, विकासवादी, प्रावैगिक उदार नियोजन है जो श्रम प्रधान, हीनार्थ, प्रबन्धित और मिश्रित है।

जनसख्या वाले देश मे जिसम प्राकृतिक साधनो का अभाव हो अथ व्यवस्था के पूर्ण विकास के बावजूद भी उस देश की प्रति व्यक्ति आय का स्तर नीचा हो सकता है। अगर अमेरिका या अन्य देशो की तुलना मे अन्य अथ व्यवस्थाओ को हमेशा ही देखा जाय तो सम्भव है कि एक देश विकसित हो जाने पर भी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होने से अद्ध विकसित श्रेणी मे ही मानना उपयुक्त नही है।

प्रो० जेकब वा नर (Jacob Viner) के शब्दो म 'एक अद्ध विकसित देश वह है जिसमे अधिक श्रम अधिक पूँजी या अधिक प्राकृतिक साधनो या इन सभी साधनो के उपयोग की पर्याप्त सम्भावनाय ह जिससे वतमान जनसख्या का रहन सहन का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है और यदि उनकी प्रति व्यक्ति आय पहले से ही काफी ऊँची है तो जीवन स्तर को गिराये बिना अधिक जनसख्या का निर्वाह किया जा सकता है [1] यह परिभाषा अद्ध विकसित अथ व्यवस्था को साधनो के सन्दभ और जीवन स्तर क परिप्रेक्ष्य म देखती ह पर यह नही बताती कि विकास के लिये क्या बाधाय है और अद्ध विकसित अथव्यवस्था की क्या क्या मुख्य विशेषताय है अत यह परिभाषा भी अपर्याप्त है।

भारतीय योजना आयोग ने अद्ध विकसित अथ व्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया है एक अर्द्ध विकसित राष्ट्र वह है जहा एक ओर अप्रयुक्त अथवा अद्धप्रयोगित मानव शक्ति तथा दूसरी ओर अशोषित प्राकृतिक साधनो का न्यूनाधिक मात्रा मे सह अस्तित्व पाया जाता है।[2] इस परिभाषा मे यह तो स्पष्ट है कि ऐसे राष्टो मे एक ओर अप्रयुक्त मानव शक्ति तथा दूसरी ओर विदोहन के लिये पर्याप्त प्राकृतिक साधनो का सह अस्तित्व होता है पर ऐसा क्यो है इसका स्पष्टीकरण नही है।

रगनर नकसे (Nurkse) तथा आस्कर लाग आदि अथशास्त्रियो ने अद्ध विकसित राष्टो म पजी क अभाव को आधार माना है जैसे आस्कर लांगे (Oskar Lange) के अनुसार अद्ध विकसित देश वह है कि जिसम पूँजी की माता इतनी नही है कि वह वतमान श्रम शक्ति का उपलब्ध तकनीकी स्तर पर प्रयोग कर सके।' इसी प्रकार का विचार नक्से (Ragner Nurkse) न व्यक्त किया है। उनके मतानुसार अद्ध विकसित देश वह ह जिसम प्राकृतिक साधनो व जन-शक्ति क उपयोग क लिए पूजी का अभाव हो। परन्तु पूजी विकास के लिये आवश्यक होने हुए भी उसका होना ही पर्याप्त नहा है। य दोनो परिभाषाएँ भी एकपक्षीय है केवल पूजी

1 Jakob Viner In ernat onal Trade & Economic Department p 128

2 An under devel ped country is that whi h is charact r ed by the co ex sten e in greater or less degree of un utilized manp wer on the one hand of unexplo ted natural resources on the other —Ind a s Fir t Five Year Plan

के अभाव को अर्द्ध-विकसितता का कारण मानती है जबकि अर्द्ध-विकसित होने के दूसरे भी कई महत्वपूर्ण कारण होते है। प्रो० जे० के० मेहता ने लिखा है 'एक अर्द्ध-विकसित देश एक बच्चे की भांति है जो पूर्ण रूप से विकसित नही हुआ है परन्तु विकासशील है।" इसके अलावा प्रो० जे० आर० हिक्स (J R Hicks) ने अर्द्ध-विकसित राष्ट्र की परिभाषा देते हुए उसके प्रौद्योगिक एव तकनीकी ज्ञान के निम्न स्तर की ओर सकेत दिया है। उसके अनुसार "एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे प्रौद्योगिक (Technological) तथा मौद्रिक साधनो (Monetary Resources) की सीमा भी उत्पादन व बचत के वास्तविक स्तर के समान ही नीची है। फलस्वरूप प्रति इकाई श्रमिक पुरस्कार उस स्तर के मुकाबले बहुत कम है जो देश के साधनो पर प्रौद्योगिक ज्ञान के प्रयोग की पूर्णतया मे सम्भव हो पाता।" इस परिभाषा मे मौद्रिक तथा प्रौद्योगिक ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है जबकि विकास मे प्राकृतिक साधनो, सामाजिक सगठन व राजनैतिक व्यवस्था के महत्व की अपेक्षा की गई है।

इन सब परिभाषाओ के सक्षिप्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी परिभाषा सर्वमान्य, सन्तोषजनक एव अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की सभी विशेषताओ का समावेश करने मे समक्ष नही है फिर भी अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की अधिक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं एक अर्द्ध विकसित देश वह है जिसमे एक ओर अप्रयुक्त या अर्द्ध प्रयोगित मानव शक्ति तथा अशोषित प्राकृतिक साधनों का सह-अस्तित्व हो और दूसरी ओर मौद्रिक, प्रौद्योगिक व गैर-आर्थिक सीमाओ के कारण विकसित राष्ट्रो की तुलना म आय उपभोग बचत तथा पूंजी निर्माण का स्तर बहुत नीचा होने से निधनता का कुचक्र होने के बावजूद जनता आर्थिक विकास व सभाव्य समृद्धि के लिये सतत् प्रयत्नशील हो। इस परिभाषा के परिप्रेक्ष्य मे देखने पर भारत, लका पाकिस्तान, एशिया के अन्य देश, अफ्रीका के अनेक देश और केन्द्रीय तथा दक्षिणी अमेरिका के अनेक देश अर्द्ध विकसित राष्ट्रो की श्रेणी मे आते है जबकि अमेरिका, ब्रिटन, रूस जापान व पश्चिमी यूरोप के प्राग सभी राष्ट्र विकसित राष्ट्रो की श्रेणी म आते है। अर्द्ध-विकसित देशो मे भी आर्थिक विकास का स्तर समान न होने से कुछ अर्द्ध विकसित दूसरो की अपेक्षा अधिक विकसित अर्द्ध विकसित हैं। सामान्यत अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे निम्न विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

अर्द्ध विकसित या अल्प विकसित राष्ट्रो की प्रमुख विशेषतायें
(Main Characteristics of an Under-developed Country)

विश्व के अनेक अर्द्ध विकसित राष्ट्रो म प्रत्येक की अपनी अलग अलग विशेषतायें होने के कारण यद्यपि उनकी सयुक्त रूप से एक प्रकार की विशेषता बताना कठिन है फिर भी मोटे रूप मे उनमे सामान्यत अग्र विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं—

(A) आर्थिक विशेषतायें
(Economic Chatacteristics)

(1) प्राथमिक उद्योगों की प्रधानता (Predominance of Primary Industries)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की सर्व प्रथम विशेपता उनमे प्राथमिक उद्योगों की प्रधानता का होना है जिसके अन्तर्गत कृषि, पशु-पालन, मत्स्य पालन व खनिज उद्योग तथा वनो से आय प्राप्त करना आदि का समावेश होता है। देश की जनसंख्या का 50 से 75% भाग कृषि से अपना जीविकोपार्जन करता है और कृषि से प्रायः राष्ट्रीय आय का 40 से 60 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है जैसे भारत मे 70% कोलम्बिया की 72% ब्राजील की 64% तथा लंका की 53% जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। कृषि से भारत को राष्ट्रीय आय का लगभग 45% से 50% भाग प्राप्त होता है। यही नहीं इन प्राथमिक उद्योगो मे उत्पादकता का स्तर बहुत नीचा होने से आश्रित जनसंख्या दरिद्र है। जैसे भारतीय कृषि की दशा अब भी पिछडी है। दोषपूर्ण भूमि वितरण, कृषि जोतो का छोटा आकार उप-खण्डन एव उप विभाजन, उत्पादन की परम्परागत पद्धतियाँ व यन्त्रीकरण का अभाव आदि से ऋण ग्रस्तता और कृषि उत्पादकता का निम्न स्तर है। भारत मे प्राय सभी फसलो म प्रति एकड उपज विकसित राष्ट्रो के मुकाबले बहुत कम है।

(2) औद्योगिक पिछड़ापन (Industrial Backwardness)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आधुनिक ढग के बडे पैमाने के आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो का नितान्त अभाव होता है। उपभोग उद्योग भी पिछडी अवस्था मे होते है। जहाँ विकसित राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 30 से 40% भाग औद्योगिक क्षेत्र से प्राप्त करते हैं वहाँ अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे उद्योगो से राष्ट्रीय आय का केवल 8 से 12% भाग प्राप्त होता है। यही नही उद्योगो मे केवल 10 से 20 प्रतिशत जनसंख्या आजीविका कमाती है जबकि विकसित राष्ट्रो मे उद्योगो पर देश की कुल जनसंख्या का 30 से 40% भाग आश्रित होता है। भारत मे कुल जनसंख्या का केवल 20% भाग उद्योगो पर आश्रित है और औद्योगिक क्षेत्र से राष्ट्रीय आय का लगभग 11 से 14% भाग प्राप्त होता है।

(3) अर्द्ध-विकसित प्राकृतिक साधन (Under-developed Natural Resources)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे प्राय यह विशेषता विद्यमान है कि देश मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो का पूरा पूरा विदोहन एव विकास नही होने से उनका प्रयोग सम्भव नही हो पाया है जैसे अकेले अफ्रीका मे विश्व की सम्भावित जलशक्ति का 40° भाग है पर वहाँ केवल 0 1°ₒ का उपयोग हो रहा है। इसी प्रकार भारत म प्राकृतिक साधनो का प्राचुर्य है खनिज सम्पदा की सम्पन्नता है पर पर्याप्त विदोहन के अभाव मे देश पिछडा है। जहाँ भारत मे विश्व लोह भण्डार का 25% भाग अर्थात् 2160 करोड टन का अनुमान है वहा लोहे का वार्षिक खनन 19 3-74 मे 5 करोड टन होने का अनुमान है। इसी प्रकार हम अपने उपलब्ध जल स्रोतो मे केवल 33% का उपयोग सिंचाई मे कर पा रहे हैं।

(4) सामान्य दरिद्रता एवं निम्न प्रति व्यक्ति आय (General Poverty & Low Per Capital Income)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में औद्योगिक पिछड़ापन, अर्द्ध-विकसित प्राकृतिक साधन, पिछड़ी कृषि की प्रधानता, अप्रयुक्त विशाल मानव शक्ति आदि कारणों से सामान्य निर्धनता का साम्राज्य है तथा प्रति व्यक्ति आय का स्तर विकसित राष्ट्रों के मुकाबले बहुत कम है। जहाँ अमेरिका में 1970 में प्रति व्यक्ति आय 4760 डालर, कनाडा में 3700 डालर, फ्रान्स में 3100 डालर, जापान में 1920 डालर तथा रूस में 1790 डालर थी वहां अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति आय भारत में 110 डालर, चीन में 160 डालर, लंका में 150 डालर तथा पाकिस्तान में 120 डालर ही थी। मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि विश्व की आधी जनसख्या की प्रति व्यक्ति आय 100 डालर से कम तथा दो-तिहाई जनसख्या की आय 300 डालर से कम है और ये सब राष्ट्र अर्द्ध-विकसित की श्रेणी में आते हैं।

(5) निम्न जीवन स्तर (Low Standard of Living)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में दरिद्रता व प्रति व्यक्ति आय के नीचे स्तर के कारण लोगों का जीवन-स्तर भी बहुत नीचा है। स्वास्थ्यप्रद भोजन की तो बात दूर रही अधिकांश लोगों को भर पेट भोजन भी उपलब्ध नहीं होता। जहा भोजन में न्यूनतम 3000 केलोरीज प्रति व्यक्ति आवश्यक माना जाता है, अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में औसतन 2000 केलोरी से भी कम होता है। वस्त्र, मकान, शिक्षा एवं चिकित्सा जैसी आधारभूत आवश्यकताओं का भी नितान्त अभाव दृष्टिगोचर होता है। न तन ढकने को कपड़ा, न रहने को मकान और न पेट भरने को भोजन की समस्या। संक्षेप में रोटी, कपड़ा, मकान की समस्या प्राय सभी अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है, शिक्षा सुविधायें कम होने से शिक्षा का भी अभाव होता है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में बीस वर्षों के योजनाबद्ध विकास के बावजूद भी 1971 में साक्षरता का प्रतिशत 29 35 था जबकि जापान, ब्रिटेन, अमेरिका आदि राष्ट्रों में लगभग 90 से 99% जनसख्या साक्षर होती है। चिकित्सा सुविधायें भी अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में न्यूनतम स्तर पर होती हैं। अतः लोगों का जीवन-स्तर विकसित देशों के मुकाबले बहुत नीचा होता है।

(6) व्यापक बेरोजगारी, अर्द्ध-बेकारी तथा छिपी बेरोजगारी (Large Scale Unemployment, Under-employment and Disguised Unemployment)—वायर एवं यामे के अनुसार "अकुशल श्रमिकों की व्यापक बेकारी पिछड़ी हुई अर्थ-व्यवस्थाओं की एक प्रमुख विशेषता है। कई व्यक्ति अनियोजित या अर्द्ध-नियोजित केवल इसलिये नहीं होते कि वे काम करना पसन्द न करते हो वरन् इसलिये होते हैं कि उन्हे काम में लगाने के लिये सहयोगी उत्पादन साधन अपर्याप्त होते हैं।" कृषि की प्रधानता व औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण केवल कृषि ही उनके रोजगार का

स्रोत है और कृषि पर आवश्यकता मे अधिक भार होने से अदृश्य अथवा छिपी हुई बेकारी भी होती है। अदृश्य बेकारी का अभिप्राय उन लोगो से है जो प्रत्यक्ष रूप से तो काम पर लगे हुए लगते हैं पर अगर उनको उस काम से हटा दिया जाये तो भी उत्पादन मे कमी नही होगी। सयुक्त राष्ट्र सघ के एक अध्ययन के अनुसार भारत, पाकिस्तान, फिलीपाइन्स तथा इन्डोनेशिया के कुछ भागो मे छिपी हुई बेकारी 20 से 25% है। भारत जैसे राष्ट्र मे बुल्फ तथा सर्फारिन न बेकारी तथा अर्द्धबेकारी की समस्या को इस प्रकार व्यक्त किया है—"भारत मे प्रतिवर्ष बेकारी व अर्द्ध-बेरोजगारी के कारण उतने श्रम घन्टो का अपव्यय होता है जितने सयुक्त राज्य अमेरिका मे समस्त श्रम शक्ति द्वारा किये जाते।" यही दशा प्राय सभी अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे है। भारत म बेरोजगारो की सख्या 1955 मे 53 लाख थी और 1978 तक 4 5 करोड होने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त इन देशो मे मौसमी बेरोजगारी, चक्रीय बेकारी तथा सघर्षात्मक बेकारी भी दृष्टिगोचर होती है।

(7) पूजी निर्माण तथा विनियोग का निम्न स्तर (Low level of Capital Formation & Investment)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक निर्धनता के कारण प्रति व्यक्ति आय एव बचत का स्तर बहुत नीचा होता है जबकि उपभोग क्षमता की दर ऊची रहती है। जो कुछ थोडी बहुत बचतें होती हैं वे भी सामाजिक एव परम्परागत रूढिवादिता के कारण अनुत्पादक कार्यो—विवाह, मृत्यु-भोज, गहनो आदि पर व्यय कर दी जाती है। परिणामस्वरूप बचत व विनियोग के अभाव मे पूंजी निर्माण की दर विकसित राष्ट्रो के मुकाबले नगण्य है। सयुक्त राष्ट्र सघ के एक सर्वेक्षण के अनुसार 1960 मे जहा पूजी निर्माण की दर विकसित राष्ट्रो—अमेरिका म 18%, पश्चिमी जर्मनी मे 24% व जापान मे 28 5% थी वहा अर्द्ध-विकसित देशो मे पूंजी निर्माण की दर भारत मे 8%, लका व घाना मे 11% तथा तुर्की व ईराक मे लगभग 15% थी। यह उल्लेखनीय है कि भारत मे 1951 मे पूंजी निर्माण की दर राष्ट्रीय आय का 5½% ही थी अब यह बढकर लगभग 22% हो गई है। यही नही, अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आय के असमान वितरण के कारण जो धनी लोग बचाने मे सक्षम है वे भी बचतो को प्रदर्शनात्मक प्रभाव के कारण उत्कृष्ट उपभोग (Conspicuous Consumption) पर अपव्यय करते हैं।

(8) विदेशी व्यापार पर आधारित अर्थ-व्यवस्था (Foreign Trade Oriented Economies)—बहुत से अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो की अर्थ-व्यवस्था विदेशी व्यापार पर बहुत अधिक आश्रित होती है। इन राष्ट्रो मे प्रायः राष्ट्रीय आय का 20 से 30% भाग परम्परागत वस्तुओ के निर्यात से प्राप्त होता है। एक अनुमान के अनुसार लंका, मलाया व दक्षिणी अमेरिका के देशो मे निर्यातो से राष्ट्रीय आय का 30% भाग प्राप्त होता है। इसी प्रकार ईरान, दक्षिणी अरेबिया व कुवैत अपने तेल निर्यात से 90% भाग प्राप्त करते हैं। बगला देश भी जूट से अपनी निर्यात आय का 70%

भाग तथा भारत भी 1951 में परम्परागत वस्तुओं से 60% निर्यात आय प्राप्त करता था। 1971 में यह लगभग 35% था और 1976-77 में घटकर 16% हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में इन वस्तुओं के भावों में अत्यधिक उतार चढ़ावों से अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की अर्थ-व्यवस्था आर्थिक संकटों में फंसती रहती है। व्यापार की शर्तें भी विकसित देशों के अनुकूल तथा अर्द्ध-विकसित देशों के प्रतिकूल हो रहती है।

(9) बाजार की अपूर्णतायें (Market Imperfections)—प्रो० मेयर एवं बाल्डविन (Meir & Baldwin) के अनुसार अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में उत्पादन साधनों में गतिशीलता का अभाव, मूल्यों की बेलोचता, अज्ञानता, सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़िवादिता, विशिष्टिकरण का अभाव, परम्परा व बेलोच आर्थिक ढांचा, आय, बचत एवं विनियोग का निम्न स्तर तथा एक ओर संकीर्ण मौद्रिक क्षेत्र और दूसरी ओर अमौद्रिक क्षेत्र आदि अनेक अपूर्णताओं के कारण अर्थव्यवस्था निर्धनता के दुस कुचक्र में फंसी हुई है जिससे विकास प्रक्रिया ही अवरुद्ध हो गई है। साहसियों तथा सरकार की सक्रियता के अभाव में विकास की कल्पना और भी कठिन हो जाती है।

(10) तकनीकी ज्ञान एवं प्रौद्योगिक पिछड़ापन (Backwardness of Technical know-how & Technology)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में तकनीकी ज्ञान एवं प्राविधिक उत्पादन पद्धतियों का नितान्त अभाव होता है उनमें उत्पादन की परम्परागत रूढ़िवादी पद्धतियाँ निम्न उत्पादन स्तर का कारण एवं परिणाम हैं। अल्प-विकसित देशों में प्रौद्योगिक ज्ञान एवं वैज्ञानिक शिक्षा की बात दूर रही, साक्षरता प्रतिशत भी 20 से 30 होता है। वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। जहाँ विकसित राष्ट्रों में नवीन उत्पादन पद्धतियों, शोध एवं अनुसंधान पर अमेरिका में 154 रु० प्रति व्यक्ति, रूस में 110 रु० प्रति व्यक्ति वार्षिक व्यय किया जाता है वहाँ भारत जैसे विकासशील देश में यह व्यय नाम मात्र 15 पैसे प्रति व्यक्ति वार्षिक है। यही नहीं, अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में श्रम प्रधान अकुशल उत्पादन पद्धतियों के कारण उत्पादन लागत भी अधिक बैठती है।

(11) आर्थिक विषमता की चौड़ी खाई (Extreme Economic Disparities) अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था में राष्ट्रीय आय व सम्पत्ति के वितरण में काफी विषमता पाई जाती है। एक ओर थोड़े से धनिकों को अपार सम्पत्ति व राष्ट्रीय आय का सापेक्षतया बड़ा भाग जबकि दूसरी ओर असंख्य साधन व आयहीन निर्धन जनता। प्रो० महालनोबीस के प्रतिवेदन के अनुसार 1955-56 में भारत में 5% लोगों को राष्ट्रीय आय का 23% प्राप्त हो रहा था जबकि इनसे ऊपर के 1% लोगों को राष्ट्रीय आय का 11% तथा सबसे नीचे के 25% लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल

10% भाग ही मिल रहा था। इसी प्रकार के विचार की पुष्टि साइमन कुजनेत्स ने भी की है। उसके अनुसार जहाँ भारत और लंका मे देश की 20% धनिक जन-संख्या राष्ट्रीय आय का क्रमश 55% तथा 50% भाग हडप जाती है वहाँ देश की 70% गरीब जनता क्रमश 28% तथा 30% ही प्राप्त करती है जबकि विकसित राष्ट्रों मे यह विषमता की खाई कम चौडी है।

(12) उचित राजकोषीय एव मौद्रिक संगठन का अभाव (Lack of Proper Fiscal & Monetary Organisation)—अर्द्ध-विकसित देशो मे न तो एक सन्तुलित एव प्रगतिशील राजकोषीय नीति होती है और न एक उपयुक्त मौद्रिक व्यवस्था ही। अप्रत्यक्ष करो की प्रधानता होती है जो प्रतिगामी होते हैं और करवचना की प्रवृति प्रबल होने से सरकार के आय स्रोत सीमित होते है ऐसे देशो का मुद्रा बाजार असगठित होता है और सगठित तथा असगठित क्षेत्रो मे समन्वय का अभाव होता है अतः केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति अप्रभावी होती है। बैंकिंग एव वित्तीय संस्थाओ के अभाव मे पूंजी-निर्माण व बचतो को प्रोत्साहन नही मिलता।

(13) आर्थिक निर्धनता के कुचक्रों का जोर (Vicious Circle of Economic Poverty) – अर्द्ध-विकसित राष्ट्र निर्धनता के कुचक्रो मे फसे होते है। माँग और पूर्ति पक्षो मे ये कुचक्र अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे सबसे प्रमुख बाधा है। ये कुचक्र उनकी निर्धनता के कारण एव परिणाम दोनो ही होते है। प्रो० नर्क्से के अनुसार "एक देश निर्धन है क्योकि वह निर्धन है" (A Country is poor because it is poor) इन देशो मे अविकसित साधनो, पिछडेपन व पूंजी की कमी के कारण निम्न उत्पादकता होती है जिससे वास्तविक आय नीची होती है परिणामस्वरूप उपभोग व बचत का स्तर भी नीचा रहता है और विनियोग भी कम रहता है इससे पूंजी निर्माण कम होता है और अर्थव्यवस्था पिछडी ही रह जाती है। इन दुष्चक्रो को तोडे बिना अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक पिछडापन, निर्धनता व बेकारी दूर करना कठिन कार्य है।

(14) अन्य आर्थिक विशेषतायें (Other Economic Characteristics)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे उपर्युक्त आर्थिक विशेषताओ के अतिरिक्त उद्यमी प्रवृति (Enterpreneurial Spirit) का भी नितान्त अभाव पाया जाता है क्योंकि बाजारो की सीमितता, पूंजी एव प्रौद्योगिक ज्ञान का अभाव तथा आवश्यक उत्प्रेरणाओ की अनुपस्थिति मे साहसी जोखिम उठाने से कतराते है। सरकार भी आगे नही आती। अर्थ-व्यवस्था मे जीवन-निर्वाह के लिये लघु एव कुटीर उद्योगो का अधिक सहारा लिया जाता है। अर्थ-व्यवस्था का एक बडा भाग अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसमे वस्तु-विनिमय एव जीवन-निर्वाह की आर्थिक गति-विधिया ही चलती हैं। व्यावसायिक दृष्टिकोण का अभाव रहता है।

(B) जनसंख्या सम्बन्धी विशेषतायें
(Demographic Characteristics)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विशेषताओ के समान जनसख्या सम्बन्धी विशेषतायें भी बडी रोचक हैं—

(1) जनाधिक्य की समस्या (Problem of Over-population)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों म जनाधिक्य की समस्या बडी जटिल है। जहाँ अमेरिका, रूस व जापान की जनसख्या क्रमश 20 करोड, 24 करोड तथा 10 करोड है वहाँ अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे भारत की *अकेले की जनसख्या उन 68 करोड अर्थात्* उपर्युक्त तीनो देशो की सम्मिलित जनसख्या स भी अधिक है। चीन की जनसख्या भी लगभग 80 करोड है। विश्व की दो तिहाई जनसख्या अर्द्ध-विकसित देशो मे वसती ह और उन्हे विश्व की कुल आय का केवल 15% भाग प्राप्त होता है। जबकि विकसित राष्ट्रो मे विश्व की केवल 18% जनसख्या निवास करती है पर उन्ह विश्व आय का लगभग 67% भाग मिलता है। अमेरिका म विश्व-जनसख्या का केवल 6% भाग है पर वह विश्व उत्पादन का लगभग 35% भाग उत्पादित करती है।

(2) उच्च जन्म एवं मृत्यु दर व विस्फोटक वृद्धि (High Birth and Death Rate and Rapid Growth)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे जनाधिक्य होने के साथ-साथ जन्म दरें एव मृत्यु दरें भी विकसित राष्ट्रो के मुकाबले काफी ऊँची हैं। इनमें *जन्म एव मृत्यु दरे क्रमश* 35 से 50 *प्रति हजार तथा* 30 से 45 *प्रति हजार* है। जनसख्या मे विकास की दर भी 2% से 3% है जबकि विकसित राष्ट्रो मे जन्म दरें 10 से 25 प्रति हजार तथा मृत्यु दरे भी 9 से 20 प्रति हजार है और उनम जनसख्या वृद्धि की दर 0 5% से 2 है। भारत म जन्म दर 33 प्रति हजार तथा मृत्यु दर 15 प्रति हजार होने के कारण जनसख्या मे 2 5% की दर से विस्फोटक वृद्धि हुई है।

(3) कम औसत आयु (Low Expectation of Life)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक *दरिद्रता, अज्ञानता तथा स्वास्थ्य* और चिकित्सा सुविधाओ के अभाव मे औसत आयु विकसित राष्ट्रो की तुलना मे बहुत कम है। जहाँ विकसित राष्ट्र अमेरिका, रूस, ब्रिटेन व स्वीडन मे औसत आयु क्रमश 70 वर्ष, 72 वर्ष है वहाँ अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे औसत आयु 32 से 50 वर्ष के मध्य है। भारत मे औसत आयु 1951 में 32 थी जबकि 1971 में बढकर 52 वर्ष होने का अनुमान है फिर भी विकसित देशो की तुलना मे अब भी नीचे है।

(4) अन्य (Miscellaneous)—(i) अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे कार्यशील जनसख्या का अनुपात लगभग 40 से 50% होता है क्योकि वहाँ की जनसख्या मे बालको (15 *वर्ष की आयु से कम) की सख्या* कुल जनसख्या के 40% के बराबर होती है जबकि इगलैण्ड व अमेरिका आदि मे यह अनुपात 20 से 25% ही है। (ii) अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे ग्रामीण जनसख्या की प्रधानता होती है जहाँ विकसित

देशों में लगभग 80% जनसंख्या शहरों में और 20% जनसंख्या गावों में रहती है, वहां इसके विपरीत अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की 80% जनसंख्या गावों में तथा लगभग 20% ही शहरों में रहती है। (iii) इसी प्रकार अर्द्ध विकसित देशों में 70% से 90% जनसंख्या कृषि पर आश्रित है जबकि उद्योगों व व्यवसायों में यह अनुपात 10 से 30% है जबकि विकसित देशों में इसके विपरीत स्थिति होती है।

(C) सामाजिक एवम राजनैतिक विशेषतायें
(Social and Political Characteristics)

अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में सामाजिक जड़ता एवं धार्मिक रूढ़िवादिता के कारण जनता अन्ध विश्वासी भाग्यवादी एवं अकर्मण्य हो जाती है। अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण लोगों का दृष्टिकोण संकुचित तथा उज्जवल भविष्य के लिए उदासीन हो जाता है। सामाजिक कुप्रथाओं मृत्यु भोज विवाह उत्सवों व पाखण्डी कार्यों पर भारी अपव्यय किया जाता है। भारत इनका अनुपम उदाहरण है।

अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में जनता में राजनैतिक चेतना का अभाव होता है अतः वे राजनैतिक अधिकारों व दायित्वों के प्रति जागरूक नहीं होते। राजनैतिक अस्थिरता पाई जाती है। योग्य कर्त्तव्यपरायण एवं साहसी राजनेताओं के अभाव में राजनैतिक भ्रष्टाचार का बोल बाला होता है। कुशल योग्य एवं ईमानदार प्रशासन के अभाव में विकास कार्यों का क्रियान्वयन सफल होना कठिन रहता है।

अर्द्ध विकसित देशों के पिछड़ेपन के कारण
(Causes of Backwardness of Under Developed Countries)

अथवा

अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के विकास में बाधायें समस्यायें या कठिनाइयां
(Obstacles Problems or Difficulties in Development of Under Developed Countries)

विश्व के प्रायः सभी अर्द्ध विकसित राष्ट्र जिनमें विश्व की दो तिहाई जनसंख्या आर्थिक दरिद्रता के दुष्चक्र में फंसकर कराह रही है यथाशीघ्र निर्धनता की बेड़ियों से मुक्त होकर अपना भूखी नंगी जनता को विविधतापूर्ण सुखी जीवन स्तर प्रदान करने के लिए सतत् प्रयत्नशील है पर जो घटक उनके पिछड़ेपन के कारण हैं वे ही उनके आर्थिक विकास में मुख्य बाधायें या समस्यायें हैं। यद्यपि प्रत्येक अर्द्ध विकसित राष्ट्र की राजनैतिक सामाजिक भौगोलिक एवं आर्थिक संरचना में भिन्नता के कारण उनकी समस्याओं व विकास की बाधाओं में अन्तर हो सकता है फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से ये बाधायें लगभग एक सी होती हैं। अतः अध्ययन की दृष्टि से अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के पिछड़ेपन के कारणों तथा उनकी समस्याओं का वर्गीकरण, आर्थिक सामाजिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर अग्र प्रकार हैं—

अर्द्ध-विकसित देशो के पिछड़ेपन के कारण व विकास मे बाधायें

↓

↓	↓	↓	↓
(A) आर्थिक बाधायें	(B) सामाजिक बाधायें	(C) राजनैतिक बाधायें	(D) सांस्कृतिक बाधायें
(1) बाजार की अपूर्णतायें	(1) जनसंख्या की समस्या का	(1) राजनैतिक पराधीनता	(1) धार्मिक अन्धविश्वास
(2) निर्धनता के दुष्चक्र	(2) सामाजिक सगठन	(2) राजनैतिक स्थिरता अभाव	(2) आध्यात्मिक दृष्टिकोण
*(3) पूंजी विनि-*योग का अभाव	*(3) सामाजिक* बन्धन एव रूढिवादिता	*(3) कुशल प्रशासन* का अभाव	
(4) प्रौद्योगिक व तकनीकी ज्ञान का अभाव	(4) जन सहयोग एव जागृति का अभाव	( ) योग्य नेतृत्व का अभाव	
(5) अन्तर्राष्ट्रीय शोषण			
(6) विदेशी विनिमय सकट			
(7) बेकारी व अर्द्ध-बेकारी			
(8) उत्कृष्ट उपभोग			

(A) आर्थिक बाधायें (Economic Obstacles)

(1) बाजार की अपूर्णतायें (Market Imperfections)—अर्द्ध विकसित देशो के पिछड़ेपन का कारण तथा आर्थिक विकास की बाधा उनके बाजार की अपूर्णताओ में निहित हैं। उनमे उत्पादन साधनो की गतिशीलता का अभाव, मूल्यो मे लोचता की कमी, बाजार दशाओ की अज्ञानता, विस्तृत अमौद्रिक क्षेत्र की प्रधानता और विशिष्टीकरण के अभाव के कारण उत्पादन साधनो का सर्वोत्तम वितरण एव समन्वय न होने से प्राकृतिक साधनो का पूरा-पूरा प्रयोग नही हो पाता और वास्तविक उत्पादन सम्भावित उत्पादन के मुकाबले बहुत ही निम्न स्तर पर रहता है। सहयोगी उत्पादन साधनो के अभाव मे अत्यधिक श्रम शक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता जिससे कई उद्योगो मे श्रम की सीमान्त उत्पादन शून्य होती है। अत विकास मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

(4) औद्योगिक एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव (Lack of Technology & Technical Know how)—अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास के लिये बड़े पैमान के आधारभूत उद्योगो की स्थापना करने तथा उत्पादन की नवीन पद्धतियो के प्रयोग व खोज के लिये शोध, अनुसंधान करना पड़ता है और ये सब कार्य करने के लिये तकनीकी विशेषज्ञो व प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। इनका पिछड़े राष्ट्रो मे नितान्त अभाव है अत अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे इनका अभाव बाधा उपस्थित करता है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियो द्वारा शोषण (Exploitation by International Forces)—विकसित राष्ट्र अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो को अपनी निर्मित वस्तुओ का बाजार तथा कच्चे माल के उत्पादक बना कर उनका शोषण करने पर उतारू है। व अपने विनियोगो से भी निर्धन देशो पर आर्थिक प्रभुत्व जमाकर उनका शोषण करन का प्रयास करते हैं। विदेशी व्यापार मे भी व्यापारिक शर्तें प्रतिकूल ही होती है। भारत म ब्रिटिश साम्राज्य का शोषण इसका परिचायक है। अभी भी विकसित राष्ट्रो म सगठित होकर अर्द्ध विकसित राष्ट्रो पर हावी होने की प्रवृत्ति प्रबल है अत यह प्रवृत्ति उनके आर्थिक विकास मे बाधा बनती है।

(6) विदेशी विनिमय सकट (Foreign Exchange Problems)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो को अपन विकास की प्रारम्भिक अवस्था म मशीनो औद्योगिक कच्चा माल, तकनीकी एव औद्योगिक ज्ञान तथा पूंजी आदि के लिय, विदेशो पर बहुत अधिक आश्रित रहना पडता है जिससे आयात निर्यातो की अपक्षा बढ जाते है और विदेशी भुगतानो मे असन्तुलन विदेशी विनिमय सकट को जन्म देता है जैसे भारत मे 1957 से ही विनिमय सकट न्यूनाधिक रूप से आर्थिक विकास म बाधा बना है। 1966 म हमे बाध्य होकर रुपये का अवमूल्यन करना पडा।

(7) बेकारी एव अर्द्ध-बेकारी (Unemployment and under employment)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे एक बडी समस्या यह है कि एक ओर विशाल मानव शक्ति होती है तो दूसरी ओर अशोषित प्राकृतिक साधनो का बाहुल्य। पर प्रौद्योगिक एव तकनीकी ज्ञान के अभाव तथा पूंजी व साहस की कमी के कारण रोजगार के अवसर सीमित होते है अत बडी मात्रा मे बेकारी और अर्द्ध-बेकारी की समस्या सामने रहती है। परिणामस्वरूप उन्हे आर्थिक विकास मे श्रम-प्रधान योजनाओ को महत्व देना पडता है जिससे विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी होती है।

(8) उत्कृष्ट उपभोग की समस्या (Problem of Conspicuous Consumption)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे वैसे भी असख्य निर्धनो की आय नीची होने के कारण बचत नही होती और जो कुछ धनी लोग होते है तथा जिनमे बचाने की कुछ क्षमता है वे भी अपनी आय को **प्रदर्शनात्मक प्रभाव** के कारण पाश्चात्य लोगो के जीवन-स्तर को प्राप्त करने की इच्छा से उत्कृष्ट उपभोग पर व्यय कर देते है इससे

दोहरा दुष्प्रभाव पड़ता है न तो पूँजी निर्माण के लिये बचतें होती हैं और विदेशी उपभोग वस्तुओं के आयात बढ़ने से विदेशी विनिमय संकट सामने आता है। यही नहीं वे अपनी आय को बहुमूल्य गहनों, विलासिताओं व आलीशान भवनों के निर्माण में अपव्यय कर देते हैं। अतः विनियोग एवं पूँजी निर्माण नहीं हो पाता जो आर्थिक विकास का आधार स्तम्भ है।

(B) सामाजिक बाधायें (Social Obstacles)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक पिछड़ेपन व आर्थिक विकास में बाधाएँ केवल आर्थिक ही नहीं वरन् सामाजिक बाधाएँ भी होती हैं। इन देशों में (1) जनाधिक्य की समस्या (Population Problem) प्रमुख है, यह न केवल मात्रात्मक समस्या है वरन् गुणात्मक भी है। इन देशों में विशाल जनसंख्या होती है पर उनका प्रयोग नहीं होता जबकि उनके भरण-पोषण व रोजगार की समस्या रहती है। उनका जीवन-स्तर नीचा व पर्याप्त चिकित्सा व स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में जनसंख्या कमजोर बीमार व बौद्धिक दृष्टि से निम्न स्तर की होती है। जैसे भारत में जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि की बाढ़ आर्थिक विकास की उपलब्धियों को ही नहीं बहा ले जाती वरन् साथ-साथ में खाद्यान्न अभाव, बेकारी, आवश्यक वस्तुओं का अभाव ऊँचे मूल्यों तथा अशान्ति को भी जन्म देती है। (2) दोषपूर्ण सामाजिक संगठन (Defective Social Organisation) भी आर्थिक विकास में बाधक है क्योंकि जाति प्रथा संयुक्त परिवार-प्रणाली, पर्दा प्रथा, उत्तराधिकार नियम आदि व कठोर परिपालन में साहस का अभाव, बचतों का हतोत्साहन व श्रम की गतिशीलता में कमी, आर्थिक विकास में अड़चनें उत्पन्न करती हैं। (3) सामाजिक बंधन एवं रूढ़िवादिता के कारण लोग अपने खून पसीने की कमाई को मृत्यु-भोजों, विवाहोत्सवों व रूढ़ियों को पूरा करने में अपव्यय कर देते हैं जिससे न तो पूँजी निर्माण हो पाता है और न व रूढ़िवादी प्रवृत्तियों के चंगुल से ही निकल पाते हैं। (4) जन, सहयोग एवं जन-जागृति का अभाव अर्द्ध-विकसित देशों में अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण न तो जनता में आर्थिक चेतना होती है और न वे आर्थिक विकास कार्यक्रमों में रुचि ही लेते हैं परिणामस्वरूप जन सहयोग जो कि आर्थिक विकास की सचालक एवं गतिदायक शक्ति होती है, नितान्त अभाव होता है अतः आर्थिक विकास के लिये आवश्यक पृष्ठिभूमि नहीं बन पाती।

(C) राजनैतिक बाधायें (Political Obstacles)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में राजनीतिक बाधाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। बहुत से अर्द्ध-विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के पराधीन रहे हैं उनके स्थानीय शासकों ने विदेशी साम्राज्यों के साथ मिलकर अर्थ व्यवस्थाओं के शोषण की कोई कसर नहीं छोड़ी। विदेशी शासकों ने अपने आर्थिक हितों के लिये इन पिछड़े राष्ट्रों के आर्थिक हितों की बलि चढ़ा दी और उन्हें ऐसा अपंग बना दिया कि वे अपने आर्थिक विकास की बात भी न सोच सकें। इन देशों ने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद

प्रजातान्त्रिक शासन प्रणालियो का सहारा लिया है पर अज्ञानता व शिक्षा के अभाव मे स्वार्थी, भ्रष्ट एव अयोग्य राजनेताओ द्वारा आर्थिक विकास की आड मे अपना उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति प्रबल है। योग्य नेतृत्व का अभाव रहता है।

राजनैतिक अस्थिरता, घरेलू अशान्ति एव बाह्य आक्रमणो के कारण भी अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विकास वाछित गति से नही हो पाता। जैसे भारत के राज्यों मे राजनैतिक अस्थिरता, उथल-पुथल, हडतालें, आगजनी, लूट-पाट, तोड़-फोड तथा चीनी एव पाकिस्तानी आक्रमणो से आर्थिक विकास मे बाधा उत्पन्न हुई है।

योग्य, कुशल तथा ईमानदार प्रशासन आर्थिक विकास की आधारभूत आवश्यकता मानी जाती है पर अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे इसका भी नितान्त अभाव है। प्रो० लेविस ने लिखा है कि "आर्थिक नियोजन के लिये सर्वप्रथम एक सशक्त, *योग्य व ईमानदार प्रशासन चाहिये जो उपायो को इच्छापूर्वक लागू कर सके।"*

(D) सास्कृतिक बाधायें
(Cultural Obstacles)

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे धार्मिक अन्ध-विश्वास व रूढियों के कारण व्यक्ति भाग्यवादी व अकर्मण्य हो जाते हैं। भौतिक उत्थान के बदले जब वे आध्यात्मिकता को महत्व देने लग जाते हैं तो आर्थिक विकास की सम्भावनाएँ धूमिल हो जाती हैं। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे "सादा जीवन एव उच्च विचार" (Simple Living & High Thinking) की धारणा के कारण वे जो कुछ मिलता है उसी मे ही सन्तुष्ट है। अत उनम भौतिकवादी प्रवृति उत्पन्न करने मे समय लगता है। अब प्राय- सभी अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे शिक्षा के प्रसार व *पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण* भौतिकवादी दृष्टिकोण तेजी से बढ़ रहा है और धार्मिक *अन्ध विश्वास व रूढियाँ* धराशायी हो रही हैं। पर भौतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत धीमी ही है।

अत निष्कर्ष मे कहा जा सकता है कि अर्द्ध-विकसित देशो मे अनेक प्रकार की बाधाएँ आर्थिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं इस सन्दर्भ मे सयुक्त राष्ट्र सघ समिति का यह कथन ठीक है "उपयुक्त वातावरण के अभाव मे आर्थिक विकास *असम्भव है। आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है कि लोगो मे विकास की इच्छा* हो और उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एव वैधानिक सस्थाएँ इस इच्छा को कार्यान्वित करने व मूर्त रूप देने मे सहायक हो।"

अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक-विकास के सामान्य उपाय व आवश्यकतायें
(General Measures, Requisites or Requirements for Economic Development of Underdeveloped Countries)

यद्यपि अर्द्ध विकसित देशो के आर्थिक-विकास मे अनेक अडचने हैं फिर भी विश्व शान्ति एव मानवीय कारणो से उनके आर्थिक विकास की उपेक्षा करना उपयुक्त

नहीं इन देशों मे निर्धनता के कुचक्र मे फसी असंख्य जनसंख्या अब अधिक इन्तजार नही कर सकती अत उनके आर्थिक विकास के लिये निम्न सामान्य उपायों या आवश्यकताओ को पूरा करना समय का तकाजा है।

(1) स्वदेशी शक्तियों का सुदृढ आधार तयार करना (Strong Base of Indegmous Forces)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों को अपने आर्थिक विकास के कार्यक्रमो व प्रयासो के लिये स्वदेशी शक्तियों का एक सुदृढ आधार तैयार करना चाहिये क्योंकि बाह्य शक्तियाँ तो स्वदेशी शक्तियो के लिये पूरक एव प्ररक के रूप मे काम कर सकती है वे विकास प्रक्रिया के लिये प्रतिस्थापक (Substitute) नही बन सकती। विदेशी सहायता पर आश्रित विकास राजनतिक सम्बन्धो के साथ-साथ डावाडोल होता है और सकट के समय गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर देता है। अल्पकाल मे विदेशी शक्तियो का सहारा उपयोगी हो सकता है अन्तिम रूप मे तो स्वदेशी शक्तियो पर ही निर्भर होना चाहिये। इस सन्दर्भ मे मेयर और बाल्डविन का कथन 'यदि विकास की प्रक्रिया सचयी और दीर्घकालीन है तो विकास की शक्तियाँ देश के अन्तर्गत ही होनी चाहिये' उपयुक्त लगता है।

(2) बाजार अपूर्णताओ का समापन (Removal of Market Imperfections) –अर्द्ध विकसित देशो मे आर्थिक विकास की दूसरी आवश्यकता बाजार अपूर्णताओ को दूर करना है जो कि उनके विकास मे महत्त्वपूर्ण बाधा है। इसके लिये सामाजिक एव आर्थिक सगठनो मे क्रान्तिकारी परिवर्तनो से उन्हे विकासानुसार बनाना होगा। शिक्षा व तकनीकी ज्ञान की अभिवृद्धि से साधनो की गतिशीलता उत्पादकता तथा उत्पादन पद्धतियो मे आधुनिकीकरण करना पडेगा। प्राकृतिक साधनो के विदोहन के लिये अर्वाचीन तरीको का सहारा लेना होगा। पूँजी व साख का विस्तार, एकाधिकारी प्रवृतियो पर नियन्त्रण बाजार का विस्तार अर्थ-व्यवस्था का सन्तुलित विकास करने के लिये उपलब्ध साधनो का सर्वोत्तम उपयोग करने की आवश्यकता है। प्रो० मेयर व बाल्डविन के अनुसार 'देश की राष्ट्रीय आय मे तीव्र गति से वृद्धि के लिये नवीन आवश्यकताओ नवीन विचारधाराओ उत्पादन के नये तरीको तथा नवीन सस्थाओ के निर्माण की आवश्यकता होती है।'

(3) पूँजी-निर्माण व विनियोग दर मे वृद्धि (Increase in Rate of Capital Formation & Investment)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे आय के नीचे स्तर एव कम बचतो के कारण पूँजी निर्माण की दर नीची है जबकि इन देशो मे विकास मे भारी मात्रा मे विनियोगो के लिये पूँजी निर्माण दर मे वृद्धि करना आवश्यक है। प्रो० रोस्टोव (W Rostow) के अनुसार किसी देश को आर्थिक विकास की स्वयस्फूर्त अवस्था (Self generating Stage) मे पहुचने के लिये बचत व विनियोग दर को राष्ट्रीय आय के 10 से 15% बढाना आवश्यक होता है।" विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे आन्तरिक पूँजी निर्माण की गति धीमी होने पर विदेशी बचतो व सहायता का प्रयोग विनियोगो मे किया जाना चाहिये।

अर्द्ध विकसित देशों म पूंजी निर्माण की गति तेज करने के लिये अल्प-बचतों को प्रोत्साहन, सग्रहित साधनों को उत्पादक उपयोगों म बढ़ावा, बचतों को गतिशील बनाने के लिये साख सुविधाओं व वित्तीय संस्थाओं का विस्तार तथा बचतों को उत्पादक कार्यों मे प्रयोग की आवश्यकता होती है। सरकार भी प्रगतिशील करारोपण, सार्वजनिक ऋणों तथा हीनार्थ प्रबन्ध स पूंजी निर्माण व उत्पादक विनियोगों की दर बढ़ा सकती है। पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने के लिय विदेशी प्रत्यक्ष विनियोगों, ऋणों तथा अनुदान का सहारा भी ले लिया जा सकता है इसमे दोहरा लाभ मिलता है। एक ओर विदेशी विनिमय सकट हल करने मे सहायता मिलती है तो दूसरी ओर विदेशी साहसी जोखिम उठाकर प्रौद्योगिक स्तर मे वृद्धि करते हैं। नर्कसे के अनुसार "अर्द्ध विकसित देश अपनी छिपी बेकारी का प्रयोग पूंजी निर्माण म कर सकते हैं।"

(4) पूंजी सोखने की क्षमता मे वृद्धि (Increase in Capital Absorption Capacity)—अर्द्ध-विकसित देशो म बाजार अपूर्णताओं, निम्न प्राविधिक स्तर तथा कुशल प्रशासन के अभाव मे पूंजी होने पर भी उसके उपयोग की समस्या आती है। इसलिय प्रशासनिक कुशलता मे सुधार, तकनीकी एव प्रौद्योगिक ज्ञान म वृद्धि तथा बाजार अपूर्णताओं के समापन द्वारा, अर्थ व्यवस्था की पूंजी सोखने की शक्ति मे वृद्धि करना चाहिये ताकि मुद्रा-स्फीति और भुगतान असन्तुलन की समस्याएँ उत्पन्न न हो।

(5) आर्थिक नियोजन द्वारा विकास (Development through Economic Planning)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों को अपने आर्थिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाना अधिक हितकर है क्योंकि आर्थिक नियोजन हमारे युग की आर्थिक समस्याओं के निराकरण की एक अचूक रामबाण औषधि माना जाता है। अर्द्ध-विकसित देश पाश्चात्य देशो के समान आर्थिक विकास के लिये स्वतन्त्र मूल्य प्रणाली की लम्बी अवधि की जोखिम नहीं उठा सकते अत उनके लिय अपने तीव्र आर्थिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन की प्रणाली अपनाना ही श्रेष्ठ है।

(6) उपयुक्त विनियोग मापदण्ड (Suitable Investment Criterion)—अर्द्ध विकसित देशों म साधन सीमित है जबकि आवश्यकताएँ अनेक हैं। अत तीव्र आर्थिक विकास के लिये उचित प्राथमिकताओं के आधार पर विनियोग का आवटन विभिन्न क्षेत्रो व उपयोगो मे विवेकपूर्ण ढग से किया जाना चाहिय। इसके लिए (i) साधनों का विनियोग इस प्रकार किया जाय कि प्रत्येक उपभोग म सीमान्त उत्पादकता समान हो तथा सामाजिक सीमान्त उत्पादकता अधिकतम हो। (ii) ऐसी परियोजनाओं मे विनियोग को प्राथमिकता देना चाहिये जिसम पूंजी उत्पाद-अनुपात (Capital Output Ratio) कम हो अर्थात् कम से कम पूंजी से अधिक उत्पादन किया जा सके। (iii) आर्थिक विकास के लिए सुदृढ़ आधार के लिए सामाजिक ऊपरी-व्यय पूंजी (Social Overhead Capital) जैसे सड़कों रेलो, सचार साधनो, विद्युत व सिंचाई परियोजनाओं, शिक्षा तथा चिकित्सा सुविधाओं के विस्तार पर

विनियोग को प्रोत्साहन देना चाहिये। (ı) विनियोग ऐसे किया जाय कि अधिकतम रोजगार सम्भव हो सके तथा श्रमिकों की कार्य-क्षमता में अधिकतम वृद्धि सम्भव हो सके।

(7) असन्तुलित विकास पद्धति का अनुकरण (Adoption of Un-Balanced Growth Technique)—अर्द्ध विकसित राष्ट्रों को अपने निर्धनता के कुचक्रों को तोड़ने तथा आर्थिक विकास की गति तेज करने के लिए विकास की प्रारम्भिक अवस्था में असन्तुलित विकास पद्धति" को अपनाना चाहिये ताकि आधारभूत उद्योगों के विकास से वर्तमान में त्याग करके भावी विकास का सुदृढ़ आधार तैयार हो सके। पंडित नेहरू के अनुसार ' सन्तुलित विकास पद्धति जिसमें सभी उद्योगों व क्षेत्रों का एक साथ विकास करने का प्रयास होता है आधुनिक युग में पूर्णत अलोकप्रिय सिद्धान्त (A Completely Discredited Theory) है।

(8) प्रौद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा का विकास (Development of Technology and Technical Education)—विकास प्रक्रिया के हर क्षेत्र में तकनीकी एवं प्रौद्योगिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। अत देश में तकनीकी एवं प्राविधिक शिक्षा का विकास एवं विस्तार अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में विकास की आधारभूत आवश्यकता है। यही नहीं देश में अनुसंधान एवं शोध कार्यों को प्रोत्साहन देना चाहिये ताकि देश में उपलब्ध साधनों व विदेशी पूंजी का विकास में समुचित उपयोग हो सके।

(9) सामाजिक सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें (Social Cultural & Psychological Requirements)—विकास प्रक्रिया पर सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विचारों व मनोवैज्ञानिक धारणाओं का भी काफी प्रभाव पड़ता है अत (ı) **सामाजिक संरचना को विकास के अनुकूल बनाने के लिए** संयुक्त परिवार प्रथा, जातिवाद उत्तराधिकार नियमों, पर्दा-प्रथा आदि में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए (ıı) **जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि पर नियन्त्रण करना चाहिए** अन्यथा जनसंख्या की बाढ़ विकास उपलब्धियों को बहा ले जाती है और प्रति व्यक्ति आय में कोई वृद्धि नहीं होती (ııı) **धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त कर** प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित करना चाहिये इसके लिये शिक्षा का प्रसार व अज्ञानता का समापन जरूरी होता है, (ıv) लोगों में **भौतिकवादी दृष्टिकोण** से समृद्धि व उच्च जीवन स्तर की लालसा उत्पन्न करनी चाहिये। (v) धनिकों के **उत्कृष्ट उपभोग** (Conspicuous Consumption) जैसे पाश्चात्य विलासिता पूर्ण जीवन का अनुसरण बहुमूल्य गहनों, प्रदर्शनात्मक अपव्यय, आलीशान कोठियों व भवनों के निर्माण पर नियन्त्रण लगाना चाहिये (vı) **आर्थिक विकास के प्रति रुचि एवं प्रेरणा** उत्पन्न करने की भी आवश्यकता है।

(10) सुदृढ़ एवं स्थिर राष्ट्रीय सरकार (Strong & Stable National Government)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्र राजनैतिक पराधीनता में आर्थिक विकास

करने म असमर्थ रहते हैं क्योंकि विदेशी सरकार अपने हितो क लिए परतन्त्र देश क विकास की बलि देन व उनका शोषण करन मे भी नही हिचकिचाती। अत एसे देशो म लोकप्रिय राष्ट्रीय सरकारो की स्थापना विकास के लिय आवश्यक है। देश की सरकार वाह्य आक्रमणो व आन्तरिक शान्ति एव सुरक्षा बनाय रखने मे काफी सुदृढ व सशक्त होनी चाहिय। सुदृढता क साथ साथ सरकार की स्थिरता भी उतनी ही आवश्यक है। राजनैतिक अस्थिरता क वातावरण म विकास की कल्पना निरर्थक है। आज विश्व के प्राय सभी अर्द्ध विकसित राष्ट्र अपनी विदशी दासता की बडियो से मुक्त होकर अपनी राष्ट्रीय सरकारो के अन्तर्गत विकास की ओर अग्रसर हैं।

(11) प्रशासनिक आवश्यकता (Administrative Requirement)—अर्द्ध विकसित देशो म आर्थिक विकसित कायक्रमो को कार्यान्वित करन क लिए एक सशक्त, कुशल, योग्य एव ईमानदार प्रशासन होना एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि इसके अभाव म आर्थिक विकास की अच्छी स अच्छी याजन एँ भी विफल हो सकती हैं। यह प्रशासन अपने निणयो को लागू करन मे पूणत समर्थ होना चाहिये।

(12) आर्थिक विकास मे जन सहयोग एव रुचि (Public Co-operation & Enthusiasm)—प्रगति क प्रति उदासीन जनता का आर्थिक विकास करना कठिन काय है जबकि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो म जनता भाग्यवादी, अकर्मण्य तथा विकास क प्रति उदासीन रहती है। अत अर्द्ध विकसित देशो म आर्थिक विकास के लिये जनता मे उत्प्रेरण, रुचि एव सहयोग की भावना जागृत करनी चाहिये। इसके लिये लोगो को विकास योजनाओ के निर्माण व कार्यान्वयन के लिये प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप मे सम्मिलित करना चाहिय क्योंकि जन सहयोग आर्थिक विकास का पेट्रोल तथा नियोजन व्यवस्था का चिकना तेल है। यह वह शक्ति है जो सब बातो को सम्भव बनाती है।

(13) विदेशी सहायता एव अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (Foreign Aid and International Co-operation)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो का तीव्र आर्थिक विकास करने म प्रारम्भिक अवस्था म बहुत अधिक विदेशी सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आधारभूत आवश्यकता है क्योंकि अर्द्ध-विकसित दशो मे निधनता के कुचक्र तोडने के लिए विदेशी पूँजी औद्योगिक एव तकनीकी ज्ञान आधुनिक मशीनो व यन्त्रो की आवश्यकता पडती है। यह न केवल पिछडे राष्ट्रो के विकास के लिए जरूरी है वरन् स्थायी विश्व शान्ति एव आत्म-निर्भरता के लिए भी जरूरी है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व्यद्ध के आधार पर न होकर मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिये, शोषण पर आधारित न होकर सहयोग से प्रेरित होना चाहिय। राजनैतिक और आर्थिक बन्धना स मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I M F) विश्व बैंक (World Bank), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I F C) अन्तर्राष्ट्रीय विकास सघ (I D A), एशियन विकास बैंक, भारत सहायता क्लब आदि क माध्यम से वित्तिय सहायता से बन्धनो व शोषण के भय का निराकरण होना है।

(14) विविध (Miscellaneous)—इसके अतिरिक्त अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये देश मे निजी साहसियों को प्रोत्साहन देना चाहिये तथा सरकार का स्वय एक साहसी के रूप मे आधारभूत उद्योगों की स्थापना करनी चाहिये और विकास के लिये *आधारभूत अन्तर-सरचना* (Basic Infrastructure) तैयार करना चाहिये, कर्त्तव्यनिष्ठा एव राष्टीयता की भावना की प्रेरणा राजनैतिक जागृति आदि भी विकास मे योगदान करते है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे मूल्य वृद्धि पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए आवश्यक व्यवस्था होनी चाहिये और मूल्य नीति ऐसी हो जो उत्पादकों को प्रेरणा दे तथा उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के विकास मे अनेक बाधाओं के बावजूद उनके विकास की आधारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति से विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। आज विश्व के प्राय सभी अर्द्ध-विकसित राष्ट्र अपनी राजनैतिक पराधीनता से मुक्त होकर आर्थिक नियोजन के द्वारा अपने आर्थिक विकास के लिए सतत् प्रत्यनशील है। विकसित राष्ट्र व अन्तर्राष्टीय सस्थाओ के द्वारा उन्हे वित्तीय सहायता, पूँजी औद्योगिक ज्ञान व मौद्रिक व राजकोषीय नीतियो मे मार्गदर्शन कर स्थायी विश्व शान्ति एव विश्व समृद्धि का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, भारत मे पिछले 20 25 वर्षों मे विकास इसका परिचायक है। □

4

आर्थिक विकास, निर्धारक तत्व एवं आधारभूत आवश्यकतायें

(ECONOMIC DEVELOPMENTS, ITS DETERMINANTS & BASIC REQUISITES)

आज विश्व के विकसित एव अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे आर्थिक विकास की होड लगी है। मानवीय कारणो से नही वरन् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एव सुरक्षा की दृष्टि से अर्द्ध विकसित राष्ट्रो म व्याप्त निर्धनता व आर्थिक असमानता को समाप्त करने के लिये भी आर्थिक विकास आवश्यक है। विश्व की तीन चौथाई जनसख्या घोर निर्धनता व व्यथा का जीवनयापन करे यह मानव सभ्यता पर सबसे बडा कलक तो है ही पर साथ ही विश्व के किसी जी भाग म निर्धनता अन्यत्र आर्थिक समृद्धि का महान् खतरा है। एक ओर अमेरिका, इगलैण्ड, जापान, रूस तथा अन्य पाश्चात्य विकसित राष्ट्र आर्थिक समृद्धि मे मदहोश हैं दूसरी ओर अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के पिछडे देश, भारत, लका, पाकिस्तान व एशिया के अन्य देश निर्धनता के कुचक्र मे नारकीय जीवन बिता रहे हैं। विश्व के विकसित राष्ट्रो की कुल सख्या 18% जनसख्या विश्व आय का 67% भाग प्राप्त करती है। जबकि अर्द्ध विकसित राष्ट्रो मे विश्व जनसख्या का लगभग 67% विश्व आय का केवल 15% भाग प्राप्त करता है। 1970 मे जहाँ अमेरिका मे प्रति व्यक्ति आय 4760 डालर, कनाडा मे 3700 डालर, पश्चिमी जर्मनी मे 3000 डालर, ब्रिटेन मे 2 70 डालर, जापान मे 1920 डालर, तथा रूस मे 1790 डालर थी वहाँ भारत म प्रति व्यक्ति आय 110 डालर, लका मे 150 डालर चीन मे 160 डालर को न्यूनतम सीमा विकसित राष्ट्रो व अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो की आर्थिक विषमता की गहरी खाई का सकेत देती है। "आर्थिक विकास व विषमता की इस गहरी खाई को पाटना विश्व आय को सभी विकसित एव अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे पुर्नवितरण से सम्भव नही वरन् अल्प विकसित राष्ट्रो के तीव्र विकास मे ही निहित है। अत अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो को अपने तीव्र आर्थिक विकास का दृढ सकल्प करके उसे मूर्त रूप देना है जबकि विकसित राष्ट्रो को इन निधन राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे तन, मन और धन से हर सम्भव सहयोग देना है ताकि समूचे विश्व की समृद्धि से स्थायी विश्व शान्ति एव सहयोग की कल्पना को साकार किया जा सके।" इन सबको समझने के लिये आर्थिक विकास का अर्थ, उसके निर्धारक तत्वो एव विकास की आधारभूत आवश्यकताओ का अध्ययन आवश्यक है।

आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषायें
(Meaning & Definitions of Economic Development)

सामान्यत आर्थिक विकास का अभिप्राय आर्थिक क्षेत्र मे परिवर्तन की उस प्रक्रिया से लगाया जाता है जिसके द्वारा उत्पादन शक्ति, राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे स्थायी वृद्धि होती है। आर्थिक सरचना व देशवासियो के दृष्टिकोण मे परिवर्तनो से जनता के जीवन स्तर म सुधार, वितरण व्यवस्था मे न्याय व मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होता है और अन्तत आर्थिक समृद्धि एवम् भौतिक सुखो की प्राप्ति म वृद्धि होती है। आर्थिक विकास के अर्थ के सम्बन्ध मे विद्वानो के मतो मे एकरूपता नही है। कुछ अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि को ही आर्थिक विकास कहते है जबकि कुछ इसे एक प्रक्रिया मानते है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि होती है। इन दोनो दृष्टिकोणो मे वितरण की अवहेलना की है अत कुछ लोग आर्थिक विकास को व्यापक दृष्टिकोण से देखते है। यह निम्न परिभाषाओ से स्पष्ट होता है—

(A) आर्थिक विकास का अर्थ "वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि है"

प्रो० मेयर एव बाल्डविन के अनुसार, "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि होती है।"[1] इस परिभाषा मे आर्थिक विकास की तीन विशेषतायें मानी है **पहली**, आर्थिक विकास परिवर्तनो की एक प्रक्रिया है। जिसमे अनेक आर्थिक चल राशियो (Variables) म परिवर्तनो का दौर चलता है और इनमे परिवर्तन विकास के कारण और परिणाम होते है। **दूसरी**, आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से है। वास्तविक राष्ट्रीय आय का आशय आधार वर्ष की तुलना मे मूल्य-स्तर मे हुये परिवर्तनो के समायोजन के बाद शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद से है, **तीसरी**, अर्थव्यवस्था की वास्तविक 'राष्ट्रीय आय मे वृद्धि दीर्घकालीन होती है। अल्पकाल मे राष्ट्रीय आय म अस्थाई वृद्धि को आर्थिक विकास नही कहा जाता क्योकि आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन स्थायी वृद्धि से होता है जो प्राय 10 से 20 वर्ष होती है।

यह परिभाषा एक **पक्षीय एव अपूर्ण** है क्योकि इस परिभाषा मे न तो देश के 'आकार व जनसख्या की मात्रा' पर ध्यान दिया गया है और न **वितरण पक्ष** पर ध्यान दिया है जबकि आर्थिक विकास का सम्बन्ध केवल अधिक उत्पादन से ही नही वरन् अधिक उत्पादन के न्यायोचित वितरण से भी सम्बन्धित होना है।

---

1 Economic Development is a process whereby an economy's real national income increases over a long period of time "
Meir & Baldwin Economic Development—p 3

(B) आर्थिक विकास का अर्थ "प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में वृद्धि है"

इस मत के अनुयायी अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को कुल राष्ट्रीय आय म वृद्धि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। यह दृष्टिकोण जनसख्या के आधार को भी ध्यान मे रखकर चलता है जो अधिक व्यवहारिक है। **प्रो० डब्ल्यू० ए० लेविस** (W A Lewis) के अनुसार "आर्थिक विकास का अभिप्राय प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि से है।" इसी प्रकार **प्रो० बेरन** के शब्दो मे 'आर्थिक विकास या वृद्धि को निश्चित समय मे प्रति व्यक्ति भौतिक वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे परिभाषित किया जाना चाहिये।"

प्रो० विलियमसन एव बटरिक (Williamson & Buttrick) के अनुसार "आर्थिक विकास या वृद्धि का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश या क्षेत्र के लोग उपलब्ध साधनो का उपयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओ व सेवाओ के उत्पादन मे स्थिर वृद्धि के लिये करते हैं।" इन सब परिभाषाओ मे भी न्यायोचित वितरण की उपेक्षा की गई है।

(C) आर्थिक विकास का अर्थ "मानव के अधिकतम आर्थिक कल्याण व सर्वांगीण विकास हैं"

आधुनिक अर्थशास्त्री उपर्युक्त दोनो दृष्टिकोणो को सकीर्ण बताते हैं और एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार "आर्थिक विकास का आशय केवल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से ही नही वरन् राष्ट्रीय आय के न्यायोचित वितरण, अर्थव्यवस्था की सरचना व देशवासियो की मान्यता व दृष्टिकोणो के अनुकूल परिवर्तनो की प्रक्रिया है ताकि जनता के जीवन स्तर मे सुधार, अधिकतम सामाजिक कल्याण व मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो। इस व्यापक दृष्टिकोण से प्रेरित सयुक्त राष्ट्र सघ प्रतिवेदन की परिभाषा उल्लेखनीय है 'विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओ से ही नही अपितु उसके जीवन की सामाजिक दशाओ के सुधार से भी सम्बन्धित है। अत विकास न केवल आर्थिक वृद्धि ही है किन्तु आर्थिक वृद्धि और सामाजिक, सास्कृतिक, सस्थागत तथा आर्थिक परिवतनो का योग है।"

यद्यपि व्यापक दृष्टिकोण पर आधारित यह परिभाषा सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत उपयुक्त लगती है पर उपर्युक्त सामाजिक, साँस्कृतिक एव सस्थागत परिवर्तनो का मापना कठिन है अत विकास दर की व्याख्या मे मूल्य निर्णय (Value Judgement) सम्भव नही हो पाता यही कारण है कि अधिकाश अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से व्यक्त करते हैं।

आर्थिक विकास, आर्थिक प्रगति और वृद्धि (उन्नति) मे अन्तर

(Difference Between Economic Development, Econoumic Progress& Economic Growth)

यद्यपि सामान्यत आर्थिक विकास, आर्थिक प्रगति एव आर्थिक वृद्धि परस्पर एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं पर कुछ विद्वानो ने इनमे भेद करने का

प्रयास किया है। श्रीमति उर्सला हिक्स (Mrs Ursela Hicks) के अनुसार **आर्थिक वृद्धि या आर्थिक उन्नति** (Economic Growth) शब्द का प्रयोग उन देशो के लिये किया जाता है जो आर्थिक दृष्टि से उन्नत है और अधिकांश साधन ज्ञात एव विकसित है जबकि **आर्थिक विकास** (Economic Development) शब्द का प्रयोग उन पिछड़े देशो के लिये किया जाता है जहाँ अधिकाश प्राकृतिक एव मानवीय साधन अशोषित एव अर्द्ध-विकसित है तथा जिनमे साधनो के उपयोग व विकास की काफी सम्भावनाये है।

प्रो० बोने (Bonne) के मतानुसार **आर्थिक उन्नति** (Economic Growth) की प्रगति स्वत (Spontaneous) होती है जो प्राय विकसित राष्ट्रो मे सत्य उतरती है जबकि **आर्थिक विकास** (*Economic Development*) अर्थव्यवस्था मे साधनो के विदोहन म निर्देशन नियमन व पथ-प्रदर्शन को मुख्य आधार मानता है जो अधिकाश अर्द्ध-विकसित देशो के सम्बन्ध मे सत्य है।

प्रो० शुम्पीटर (Schumpeter) के अनुसार "**आर्थिक वृद्धि या उन्नति** (*Economic Growth*) का अभिप्राय अर्थव्यवस्था मे दीर्घकाल मे होने वाले क्रमिक एव स्थिर परिवर्तनो से है जो जनसख्या व बचत दरो मे परिवर्तन से उत्पन्न होता है जबकि **आर्थिक विकास** (Economic Development) का आशय स्थिर अर्थ-व्यवस्थाओ मे असगत (रुक-रुक कर) एव स्वाभाविक परिवर्तनो से है जिसमे नवीन उत्पादन पद्धतियो, नवीन उत्पादन साधनो के प्रयोग से नवीन वस्तुओ व सेवाओ का उत्पादन होता है।'

प्रो० बरेरी के अनुसार 'आर्थिक वृद्धि या उन्नति का आशय जनसख्या व कुल वास्तविक आय (Total Real Income) दोनो मे वृद्धि से है जब **आर्थिक प्रगति** (Economic Progress) का अभिप्राय **प्रति व्यक्ति आय** (*Per Capita Income*) म वृद्धि से है।'

आधुनिक शब्दावली मे "आर्थिक विकास (Economic Development) शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ मे मानव के सर्वाङ्गीण विकास के सन्दर्भ मे किया जाता है जिसमे केवल मानव की आर्थिक उन्नति ही नही वरन् मानव की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एव राजनैतिक सभी क्षेत्रो मे प्रगति का समावेश होता है जबकि आर्थिक उन्नति (Economic *Growth*) शब्द का प्रयोग केवल मानव की आर्थिक उन्नति के सन्दर्भ मे ही किया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण का व्यवहार मे विशेष महत्व नही है क्योकि इन शब्दो का पर्यायवाची के रूप मे प्रयोग किया जाता है।"

आर्थिक विकास का माप-दण्ड

(Measurements of Economic Development)

जहाँ प्राचीन अर्थशास्त्रियो मे वाणिज्यवादी सोना-चाँदी के कोष मे वृद्धि को आर्थिक विकास का माप-दण्ड मानते थे वहाँ एडम स्मिथ उत्पादन वृद्धि को आर्थिक

विकास मानता था। कार्ल मार्क्स ने सहकारिता की वृद्धि को विकास की सज्ञा दी है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक विकास को मापने मे निम्न घटको को आधार माप-दण्ड मानते हैं—

(1) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि (Increase in National Income)—बहुत से विद्वान राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि को आर्थिक विकास का माप-दण्ड मानते हैं पर केवल यही आधार अपूर्ण एव भ्रमात्मक हो सकता है क्योकि यदि जनसख्या मे वृद्धि की दर विकास दर से अधिक हो या राष्ट्रीय आय की गणना मे आधार मूल्यों व वर्तमान प्रचलित मूल्यो मे अन्तर हो तो सही-सही निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। जैसे जनसख्या मे 5% वृद्धि हो जबकि राष्ट्रीय आय मे केवल 3% वृद्धि हो तो यह आर्थिक विकास न होकर आर्थिक विमन्दन का परिचायक है। इसलिये राष्ट्रीय आय मे वृद्धि को जनसख्या के परिप्रेक्ष्य मे देखना तथा मूल्यो मे परिवर्तनो के अनुरूप समायोजन से वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि (Increase in Raal National Income) तथा राष्ट्रीय आय के न्यायोचित वितरण के आधार पर देखना अधिक उपयुक्त है। स्वय यगमैन ने इस मापदण्ड की पूर्णता का उल्लेख करते हुय लिखा है "मूल्य परिवतन के प्रभाव को सुधार लेने पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि को निरपक्ष रूप से आर्थिक प्रगति का सूचक मानना असम्भव है।" अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों मे तो कुछ वास्तविक राष्ट्रीय आय को मापने मे कई कठिनाइया होती है अत उनसे इसे आर्थिक विकास का माप दण्ड मानना उपयुक्त नही कहा जा सकता।

(2) प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि (Increase in Per Capita Income)—कुछ विद्वान कुल वास्तविक आय की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि को आर्थिक विकास का उचित मापदण्ड मानते हैं क्योकि यह राष्ट्रीय आय को जनसख्या के सन्दर्भ मे देखती है। पिछड़े राष्ट्रो मे जहाँ जनसख्या मे तीव्रगति से वृद्धि होती है और वहा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से ही उन्हे निर्धनता से मुक्ति मिल सकती है। प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि आर्थिक विकास का सूचक है जबकि प्रति व्यक्ति आय मे कमी आर्थिक पतन का सकेत है। पर यह आधार भी अपूर्ण, एक पक्षीय एव भ्रमात्मक है क्योंकि—(i) यह केवल आर्थिक पहलू पर ध्यान देती है। (ii) इसमे आय की न्यायोचित वितरण व्यवस्था पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। (iii) राष्ट्रीय आय के आकडे विश्वसनीय न होने पर प्रति व्यक्ति आय की गणना भी त्रुटिपूर्ण होगी। (iv) आर्थिक विकास के अविभाज्य भाग मानव की सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनैतिक प्रगति की इस गणना मे उपेक्षा की जाती है।

(3) वास्तविक विकास दर का सामान्य दर से अधिक होना (Actual Growth Rate V/s General Growth Rate)—जब किसी देश मे वास्तविक दर विश्व की सामान्य दरो से अधिक होती है तो उसमे आर्थिक विकास की गति अधिक मानी जाती है जबकि वास्तविक विकास दर से कम होती है तो अर्थ-व्यवस्था

को अर्द्ध-विकसित एव स्थिर मानते हैं। यह माप-दण्ड भी अनुपयुक्त है क्योंकि सामान्य समय, स्थान एव परिस्थितियो के अनुसार स्वय परिवर्तनशील है अत इसे आर्थिक विकास का सही माप दण्ड नही कहा जा सकता।

(4) **राष्ट्रीय आय की वितरण व्यवस्था मे सुधार** (Reforms in distribution of National Income)—इसके अन्तर्गत विद्वानो की यह मान्यता है कि प्रति व्यक्ति आय तथा कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि को ही आर्थिक विकास का माप-दण्ड मानना उपयुक्त नही क्योंकि इसमे वितरण पक्ष पर कोई ध्यान नही दिया जाता। यदि बढी हुई कुल वास्तविक आय का एक बडा भाग केवल कतिपय धनवानो के हाथो मे केन्द्रित हो जाये तो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के बावजूद भी देश मे दरिद्रता व्याप्त रहेगी जैसा भारत मे पिछले 23-24 वर्षों मे हुआ है। दरिद्र और अधिक दरिद्र हुये है जबकि कतिपय अमीरो की समृद्धि मे अपार वृद्धि हुई है अत अगर राष्ट्रीय आय म पर्याप्त वृद्धि के साथ-साथ उसके न्यायोचित वितरण मे सबको पर्याप्त आय प्राप्त हो सके तो इसे आर्थिक विकास का सूचक कहा जा सकता है।

(5) **मानव कल्याण मे वृद्धि** (*Increase in Human Welfare*)—यद्यपि आर्थिक विकास को मापने के लिये मानव कल्याण मे वृद्धि का दृष्टिकोण अपनाना सैद्धान्तिक दृष्टि से उपयुक्त है क्योंकि आर्थिक विकास का लक्ष्य अन्तत मानव कल्याण मे वृद्धि करना ही है। मानव कल्याण के माप के लिये समाज मे प्रति व्यक्ति उपभोग तथा जीवन स्तर की वृद्धि को आधार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त जन्म के समय जीवन आशा अधिक ऊँची होना भी आर्थिक विकास का परिचायक है। पर यह माप-दण्ड अवैज्ञानिक एव अस्पष्ट है न तो जीवन स्तरो और न प्रति व्यक्ति उपभोग को ठीक-ठीक ज्ञात करना सम्भव है और न जीवन आशा को आधार मानना ही विश्वसनीय है।

(6) **व्यावसायिक सरचना मे परिवर्तन** (Changes in Occupational Structure)—जब कृषि प्रधान देश औद्योगीकरण की ओर अग्रसर होता है तो यह आर्थिक विकास का परिचायक है। अर्द्ध विकसित राष्ट्र जिनम प्राथमिक उद्योगो (Primary Industries) जिनके अन्तर्गत कृषि पशुपालन, मत्स्यपालन, खनिज, खनन, वनो से आय आदि को प्रधानता होती है। देश की 50 से 90% जनसख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन उद्योगो से अपना जीविकोपार्जन करती है—मगर व्यावसायिक ढाँचे मे अनुकूल परिवर्तन के कारण उद्योगो, निर्माण कार्यों परिवहन, सचार एव लोकोपयोगी सेवाओ के उद्योगो का बोलबाला होता है और जनसख्या का वितरण इसके पक्ष म बढ़ता है तो यह आर्थिक विकास का मापदण्ड माना जाता है।

(6) **विविध**—उपर्युक्त मापदण्डो के अतिरिक्त सकीर्ण दृष्टिकोण पर आधारित आर्थिक विकास के मापदण्ड हैं—(1) औद्योगीकरण, (2) सार्वजनिक क्षेत्र

का विस्तार, (3) पूंजी निर्माण दर मे वृद्धि, (4) आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो का विकास, (5) लोहे का प्रति व्यक्ति उपभोग, (6) शक्ति तथा ऊर्जा शक्ति का प्रति व्यक्ति उपभोग आदि-आदि। कार्ल मार्क्स तथा एंजिल्स ने उत्पादन तकनीक मे क्रान्तिकारी प्रगति को ही आर्थिक विकास की सज्ञा दी है।

आर्थिक विकास की अवस्थाए
(Stages of Economic Development)

प्राय किसी देश का आर्थिक विकास ऐतिहासिक क्रम मे अलग-अलग अवस्थाओ से गुजर कर ही उच्चस्तरीय उपभोग अवस्था मे पहुचता है। जहाँ जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट (F. List) ने अर्थव्यवस्था मे व्यवसायो की प्रधानता के क्रम के आधार पर आर्थिक विकास की पांच अवस्थाएँ—(i) आखेट अवस्था (ii) पशु पालन अवस्था (iii) कृषि अवस्था (iv) औद्योगिक अवस्था तथा (v) सामान्य अवस्था बताई है वहाँ प्रो० कोलिन क्लाक ने आर्थिक विकास की तीन क्रमिक अवस्थाए बताई हैं। पहली प्राथमिक अवस्था (Primary Stage) जिसमे लोग पिछड़ी अवस्था मे होते हैं और उनका प्रमुख व्यवसाय कृषि, पशुपालन, मछली पालन, खनिज खोदना, व वनो से जीविकोपार्जन करना होता है। जनसख्या का बहुत बडा भाग उन पर आश्रित होता है। दूसरी द्वितीयक अवस्था (Secondary Stage) होती है जिसमे निर्माणकारी उद्योगो खनिज प्रयोग उद्योगो आदि का पर्याप्त विकास हो जाता है। अर्थ व्यवस्था मे पर्याप्त औद्योगीकरण के कारण कृषि व प्राथमिक उद्योगो मे नियोजित जनसख्या कम होती है तथा देश की अधिकाश जनसख्या उद्योगो से जीविकोपर्जन करती है। तीसरी तृतीयक अवस्था (Tertiary Stage) यह आर्थिक विकास की वह अन्तिम अवस्था है जबकि देश का पर्याप्त विकास हो जाने से सेवा क्षेत्रो मे परिवहन, सचार, बैंकिंग एव लोकोपयोगी सेवाएँ उपलब्ध होती हैं। प्रो० रस्टोव (W W. Rostow) ने अपने विशेष अध्ययन के आधार पर आर्थिक विकास की पांच प्रमुख अवस्थाओ का उल्लेख किया है जिनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) परम्परागत समाज की अवस्था (Stage of Traditional Society)—यह आर्थिक विकास की वह प्रारम्भिक अवस्था है जिसमे रूढिवादी समाज सीमित प्राथमिक उद्योगो—कृषि, पशुपालन, मछली पालन और वनो आदि मे परम्परागत उत्पादन पद्धतियो से कार्य करते हैं। आविष्कारों व नवीन विधियो के प्रयासो व पहल का अभाव होता है। उत्पादकता का नीचा स्तर होने से आय उपभोग व बचतो का स्तर भी बहुत नीचा होता है। अधिकाश जनसख्या प्राथमिक उद्योगो से ही जीविकोपार्जन करती है। उद्योग, व्यापार तथा सेवाओ का नितान्त अभाव होता है। यत्र-तत्र कुछ विकास के अतिरिक्त सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था दुर्बल और अविकसित अवस्था मे होती है और लोग बहुत दरिद्र एव उनका जीवनस्तर बहुत नीचा होता है। ऐसे समाज मे भू-स्वामी राजनैतिक व आर्थिक सत्ता हथिया लेते है।

(2) स्वय-स्फूर्त या छलांग लेने की पूर्व दशाओं की अवस्था (Stage of Pre-conditions of Take-off)—यह आर्थिक विकासक्रम की दूसरी ऐसी सक्रमण अवस्था है जिसम स्वय स्फूर्त अवस्था के लिए आवश्यक दशाओ व आधार परिस्थितियो का निर्माण होता है। प्रो रोस्टोव के अनुसार इस अवस्था मे "समाज के दृष्टिकोण मे आधारभूत व प्रयोगिक विज्ञान के प्रति, उत्पादन-कला म परिवर्तन के प्रति, जोखिम उठाने, काय के तरीको व दशाओ के प्रति क्रान्तिकारी परिवतन आवश्यक है।" इस अवस्था मे कृषि म क्रान्ति से भावी औद्योगिक विकास का सुदृढ आधार तैयार होता है, विनियोग की दर 5% से बढकर 10% हो जाती है। सामाजिक ऊपरी पूंजी के अन्तर्गत परिवहन, सचार, विद्युत, तकनीकी शिक्षा, औद्योगिक प्रशिक्षण तथा चिकित्सा सुविधाओ का विस्तार होता है। यह वह अवस्था है जिसमे शनै शनै रूढिवादी एव भाग्यवादी समाज मे प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव होता है और समाज स्वय स्फूर्त अवस्था के मार्ग पर अग्रसर होता है।

(3) *स्वय स्फूर्त या छलांग स्तर की अवस्था* (Take off Stage)–प्रो रोस्टोव के अनुसार यह आर्थिक विकास की एक ऐसी महत्वपूर्ण अवस्था है जिसमे विकास स्वयनिमात एव आत्म प्रेरित होता है बिना बाह्य सहायता के भी आन्तरिक साधनो के प्रयोग से विकास सामान्य एव नियमित रूप से होने लगता है। प्रो० रोस्टोव के शब्दो म 'यह एक ऐसा सक्रमणकाल है जिसमे विनियोग की दर इस प्रकार बढती है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन बढ जाता है और यह प्रारम्भिक वृद्धि उत्पादन-कला की क्रान्तिकारी विधियो को जन्म देती है, आय बढती है और आय मे वृद्धि से विनियोग के नय आकार की शुरुआत होती है। परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि की भी नवीन प्रवृत्तियो का सूत्रपात होता है।" इस अवस्था मे तीन शर्तें पूरी होती है। (i) *विनियोग की दर राष्ट्रीय आय की 10% या इससे अधिक होनी है* (ii) निर्माणकारी उद्योगो की विविधता तथा उच्च उत्पादकता का विकास होता है तथा (iii) अर्थ-व्यवस्था म एक ऐसे सस्थागत ढाचे का निर्माण होता है कि आन्तरिक साधनो से ही पूंजी निर्माण की उच्च क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

ब्रिटेन ने यह अवस्था 1783–1802 म प्राप्त की थी, अमेरिका न 1843–1860, जापान ने 1878–1900, रूस न 1890–1914 मे भारत व चीन ने 1952 मे प्राप्त की था।

(4) परिपक्वता की दिशा मे कदम (Stage of Drive to Maturity)—स्वय-स्फूर्त अवस्था के बाद परिपक्वता की अवस्था आती है "जब अर्थव्यवस्था के विकास, विदोहन एव सरक्षण के लिय आधुनिकतम तकनीकी एव औद्योगिक जानकारी का बडे पैमाने पर प्रयोग होता है।' अर्थ-व्यवस्था मे विनियोग की दर बढकर राष्ट्रीय आय का 20% या इससे अधिक हो जाता है। उद्योगो मे विविधता आती है, इन्जीनियरिंग, लोहा-इस्पात, रसायन, जहाज, विद्युत-यन्त्र तथा अन्य आधारभूत

उद्योगों की प्रधानता के साथ-साथ उपभोग उद्योगों का विस्तृत आधार होता है। परिपक्वता की अवस्था में प्रायः तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं (i) जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग तकनीकी एवं कुशल श्रम के रूप में उद्योगों से आय अर्जित करता है। कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो जाता है। (ii) देश प्रायः आत्म-निर्भर हो जाता है तथा (iii) अर्थव्यवस्था में आय, विनियोग व बचत तथा उपभोग का स्तर ऊँचा हो जाने से आर्थिक सम्पन्नता व सुदृढ़ता का मार्ग प्रशस्त होता है।

(5) उच्चस्तरीय उपभोग की अवस्था (The Stage of High Mass Consumption)—यह आर्थिक विकास की उच्चतम अवस्था है जिसमें देश की उत्पादक गतिविधियाँ अपनी चरम सीमा पर होती हैं। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति सामान्य उपभोग की वस्तुओं के अतिरिक्त उच्चतम एवं विशिष्ट वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग का प्रयास करता है। विलासिता की वस्तुयें सामान्य आवश्यक वस्तुओं के रूप में उपभोग की जाने लगती है जैसे कारें, टेलीविजन, कपड़े धोने की मशीनें, रेफ्रीजरेटर, एयरकन्डीशनर आदि महंगी वस्तुओं की माग धनी व्यक्तियों तक ही सीमित न होकर सामान्य जनता की माग मे परिणत हो जाती है। औद्योगिक विकास इस स्तर पर पहुच जाता है कि सुधार व नवीनता की गुंजाइश न रहते हुए भी अनुसंधान एवं परीक्षणों का क्रम चलता रहता है। प्रो० रोस्टोव के मतानुसार अमेरिका 1920 मे, ब्रिटेन 1930 मे तथा रूस, जापान व पश्चिमी यूरोप के देश 1950 के बाद इस अवस्था मे पहुच गये हैं।

भारत आर्थिक विकास की किस अवस्था मे ?

प्रो० रोस्टोव द्वारा वर्णित आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य मे देखने से पता लगता है कि विश्व के समृद्ध राष्ट्र अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, रूस, ब्रिटेन, फ्राँस व जापान आर्थिक विकास की उच्चस्तरीय अवस्था मे पहुच चुके है जबकि विकासशील राष्ट्रों मे कुछ परिपक्वता की अवस्था मे पहुच रहे है तो कुछ अभी स्वय-स्फूर्त अवस्था मे ही चल रहे है। इस सन्दर्भ मे देखने से जहाँ प्रो० रोस्टोव के अनुसार भारत 1952 मे ही स्वय-स्फूर्त अवस्था मे पहुच चुका था वहा वास्तविक तथ्य उसे विवादास्पद बना देते हैं।

(1) परम्परागत रूढ़िवादी दृष्टिकोण—भारत मे अभी भी जनसंख्या का लगभग 71% भाग अशिक्षित है, स्त्रियों म तो साक्षरता का प्रतिशत बहुत ही कम लगभग 19% है। तकनीकी ज्ञान का अभाव है, उत्पादन की परम्परागत विधियों की प्रधानता है। लोग भाग्यवादी एवं रूढ़िवादी है। यह प्रत्यक्ष है प्रमाण की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

(2) विनिमय की दर कम—प्रो० रोस्टोव के अनुसार स्वय-स्फूर्त अर्थव्यवस्था में विनियोग की दर राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत से अधिक होती है। भारत में यद्यपि चतुर्थ योजना के अन्त तक विनियोग की दर 14% तक पहुच गई है पर आन्तरिक

बचतें राष्ट्रीय आय के करीबन 11·12 प्रतिशत ही हैं। पांचवी पंचवर्षीय योजना मे भी लगभग 3 हजार करोड रुपये की विदेशी सहायता अनुभव की जा रही है। अतः हमारी अर्थव्यवस्था बिना विदेशी सहायता के अब भी तीव्र गति से आर्थिक विकास की क्षमता प्राप्त नही कर पाई है।

(3) **कृषि पर जनसंख्या का अत्यधिक भार**—स्वय-स्फूर्त अवस्था मे औद्योगिक क्षेत्र मे विविधता तथा तीव्र विकास से कुशल एव तकनीकी श्रमिको की संख्या बढ़ती है। कृषि पर जनसख्या का भार कम होता है और जनसख्या का बहुत बडा भाग उद्योगो से जीविका अर्जन करता है पर भारत मे अब भी जनसख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है, उद्योगो व निर्माणकारी उद्योगो मे जनसख्या का केवल 12 से 15 प्रतिशत भाग नियोजित है, अब भी देश की 81 प्रतिशत जनसख्या ग्रामीण जनसख्या है जबकि केवल 18 प्रतिशत जनसख्या ही नगरो मे रहती है।

(4) **राजनैतिक अस्थिरता**—भारत मे योजनाबद्ध विकास के 25 वर्षों के सतत् प्रयत्नो के बावजूद भी अर्थव्यवस्था आर्थिक सकटो, खाद्यान्न के अभाव, प्राकृतिक प्रकोपो व विदेशी विनिमय के सकटो से ग्रस्त है। अकुशल प्रशासन, व्यापक भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि के कारण न तो आर्थिक स्थिरता है और न राजनैतिक स्थायित्व ही।

(5) **औद्योगीकरण की धीमी गति**—योजनाबद्ध विकास के 25 वर्षों मे यद्यपि मूलभूत उद्योगो का सुदृढ व व्यापक आधार तैयार किया है। देश मे उद्योगो मे विविधता आई है पर फिर भी उद्योगो के विकास की दर अपेक्षाकृत धीमी है। जहाँ 1969-74 की चौथी योजना मे औद्योगिक विकास की दर 8-10% का लक्ष्य था पर वास्तविक उपलब्धि 4 5% रही है। अनेक उपभोग उद्योगो मे पुरातन घिसी-पिटी मशीनो का प्रयोग हो रहा है। आधुनिकतम यन्त्रो व उच्चतम प्रौद्योगिक ज्ञान का नितान्त अभाव हमारे सामने महान सकट का कारण है।

(6) **राष्ट्रीय विकास दर भी बहुत कम रही है**—यद्यपि पांचवी योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय मे 5% वृद्धि का था पर वास्तविक उपलब्धियाँ निराशाजनक रही है। 1972-73 मे विकास की दर 1% थी जबकि 1977-78 मे विकास की औसत दर 3·9% से अधिक नही थी। भारत मे प्रति व्यक्ति आय का स्तर भी बहुत नीचा है। जहाँ अमेरिका मे 1970 मे प्रति व्यक्ति आय 4760 डालर थी वहा भारत मे यह 110 डालर थी। अर्थात् दोनो की प्रति व्यक्ति आय मे लगभग 42 गुना अन्तर है।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि भारत अब तक स्वय-स्फूर्त अवस्था को प्राप्त नही कर पाया है यह प्रारम्भिक दो अवस्थाओ को पार कर चुका है पर तीसरी अवस्था मे गोते लगा रहा है। इसके लिये श्रम,

निष्ठा, प्रगतिशील दृष्टिकोण व सशक्त कुशल एव ईमानदार प्रशासन के साथ साथ जन सहयोग एव उत्प्रेरणाओ पर आर्थिक नियोजन की सफलता व तीव्र आर्थिक विकास को सम्भव बनाना है।

आर्थिक विकास का महत्व
(Importance of Economic Development)

विश्व मे निर्धनता के निराकरण व आर्थिक विषमताओ के समापन का एक मात्र विकल्प आर्थिक विकास ही है और इसके द्वारा ही मानव का सर्वागीण विकास सम्भव होता है। आर्थिक विकास से न केवल मानव की आर्थिक समृद्धि व सम्पन्नता सम्भव होती है वरन् अर्थ-व्यवस्था मे सामाजिक एव सास्कृतिक उत्थान, राजनैतिक स्थिरता और जनता के लिये विविधतापूर्ण जीवन का मार्ग प्रशस्त होता है।

(1) प्राकृतिक साधनों का विदोहन—आर्थिक विकास के कारण देश मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो का तेजी से विदोहन होने लगता है और उनके विदोहन से लोगो की आय, रोजगार तथा उत्पादकता मे वृद्धि होती है। कृषि, उद्योग एव अन्य क्षेत्रो मे भी विकास होता है।

(2) औद्योगीकरण—आर्थिक विकास के कारण देश मे आधारभूत उद्योगो के साथ-साथ उपभोग उद्योगो का भी तेजी से विकास होता है। सन्तुलित विकास की दृष्टि से लघु एव कुटीर उद्योगो को भी विकसित किया जाता है। इस प्रकार तीव्र औद्योगिक विकास के साथ-साथ उद्योगो मे विविधता, विशिष्टीकरण, बडे पैमाने की उत्पत्ति एव श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि—देश के प्राकृतिक साधनो के विदोहन, औद्योगीकरण, रोजगार अवसरो मे वृद्धि तथा तीव्र पूँजी-निर्माण से राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होती है जो अन्तत. आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है।

(4) पूँजी निर्माण एवं विनियोग दर मे वृद्धि—आर्थिक विकास के परिणाम स्वरूप बचत व पूँजी-निर्माण मे वृद्धि होती है। नये-नये उद्योगो की स्थापना होती है, उत्पादन की नवीन् विधियाँ अपनायी जाती हैं। उसके लिये अधिकाधिक विनियोग किया जाता है। लोगो की बढी हुई माग की पूर्ति के लिय उत्पादन वृद्धि भी अधिक विनियोग से सम्भव होती है।

(5) मानवीय साधनों का सदुपयोग—आर्थिक विकास से रोजगार अवसरो मे वृद्धि होती है अत न केवल बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी का समापन होता है वरन् नये रोजगार व रोजगार प्राप्त व्यक्तियो को रोजगार के चुनाव के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते है। रुचि के अनुसार कार्य के चुनाव से श्रम की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है तथा मानव शक्ति साधनो का यथासम्भव सदुपयोग होता है।

(6) संतुलित अर्थ-व्यवस्था—आर्थिक विकास देश म कृषि के साथ-साथ उद्योगो का विकास करता है। कृषि से जनसख्या का भार उद्योगो की ओर स्था-

नान्तरित होता है। अर्थ व्यवस्था का विकास एकाकी न रहकर विविधतापूर्ण होता है। अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो का सन्तुलित विकास होने से आर्थिक सकटो से मुक्ति मिलती है।

(7) सामाजिक सेवाओ का विस्तार—आर्थिक विकास का कारण अर्थव्यवस्था मे शिक्षा चिकित्सा एव स्वास्थ्य तथा अन्य सामाजिक सेवाओ का तेजी से विकास होता है। मनोरजन के साधनो मे वृद्धि होती है अत अर्थव्यवस्था मे विवेकशील, स्वस्थ जनसख्या की वृद्धि होती है, उनकी औसत आयु बढती है तथा मृत्यु दर घटती है।

(8) उच्च जीवन स्तर—अर्थव्यवस्था के सर्वाङ्गीण विकास उत्पादन मे विविधता तथा अधिकतम वितरण मे समानता व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के कारण जनता को उपभोग के लिये अधिकाधिक वस्तुयें व सेवाये उपलब्ध होती है और उनका जीवन स्तर निरन्तर ऊँचा होता जाता है।

(9) शाति एवं सुरक्षा को बढावा—आर्थिक विकास से देश की बाह्य आक्रमणो से सुरक्षा क्षमता बढती है तथा देश मे पर्याप्त उत्पादन एव उसके समुचित वितरण से आन्तरिक शान्ति बनी रहती है। यही नही सभी देशो मे आर्थिक विकास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का भी मार्ग प्रशस्त होता है क्योंकि विश्व के किसी भी भाग म गरीबी अन्यत्र समृद्धि को निरन्तर खतरा है।

(10) निर्धनता के कुचक्र को तोडना–निर्धनता के कुचक्र को तोडना भी आर्थिक विकास द्वारा सम्भव होता हैं क्योंकि प्राकृतिक साधनो के विदोहन औद्योगीकरण व रोजगार अवसरो मे वृद्धि से राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होती है। उपभोग व बचत मे वृद्धि से विनियोग, उत्पादन व पूंजी-निर्माण में वृद्धि होती है अत निर्धनता के निराकरण की व्यवस्था उत्पन्न होती है।

(11) सामाजिक सुरक्षा एव स्वतन्त्रता—आर्थिक विकास से प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि व आर्थिक समानता समाज को बेरोजगारी, वृद्धावस्था बीमारी, दुर्घटना व मृत्यु आदि पाँच सकटो से मुक्ति प्रदान करती है। व्यक्तियो को आर्थिक समृद्धि मे स्वतन्त्रता का आभास होता है। मशीनो के अधिकाधिक उपयोग से अधिक आराम मिलता है।

आर्थिक विकास के सम्भावित दोष

आर्थिक विकास यद्यपि समृद्धि व सम्पन्नता का मार्ग प्रशस्त करता है परन्तु यह विकास अनियोजित व अत्यधिक भौतिकतावादी होने पर मानव के सर्वाङ्गीण विकास म बाधा भी बन जाता है। (1) बडे पैमाने की उत्पत्ति में व्यक्तिगत रुचियो की उपेक्षा की जाती है। (2) कुटीर एव लघु उद्योगो के पतन पर बडे उद्योग पनपते हैं। मनुष्य मशीनो का दास बन जाता है। (3) विशिष्टीकरण व श्रम विभाजन से कार्य मे नीरसता बढती है। (4) अत्यधिक औद्योगीकरण मे उद्योगो के केन्द्रीकरण से गन्दी बस्तियो का निर्माण। (5) पूंजी व श्रम मे वैमनस्य और

(6) शोषण को बढ़ावा मिलता है। (7) धन का असमान वितरण होता है जिससे (8) वर्ग-संघर्ष का प्रादुर्भाव होता है। अत्याधिक आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण से प्रेरित होकर (9) एकाधिकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जाता है और सर्वत्र भौतिकवादी दृष्टिकोण से (10) अनेक अनैतिक कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है। आर्थिक उत्थान मे नैतिक पतन की प्रवृत्तिता पनपती है। (11) आध्यात्मिकता की भावना को ठेस पहुचती है और व्यक्ति नास्तिकता की ओर बढ़ता है।

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व, घटक या कारक
(Determinants or Factors of Economic Growth)

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वो के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे मतैक्य का अभाव है। जहाँ प्रो० नर्कसे तथा राइट ने आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वो मे *गैर-आर्थिक तत्वो को प्रधानता दी है वहाँ* **प्रो०** *रोस्टोव तथा स्पेंगलर आदि ने* आर्थिक तत्वो को विशेष महत्वपूर्ण माना है। प्रो० नर्कसे (Nurkse) के अनुसार आर्थिक विकास बहुत कुछ सामाजिक भावनाओं, राजनैतिक दशाओ, मानवीय योग्यताओ व ऐतिहासिक घटनाओ पर निर्भर करता है। इसी प्रकार डेविड एम राईट *(D M Wright) के अनुसार आर्थिक विकास के आधार तत्व अभौतिक एव गैर* आर्थिक हैं। इसके विपरीत प्रो० रोस्टोव (Rostow) के शब्दो मे "आर्थिक विकास पूंजी व श्रम की मात्रा एव स्वरूप पर निर्भर करता है" और इन दो तत्वो पर छ: प्रवृत्तियो (Propensities) का प्रभाव पडता है—(i) आधारभूत विज्ञान के विकास की प्रवृत्ति, (ii) विज्ञान के आर्थिक कार्यों मे प्रयोग की प्रवृत्ति, (iii) तकनीकी **प्रवर्तनों की प्रवृत्ति, (iv) भौतिक उत्थान की प्रवृत्ति,** (v) उपभोग की प्रवृत्ति तथा (vi) सन्तानोत्पत्ति की प्रवृत्ति। इसी प्रकार प्रो० स्पेंगलर (Spengler) ने भी आर्थिक विकास के 19 तत्वों का उल्लेख किया है। विभिन्न विद्वानो के विचार मन्थन के बाद आर्थिक विकास के प्रमुख तत्वो का वर्गीकरण निम्न तालिका मे दिया जा सकता है—

इन तत्वों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) **प्राकृतिक साधन (Natural Resources)**—प्राकृतिक साधन आर्थिक विकास के आधारभूत कारक हैं। प्रो० लेविस के अनुसार "प्राकृतिक साधन विकास का मार्ग एवं दिशा निर्धारित करते हैं।" प्राकृतिक साधनों से अभिप्राय उन सब प्राकृतिक साधनों से है जो भूमि खनिज, वन, वर्षा, हवा, पानी व जलवायु आदि के रूप में मानव को उत्पादन के लिये प्रकृति की ओर से निशुल्क उपहार हैं। उर्वरा भूमि तथा जल के बिना कृषि विकास असम्भव होगा, कोयला, लोहा एवं आधार खनिजों के अभाव में औद्योगीकरण की कल्पना साकार करना कठिन होगा तथा उपयुक्त भौगोलिक परिस्थितियों व वातावरण के अभाव से आर्थिक विकास में बाधायें होंगी।

विकसित राष्ट्रों—अमेरिका, जापान, इगलैंड व रूस आदि के आर्थिक विकास में वहाँ के प्राकृतिक साधनों की प्राचुर्यता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान और भावी प्राकृतिक साधनों की बहुलता ही आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त नहीं वरन् उनके समुचित विदोहन, नवीन साधनों की खोज तथा उनके नये-नये उपयोगों का पता लगाने से ही आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। भारत अपने प्राकृ-साधनों की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी उनके पर्याप्त विदोहन के अभाव में आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़ा है अतः प्राकृतिक साधनों के विकास, विदोहन एवं संरक्षण और उनके प्रयोगों में विविधता, समुचितता और नवीन प्रयोगों की खोज से आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योग रहता है।

(2) **मानवीय साधन (Human Resources)**—प्राकृतिक साधन उत्पादन का निष्क्रिय घटक है अतः उनके उपयोग के लिये मानवीय साधन विकास का आधार, साधन एवं साध्य के रूप में अत्यन्त आवश्यक है। प्रो० रिचार्ड गिल के शब्दों में "आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। यह एक मानवीय उपक्रम है और समस्त मानवीय उपक्रमों की भांति इसकी सफलता अन्तिम रूप में इसे क्रियान्वित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुणों, शक्ति, एवं प्रवृत्तियों पर निर्भर करेगी।" मानवीय साधनों का अभिप्राय देश की समस्त जनसंख्या से है। यद्यपि उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने वाली जनसंख्या जिसे कार्यशील जनसंख्या (Working Population) कहते हैं आर्थिक विकास को मुख्य रूप से प्रभावित करती है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास जनसंख्या के आकार, कार्य कुशलता, संरचना, व्यावसायिक वितरण तथा उसकी गुणात्मक प्रवृत्ति भी आर्थिक विकास के निर्धारक घटक हैं। मानवीय साधनों की आर्थिक विकास में दोहरी भूमिका होती है एक और वह उत्पादन का सक्रिय साधन है तो दूसरी ओर समस्त आर्थिक क्रियाओं का साध्य है वह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों है। जहाँ एक ओर जनसंख्या में वृद्धि श्रम शक्ति और उत्पादित वस्तुओं व बाजार की अभिवृद्धि करती है पर आदर्श बिन्दु के बाद या

अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का उनके आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है। अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विकसित मानवीय साधन एवं श्रम-शक्ति आर्थिक विकास का एक प्रमुख सक्रिय एवं अत्याज्य घटक है। विकसित राष्ट्रों के तीव्र आर्थिक विकास का राज उनकी कुशल, योग्य एवं विकसित श्रम शक्ति में छिपा है। अत: प्रो० राव के अनुसार "विकास प्रक्रिया में मानवीय साधनों को अधिक प्रभावी बनाने के लिये मानव शक्ति के शारीरिक मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिये।"

(3) पूंजी (Capital)—आर्थिक विकास का तीसरा महत्वपूर्ण घटक पूँजी है। पूँजी मनुष्य द्वारा उत्पादित धन का वह भाग है जो अधिक धनोत्पत्ति के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समाज एवं व्यक्ति अपने वर्तमान उपभोग को कम करके बचत करते हैं और इन बचतों को अधिक उत्पादन के लिये प्रयुक्त करते हैं तथा इन बचतों को पूँजीगत उत्पादक सम्पत्तियों में बदलते हैं। प्रो० रिचार्ड गिल ने आर्थिक विकास में पूँजी के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है 'पूँजी का संचय वर्तमान युग में निर्धन देशों को धनवान बनाने व औद्योगिक युग का प्रारम्भ करने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक है।" पूंजी के द्वारा ही आधारभूत उद्योगों की स्थापना परिवहन एवं सामाजिक ऊपरी पूँजी का निर्माण होता है जो आर्थिक विकास के आधार स्तम्भ हैं। जहाँ जापान, अमेरिका आदि देशों में बचत एवं पूंजी निर्माण की दर क्रमश: 30% एवं 25% है वहां भारत में पूंजी निर्माण की दर 22% ही है जिसमें आन्तरिक बचतों की दर राष्ट्रीय आय का 19.8% ही है तथा 2.5% विदेशी पूँजी का प्रयोग होता है।

अर्द्ध-विकसित देशों में पूंजी निर्माण की धीमी गति के कारण आर्थिक विकास की दर भी बहुत कम है अत: उनमें व्यक्तिगत, संस्थागत एवं राजकीय बचतों में वृद्धि तथा विनियोगों के लिये उपलब्ध पूंजी के समुचित उपयोग, उत्पादक कार्यों में प्रयोग, वित्तीय संस्थाओं के विकास, संग्रह प्रवृत्ति पर रोक आदि का प्रयोग करना चाहिये। प्रो० नर्कसे के अनुसार, "अर्द्ध-विकसित देशों में अप्रयुक्त मानव शक्ति का प्रयोग करके भी पूंजी निर्माण किया जा सकता है।"

यद्यपि पूंजी आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण घटक है किन्तु यही एक पर्याप्त घटक नहीं। पूंजी के अतिरिक्त आर्थिक विकास के लिये तकनीकी ज्ञान, आर्थिक संस्थायें एवं समाज में विकास के प्रति उपयुक्त दृष्टिकोण भी आवश्यक है। अगर देश में उपलब्ध पूंजी के योजनाबद्ध उपयोग की समुचित दशायें नहीं हैं तो पर्याप्त पूंजी होने पर भी आर्थिक विकास सम्भव नहीं होगा।

(4) **तकनीकी ज्ञान** (Technical Know-How) **तथा प्रौद्योगिक ज्ञान** (Technology)—यह भी आर्थिक विकास का आवश्यक घटक एवं परिणाम है। तकनीकी ज्ञान का अभिप्राय उत्पादन सम्बन्धी ज्ञान में विशिष्टता या वृद्धि से है।

प्रो० एटलिस के अनुसार 'तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नये ज्ञान के रूप में परिभाषित कर सकते है जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुयें कम लागत पर उत्पन्न की जा सकें या जिसके कारण नवीन वस्तुओ का उत्पादन हो सके।" दूसरे शब्दो मे तकनीकी ज्ञान मे वृद्धि से उत्पादन लागत मे कमी नवीन वस्तुओ का निर्माण, पदार्थों के नय-नये उपयोग, उत्पादन मे वृद्धि तथा उत्पादन के नय नये साधनो का पता लगाया जाता है या उत्पादित वस्तुओ के गुणो मे वृद्धि एव विविधता आती है।

तकनीकी ज्ञान एव प्राविधिकी की प्रगति आर्थिक विकास को सम्भव बनाने वाला महत्वपूर्ण घटक है। प्रो० लेविस के शब्दो मे, 'आर्थिक विकास एक ओर वस्तुओ व जीवधारियो के विषय मे प्रौद्योगिक ज्ञान पर निर्भर है और दूसरी ओर यह मनुष्य व उसके साथियो के आपसी सम्बन्धो के सामाजिक ज्ञान पर निर्भर करता है।" विकासशील राष्ट्रो मे प्राविधिक ज्ञान की कमी के कारण न तो उनके प्राकृतिक साधनो का समुचित विदोहन हो पाया है और न उनकी आर्थिक दरिद्रता का कुचक्र टूट पाया है। उत्पादन की नयी तकनीकी विधियो के विकास व परम्परागत विधियो मे सुधरे प्रयोगो मे ही अर्द्ध-विकसित देशों की कृषि, उद्योग, परिवहन, एव मानवीय साधनो की प्रगति निहित है।

अत. विकासशील देशो मे तकनीकी ज्ञान व प्रौद्योगिक ज्ञान की वृद्धि के लिये (i) आविष्कारो व अनुसधानो को प्रोत्साहन, (ii) तर्कशील जिज्ञासु एव प्रयोग प्रिय मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के ज्ञान वृद्धि की उत्प्रेरणायें, (iii) शिक्षा एव प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार करने के साथ-साथ, (iv) नवीन तकनीकी प्रयोगो को मूर्त रूप देने के लिये जनता की अभिरुचियों मे वृद्धि करना आवश्यक है। तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि ही आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त नहीं, उसके समुचित योजनाबद्ध प्रयोग और अन्य सहायक घटकों का होना भी उतना ही आवश्यक है।

(5) सगठन (Organisation)—आधुनिक बड पैमाने की उत्पत्ति एवं जटिल उत्पादन प्रक्रिया में उत्पत्ति के विभिन्न साधनो मे अनुकूलतम सयोग बैठाना भी आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण घटक है। सगठन के अन्तर्गत उन सब क्रियाओ का समावेश होता है जो उत्पादन साधनो मे आदर्श सयोग बैठाकर कम से कम लागत पर अधिकाधिक उत्पादन करने का प्रयास करती है जैसे प्राकृतिक एव मानवीय साधनों के समुचित विदोहन की व्यवस्था करना, उद्योगो का आदर्श आकार, विशिष्टीकरण, श्रम विभाजन, औद्योगिक सयोग आदि-आदि। प्रो० डोब (Dobb) ने आर्थिक सगठन के महत्व का उल्लेख करते हुये लिखा है 'आर्थिक विकास की समस्या मुख्यत वित्तीय समस्या नही बल्कि यह तो आर्थिक सगठन एव व्यवस्था की समस्या है।" सगठन व्यक्तिगत कुशलता, भौगोलिक परिस्थितियो की अनुकूलता, उत्पादन मे यन्त्रीकरण व प्रमाणीकरण द्वारा आर्थिक विकास को शक्तिशाली योग देता है। अर्द्ध-विकसित देशो मे कुशल एव योग्य सगठन के अभाव के कारण आर्थिक विकास की गति धीमी

है अत उनमे बड़े पैमाने की उत्पत्ति, भूमि व्यवस्था मे सुधार, श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण, यन्त्रीकरण एव उद्योगो के कुशल सगठन की आवश्यकता है ।

(6) साहसी एव नव प्रवर्तन (Enterpreneur & Innovations)—आर्थिक विकास मे साहसी एव नव प्रवर्तन कर्ताओ का भी विशेष स्थान होता है । साहसी वे व्यक्ति होते हैं जो नये आविष्कारो एव तकनीकी ज्ञान को उत्पादन तथा आर्थिक साधनो के विदोहन म प्रयुक्त करने का साहस करते है जोखिम उठाते हैं तथा नवप्रवर्तनकर्त्ता वे साहसी होते हैं जो (i) उत्पादन की नवीन विधियो की खोज करते हैं, (ii) कच्चे माल के नवीन साधनो का प्रयोग, (iii) नय बाजारो की खोज (iv) साधनो के नवीन उपयोग आदि का प्रयोग करते है । आर्थिक विकास मे साहसी एव नवीन प्रवर्तनो के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रो० रिचड गिल ने लिखा है "तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टि से प्रभावपूर्ण तभी होता है जबकि इसका नव-प्रवर्तन के रूप मे प्रयोग किया जावे ।"

अर्द्ध विकसित देशो मे साहस एव नव प्रवर्तनो का अभाव होता है । सरकार स्वय साहसी के रूप मे भूमिका निभाती है जैसा कि भारत मे विस्तृत सार्वजनिक क्षेत्र इसका परिचायक है ।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग (International Economic Assistance)—आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय परस्पर निर्भरता के युग मे आर्थिक विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग भी बहुत आवश्यक घटक है । अर्द्ध-विकसित राष्ट्र विकसित राष्ट्रो से तकनीकी ज्ञान, आधुनिक उपकरण एव यन्त्रो औद्योगिक मशीनो तथा वित्तीय साधन प्राप्त करके अपना कृषि एव औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं । जापान मे द्वितीय विश्व युद्धोत्तरकाल मे तीव्र आर्थिक विकास एव पुनर्निर्माण का बहुत कुछ श्रेय अमेरिका के आर्थिक सहयोग को जाता है । भारत को भी विदेशो से अत्यधिक सहायता उसके आर्थिक विकास एव आत्मनिर्भरता के महत्वपूर्ण घटक रही है । इसके विपरीत *अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के अभाव* मे विकास की गति मन्द हो जाती है ।

(8) सामाजिक वातावरण (Social Environment)—विकास की प्रक्रिया केवल आर्थिक तत्वो से ही प्रभावित नही होती वरन् गैर आर्थिक तत्वो से भी प्रभावित होती है । अगर समाज रूढिवादी है, सामाजिक सस्थायें विकास के अनुरूप नहीं हैं तो विकास सम्भव नही होगा जैसे भारत मे जाति प्रथा, सयुक्त परिवार प्रणाली, पर्दा प्रथा आदि आर्थिक विकास म बाधक रहे हैं । अगर समाज मे धन प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता हो, लोगो का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो और समाज मे उच्च जीवन स्तर एव आर्थिक विकास की तीव्र लालसा हो तो विकास का मार्ग प्रशस्त होगा । इसके विपरीत अगर समाज मे विकास के प्रति रुचि न हो, शिक्षा एव ज्ञान का अभाव हो सामाजिक अशान्ति हो और शोषण का बोलबाला हो तो आर्थिक विकास होने हुए भी विकास सम्भव नहीं होगा ।

(9) **सांस्कृतिक प्रवृत्तियां (Cultural Attitudes)**—अगर समाज में आध्यात्मिक विचारधारा प्रबल हो, आवश्यकताओं की सीमितता के जीवन दर्शन का प्रभुत्व हो और लोगों में भौतिकता के प्रति अरुचि हो तो आर्थिक वातावरण के अनुकूल होते हुए भी आर्थिक विकास की कल्पना करना मिथ्या होगा पर अगर देश में भौतिकता, आर्थिक समृद्धि, उच्च जीवन स्तर आदि की विचारधारा प्रबल हो तो आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। पाश्चात्य राष्ट्रों में भौतिकवादी दृष्टिकोण ने उन्हें आज उच्च उपभोग स्तर पर पहुंचा दिया है जबकि भारत, लंका, मुस्लिम राष्ट्र आदि आध्यात्मिक दृष्टिकोण में लिप्त होने के कारण आर्थिक विकास नहीं कर पाये हैं।

(10) **नैतिक मूल्य (Ethical Values)**—आर्थिक विकास पर प्रभाव डालने वाला गैर-आर्थिक तत्व "नैतिक मूल्य" भी है। अगर समाज में उद्योग, व्यापार, सरकार, प्रशासन, शोध एवं साहस आदि का नेतृत्व योग्य, ईमानदार, राष्ट्र भक्त एवं समाज सेवी व्यक्तियों के हाथ में हो तो आर्थिक विकास तीव्र गति से होगा। पर अगर समाज में व्यक्तियों का नैतिक पतन हो चुका हो, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, रिश्वतखोरी, चोर-बाजारी एवं बेईमानी का बोलबाला हो तो आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा। आज भारत में नैतिक मूल्यों में अत्यधिक ह्रास हो जाने से आर्थिक विकास वांछित गति से नहीं हो पा रहा है। हर स्तर पर भ्रष्टाचार व अनैतिकता का व्यवहार न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है। अतः अच्छी योजनाओं की सफलता भी गलत हाथों में सन्दिग्ध है।

(11) **राजनैतिक एवं प्रशासनिक वातावरण (Political & Administrative Environment)**—आर्थिक विकास के लिये न केवल सशक्त एवं स्थायी सरकार की आवश्यकता होती है वरन् कुशल, योग्य एवं ईमानदार प्रशासन भी उतना ही आवश्यक है। प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली एक ढीली-ढाली शासन व्यवस्था होती है जिसमें जनता के प्रतिनिधि अपने राजनैतिक स्वार्थों के पीछे कभी कभी देश के आधारभूत आर्थिक हितों को भुला देते हैं जबकि शासन की तानाशाही प्रणाली में नियोजन व आर्थिक विकास अधिक निश्चित एवं प्रभावी होता है। सशक्त सरकार होने पर आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा एवं शान्ति आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक वातावरण भी आर्थिक विकास को प्रभावित करता है अगर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध अशान्ति व झगड़े हों तो दूसरे शान्तिप्रिय राष्ट्रों के विकास पर भी दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। बंगला देश में नर-संहार की पाकिस्तानी नीति भारत के आर्थिक विकास में बाधा बनी। उसके द्वारा थोपे गये युद्ध से अमेरिका से सम्बन्ध बिगड़े भारत के साधनों का प्रयोग युद्ध में हुआ। इनका विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रशासनिक अकुशलता, भ्रष्टाचार आदि विकास को अवरुद्ध करते रहे हैं।

आर्थिक विकास के विभिन्न तत्वो का सापेक्षिक महत्व
(Relative Importance of Various Factors of Economic Development)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले घटक अनेक हैं। इनम अकेले एक घटक का कोई विशेष महत्व नही क्योकि य परस्पर एक दूसरे के पूरक एव सहयोगी होते हैं। यदि देश म प्राकृतिक साधनो का तो बाहुल्य हो पर उनके विदोहन के लिये पर्याप्त पूंजी, तकनीकी ज्ञान, श्रम शक्ति तथा उनके विदोहन व विकास की इच्छा का अभाव हो तो प्राकृतिक साधन आर्थिक विकास म निरर्थक सिद्ध होंगे। हाँ, एक साधन दूसरे साधन का सहयोग करता है जैसे प्राकृतिक साधनो के प्रयोग के कारण उत्पादन क्षमता, आय, बचत, विनियोग, राजगार व उपभोग म वृद्धि का आधार उपलब्ध होगा। अमेरिका, इगलैंड और रूस म वहाँ के प्राकृतिक साधनो का विकास मे अत्यधिक योग रहा है। उसके विपरीत जापान और स्विटजरलैंड के आर्थिक विकास मे सरकार की नीति एव मानवीय साधनो का विशेष महत्व रहा है। प्रो० लेविस ने पूंजी को आर्थिक विकास का केन्द्र-बिन्दु माना है जबकि प्रो० नर्कसे के अनुसार "आर्थिक विकास बहुत कुछ सीमा तक मनुष्यो के गुणो, सामाजिक दृष्टिकोणो, राजनैतिक दशाओ एव ऐतिहासिक अनुभवो पर निर्भर करता है।" इसी प्रकार के विचार प्रो० रिचार्ड गिल ने व्यक्त किय हैं। *"आर्थिक विकास एक मशीनी प्रक्रिया नही है और न ही वह साधनो के सग्रह की प्रक्रिया मात्र है। अन्तत यह तो एक मानवीय उपक्रम है और समस्त मानवीय उपक्रमा की भाँति इसका भी अन्तिम फल इसे सचालित करने वाले मनुष्यो क चातुर्य, गुण एव दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।"* अत आर्थिक विकास के लिय गैर-आर्थिक तत्वो का भी उतना ही महत्वपूण योग रहता है। इसी कारण तो सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रतिवदन मे स्पष्ट है। *"उपयुक्त वातावरण क अभाव मे आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आव श्यक है कि लोगो मे विकास की इच्छा हो उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एव वैधानिक सस्थायें इस इच्छा को कायान्वित करने मे सहायक हो।"*

अत मतभेदो के झझटो म पडने की अपेक्षा यह कहना उचित है कि आर्थिक विकास के प्राय सभी घटक परस्पर पूरक एव सहयोगी हैं उनका सापेक्षिक महत्व देश की परिस्थितिया विकास की अवस्था और विचारधाराओ के अनुकूल बदलता रहता हैं। प्रो० शेयर्ड न मध्यम माग अपनाते हुए लिखा है कि 'किसी एक कारण से नही अपितु विभिन्न महत्वपूर्ण कारको से उचित अनुपात के मिलाने से आर्थिक विकास होता है।"

निष्कर्ष मे यही कहना युक्तिसगत होगा कि आर्थिक विकास विभिन्न आर्थिक घटको तथा गैर-आर्थिक घटको का सम्मिलित परिणाम होना हैं। उनके सापेक्षिक महत्व को जोसेफ फिशर न इस प्रकार व्यक्त किया है 'आर्थिक विकास के लिए किसी एक विशेष तत्व को अलग करना और इमे ऐसे आर्थिक विकास का प्रथम या प्राथमिक कारण बनाना न तो उपयुक्त है और न विशेष सहायक ही। प्राकृतिक

साधन, कुशल, श्रम, मशीनें एव उपकरण, वैज्ञानिक एवं प्रबन्धात्मक साधन एव *आर्थिक स्थानीयकरण महत्वपूर्ण हैं। अगर आर्थिक समृद्धि प्राप्त करना है तो इन कारको को प्रभावपूर्ण ढग से मिलना चाहिये।"* यही नही आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त राजनैतिक सामाजिक एव नैतिक तत्वो का विद्यमान होना भी उतना *ही जरूरी है। प्रो० एलबर्ट ने इस मत की पुष्टि करते हुये लिखा है* 'आर्थिक विकास के लिए एक बहुत बडी धनात्मक प्रेरणा एक ऐसी सम्यता है जो अपने मूल्यो में भौतिक समृद्धि को उच्च प्राथमिकता देती है।"

आर्थिक विकास की आधारमूत आवश्यकताएं, शर्तें अथवा उपाय[1]
(Fuudamental Requisites, Coudiuons or Measures for Economic Development)

आर्थिक विकास एक जटिल एव कठिनाइयो से परिपूर्ण प्रक्रिया है अत आर्थिक विकास के लिये देश मे कुछ आधारभूत आवश्यकताये अथवा शर्तों को पूरा करना जरूरी होता है। इसके अन्तर्गत (1) देशवासियो म आर्थिक विकास की प्रेरणा एव इच्छा होना जरूरी है (2) देश मे विकास के लिए स्वदेशी आधार होना चाहिये। (3) पर्याप्त पूँजी निर्माण व विनियोग व्यवस्था होनी चाहिये। (4) अर्थ व्यवस्था म व्याप्त बाजार अपूर्णताओ व निर्धनता के कुचक्र को तोडने की आवश्यकता होती है। विकास के लिए (5) विवेकपूर्ण योजनायें तथा (6) उनका सफल कार्यान्वयन (7) सशक्त स्थिर सरकार तथा (8) कुशल प्रशासनिक ढाचा होना भी जरूरी है अन्यथा सरकार की योजनाओ व आर्थिक नीति की सफलता सन्दिग्ध रहती है (9) विकास के लिये अर्थव्यवस्था मे उपयुक्त सामाजिक व सास्कृतिक वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये। (10) यही नही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का सद्भावनापूर्ण वातावरण तथा विश्व शान्ति एव सुरक्षा आर्थिक विकास की आधारभूत आवश्यकता मानी जाती है।

(1) (इस भाग के विस्तृत विवरण के लिए 'अर्द्ध-विकसित राष्ट्र एवं उनकी आधारमूत समस्याएं" नामक अध्याय के अन्तिम भाग को पढ़िये)

5

आर्थिक नियोजन की तकनीक एवं विधि

(TECHNIQUES & METHODOLOGY OF ECONOMIC PLANNING)

आर्थिक नियोजन एक कठिन एव जटिल प्रक्रिया है अतः आर्थिक योजनाओं के कारण, उनके सफल कार्यान्वयन तथा उचित मूल्याकन के लिये आवश्यकतानुरूप तकनीक एव विधि का सहारा लेना पड़ता है। नियोजन की प्रारम्भिक शुरूआत, उसके कुशल सचालन एव अन्तिम मूल्याकन तथा अनुवर्तन तक की लम्बी प्रक्रिया तथा उसके लिए अपनाई गई व्यवस्था को नियोजन की तकनीक एव विधि की सज्ञा दी जाती है। नियोजन की तकनीक एव प्रक्रिया की प्रमुख पाच अवस्थायें क्रमानुसार अग्र तालिका से स्पष्ट हैं—

तालिका से स्पष्ट है कि नियोजन की तकनीक एवं विधि की पाच प्रमुख अवस्थायें हैं—पहली केन्द्रीय नियोजन सगठन व उसके सहायक विभागो का निर्माण, दूसरी इस सगठन द्वारा आर्थिक योजनाओ का निर्माण करना तीसरी योजनाओ की जाच व स्वीकृति, चौथी योजनाओं का कार्यान्वयन व पाचवी योजनाओ का सामयिक मूल्याकन व अनुवर्तन ताकि योजना के निर्धारित लक्ष्यो व उद्देश्यो की पूर्ति सम्भव हो सके। इन अवस्थाओ का क्रमबद्ध सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(A) नियोजन के लिये केन्द्रीय सगठन का निर्माण व सहायक विभाग

(Creation of a Central Organisation & Allied Sections for Planning)

आर्थिक नियोजन की एक नियमित एव निरन्तर प्रक्रिया को दृष्टिगत रखते हुये यह आवश्यक है कि देश के सभी प्राकृतिक एव मानवीय साधनो का सर्वेक्षण करने, वर्तमान एव भावी उपलब्धता का अनुमान लगाने, योजनायें बनाने, उन्हे कार्यान्वित करने तथा उनके अनुकूल आर्थिक नीतियाँ निर्धारित करने के साथ-साथ उनका सही-सही मूल्याकन करने के लिये एक स्थाई केन्द्रीय नियोजन सगठन हो। इस सगठन का वैधानिक अस्तित्व हो ताकि वह राजनैतिक पार्टी हितो से ऊपर देश के सामूहिक आर्थिक हितो के लिये स्वतन्त्रतापूर्वक नियोजन कर सके। इस सगठन को अर्थ-व्यवस्था के सभी अगो का व्यापक नियोजन करना पड़ता है। अतः प्रत्येक क्षेत्र के अलग-अलग सहायक विभाग हो और उनमे सम्बन्धित तकनीकी, वित्तीय तथा

आर्थिक नियोजन की तकनीक एवं विधि की अवस्थायें

(A) नियोजन के लिये केन्द्रीय सगठन का निर्माण व सहायक विभाग	(B) योजना का निर्माण अथवा योजना निर्माण प्रक्रिया	(C) योजनाओं की जांच व स्वीकृति	(D) योजनाओ का कार्यान्वयन	(E) योजनाओं का निरीक्षग एव अनुवर्तन
(i) कृषि सगठन	(i) उद्देश्यो का निर्धारण	(i) उद्देश्यो, प्राथमिकताओ विनियोग मात्रा व वित्तीय साधनो से भौतिक लक्ष्यो के समन्वय की जाच	(i) कार्यान्वयन की उचित सगठन व्यवस्था	(i) एक स्वतन्त्र योग्य, तथा निष्पक्ष विशेषज्ञो की सस्था
(ii) उद्योग व व्यापार सगठन	(ii) प्राथमिकताओ का निर्धारण	(ii) सुधारो व सशोधनो की पूर्ति व योजनाओ की ससदीय स्वीकृति	(ii) कुशल, योग्य ईमानदार व सशक्त प्रशासन	(ii) अनुवर्तन की तत्परता
(iii) परिवहन व सचार सगठन	(iii) विनियोग मात्रा निर्धारण		(iii) सफलता के तत्वो का समावेश	
(iv) वित्तीय सगठन	(iv) भौतिक व वित्तीय साधन निर्धारण			
(v) सामाजिक सेवायें सगठन	(v) विभिन्न सन्तुलन बैठाना			
(vi) प्रशासकीय सगठन	(vi) ऊपर व नीचे के नियोजन मे समन्वय			
(vii) साख्यिकीय एव अनुसधान सगठन	(vii) वार्षिक, अल्पकालीन व दीर्घकालीन नियोजन			
(viii) सूचना एव प्रसारण सगठन	(viii) पूरक नियोजक			
(ix) जन सहयोग विभाग	(ix) नियोजन मे लोचता			

आर्थिक विशेषज्ञो का समावेश होने के साथ विभिन्न क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करने वाले जन प्रतिनिधि भी नियुक्त किये जा सकते है।

इसी कारण एक केन्द्रीय नियोजन सगठन के अन्तर्गत प्राय. ये सहायक विभाग होते है (i) कृषि सगठन जो कृषि विकास सम्बन्धी नियोजन का कार्य करता हैं (ii) उद्योग एव व्यापार सगठन विभिन्न उद्योगो और व्यापार सम्बन्धी नियोजन का कार्य करता है उसमे उद्योगो व व्यापारिक विशेषज्ञो व रोजगार विशेषज्ञो को सम्मिलित किया जाता है (iii) परिवहन एव सचार सगठन यह सगठन देश म रेल, सडक, जल एव वायु यातायात के विकास व विस्तार सम्बन्धी योजनाये बनाता है तथा उनकी समस्याओ को ध्यान देता है। इस सगठन द्वारा सचार के विकास एव विस्तार सम्बन्धी नियोजन पर भी ध्यान दिया जाता है। (iv) वित्तीय सगठन देश मे योजना के कार्यान्वयन के लिये आवश्यक वित्तीय साधन जुटाने की योजना बनाने तथा उनके मार्ग मे आने वाली समस्याओ के निराकरण के उपाय सुझाने का दायित्व उठता है (v) सांख्यिकीय एव अनुसन्धान सगठन देश की अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे नियोजन के लिये विश्वसनीय आकडे सकलन, सर्वेक्षण व सूचना एकत्रित करने का कार्य करता है तथा नियोजन के विभिन्न क्षेत्रो मे अनुसधान कर नवीन उत्पादन विधियो, नवीन आर्थिक नीतियो आदि के साथ उनके प्रभाव का विश्लेषण करता है। (vi) सामाजिक सेवायें सगठन विभिन्न सामाजिक सेवाओ, शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण परिवार नियोजन, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित योजनायें बनाता है तथा उनके कार्यान्वयन पर नियन्त्रण रखता है (vii) सूचना एव प्रसारण विभाग का कार्य नियोजन मे अधिकाधिक जनसहयोग प्राप्त करने के लिये नियोजन सम्बन्धी नीतियो, उनके कार्यान्वयन की पद्धति तथा प्रभाव से जनता को अवगत करना है। पिछडे राष्ट्रो मे एक अलग विभाग (viii) जन सहयोग विभाग भी खोला जाता है जो जन सहयोग प्राप्त करने के नये-नये तरीको की खोज करता है तथा अधिकाधिक जनता को नियोजन मे सहयोग के लिये आकर्षित एव शिक्षित किया जाता है। (ix) प्रबन्ध सगठन अथवा प्रशासकीय सगठन यह सगठन नियोजन के सफल प्रशासन के लिये कुशल एव उपयुक्त व्यक्तियो व विशेषज्ञो का चयन करता है, अच्छे तरीको की खोज करता है, विभिन्न विभागो व उपविभागो के कार्यों में तालमेल बैठाता हैं व उनके प्रबन्ध मे कुशलता का प्रयास करता है। कभी-कभी समन्वय विभाग अलग होता है। भारत मे नियोजन सगठन का विवरण आगे अलग अध्याय मे दिया गया है।

लुईस जे वालिन्सकी के मतानुसार एक नियोजन सगठन मे (i) सामाजिक एव आर्थिक नियोजन विभाग (ii) तकनीकी एव भौतिक नियोजन विभाग (iii) सांख्यिकीय विभाग (iv) अनुसधान विभाग तथा (v) अन्य विभागो म विधि विभाग, लोक प्रशासन विभाग तथा सूचना एव सम्पर्क विभाग होने चाहिये।

(B) योजना का निर्माण व योजना निर्माण प्रक्रिया
(Formulation of Plans or Process of Planning)

नियोजन के लिये केन्द्रीय सगठन का स्वरूप निर्धारण के बाद वह नियोजन सगठन (भारत मे योजना आयोग) देश के लोगो की आशा और आकाक्षाओ, राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे योजना निर्माण की प्रक्रिया निम्न रूप मे पूरी करता है—

(1) योजना के उद्देश्यो का निर्धारण (Determination of Objectives)—

योजना निर्माण प्रक्रिया मे सर्वप्रथम योजना के उद्देश्यो का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों का निर्धारण देश की आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक परिस्थितियो के साथ लोगो की आशाओ और आकाक्षाओ को दृष्टिगत रखते हुये किया जाता है। उद्देश्यो का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उद्देश्य बहुत महत्वाकांक्षी न होकर यथार्थता के अनुरूप स्पष्ट एव समयानुकूल हो। विकासशील अथवव्यवस्था मे नियोजन के उद्देश्य मुख्यत: बहु-उद्देश्य व आर्थिक होते है पर उनमे सामाजिक एव राजनैतिक उद्देश्य का भी यथा-सम्भव समायोजन किया जाता है क्योकि आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक उद्देश्य एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् उद्देश्य न होकर परस्पर सम्बन्धी अन्तर्निर्भर व अविभाज्य होते हैं। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि उद्देश्यो का निर्धारण दीर्घकालीन दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिये और वार्षिक तथा अल्पकालीन योजनाओ मे उन उद्देश्यो की पूर्ति का प्रयास किया जाना चाहिये।

(2) प्राथमिकता का निर्धारण (Determination of Priorities)—

आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया सीमित साधनो से अधिकाधिक सामाजिक लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होती है अत आवश्यकता व साध्यो की अनेकता तथा साधनों की सीमितता के कारण साधनो के वैकल्पिक प्रयोगो मे प्राथमिकता का क्रम निर्धारण आवश्यक हो जाता है। सबसे महत्वपूर्ण कार्यों को सबसे पहले पूरा किया जाना चाहिये जबकि कम महत्वपूर्ण कार्यों की साधनो की उपलब्धता पर पूरा करने का प्रयास किया जाना चाहिय। दूसरे शब्दो मे, सीमित साधनो द्वारा कौन-सा कार्य कब किया जाय, किन कार्यों को पहले और किन कार्यों को बाद मे किया जाय आदि सम्बन्धित निर्णयो की प्रक्रिया को ही प्राथमिकता निर्धारण कहते है। प्राथमिकताओं के निर्धारण की समस्या उत्पन्न होने के प्रमुख कारण है—(i) साधनो की सीमितता, (ii) साध्यो की अनेकता (iii) साधनो के वैकल्पिक प्रयोग, (iv) विभिन्न कार्यक्रमो की पारस्परिक निर्भरता तथा (v) कम से कम समय मे अधिकतम सामाजिक कल्याण।

प्राथमिकताओं का निर्धारण करने मे कोई कठोर व निश्चित नियम नही है। इनका निर्धारण योजना के उद्देश्यो, देश मे आर्थिक सामाजिक एव राजनैतिक

परिस्थितियो तथा जनता की दीर्घकालीन आशाओ व आकाक्षाओ के अनुरूप किया जाता है। अत उनमे समय, स्थान व परिस्थितियो के अनुसार भिन्नता हो सकती है जैसे भारत मे प्रथम योजना मे कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी पर द्वितीय योजना मे उद्योगो को सर्वोच्च प्राथमिकता और उसमे भी आधारभूत उद्योगो को प्राथमिकता के क्रम मे उच्च स्थान पर रखा गया। तृतीय योजना मे निर्धारित प्राथमिकताओ मे भी चीनी एव पाकिस्तानी आक्रमणो के कारण परिवर्तन करना पडा। इस प्रकार स्पष्ट है योजनाओ की सफलता के लिय प्राथमिकताओ का निर्धारण करते समय (i) देश के विकास स्तर, (ii) योजना के उद्देश्यो, (iii) अर्थ-व्यवस्था का आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक ढाचा व पृष्ठ भूमि, (iv) उपलब्ध भौतिक एव वित्तीय साधनो की मात्रा, (v) जनता की आशाएँ व आकाक्षाएं, (vi) देश मे उपलब्ध तकनीकी ज्ञान (vii) विदेशी सहायता की मात्रा व प्रकृति तथा (viii) भावी विकास की रूपरेखा को ध्यान मे रखना बहुत ही आवश्यक है।

प्राथमिकताओ के निर्धारण की समस्या प्राय निम्न रूपो मे सामने आती है–

(i) कृषि विकास बनाम औद्योगिक विकास (Agicultural Development V/s Industrial Development)–*अर्द्ध-विकसित व पिछडे राष्ट्रो मे कृषि की प्रधानता है और औद्योगीकरण का नितान्त अभाव है जबकि औद्योगिक विकास से ही राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे तीव्र गति से वृद्धि सम्भव होती है।* अत उन औद्योगिक विकास योजनाओ को प्राथमिकता देने की प्रवृति पाई जाती है पर उनकी इस प्राथमिकता में बडी मात्रा मे पूंजी, तकनीकी ज्ञान, विदेशी विनिमय आदि की बाधा आती है। इस कारण प्रारम्भिक विकास की अवस्था म पिछडी कृषि के विकास को प्राथमिकता देकर औद्योगिक कच्चा माल, खाद्यान्न की पूर्ति, कृषि मे रोजगार से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि, बचतो मे वृद्धि, निर्यातो में वृद्धि से विदेशी विनिमय अर्जन आदि से भावी औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है जैसे भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर दूसरी योजना मे औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी।

विकसित राष्ट्रो मे औद्योगीकरण उनकी सम्पन्नता का प्रतीक होता है। जनसख्या का बहुत बडा भाग उनसे अपनी जीविका अर्जित करता है अत उन राष्ट्रो मे औद्योगीकरण को प्राथमिकता देने के साथ कृषि विकास का *भी पर्याप्त प्राथमिकता* दी जाती है ताकि सन्तुलित विकास सम्भव हो। भारत की पचवर्षीय योजनाओ मे तृतीय पचवर्षीय योजना से ही दोनो के सन्तुलित विकास से आत्मनिर्भरता, गरीबी हटाओ व रोजगार बढाओ के उद्देश्यो से प्रेरित होकर कृषि और औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

(ii) आधारभूत उद्योग बनाम उपभोग उद्योग (Producers Industries V/s Consumers Industries)–अगर कोई राष्ट्र अपने आर्थिक नियोजन मे उद्योगो को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है तो भी यह समस्या आती है कि आधारभूत उद्योगो

को अधिक प्राथमिकता दी जाय अथवा उपभोग उद्योगो को। अगर देश पिछड़ा है तो उसके भावी औद्योगीकरण तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिये आधारभूत उद्योगो के विकास को प्रधानता देने से एक सुदृढ आधार बनता है और तदुपरान्त उपभोग वृद्धि व रोजगार के अवसरो का मार्ग प्रशस्त होता है पर उसमे विदेशी विनिमय उपभोक्ता माल के अभाव तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता की समस्याएँ आती है। पिछड़े राष्ट्रो मे विकास के लिये यही उपयुक्त प्राथमिकता होती है जबकि विकसित राष्टो मे उपभाग उद्योगो को प्राथमिकता देना उपयुक्त रहता है क्योकि विकास का अन्तिम उद्देश्य जन उपभोग व जीवन स्तर मे वृद्धि कर उनके आर्थिक कल्याण म वृद्धि करना है। भारत जैसी विकासशील अर्थ व्यवस्था जिसमे प्रजातान्त्रिक नियोजन का रास्ता अपनाया गया है। आर्थिक विकास के लिये आधारभूत एव उपभोग उद्योगो के बीच सामन्जस्य का रास्ता अपनाना उपयुक्त रहा है जिससे सुदृढ औद्योगिक आधार तैयार करने के लिये पूंजीगत उद्योगो को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर साथ साथ उपभोगो का भी पर्याप्त महत्व दिया गया है।

(iii) पूजी-प्रधान बनाम श्रम प्रधान उद्योग (Capital Insentive V/s Labour Insentive Industries)—नियोजन मे प्राथमिकता निर्धारण मे अन्य यह समस्या भी महत्वपूर्ण है कि पूजी प्रधान उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जाय अथवा श्रम प्रधान उद्योगो के विकास को। विकसित राष्टो मे पूंजी का आधिक्य होता है तथा सस्ती पूजी की उत्पादकता अधिक होने के कारण पूंजी प्रधान उद्योगो को प्राथमिकता दी जाती है जबकि पिछड व अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे श्रम का बाहुल्य होता है पूजी का नितान्त अभाव होता है। अत **प्रो० नकसे तथा किन्डलेबर्जर** आदि अर्थशास्त्री अर्द्ध विकसित राष्टो के आर्थिक विकास मे श्रम प्रधान उद्योगो की प्राथमिकता पर जोर देते है ताकि जहाँ एक ओर उन देशो मे बेरोजगारी व अर्द्ध-बेकारी की समस्या हल होगी वहाँ दूसरी ओर पूंजी के अभाव म भी विकास सम्भव होगा। यह मानवीय दृष्टि से भी उपयुक्त है। इसके विपरीत कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है तीव्रगति से आर्थिक विकास के लिये पूंजी प्रधान उद्योगो को प्राथमिकता देनी चाहिय क्योंकि पूंजी प्रधान उद्योगो मे पूंजी-उत्पाद अनुपात (Capital Output Ratio) अधिक होना है और अन्ततवा विकास पूंजीगत उद्योगो तथा तकनीकी ज्ञान के सुदृढ आधार से ही सम्भव होता है।

इन दोनो दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखते हुए अर्द्ध-विकसित व विकासशील राष्ट्र इन दोनो म उपयुक्त सामन्जस्य का रास्ता अपनाते हैं। आधारभूत उद्योगो मे पूजी को प्रधानता दी जाती है जबकि उपभोग उद्योगो म श्रम की प्रधानता होती है।

(iv) विनियोग बनाम उपभोग (Investment V/s Cousumption)—आर्थिक नियोजन की प्राथमिकताए निर्धारित करते समय यह प्रश्न भी आता है कि विनियोग को प्राथमिकता दी जाय अथवा उपभोग को। विकसित राष्ट्रो म विकास

व व्यापार चक्रो मे मन्दी के समय उपभोग को प्राथमिकता दी जाती है जबकि विकासशील राष्ट्रो मे उत्पादन का स्तर नीचा होता है, आय कम होती है तथा बिना उत्पादन वृद्धि के उपभोग बढाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है अत. पिछडे राष्ट्रो मे विनियोग को प्राथमिकता देना उपयुक्त रहता है क्योकि विनियोग बढने से रोजगार, आय व उत्पादन मे वृद्धि होती है जिससे भावी उपभोग वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रजातान्त्रिक नियोजन मे दोनो मे उचित समन्वय बैठाया जाता है।

(v) **उत्पादन बनाम वितरण को प्राथमिकता** (Production V/s Distribution)—आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे दो महत्वपूर्ण बातें होती हैं (i) उत्पादन वृद्धि तथा (ii) उसका न्यायोचित वितरण। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे तो उत्पादन वृद्धि को प्राथमिकता दी जाती है ताकि बाद म उस उत्पत्ति वृद्धि के न्यायोचित वितरण की व्यवस्था की जा सके जबकि विकसित राष्ट्रो मे उत्पादन तो पहले ही उच्च स्तर पर होता है अत उन देशो मे वितरण को प्राथमिकता देना उपयुक्त रहता है। पिछडे राष्ट्रो मे प्रारम्भ मे वितरण को प्राथमिकता देना तो गरीबो को बाटने के समान होगा।

(vi) **क्षेत्रीय प्राथमिकतायें** (Regional Priorities)—आर्थिक नियोजन मे देश के सन्तुलित विकास व क्षेत्रीय विषमताओ को समाप्त करने का लक्ष्य निहित होता है और क्षेत्रीय समानता का महत्व तब और बढ जाता है जब देश विशाल हो और कुछ क्षेत्र दूसरो की अपेक्षा बहुत पिछडे हो। उदाहरण के तौर पर भारत मे राजस्थान, आसाम, उडीसा व जम्मू कश्मीर राज्य, महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु आदि के मुकाबले काफी पिछडे हैं। यही नही पिछडे भागो मे भी कुछ क्षेत्र कही अधिक पिछडे हैं अत: क्षेत्रीय विषमता के समापन व सन्तुलित आर्थिक विकास के लिये क्षेत्रीय प्राथमिकताओ पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिये। भारत मे चतुर्थ व पचवर्षीय योजनाओ मे क्षेत्रीय समानता के प्रयासो पर जोर दिये जाने की प्रवृत्ति रही है।

(vii) **आर्थिक विकास बनाम प्रतिरक्षा** (Economic Development V/s Defence)—नियोजन मे प्राथमिकताओ का निर्धारण करते समय यह समस्या भी महत्वपूर्ण है कि आर्थिक विकास कार्यक्रमो को प्राथमिकता दी जाय अथवा प्रतिरक्षा को। यह देश की राजनैतिक स्थिति, पडोसी राष्ट्रो के सम्बन्धो व उनकी सैन्य शक्ति के साथ-साथ देश मे आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर करता है। यदि बारीकी से देखा जाय तो आर्थिक विकास एव प्रतिरक्षा दोनो का परस्पर विरोधी उद्देश्य न होकर एक दूसरे के पूरक एव अन्तर्निर्भर उद्देश्य हैं। जहाँ देश म आर्थिक विकास के लिये शान्ति एव सुरक्षा आवश्यक है वहाँ सुदृढ प्रतिरक्षा क्षमता तभी सभव होती है जबकि अर्थ-व्यवस्था मे सुदृढ आर्थिक आधार हो। जितना ही देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत होगा उतनी ही उसकी प्रतिरक्षा क्षमता भी अधिक होती है। रूस, अमेरिका व ब्रिटेन

की प्रतिरक्षा क्षमता पिछड़े राष्ट्रो से अधिक है। भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई पर 1962 मे चीनी आक्रमण तथा 1965 मे पाकिस्तानी आक्रमणो के कारण योजनाओं को प्रतिरक्षा एव विकासोन्मुख (Defence Cum-Development Oriented) बनाया गया है। पिछले 10-12 वर्षो म देश प्रतिरक्षा की दृष्टि से काफी सक्षम एव सुदृढ है। इसका श्रेय आर्थिक विकास को जाता है और आर्थिक विकास के सुचारू रूप से चलने के पीछे आन्तरिक शान्ति एव बाह्य आक्रमणो से भय की मुक्ति है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि योजनाओ मे प्राथमिकताओ के निर्धारण के लिये विभिन्न कार्यक्रमो के अन्तर्विरोधो को यथासम्भव कम कर सीमित साधनो से अधिकतम सामाजिक कल्याण करने की व्यूह रचना की जाती है। प्रो० टिनबर्जन (Tinbergan) ने प्राथमिकताओं के निर्धारण मे तीन सिद्धान्तो (i) विनियोग कार्यक्रमो का चुनाव अन्य निर्णयो से परे नही होना चाहिये; (ii) विनियोग कार्यक्रम सम्पूर्ण उत्पादन कार्यक्रमो के अन्तर्गत होना चाहिये तथा (iii) उन योजनाओ को अपनाया जाना चाहिये जिससे देश के कल्याण मे अधिकतम लाभ हो।

3 विनियोग का निर्धारण (Determination of Investment)

प्राथमिकताओं के निर्धारण के बाद योजना निर्माण की अगली अवस्था विनियोग मात्रा निर्धारण की है। विभिन्न उत्पादन लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये कितना-कितना विनियोग उनमे किया जाना चाहिये इसका निर्धारण करने के लिये केन्द्रीय नियोजन सत्ता विभिन्न विकास मॉडलो (Growth Models) का सहारा लेती है जिनमे प्राय (i) पूंजी-उत्पाद-अनुपात (Capital-Output-Ratio) (ii) श्रम-उत्पाद-अनुपात (Labour Outout-Ratio) तथा (iii) बचत-आय-अनुपात आदि को आधार बनाया जाता है। इन विकास मॉडलो मे हैरोड (Harrod) माडल व डोमर (Domor) मॉडल, कीन्स का विकास मॉडल (Keynes Growth Model) तथा महालनोबिस विकास माडल (Mahalnobis Model) अधिक लोकप्रिय है। प्रथम तीन मॉडल विकसित राष्ट्रो के लिये उपयुक्त हैं जबकि महालनोबिस माडल भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों के लिये विनियोग निर्धारण का उपयुक्त उपकरण है। इन मॉडलो से आय की एक निश्चित वृद्धि के लिये विनियोग की दर मालूम की जाती है। यह दर पूंजी-उत्पाद-अनुपात (Capital Output Ratio) पर निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न उद्योगो तथा अलग-अलग परिस्थितियो मे पूंजी-उत्पाद-अनुपात मे अन्तर पाया जाता है अत: एक सामान्य औसत अनुपात ज्ञात कर लिया जाता है। प्रो० वालिन्सकी (Walinsky) के अनुसार "पूंजी-उत्पाद-अनुपात उत्पादन की वृद्धि के लक्ष्य का करीब तिगुना होना चाहिए।" अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के पूंजी उत्पाद-अनुपात के बारे मे मतैक्य का अभाव है जहाँ सयुक्त राष्ट्र सघ (UNO) 2 1 से

5:1, सिगर कृषि क्षेत्र मे 4:1 तथा अन्य क्षेत्रो मे 6.1 तथा रोसेन्सटिन-रोडन ने 3 1 से 4:1 के पूंजी-उत्पाद-अनुपात का अनुमान लगाया है वहाँ कीनथ के कुरिहारा ने 5:1 का अनुमान लगाया है। यहाँ निम्न और उच्च पूँजी-उत्पाद- अनुपात के पक्ष व विपक्ष मे निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में निम्न पूंजी-उत्पाद-अनुपात (Low Capital Output Ratio) के पक्ष में तर्क—इस मत के मानने वाले विद्वानो की मान्यता है कि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे निम्न विशेषताओ के कारण पूंजी उत्पाद अनुपात नीचा रहता है। अर्थात् कम पूंजी विनियोग से ही अधिक उत्पादन सभव होता है। (i) **अशोषित एवं अर्द्ध-शोषित प्राकृतिक साधनो का प्राचुर्य** होने से उनके विदोहन की पर्याप्त सम्भावनायें रहती हैं। (ii) **जनाधिक्य** के कारण श्रम-प्रधान उद्योगों को प्राथमिकता दी जाती है (iii) **पूंजी की बचत** के प्रयास प्रबल होते हैं (iv) थोड़े पूंजी विनियोग मे ही उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि होती है। (v) श्रम की उत्पादकता व कुशलता मे भी तेजी से वृद्धि होती है। (vi) देश की समूची उत्पादन क्षमता के विकास व पूर्ण विदोहन से कम पूंजी से भी अधिक उत्पादन सम्भव होता है।

अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो में उच्च पूंजी-उत्पाद-अनुपात (High Capital Output Ratio) के पक्ष मे तर्क—जो विद्वान अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे उच्च पूँजी-उत्पाद-अनुपात के मत वाले हैं वे अपने मत के पक्ष मे ये तर्क देते हैं (i) **सामाजिक ऊपरी लागतों** जैसे परिवहन, सचार, शिक्षा, आवास, शक्ति आदि म वृद्धि की आवश्यकता पूर्ति अधिक पूंजी के द्वारा ही सभव होती है क्योकि इनका पिछड़े राष्ट्रो मे नितान्त अभाव होता है जबकि ये विकास के आधार स्तम्भ है (ii) **परम्परागत उत्पादन पद्धतियों** मे पूंजी का अपव्यय होता है (iii) **तकनीकी ज्ञान का अभाव** होने से भी विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे पूंजी के अपव्यय व दुरुपयोग की सम्भावनाएँ अधिक होती है (iv) **आधारभूत उद्योगो मे अधिक** पूंजी की आवश्यकता होती है (v) कुछ पिछड़े राष्ट्रो मे विकास का आधार प्राकृतिक साधनो के अभाव को दूर करने के लिये पूंजी का प्रतिस्थापन अधिक पूंजी की माग को जन्म देता है। (vi) पिछड़े राष्ट्रो मे पूंजी का अनुत्पादक कार्यों मे प्रयोग की प्रवृत्ति जैसे मृत्यु-भोज, विवाहोत्सव एवं प्रदर्शनात्मक प्रभाव आदि मे प्रबल होती है।

उपर्युक्त तर्कों को व्यावहारिकता की कसौटी पर परखने से स्पष्ट होता है कि पिछड़े राष्ट्रो मे विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे पूंजी-उत्पाद-अनुपात कम होता है और विकास प्रक्रिया मे प्रगति के साथ-साथ बढ़ता जाता है जैसे भारत मे प्रथम योजना मे यह अनुपात 1 8 1 द्वितीय योजना मे 2 3:1, तृतीय योजना मे 2 5 1 तथा चौथी योजना मे 3 4 1 रहना सामान्य प्रवृत्ति का परिचायक है क्योकि आर्थिक प्रगति के साथ-साथ आधुनीकीकरण, स्वचालिता तथा पूंजी गहन उद्योगो (Capital Intensive Industries) की प्रवृत्ति बढ़ती है।

(4) भौतिक साधन बनाम वित्तीय नियोजन
(Planning of Physical v s Financial Resources)

विनियोग की मात्रा निर्धारित करने के बाद योजना निर्माण का अगला कदम भौतिक तथा वित्तीय योजनायें तैयार करना है। भौतिक साधनों के नियोजन का अभिप्राय योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक भौतिक साधनों की मात्रा स्रोत उनको विभिन्न वैकल्पित प्रयोगों मे बाटने तथा योजना के लक्ष्यों को भौतिक इकाईयों को व्यक्त करने से है जैसे कितना कितना लोहा, सीमेन्ट, पत्थर, कितने कितने तकनीकी विशेषज्ञ शिक्षक डाक्टर, प्रबन्धक, श्रमिक आदि चाहिये उनकी पूर्ति के स्रोत क्या क्या होगे इनको किन किन क्षेत्रों मे प्रयोग करना है तथा कितनी कितनी मात्रा मे ताकि भौतिक लक्ष्य पूरे हो सके। जबकि वित्तीय साधनों के नियोजन का अभिप्राय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये मौद्रिक साधनों की आवश्यक मात्रा का निर्धारण, उनकी प्राप्ति के स्रोतों का निर्धारण तथा मौद्रिक साधनों के वैकल्पिक प्रयोगों की एक सन्तुलित योजना तैयार करना है। पूजीवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्थाओ मे वित्तीय साधनो का आयोजन विशेष महत्वपूर्ण है क्योकि भौतिक साधनो पर निजी व्यक्तियो का स्वामित्व होता है और सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिये भौतिक साधनो के क्रय के लिये सरकार को मौद्रिक व्यय करना पडता है। वित्तीय साधनो की पर्याप्त पूर्ति भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति मे सहायक रहती है। जहाँ एक ओर विनियोग भौतिक साधनो की पूर्ति व उनके उत्पादक प्रयोग पर निर्भर करता है वहाँ दूसरी ओर वित्तीय साधनो की पूर्ति विनियोग मात्रा को सीमित करती है अत ये दोनो (भौतिक तथा वित्तीय साधन) परस्पर पूरक एव अन्तर्निर्भर घटक है। यदि भौतिक साधनो की प्रचुर पूर्ति भी हो पर वित्तीय साधनो का अभाव हो तो विकास अवरुद्ध हो जाता है अथवा भौतिक साधन सीमित हो पर वित्तीय साधन खूब हो फिर भी विकास वाछित गति से सम्भव नही हो पाता अत दोनो मे उचित सामन्जस्य बैठाने की आवश्यकता पडती है। भारत मे प्रथम योजना मे वित्तीय नियोजन पर ही विशेष ध्यान दिया गया था पर अब योजनाओ मे दोनो को समन्वित करने का प्रयास किया जाता है।

(5) योजना मे विभिन्न सन्तुलनों की समस्या
(Problem of Various Balances in Planning)

भौतिक तथा वित्तीय साधनो की योजना तैयार करने के बाद योजना के विभिन्न क्षेत्रो म सतुलन बैठाने की समस्या सामने आती है ताकि योजना को सफलता पूर्वक कार्यान्वित किया जा सके। सन्तुलन के मुख्य तीन रूप हैं —

(अ) अधोगामी सन्तुलन (Backward Balances)— यह उत्पादित की जाने वाली वस्तुओ की मात्रा तथा उनके उत्पादन म प्रयुक्त होने वाली वस्तुओ के बीच सन्तुलन को प्रकट करता है अर्थात् अधोगामी सन्तुलन के अन्तर्गत पडत उत्पादन विश्लेषण (Input Output Analysis) द्वारा अन्तिम उत्पादन लक्ष्यो के निर्धारण

की सरलता जानी जाती है उदाहरण के लिए एक लाख टन स्टील बनाने के लिये कितना-कितना लोहा, मैंगनीज, चूना, ईंधन तथा श्रम आदि की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार सभी भौतिक उत्पादन लक्ष्यो के बारे मे निर्धारण होता है। इसके लिए प्रो० लियोन्टिफ (Prof. Leontief) ने एक संयुक्त समीकरण दिया है जिसकी सहायता से यह गणना की जा सकती है कि उपलब्ध भौतिक साधनो से किन-किन वस्तुओ की कितनी-कितनी मात्रा उत्पादित करने से अर्थ-व्यवस्था मे सन्तुलन व साधनो का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव है। इस विश्लेषण पद्धति का प्रयोग उन्ही अर्थव्यवस्थाओ मे उपयोगी है जहाँ पर्याप्त एव विश्वसनीय सांख्यिकी आकडे उपलब्ध हो।

(ब) संगमगामी संतुलन (Cross Balance)—इसके अन्तर्गत कुल उत्पादन लक्ष्यो व कुल उपलब्ध साधनो के बीच सन्तुलन व साम्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है जैसे उत्पादन लक्ष्यो व मानवीय तथा प्राकृतिक साधनो के बीच सन्तुलन होना चाहिये अन्यथा या तो ये साधन बेरोजगार होगे या उनकी कमी महसूस होगी। नियोजन की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि **(i) उत्पादन लक्ष्यो व मानव शक्ति साधनो मे सन्तुलन है (ii) भौतिक साधनों व वित्तीय साधनों मे सन्तुलन है।** क्योकि भौतिक साधनो की तुलना मे वित्तीय साधन कम होने पर कई साधन अशोषित रह जायेंगे व भौतिक लक्ष्य अपूर्ण रहेगे। इसी प्रकार भौतिक लक्ष्य वित्तीय साधनो की तुलना मे ऊँचे होने पर हीनार्थ-प्रबन्ध (Deficit Financing) के कारण मुद्रा-प्रसार का भय रहता है तथा वित्तीय सकट उत्पन्न होना है। भारत की प्रथम योजना मे भौतिक लक्ष्य नीचे थे तथा बाद की सब योजनायें वित्तीय सकट से गुजर रही हैं और हीनार्थ प्रबन्ध का अत्यधिक प्रयोग होने से मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त सगमगामी सतुलन मे तीसरे रूप उद्योग की आदर्श स्थिति (Optimum Location) पर भी ध्यान दिया जाता है कि उद्योग की स्थापना ऐसे स्थान पर की जानी चाहिये जहाँ उसके लिये पर्याप्त कच्चा माल, श्रम, पूँजी व बाजार मिल जाये तथा यह योजना के उद्देश्यो के अनुरूप क्षेत्रीय समानता स्थापित करने मे सहायक हो।

(स) मौद्रिक सन्तुलन (Monetary Balance)—इसके अन्तर्गत देश मे मौद्रिक आय, उपभोग, बचत, निजी विनियोग की राशि तथा विनियोगो के लिए उपलब्ध भौतिक साधन, विदेशी भुगतानो एव प्राप्तियो के बीच सन्तुलन बैठाना पडता है। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोग तथा उसके लिये उपलब्ध वित्तीय साधनो के साथ-साथ उत्पादित एव आयोजित वस्तुओ मे सन्तुलन बैठाना भी महत्व-पूर्ण होता है।

(6) ऊपर से तथा नीचे से आयोजन मे सामन्जस्य

(Co ordination Between Planning From Above & From below)

विभिन्न सन्तुलनो की स्थापना के पश्चात् योजना निर्माणकर्ता सत्ता ऊपर से नियोजन तथा नीचे से नियोजन मे सामन्जस्य बैठाती है क्योकि जब ऊपर से नियोजन

राष्ट्रीय स्तर से राज्य-स्तर—फिर जिलास्तर व स्थानीय स्तर पर थोपा जाता है तो सामान्य जन सहयोग प्राप्त नहीं होता अत नियोजन को नीचे स्तर जिला व स्थानीय स्तर से प्रारम्भ कर राज्य व केन्द्रीय स्तर पर समन्वित किया जाता है तो उसमे व्यावहारिकता आती है यही कारण है कि दोनो प्रकार के आयोजन मे उपयुक्त सामन्जस्य बैठाया जाता है।

(7) वार्षिक, अल्पकालीन एव दीर्घकालीन योजनाओ मे परस्पर समन्वय (Co-ordination Amongst Annual, Prospecitive & Perspective Planning)

आर्थिक नियोजन एक निरन्तर चलने वाली दीर्घकालीन प्रक्रिया है अत सामान्यत नियोजन की दीर्घकालीन विकास की मोटे रूप मे रूप-रेखा 15–20 वर्ष की अवधि के लिये तैयार की जाती है। इसके बाद इस अवधि को सुविधा की दृष्टि से अल्पकालीन (5 से 7 वर्ष) की योजनाओ तथा वार्षिक योजनाओ मे विभाजित किया जाता है। चूंकि अल्पकाल मे विकास का स्वरूप वार्षिक योजनाओ के विकास कार्यो मे उपलब्धियो पर निर्भर करता है अत वार्षिक योजनायें अल्पकालीन उद्देश्यो के अनुरूप बनाई जाती है और ठीक इसी प्रकार अल्पकालीन योजनाओ का स्वरूप दीर्घकालीन लक्ष्यो की प्राप्ति के अनुरूप ढाला जाता है। उदाहरण के लिए जैसे मजिल की पहली व अन्तिम सीढी के बीच की दूरी दीर्घकालीन नियोजन का सूचक है तो प्रत्येक सीढी वार्षिक योजना का रूप है जबकि 4–5 सीढियो के बाद की मोड या चौडी सीढी अल्पकालीन योजना का स्वरूप समझाती है।

(8) अनुपूरक नियोजन (Supplementary Planning)

इन अर्थव्यवस्थाओ मे जहाँ वित्तीय साधनो की कमी का सकट बना रहता है, नियोजन मे एक विशेष तकनीक का सहारा लिया जाता है जिसके अन्तर्गत योजना को दो भागो मे विभाजित कर दिया जाता है पहला आवश्यक या अनिवार्य भाग (Essential or Core projects) वह भाग होता है जिसके कार्यान्वियन के लिये हर प्रकार से साधन जुटाने की व्यवस्था की जाती है। दूसरा सम्भाव्य भाग (Contingent projects) इसके अन्तर्गत उन योजनाओ का समावेश होता है जिनकी कार्यान्वित वित्तीय साधनो की उपलब्धता पर निर्भर करती है अगर अनिवार्य भाग के कार्यान्वित करने के अतिरिक्त साधन बचते है तो सम्भाव्य भाग को भी कार्यान्वित किया जाता है पर अगर वित्तीय साधन कम हो तो उनमे कटौती करदी जाती है और केवल अनिवार्य भाग को पूरा किया जाता है। 1957 मे विदेशी विनिमय सकट के कारण भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना को भी दो भागो—अनिवार्य भ ग तथा सम्भाव्य भाग मे बाटा गया था।

(9) नियोजन मे लोचता (Flexibility in Planning)

प्रो० डर्बिन (Durbin) की यह मान्यता है कि नियोजन मे भविष्य के बारे मे निश्चितता की कल्पना कठिन है क्योंकि भविष्य मे होने वाले परिवर्तन, तकनीकी अनुसधानो, लोगो के उपभोग, बचत व जीवन स्तर मे परिवर्तन की अनिश्चितता

रहती है अत नियोजन मे बदलती हुई परिस्थिति के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन की पर्याप्त लोच होना जरूरी है जैसे भारत की प्रथम योजना मे बेकारी की विषम स्थिति से निपटने के लिये सार्वजनिक क्षेत्र मे 175 करोड रुपये व्यय के प्रावधान से ग्यारह सूत्रीय कार्यक्रम अपनाया गया। इसी प्रकार से सामयिक परिवर्तन भारत के अन्य योजनाओ मे भी किये गये हैं। जनता सरकार ने आवृति योजना (Rollng Plan) के द्वारा नियोजन मे एक नई तकनीक का सूत्रपात किया है।

नियोजन मे लोचता का अभिप्राय यह कतई नही है कि सरकार लोचता के नाम पर योजना की मुख्य सरचना को ही परिवर्तित कर दे। प्रो० मिर्डल (Myrdal) के मतानुसार योजना की आधारभूत सरचना की सुरक्षा के लिये सवैधानिक एव राजनैतिक व्यवस्था की जानी चाहिये और इसी आधारभूत सरचना के अन्तर्गत ही लोचता बनी रहे।

(C) योजना का निरीक्षण (जांच) एवं स्वीकृति

(Testing & Adoption of Plan)

जब योजना बनाकर तैयार कर ली जाती है तो अगला कदम उसकी जाच करना तथा आवश्यक सशोधन कर उसे स्वीकृति प्रदान करना होता है। योजना का निरीक्षण अलग विशिष्ट परिषद् या उच्च सरकारी स्तर पर किया जाता है जिसमे देखा जाता है कि उद्देश्य, विनियोग की मात्रा, प्राथमिकताएँ तथा साधनो की व्यवस्था परिस्थितियो के अनुकूल है तथा उनमे परस्पर सन्तुलन एव सामन्जस्य है। अगर कही कोई कमी या असन्तुलन होता है तो उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है और आवश्यक सशोधनो के बाद योजना बनाकर तैयार हो जाने पर उसके प्रारूप को जनसाधारण के सूचनार्थ प्रसारित किया जाता है तथा रचनात्मक सुझाव आमन्त्रित किये जाते है और सरकारी स्तर पर केबीनेट तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) भी विचारविमर्श करती है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुमोदन के पश्चात् योजना का अन्तिम प्रारूप प्रधान मन्त्री द्वारा ससद की अन्तिम स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया जाता है ताकि योजना को सवैधानिक स्वरूप प्रदान किया जा सके। ससद मे योजना के विभिन्न पहलुओ पर व्यापक विचार-विमर्श किया जाता है और आवश्यक सशोधनो के बाद ससद योजना के अन्तिम प्रतिवेदन पर अपनी स्वीकृति की छाप लगाती है। इस स्वीकृति के बाद योजना क्रियान्वयन के लिये प्रकाशित करदी जाती है।

(D) योजना का कार्यान्वयन

(Implementation or Execution of the Plan)

ससद की स्वीकृति के बाद योजना के कार्यान्वियन के कदम उठाये जाते योजना का निर्माण कर लेना ही पर्याप्त नही उसे कार्यान्वित कर मूर्तरूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योकि योजना की सफलता उसके सफल क्रियान्वयन करती है योजना चाहे कितनी ही बढिया क्यो न हो पर अगर उसे [illegible] जाये अथवा कार्यान्वयन अपूर्ण, अनुपयुक्त एव अकुशल हुआ तो न केवल

सम्भावनाएँ ही धूमिल होगी वरन् अर्थ-व्यवस्था मे सकट, अस्त-व्यस्तता एव पतन की समस्याएँ सामने आ सकती है अत योजना के सफल क्रियान्वयन के लिये एक कुशल एव प्रभावी सगठन की आवश्यकता है।

योजनाओ को कार्यान्वित करने का दायित्व केन्द्र तथा राज्य सरकारो का है अत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारे अपने विभिन्न मन्त्रालयो और उनके अधीनस्थ विभागो—कृषि, सिंचाई सहकारिता, उद्योग, विद्युत, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज सेवा आदि—को उनसे सम्बन्धित कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने का आदेश देती हैं। निजी क्षेत्र के कार्यक्रमो को निजी सस्थाओ को कार्यान्वित करने के लिये सौंप दिया जाता है। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिये केन्द्रीय स्तर, राज्य स्तर, जिला स्तर व स्थानीय स्तर पर उपयुक्त, कुशल, सुदृढ एव ईमानदार प्रशासन की व्यवस्था जानी चाहिये जिनमे परस्पर समन्वय एव सहयोग बना रहे। योजना कार्यक्रमो के क्रियान्वयन के लिये उत्तरदायी अधिकारियो मे कर्त्तव्यपरायणता, कुशलता व तकनीकी योग्यता आवश्यक है।

योजना के सफल क्रियान्वयन के लिये यह भी आवश्यक है कि (i) योजना के उद्देश्य यथार्थवादी हो, (ii) प्राथमिकताएँ उद्देश्यो के अनुरूप हो, (iii) विनियोग के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन हो, (iv) विश्वसनीय साख्यिकी आकडे हो, (v) ईमानदार, योग्य, सुदृढ एव कुशल प्रशासक हो, (vi) एक उत्तरदायी राजनीतिक विपक्षी दल हो, (vii) एक सुदृढ सरकार हो जिसका नेतृत्व प्रगतिशील शासक के हाथ मे हो, (viii) पर्याप्त-जन सहयोग हो तथा (ix) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ व सहयोग अनुकूल बना रहे। यही नही, सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र मे पूर्ण समन्वय एव सहयोग बना रहे। जब ये तत्व विद्यमान होगे तो योजना का क्रियान्वयन सुगम हो जाता है।

(E) निरीक्षण, मूल्यांकन एवं अनुवर्तन
(Supervision, Evaluation & Follow-up Action)

आयोजन तकनीक एवं विधि की अन्तिम अवस्था योजना का निरीक्षण, मूल्याकन तथा अनुवर्तन सम्बन्धी कार्य हैं। योजना के क्रियान्वयन का निरन्तर निरीक्षण तथा उसका सामयिक मूल्याकन योजना की प्रगति की समीक्षा के लिये आवश्यक है ताकि योजना के क्रियान्वयन मे आने वाली बाधाओ का निराकरण किया जा सके, आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें और योजना के लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये प्रभावी कदम उठाये जा सकें। भारत मे योजना बनाने तथा उसके क्रियान्वयन के निरीक्षण व मूल्याकन का उत्तरदायित्व योजना आयोग पर है जबकि क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्र तथा राज्य सरकारो पर है। भारतीय योजना आयोग का एक प्रमुख कार्य "योजना की प्रत्येक अवस्था के क्रियान्वयन द्वारा प्राप्त प्रगति का समय-समय पर लेखा जोखा लेना तथा उसके अनुसार नीति मे समायोजन व अन्य उपायो के लिये सिफारिशें करना है।" अत अब योजना आयोग मे योजना

क्रियान्वयन का विभिन्न क्षेत्रों व स्तरो पर पर्यवेक्षण व मूल्याकन के लिये एक कार्यक्रम मूल्याकन सगठन (Programme Evaluation Organisation) स्थापित किया गया है। इस सगठन द्वारा प्रदत्त प्रतिवेदन के आधार पर अनुवर्तन का कार्य किया जाता है तथा उसमे बताई गई कमियो व तत्सम्बन्धी राय को विभिन्न मन्त्रालयो द्वारा कार्यान्वित किया जाता है।

निष्कर्ष—इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नियोजन की तकनीक एव विधि एक जटिल प्रक्रिया है जिसमे सर्वप्रथम योजना निर्माण के लिये उपयुक्त सगठन की आवश्यकता होती है। यह सगठन योजनाए बनाता है, योजना की प्रक्रिया मे सर्वप्रथम उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है तथा फिर प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं। योजना निर्माण मे विनियोग मात्रा निर्धारण, भौतिक तथा वित्तीय साधनो का नियोजन, विभिन्न सन्तुलन बैठाना, ऊपर व नीचे से नियोजन म समन्वय स्थापित करना, पूरक योजना बनाना तथा उसमे आवश्यक लोचता प्रदान करना योजना प्रक्रिया की महत्वपूर्ण बातें हैं। योजना बनकर तैयार हो जाने पर उसकी जाच की जाती है और जाँच के बाद आवश्यक सशोधनो पर अन्तिम स्वीकृति प्रदान की जाती है। स्वीकृति के पश्चात् योजना को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व केन्द्रीय व राज्य सरकारो के मन्त्रालयो व विभागो पर डाला जाता है अत कुशल सुदृढ, योग्य एव ईमानदार प्रशासनिक व्यवस्था योजना के सफल क्रियान्वयन की आवश्यक बात है। योजना के क्रियान्वयन का समय-समय पर निरीक्षण करने तथा प्रगति का मूल्याकन करने के लिये एक निष्पक्ष स्वतन्त्र सगठन होना है जो विभिन्न कार्यक्रमो के क्रियान्वयन का मूल्याकन कर उसकी कमियो को बताता है, तथा उन्हे दूर करने के उपाय सुझाता है जिसको विभिन्न मन्त्रालय कार्यान्वित करते हैं। इस प्रकार नियोजन का कार्य निरन्तर चलते हुए सर्वांगीण सन्तुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। भारत म नियोजन प्रक्रिया व योजना तन्त्र का विवरण आगे अलग अध्याय मे दिया गया है। □

6

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

(OBJECTIVES OF PLANNING)

(भारत के विशेष सन्दर्भ से)

(आर्थिक नियोजन के उद्देश्य)

(Objectives of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन राज्य द्वारा अर्थ-व्यवस्था के सचालन, नियन्त्रण व निर्देश की एक ऐसी सुसगठित एव समन्वित प्रक्रिया है जो निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति के लि प्रेरित होती है अत नियोजन सदा ही सोद्देश्य होता है। ईलियट के शब्दो "नियोजन की क्रिया सोद्देश्य क्रिया है, बिना उद्देश्यो के नियोजन के विषय मे सोचन सम्भव नही है।" नियोजन के ये उद्देश्य आर्थिक, राजनैतिक एव सामाजिक हो सक हैं जिन्हे निम्न तालिका से दर्शाया जा सकता है।

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

(A) आर्थिक उद्देश्य	(B) सामाजिक उद्देश्य	(C) राजनैतिक उद्देश्य
(i) प्राकृतिक साधनो का विदोहन	(i) सामाजिक सुरक्षा	(i) वाह्य आक्रमणो से सुरक्षा
	(ii) सामाजिक समानता	
(ii) उत्पादन वृद्धि	(iii) वर्ग-सघर्ष का समापन	(ii) शक्ति व सत्ता प्रसा
(iii) पूर्ण रोजगार	(iv) नैतिक एव बौद्धिक उत्थान	
(iv) कृषि का विकास		(iii) शान्ति एव व्यवस्था
(v) औद्योगीकरण		(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सहयो
(vi) आर्थिक सतुलन		
(vii) आर्थिक विषमता का समापन		
(viii) युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण		
(ix) आर्थिक स्थायित्व व व्यापार चक्रो पर नियन्त्रण		
(x) राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि		
(xi) आर्थिक आत्म निर्भरता		

(A) आर्थिक उद्देश्य
(Economic Objectives)

नियोजन के आर्थिक उद्देश्य देश की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न हो हो सकते हैं। अर्द्ध-विकसित विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में नियोजन के आर्थिक उद्देश्य प्राकृतिक साधनों का विदोहन, पूर्ण रोजगार, उत्पादन वृद्धि, सन्तुलित विकास आदि होते हैं जबकि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नियोजन का उद्देश्य आर्थिक स्थायित्व, पूर्ण रोजगार व विकास होता है। नियोजन के उद्देश्य मुख्यत आर्थिक ही होते है—जैसे

(i) **प्राकृतिक साधनों का शोषण**—अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के नियोजन का उद्देश्य देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास के लिये विदोहन करना होता है। इन साधनों का शोषण करने से अधिक रोजगार, अधिक आय और अधिक सन्तुलन विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

(ii) **उत्पादन वृद्धि**—आर्थिक नियोजन का उद्देश्य उत्पादन के सभी क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि करना होता है। इसके लिये उत्पादन साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है तथा उत्पादन व्यवस्था को इस प्रकार सगठित किया जाता है कि कम से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर सामाजिक समृद्धि में वृद्धि की जा सके।

(iii) **पूर्ण रोजगार**—आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश की उपलब्ध मानव-शक्ति का समुचित एव लाभपूर्ण उपयोग करना होता है। इसके लिये बेरोजगारी का निराकरण, रोजगार अवसरों में वृद्धि तथा आशिक रोजगार वालों को पूर्ण रोजगार व्यवस्था की करना होता है। ज्विग (Zweig) के शब्दों में "पूर्ण *रोजगार या तो आर्थिक नियोजन का प्राथमिक उद्देश्य या किसी भी अन्य कारणों से* अपनाये गये तो नियोजन अनिवार्य **उप-उत्पत्ति** (Necessary by-Product) होती है।" रूस में प्रथम योजना में ही बेरोजगारी की समस्या का समापन हो गया। अमेरिका ने भी न्यूडील (New Deal) से बेकारी को दूर करने की योजना क्रियान्वित की तथा 1946 में पूर्ण रोजगार नियोजन प्रारम्भ किया। भारत में भी आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य बेरोजगारी को दूर करना व रोजगार अवसरों में वृद्धि करना है।

(iv) **कृषि का विकास**—अर्द्ध-विकसित एव पिछड़ी अर्थ व्यवस्थाओं में आर्थिक नियोजन का एक उद्देश्य वहाँ की कृषि का विकास करना है ताकि भावी विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। भारत में भी प्रथम पचवर्षीय योजना में कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। अभी भी खाद्यान्नों की आत्म-निर्भरता व औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति के लिये कृषि विकास एक प्रमुख उद्देश्य है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार वृद्धि, आर्थिक समृद्धि तथा सन्तुलित विकास के परस्पर सम्बन्धित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

(i) **औद्योगीकरण व आधारभूत उद्योगो का तीव्र विकास**—किसी भी अर्थ-व्यवस्था मे नियोजन का एक मुख्य उद्देश्य आधारभूत उद्योगो व उपभोग उद्योगो का तेजी से विकास करना होता है क्योकि औद्योगीकरण के बिना अर्थ-व्यवस्था का न तो सर्वाङ्गीण एव सन्तुलित विकास सम्भव है और न पूर्ण रोजगार व साधनो का पूर्ण विदोहन ही हो पाता है। यही कारण है कि आज सभी पिछड़े राष्ट्र औद्योगीकरण के लिये नियोजन अपना रहे है। भारत मे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ व पांचवी योजनाओ मे औद्योगीकरण का उद्देश्य प्रमुख रहा है।

(ii) **सन्तुलित आर्थिक विकास**—आर्थिक नियोजन का उद्देश्य यह होता है कि अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो का सन्तुलित विकास हो। इसके लिये पिछड़े क्षेत्रो के विकास को अधिक महत्व दिया जाता है। इस प्रकार कृषि व उद्योगो मे सन्तुलन उपभोग व उत्पादन मे सन्तुलन बचत व विनियोग मे सन्तुलन, सभी क्षेत्रो मे सन्तुलित विकास का सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

(iii) **आर्थिक विषमता का समापन**—आर्थिक नियोजन का उद्देश्य न केवल उत्पादन वृद्धि ही है वरन् उत्पादन का न्यायोचित वितरण भी है जिसमे समाज मे सम्पत्ति, आय व अवसर की समानता स्थापित की जा सके और समाज मे व्याप्त आर्थिक विषमता को दूर किया जा सके। कभी-कभी आर्थिक नियोजन प्रक्रिया मे न चाहते हुय भी आर्थिक विषमता बढ जाती है जैसा भारतीय योजनाओ मे दृष्टि-गोचर हुआ है। अब आर्थिक विषमता के समापन के लिये प्रभावी कदम 20-सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत उठाये जा रहे हैं।

(iiii) **युद्धोपरान्त पुर्ननिर्माण**—आर्थिक नियोजन का उद्देश्य कभी-कभी युद्ध जर्जरित अर्थ व्यवस्थाओ का पुर्ननिर्माण करना होता है ताकि वह देश पुन अपनी खोई हुई आर्थिक शक्ति साधन व उत्पादन क्षमता स्थापित कर विकास की ओर अग्रसर हो सके। यूरोप मे मार्शल योजना व जापान मे पुर्ननिर्माण योजनायें इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(ix) **आर्थिक स्थायित्व व व्यापार चक्रो पर नियन्त्रण**—पूँजीवादी देशो मे स्वतन्त्र मूल्य प्रणाली कभी-कभी व्यापार चक्रो को जन्म देती है जिससे समस्त अर्थ-व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाती है। 1930 की विश्व व्यापी आर्थिक मदी ने समूचे विश्व को मदी के ऐसे दल दल म फसा दिया था कि बेकारी, भूखमरी व सम्पन्नता मे विपन्नता का सकट था। ऐसे समय मे आर्थिक स्थायित्व के लिये अमेरिका मे न्यू डील (New Deal) की नीति अपनाई गई, ब्रिटेन मे भी आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियां अपनाई गई। अत आर्थिक नियोजन का एक मुख्य उद्देश्य व्यापार चक्रो के दुष्प्रभावो से मुक्ति प्रदान करना तथा आर्थिक स्थायित्व स्थापित करना भी है।

(x) **राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि**—आर्थिक विकास का माप-दण्ड राष्ट्रीय आय के स्तर एव प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि होना है अत आर्थिक नियोजन का उद्देश्य अतत राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि करना है ताकि

लोगो की आय व उपभोग मे वृद्धि से उनकी आर्थिक समृद्धि एव सामाजिक कल्याण का लक्ष्य पूरा हो। भारत की पाचवी योजना मे भी राष्ट्रीय आय मे प्रति वर्ष 55% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

(xi) आत्म निर्भरता—यद्यपि अर्द्ध-विकसित विकासशील राष्ट्रो मे आर्थिक नियोजन की प्रारम्भिक अवस्था मे नियोजन का उद्देश्य आत्म-निर्भरता न होकर तीव्र आर्थिक विकास करना होता है पर एक निश्चित स्तर के बाद देश मे आर्थिक नियोजन का उद्देश्य अन्तत आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था की स्थापना होता है ताकि वह राष्ट्र अपनी आवश्यकताओ के लिये दूसरो पर आश्रित न हो। अपना विकास अपने ही स धनो से करने मे सक्षम हो। आज भारत खाद्यान्न म आत्म-निर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त करने मे कृत-सकल्प है। अन्य क्षेत्रो मे भी 1985 90 तक आत्म निभरता का लक्ष्य है।

(B) सामाजिक उद्देश्य
(Social Objectives)

आयोजन के आर्थिक उद्देश्यो मे सामाजिक आकाक्षाओ न्याय व सामाजिक सुरक्षा का प्रतिबिम्ब नजर आता है क्योकि आर्थिक नियोजन का अन्तिम लक्ष्य अधिकतम सामाजिक कल्याण करना होता है अत आर्थिक नियोजन के निम्न सामाजिक उद्देश्य होते है—

(i) सामाजिक सुरक्षा—आर्थिक नियोजन का एक सामाजिक उद्देश्य यह है कि समाज के प्रत्यक सदस्य की उसके पाच महान् शत्रुओ—बेकारी, बीमारी, वृद्धावस्था, गरीबी व आकस्मिक आपत्ति व दुर्घटना से सुरक्षा प्रदान करना है इसके लिये 'सामाजिक बीमा व सामाजिक सहायता की व्यवस्था की जाती हैं।

(ii) सामाजिक समानता—आर्थिक नियोजन का उद्देश्य आर्थिक समानता के द्वारा समाज के प्रत्यक सदस्य को समानता के अवसर प्रदान करना है ताकि समाज मे प्रत्येक व्यक्ति को बिना वर्ग लिंग भेद के समानता का दर्जा मिले, इसके लिये निम्न एव पिछड़े वर्ग के लोगो को आर्थिक सहायता, नौकरियो मे प्राथमिकता तथा राजनैतिक स्तर पर आरक्षण (Reservation) की व्यवस्था की जाती है। जैसा अब 20सूत्रीय कार्यक्रम म दलित एव पिछड़े लोगों की आर्थिक समानता के प्रयास प्रबल हैं—

(iii) वर्ग सघर्ष का समापन—आर्थिक विषमता एव सामाजिक असमानता शोषण को जन्म देती है और समाज दो वर्गों—पहला धनी वर्ग तथा दूसरा निधन वर्ग मे बँट जाता है जिनके परस्पर वैमनस्य एव भेदभाव वर्ग सघर्ष व खूनी क्रान्ति के कारण बनते हैं अत आर्थिक नियोजन द्वारा आर्थिक समानता, सामाजिक सुरक्षा व समानता स्थापित कर वर्ग सघर्ष को समाप्त करने का प्रयास किया जाता है।

(iv) नैतिक एव बौद्धिक उत्थान—नियोजन के आर्थिक उद्देश्यो की पूति मे नैतिक एव बौद्धिक उत्थान का उद्देश्य पूरा होता है। सभी आर्थिक उद्दश्यो के साथ मानव का अपना सर्वांगीण विकास अन्तर्निहित है।

नियोजन के उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित व आत्मनिर्भर होते हैं

यद्यपि आर्थिक नियोजन के उद्देश्यो को अलग-अलग श्रेणियो—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एव अन्य मे—विभाजित किया गया है। इसका अभिप्राय यह नही कि ये उद्देश्य एक दूसरे से पूर्णत पृथक् एव असम्बन्धित उद्देश्य हो। अल्पकाल मे ये उद्देश्य परस्पर विरोधी, या प्रतियोगी हो सकते हैं पर दीर्घकाल म उनका यह भेद कम या समाप्त हो जाता है क्योकि य उद्देश्य अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, सामाजिक समानता तथा राजनैतिक सुरक्षा एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित एवम् आत्मर्निभर उद्देश्य हैं क्योकि बिना आर्थिक विकास व पूण रोजगार के आर्थिक समानता व राजनैतिक सुदृढता की कल्पना निरर्थक है और बिना राजनैतिक सुरक्षा के आर्थिक विकास मे बाधा आती है। इसी प्रकार आर्थिक विषमता समाप्त किय बिना सामाजिक समानता, वर्ग सघर्ष का समापन तथा शान्ति स्थापित की आशा करना व्यर्थ है। यही नही विभिन्न श्रेणियो मे रखे गये उद्देश्य भी परस्पर निर्भर हैं अत प्रत्येक आर्थिक नियोजन व्यवस्था मे इन तीनो प्रकार के उद्देश्यो का समावेश होता है पर समय, स्थिति एव परिस्थितियो के अनुरूप उनके महत्व को निर्धारित किया जाता है। युद्ध व सकट काल मे राजनैतिक व आर्थिक उद्देश्यो की प्रमुखता होती है जबकि शान्तिकाल मे सामाजिक कल्याण की भावना से प्रेरित योजनाओ मे आर्थिक एव सामाजिक उद्देश्यो की प्रधानता होती हैं। भारत की पचवर्षीय योजनाओ मे इन उद्देश्यो का विवेकपूर्ण समायोजन किया गया है जैसे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि, रोजगार अवसरो मे वृद्धि एव अवसर की समानता, औद्योगीकरण, कृषि का तेजी से विकास, आधार एव मूलभूत उद्योगों का सुदृढ आधार तैयार करना, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक, आदि से सामाजिक न्याय व सुरक्षा प्रदान कर देश की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने तथा आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था कायम करना है।

भारत की पंचवर्षीय योजनाओ के उद्देश्य एव व्यूह रचना
(Objectives & Strategy of India's five Year Plans)

भारत की पचवर्षीय योजनाओ मे परिस्थितयो को ध्यान मे रखते हुए आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक तीनो प्रकार के परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित तथा आत्मनिर्भर उद्देश्यो का समावेश किया गया है। प्रत्यक योजना मे समय, स्थिति तथा परिस्थितियो मे एकरूपता न होने से उद्देश्यो मे भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। योजनावार उद्देश्य निम्न विवरण से स्पष्ट हैं—

प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य—

प्रथम पचवर्षीय योजना भारत मे सदियो की दासता और शोषण से पीडित निष्क्रिय अर्थव्यवस्था मे जागृति का प्रथम तथा नया प्रयोग था। देश मे विभाजन तथा युद्धोपरान्त समस्यायें भी प्रबल थी। अत इस योजना के उद्देश्य दो थे—

(1) द्वितीय विश्व-युद्ध तथा देश मे विभाजन से अर्थव्यवस्था मे उत्पन्न असन्तुलन को दूर करना, तथा

(2) देश मे सर्वांगीण तथा सन्तुलित विकास की एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ करना जिसमे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि, जीवन स्तर मे सुधार तथा सविधान मे वर्णित उद्देश्यो की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इस योजना मे पहला उद्देश्य अल्पकालिक तथा तत्कालीन आर्थिक असन्तुलन की समस्याओ के समाधान से सम्बन्धित है तो दूसरा उद्देश्य दीर्घकालिक तथा सामाजिक एव आर्थिक ढाँचे मे प्रजातान्त्रिक ढग से परिवर्तनो के लक्ष्य से ओत प्र है जिससे देश के मानवीय तथा भौतिक साधनो के विकास तथा समुचित उपयोग आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो सके तथा समाज मे धन की प्राप्ति, आ अवसर तथा सम्पत्ति की असमानताओ को दूर कर सामाजिक सुरक्षा एव न्य सुलभ हो सके।

प्रथम योजना की व्यूह रचना (Strategy)[1]

सामान्य रूप मे व्यूह रचना (Strategy) शब्द का प्रयोग युद्ध मे "मोर्चाबंद के लिये प्रयुक्त किया जाता है और यह युद्ध की योजना तकनीकी निश्चित क्रम त उपायो से सम्बन्धित है। आधुनिक युग मे यह शब्द आर्थिक क्षेत्र मे बहुत प्रचलि है जैसे उद्योग व्यूह रचना, रोजगार व्यूह रचना, कृषि व्यूह रचना, योजना व्य रचना निर्यात व्यूह रचना आदि। जिस प्रकार युद्ध मे विजय श्री प्राप्त कर के लिये सभी मोर्चे सावधानी से जमाये जाते है ठीक उसी प्रकार आर्थिक नियोजन आर्थिक दुश्मनो-गरीबी बेकारी भुखमरी, आर्थिक पिछड़ापन पर विजय पाने त आर्थिक सुरक्षा आदि निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये अर्थव्यवस्था के विभि अगो की "मोर्चाबन्दी" की जाती है। इसी प्रकार आर्थिक शब्दावली मे आर्थिक योज के उद्देश्यो प्राथमिकताओ उपायो टेक्नीक आदि के निर्धारण की क्रिया को योज की 'व्यूह रचना" कहा जाता है। प्रो० लोकनाथ के अनुसार 'व्यूह रचना' का आश उन उपायो व सामान्य रूप से प्राथमिकताओ के उस क्रम से है जो इच्छित लक्ष्यो क प्राप्त करने के लिय अपनाया जाता है।" 'The term Strategy refers to th means and order of priorities in general that should be followe to achieve the desired ends इस प्रकार "योजना व्यूह रचना" मे तीन बात का समावेश होता है—(i) लक्ष्य निर्धारण (ii) प्राथमिकताओ का क्रम निर्धार तथा (iii) लक्ष्यो की पूर्ति के लिय उपायो का चयन। व्यूह रचना म अर्थव्यवस्थ के प्रमुख अवरोधो (Crucial Constraints) को ध्यान म रखते हुए स्थिरता साथ विकास (Growth with Stability) का मार्ग चुनना पड़ता है।

उपयुक्त प्रथ के सन्दर्भ म भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे विकास क

1 Strategy शब्द के हिन्दी रूपान्तर मे "व्यूह रचना" मूलभूत नीति मोर्चाबन्दी, शैली आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है।

कोई स्पष्ट व्यूह रचना दृष्टिगोचर नहीं होती है। न तो आय के सम्बन्ध में कोई दीर्घकालीन अनुमान था और न कोई प्राथमिकता का उपयुक्त क्रम। यह तो पूर्व-चालित योजनाओं का एक समूह था और इसीलिये अनेक विद्वानों ने इसे सार्वजनिक व्यय की एक योजना की संज्ञा दी है। योजना के विनियोग के प्रारूप में कृषि व सिंचाई विकास को प्राथमिकता दी गई, ताकि कृषि उत्पादन में वृद्धि से खाद्यान्न व कच्चे माल की पूर्ति बढ़ सके और औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हो। ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आर्थिक समृद्धि तथा उच्च जीवन स्तर के लिये 1952 में सामुदायिक विकास योजना तथा 1953 में राष्ट्रीय सेवा विस्तार कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। प्रथम योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल वास्तविक व्यय 1,960 करोड़ रुपये हुआ उसमें कृषि, सिंचाई तथा सामुदायिक विकास योजनाओं पर 601 करोड़ रुपये व्यय हुआ। इस प्रकार कुल व्यय का लगभग 33% व्यय हुआ। अगर शक्ति विकास पर व्यय जोड़ दिया जाय तो यह कुल व्यय का 44% भाग था। बेरोजगारी की समस्या के निराकरण के लिये योजना आयोग ने ग्यारह सूत्रीय कार्यक्रम लागू किया जिसमें लघु कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, गृह निर्माण सहायता, सड़क निर्माण, भू-संरक्षण, सहकारिता तथा प्रशिक्षण आदि प्रमुख थे।

प्रथम योजना में उद्देश्यों तथा व्यूह रचना का मूल्यांकन

प्रथम योजना, अर्थ-व्यवस्था में विभाजन तथा युद्धोत्तरकालीन असन्तुलन को समाप्त करने में सफल कही जा सकती है क्योंकि खाद्यान्न का उत्पादन लक्ष्य से भी अधिक रहा। मुद्रा-स्फीति पर काबू पा लिया। राष्ट्रीय आय में 18% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय में 11% वृद्धि होने का अनुमान है। पूँजी विनियोग 3 660 करोड़ रुपये हुआ। फिर भी वृहत् उद्योगों एवं खनिज विकास पर कुल योजना व्यय का केवल 4% भाग अदूरदर्शिता को प्रदर्शित करता है। यद्यपि प्रथम योजना में 44 लाख लोगों को रोजगार दिया गया फिर भी योजना के अन्त में 53 लाख लोगों का बेरोजगार होना तथा आर्थिक समानता के स्थान पर आर्थिक विषमता और केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियां दीर्घकालीन उद्देश्यों की असफलता स्पष्ट करती हैं। प्रथम योजना अनुभवों के अभाव में "TRIAL & ERROR" पर आधारित प्रयास था। संक्षेप में यही कहना न्यायसंगत है कि इस योजना ने हमें अधिक व्यावहारिक, महत्वाकांक्षी तथा दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाने को प्रेरित किया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (Objectives)

प्रथम योजना के सफल क्रियान्वयन, देश में औद्योगीकरण की तीव्र लालसा तथा 1954 में कांग्रेस अधिवेशन में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन का संकेत मिला। तदनुसार द्वितीय योजना में उद्देश्य अधिक महत्वाकांक्षी, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि से व्यापक तथा दीर्घकालीन लक्ष्यों से प्रेरित थे। इस योजना में निम्न उद्देश्य थे—

(1) राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि—राष्ट्रीय आय में पाँच वर्ष

में 25% तथा प्रति व्यक्ति आय में 18% वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया ताकि देशवासियों का जीवन स्तर उच्च हो सके।

(2) द्रुत गति से औद्योगीकरण—इसके लिये आधारभूत एवं मूलभूत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी जिससे भावी औद्योगीकरण का सुदृढ़ आधार तैयार हो सके।

(3) रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि—बढ़ती बेरोजगारी समाजवादी एवं कल्याणकारी अर्थव्यवस्था में कलंक है और मानव शक्ति के दुरुपयोग का द्योतक है। अतः इस योजना में बेरोजगारी के समापन के लिये श्रम-प्रधान उद्योगों के विकास पर बल दिया गया और योजना काल में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में 80 लाख लोगों को रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य रखा।

(4) आर्थिक विषमताओं में कमी तथा केन्द्रीयकरण पर रोक—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के संकल्प को मूर्तरूप प्रदान करने के लिये इस योजना में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करना, आर्थिक शक्तियों के समान वितरण को प्रोत्साहित करना तथा आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर रोक लगाने के उद्देश्य रखे गए।

योजना आयोग के अनुसार "दूसरी योजना का उद्देश्य ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण करना, औद्योगीकरण की सुदृढ़ नींव रखना, जनता के शक्तिहीन एवं अधिकारहीन वर्ग को समुन्नति का अवसर प्रदान करना तथा देश के सभी भागों का सन्तुलित विकास करना है।" इससे स्पष्ट है कि द्वितीय योजना के उद्देश्य व्यापक, दूरदर्शितापूर्ण तथा विवेकशील थे जिसमें आर्थिक समृद्धि के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि तथा सुदृढ़ आधार तैयार करने के साथ-साथ सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा तथा राजनैतिक स्थायित्व के तत्व निहित थे।

द्वितीय योजना की व्यूह रचना

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस योजना में व्यूह रचना अधिक उपयुक्त थी। औद्योगीकरण के लिए 1956 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा तथा औद्योगिक क्षेत्र में आधारभूत और मूलभूत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई। जहाँ प्रथम योजना में लघु एवं कुटीर तथा वृहत् उद्योगों एवं खनिज विकास पर कुल योजना व्यय का केवल 2% तथा 4% भाग व्यय किया गया वहाँ द्वितीय योजना में क्रमशः 4% तथा 20% भाग व्यय हुआ। सचालन शक्ति पर कुल व्यय का लगभग 10 प्रतिशत भाग व्यय किया गया। उद्योगों के वित्तीय साधनों की पूर्ति के लिए वित्तीय निगमों की स्थापना की गई। औद्योगिक नीति में राष्ट्रीयकरण के भय का निराकरण कर निजी उद्योगपतियों का औद्योगीकरण में सक्रिय योगदान करने की व्यवस्था की गई। साथ ही नीति क्षेत्रीय असमानता को दूर करने तथा केन्द्रीयकरण व एकाधिकार प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण के लिये उचित व्यवस्था की गई। रोजगार के साधनों में वृद्धि के लिये कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास पर बल दिया गया।

1957 मे विदेशी विनिमय के सकट का सामना करने के लिये निर्यात सम्वधन तथा आयात नियन्त्रण की नीति अपनाई गई।

दीर्घकाल मे आर्थिक विकास की गति को तेज करने तथा आत्मनिर्भर विकास (Self Sustained Economic Growth or Self Generating Economy) के लिये उद्योगो म लोहा इस्पात, मशीन निर्माण, बिजली का भारी सामान, भारी रसायन आदि के उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है और इनके विकास का अधिकाधिक दायित्व सार्वजनिक क्षेत्र पर रखा गया। कृषि एव सिंचाई विकास को प्राथमिकता मे तृतीय स्थान मिला। इन पर कुल व्यय का लगभग 20% भाग व्यय हुआ जबकि परिवहन एव सचार विकास पर कुल व्यय का 28% भाग व्यय हुआ और उनका प्राथमिकता म द्वितीय स्थान रहा। सामाजिक सेवाओ पर इस योजना काल मे प्रथम योजना के मुकाबले व्यय का प्रतिशत 23 से घटकर 18 प्रतिशत ही रह गया।

द्वितीय योजना के उद्देश्यो तथा व्यूह रचना का मूल्यांकन

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश म विकास की गति तेज करने तथा दीर्घकाल मे आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करने के लिए औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता तथा आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो के विकास पर विशेष बल की व्यवस्था तर्कसगत, व्यावहारिक, उपयुक्त एव औचित्यपूर्ण थी। उद्योगो मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार मे समाजवाद का स्वप्न था तो आर्थिक विपमताओ का समापन न्यायोचित था। मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण तथा रोजगार अवसरो मे वृद्धि के लिये लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास का प्रयत्न लाभदायक था। इस योजना के उद्देश्यो मे तीनो प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यो के सामन्जस्य की कोशिश की गई थी और व्यूह रचना का वास्तविक निर्धारण इसी से प्रारम्भ होता है। योजना मे उद्देश्यो की पूर्ति आशानुकूल कही जा सकती है फिर भी विफलताओ को भुलाया नही जा सकता। ये विफलतायें निम्न है—

(1) **आर्थिक विपमताओ मे वृद्धि**—सरकार के प्रयत्नो के बावजूद घन के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिला तथा एकाधिकारी प्रवृत्तियां प्रवल हुईं। प्रो० नकसे, प्रो० वकील, प्रो० ए० के० दास०, प्रो० महलानोबिस समिति आदि के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना कोरी कल्पना रही।

(2) **विविध नीतियो के क्रियान्वयन के समन्वय का अभाव**—योजना निर्माण कार्य तो प्रबल रहा पर परिपालन पक्ष कमजोर था। प्राथमिकता निर्धारण मे विभिन्न मन्त्रालयो, विकास परिषदो और आयोगो मे समायोजन का अभाव रहने से क्रियान्वयन मे प्रत्याशित सफलता न मिल सकी। कृषि को कम महत्व देना त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुआ।

(3) **सुदृढ़ मूल्य नीति का अभाव**—प्रथम योजना के अनुभवो को भुलाकर द्वितीय योजना मे मूलभूत उद्योगो के विकास तथा हीनार्थ प्रबन्ध की व्यवस्था से

सम्भावित मूल्य वृद्धि के नियन्त्रण के लिये सुदृढ़ तथा सुनिश्चित नीति का अभाव संकट का कारण बना।

(4) सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र औद्योगिक उत्पादन में असन्तुलन—सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विस्तार निजी क्षेत्र के लिये कुछ सीमा तक हतोत्साहन का कारण बना। पूंजीगत उद्योगों के उत्पादन तथा उपभोग उद्योगों के उत्पादन में आवश्यक तालमेल न बैठ सका। सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग अधिक हुआ पर हानि की वृद्धि से चिन्ता बढ़ी।

(5) व्यूह रचना कमजोर रही—इस योजना में प्राथमिकताओं का निर्धारण तथा लक्ष्यों का निर्धारण महत्वाकांक्षी सिद्ध हुए। अपनाया गया Growth Model भी काल्पनिक रहा। जहाँ राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में क्रमशः 25% तथा 18% वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था वहाँ पाँच वर्षों में राष्ट्रीय आय में 20% तथा प्रति व्यक्ति आय में 11% ही वृद्धि हुई। केवल राष्ट्रीय आय के 10% के बजाय 8.5% ही बढ़ी। योजना के क्रियान्वयन में भी आवश्यक समन्वय न होने से प्रगति आशानुकूल न रही।

इस प्रकार द्वितीय योजना के उद्देश्य व्यापक, विवेकशील तथा समाजवाद की स्थापना की ओर महत्वपूर्ण कदम थे। व्यूह रचना में उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता भावी औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त करने में आवश्यक थी जिससे अर्थव्यवस्था के आत्मनिर्भर विकास का सुदृढ़ आधार बन जाये पर लक्ष्यों की पूर्ति न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण था।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (Objectives)

तृतीय पंचवर्षीय योजना भारत की योजनाओं में देश के सर्वांगीण विकास तथा स्वावलम्बी एवं स्वयं स्फूर्त अर्थव्यवस्था के निर्माण का एक लम्बा डग था। इस योजना के उद्देश्य भी समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण के तत्वों से प्रेरित थे। इस योजना में द्वितीय योजना के उद्देश्यों के साथ कृषि उपज में वृद्धि तथा खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता का उद्देश्य और जोड़ दिया गया। ये उद्देश्य इस प्रकार थे—

(1) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—अगले पाँच वर्षों में राष्ट्रीय आय में 25 से 30 प्रतिशत वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय में 16.6% वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया। पूँजी विनियोग की संरचना को इस प्रकार व्यवस्थित करने का लक्ष्य था जिससे आगे योजनाओं में भी इस विकास दर को कायम रख सकें।

(2) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता तथा कृषि उपज में वृद्धि—देश में खाद्यान्नों के आयात को कम करने तथा पर्याप्त खाद्यान्न की पूर्ति के लिये खाद्यान्नों के उत्पादन में 30% वृद्धि का लक्ष्य खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के उद्देश्य से प्रेरित था। कृषि उपज में वृद्धि का उद्देश्य उद्योगों के लिये पर्याप्त कच्चे माल उपलब्ध करने तथा विदेशी व्यापार के लिये अतिरेक बढ़ाने के लिये था।

(3) **आधारभूत उद्योगों का विस्तार**—अर्थव्यवस्था को स्वावलम्बी तथा आत्म-निर्भर बनाने के लिय बुनियादी उद्योग—लोहा, इस्पात, रसायन, बिजली का भारी सामान, मशीन निर्माण, भारी रसायन तथा तेल ईंधन उद्योगो मे विकास से औद्योगिक उत्पादन मे पाँच वर्षों मे 69% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

(4) **रोजगार के अवसरो मे वृद्धि**—मानव शक्ति के समुचित उपयोग तथा बेकारी के निराकरण के लिय श्रम प्रधान योजनाओ को इस प्रकार विकसित करना जिससे पाच वर्षों मे 140 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सके।

(5) *आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करना*—समाजवादी समाज की स्थापना के स्वप्न को साकार करने तथा वर्ग-सघर्ष की सम्भावनाओ के समापन के लिये एकाधिकारी प्रवृत्तियो पर रोक, केन्द्रीयकरण पर नियन्त्रण, आर्थिक विषमताओ की कमी तथा आर्थिक शक्ति के अधिक समान वितरण के लिये उचित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था करना आदि उद्देश्य थे।

ये उद्देश्य आर्थिक सुदृढता, सामाजिक समानता तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता और सुरक्षा मे उचित समन्वय के द्योतक तो हैं ही साथ ही व्यापक दूरदर्शितापूर्ण और महत्वाकांक्षी प्रतीत होते हैं। खाद्यान्नो में आत्म-निर्भरता का उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये पुन प्राथमिकताओ में वरीयता की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

तृतीय योजना की व्यूह रचना (Strategy)

तृतीय योजना मे निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये एक ऐसी व्यूह रचना की गई जिससे कृषि अर्थव्यवस्था का सुदृढ आधार, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र का सन्तुलन तथा विकास मे तकनीकी तथा प्राविधिक विधियो का बढ़ता उपयोग भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वावलम्बन तथा आत्म-निर्भरता की ओर अग्रसर कर सके। इसीलिये कृषि को पुन प्राथमिकता दी गई। साथ ही तीव्र औद्योगीकरण के लिय आधारभूत उद्योगों के विस्तार, विशालकाय तथा लघु उद्योगो मे समायोजन, रोजगार अवसरो मे वृद्धि तथा शीघ्र उत्पादकता के लिये लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर बल, उपभोग तथा उत्पादक उद्योगो मे समन्वय और क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने की नीतियाँ अपनाई गईं। कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का कारण सिंचाई सुविधाओ मे वृद्धि, रासायनिक खादो के उत्पादन तथा उपभोग मे वृद्धि, वैज्ञानिक कृषि के लिये उत्तम बीज, सुधरे उपकरण तथा पौध सरक्षण को महत्व दिया गया। उद्योगो को प्राथमिकता मे दूसरा तथा परिवहन एव सचार विकास को तृतीय स्थान दिया गया।

1962 मे चीनी आक्रमण तथा 1965 मे पाकिस्तानी आक्रमण से योजना व्यूह रचना मे सुरक्षा मय विकास (Defence-Cum-Development) का समावेश हुआ। योजना को युद्धोन्मुख (Defence-Oriented) तथा विकासोन्मुख (Development Oriented) बनाया गया। कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन मे तेजी लाने के साथ साथ प्रतिरक्षा क्षेत्र के उद्योगो मे उत्पादन वृद्धि तथा अनुसन्धान एव विकास की

नीति का अनुसरण किया गया। मूल्यो पर नियन्त्रण के लिये खाद्यान्नो के मूल्यो मे स्थिरता, उत्पादन लागतो म कमी, उपयुक्त मजदूरी नीति तथा हीनार्थ प्रबन्ध मे कमी की व्यूह रचना अपनाई गई। तृतीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित व्यय 7 500 करोड रुपया था पर वास्तविक व्यय 8,577 करोड रुपया हुआ। इसमे से 85% व्यय कृषि-सामुदायिक विकास, सिचाई तथा विद्युत विकास पर था जबकि उद्योगो के विकास पर कुल व्यय का 23% भाग था।

तृतीय पचवर्षीय योजना के उद्देश्यो तथा व्यूह रचना का मूल्याकन

तृतीय योजना के उद्देश्य और लक्ष्य जितने महत्वाकाक्षी थे उतने ही विफल तथा निराशाजनक रहे। राष्ट्रीय आय मे 25% से 30% की वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त न हो सका। राष्ट्रीय आय म केवल 13% की वृद्धि हुई। कृषि के उत्पादन मे वृद्धि बहुत कम थी। अत खाद्यान्न मे आत्म-निर्भरता की बात तो दूर रही यहा तक कि योजना काल मे 1,033 करोड रुपय मूल्य के खाद्यान्नो का आयात करना पडा। 1965-66 का वष कृषि उत्पादन की दृष्टि से असामान्य वर्ष था क्योकि इस वर्ष अभूतपूर्व सूखा तथा पाकिस्तानी आक्रमण से अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। कृषि उत्पादन मे 15% की कमी हुई। खाद्यान्न का उत्पादन जो 1964-65 मे 8 9 करोड टन था वह घटकर 1965-66 मे 8·2 करोड टन रह गया। योजनाकाल मे 140 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार प्रदान करने के बावजूद भी 120 से 160 लाख व्यक्ति बेकार थे।

हीनार्थ प्रबन्ध से वित्त साधनो की प्राप्ति के कारण तथा उत्पादक लागतो मे वृद्धि के साथ-साथ आक्रमणो के कारण सामान्य मूल्य स्तर मे 36% की वृद्धि हुई। कर भार की वृद्धि ने तथा मूल्य स्तर की वृद्धि ने जनसाधारण के जीवन स्तर मे वृद्धि एव सुधार मे रुकावट डाली और जीवन सकटपूर्ण हो गया।

देश म सन्तुलित विकास के लिये उद्योगो मे विकेन्द्रीकरण की व्यूह रचना अपनाई गई थी पर योजना के कार्यान्वयन से क्षेत्रीय विषमताओ मे आशानुकूल कमी न हो सकी।

सामाजिक उद्देश्य भी अधूरे रहे। धन के वितरण मे असमानता को दूर करने के लिये कोई प्रभावी कदम नही उठाया गया। एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ और प्रबल हुई। डॉ० आर० के० हजारी की रिपोर्ट इसका प्रत्यक्ष प्रतीक है।

फिर भी दूसरी ओर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से योजना मे सफलता मिली। 5 वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन मे 62% की वृद्धि हुई। आधारभूत उद्योगो के उत्पादन मे 100 से 500 प्रतिशत की वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन मे विविधता आई और सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार हुआ। भावी औद्योगिक विकास के लिये देश मे आवश्यक सुदृढ आधार तैयार हो गया जिससे विकास की गति तेज हो सके।

तीन वार्षिक योजनाओं में उद्देश्य एवं व्यूह रचना (1966–1969)

तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1965-66 मे देश मे अभूतपूर्व सूखा पड़ने, दो विदेशी आक्रमणो से रक्षा पर व्यय में वृद्धि होने, मूल्य स्तर मे निरन्तर वृद्धि, वित्तीय साधनो के अभाव अथवा विदेशी सहायता की अनिश्चितता से अर्थ-व्यवस्था मे "कि वर्त्तव्य विमूढम्" की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। साथ ही तृतीय योजना मे व्यापक असफलता और औद्योगिक क्षेत्र मे शिथिलता ने योजना निर्माताओ को चतुर्थ योजना को शीघ्र शुरू करने मे बाधा उपस्थित कर दी। मई 1966 मे अवमूल्यन से स्थिति और बिगड़ी। अत: चतुर्थ योजना के स्थान पर वार्षिक योजनाओ का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। ये तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-67, 1967-68 तथा 1968-69) **पचवर्षीय योजनाओ के बीच अवकाश** (Holiday in Planning) कहा जाता है।

इन वार्षिक योजनाओ के मूल मे पहली तीन पचवर्षीय योजनाओ मे पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की पूर्ति के लक्ष्य इतने व्यापक एव महत्वपूर्ण नही थे जितने तत्कालीन समस्याओ का निराकरण कर चतुर्थ योजना के लिये उचित वाताकरण तैयार करना। अत कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये गहन कृषि को बढ़ावा, कम समय मे अधिक उपज देने वाली फसलों को बढावा, लघु सिंचाई योजनाएँ तथा पौध सरक्षण कार्यक्रमो को प्रोत्साहन दिया गया। उद्योगो मे और खास तौर से इन्जीनियरिंग एव मशीन निर्माण उद्योगो मे शिथिलता को समाप्त करने के लिये उपभोक्ता साख को प्रोत्साहन, भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन, निर्यात सम्वर्द्धन, करो मे छूट तथा आर्थिक सहायता की नीति अपनाई गई। नही चाहते हुए भी हीनार्थ प्रबन्ध मे वृद्धि हुई।

सरकार के इन प्रयत्नो के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था मे पुन. आशा का सचार हुआ। 1 अप्रैल 1969 से फिर चतुर्थ पचवर्षीय योजना को प्रारम्भ करने के लिए उपयुक्त वातावरण बना।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के उद्देश्य

योजना आयोग के अनुसार भारत मे पचवर्षीय योजनाओ के व्यापक उद्देश्य तेजी से आर्थिक विकास के साथ-साथ स्थायित्व (Growth with Stability) तथा सामाजिक न्याय और सामाजिक व आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना के रूप मे निरूपित किये जा सकते हैं।[1]

इन्ही व्यापक उद्देश्यो के सदर्भ मे भारत की चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे भी स्थायित्व के साथ विकास पर बल तथा समाजवाद का उद्देश्य रखा गया। इन व्यापक उद्देश्यो मे अग्र उद्देश्यो का समावेश था —

---

1 'The broad objectives of Planning could thus be defined as rapid economic development accompanied by continuous progress towards equality and social justice and the establishment of a social economic democracy.' —Planning Commission

(1) राष्ट्रीय आय मे 5 5% वार्षिक वृद्धि—आर्थिक स्थिरता एव प्रगतिशील आत्मनिर्भरता के लिये चतुर्थ योजना मे राष्ट्रीय आय मे 5 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है और 1980–81 तक विकास की दर (Rate of Growth) 6% वार्षिक करने का दीर्घकालीन लक्ष्य था।

(2) स्वावलम्बन एव स्वयं स्फूर्तता—भारतीय अर्थ व्यवस्था को आगामी दस वर्षो मे आत्म-निर्भर बनने के लिये कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रो के उन कार्यक्रमो को प्राथमिकता देना जिनके क्रियान्वयन से भावी विकास बिना विदेशी सहायता के सभव हो सके।

(3) मूल्य स्थायित्व—मूल्य स्थायित्व आर्थिक क्षेत्र की अनिश्चितता व निराशा को समाप्त कर अधिक उत्पादन तथा सहयोग को प्रोत्साहन देता है। अतः जनता को योजनाओ से लाभान्वित करने के लिये मूल्य स्थायित्व की नीति का उद्देश्य रखा गया है।

(4) खाद्यान्न मे आत्म-निर्भरता तथा कृषि उपज मे वृद्धि—भारत मे हरित क्रांति लाकर 1970–71 तक खाद्यान्न मे आत्मा-निर्भरता का लक्ष्य रखा गया और कृषि क्षेत्र मे उपज मे 5% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था।

(5) जीवन स्तर मे वृद्धि तथा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में द्रुत प्रगति—आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि से ही मूल्य स्थायित्व तथा जीवन-स्तर में सुधार की अपेक्षा की जा सकती है। अत उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे द्रुत गति से वृद्धि करने का उद्देश्य था।

(6) आधारभूत उद्योगो का विस्तार—रासायनिक, धात्विक, खनिज तथा यातायात और मशीन निर्माण उद्योगो के विकास के लिये प्रचलित कार्यों मे तेजी तथा नये कार्यक्रमो का क्रियान्वयन करना जिससे पाँचवी योजना के लिये सुदृढ़ आधार तैयार हो जाये।

(7) मानवीय साधनो का विकास एव समुचित उपयोग—इसके लिये सामाजिक सेवाओ का विस्तार, ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रशिक्षण की वृद्धि तथा समुचित अर्थ-व्यवस्था मे रोजगार अवसरो की वृद्धि।

(8) जनसख्या नियन्त्रण—जनसंख्या पर मात्रात्मक नियन्त्रण के लिये परिवार नियोजन सुविधाओ का तेजी से विस्तार तथा गुणात्मक नियन्त्रण के लिये चिकित्सा सुविधाओ तथा पौष्टिक आहार की व्यवस्था।

(9) सामाजिक न्याय एवं समानता—इसके अन्तर्गत गरीबो की आर्थिक सहायता करने, पिछड़े वर्गो के हितो की सुरक्षा करने तथा आय एव सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण पर रोक आदि से सामाजिक एव आर्थिक लोकतन्त्र को सुदृढ़ करना।

इस प्रकार चतुर्थ योजना के उद्देश्यो मे समाजवाद का स्वप्न सजोया गया था जहाँ पहले तीन पचवर्षीय योजनाओ मे मूल्य स्थायित्व, जनसख्या नियन्त्रण और

उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि के उद्देश्यो का समावेश नही था, इस योजना मे उनको उपयुक्त स्थान दिया गया। इसमे स्थायित्व के साथ विकास (Growth with Stability) को प्रधानता देते हुए सामाजिक एव आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना के प्रयास का समावेश था।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना की व्यूह रचना

भारत मे अब तक आर्थिक नियोजन के क्षेत्र मे आई बाधाओ की नई त्रुटियो और लक्ष्यो तथा उपलब्धियों के बीच अन्तर को मद्देनजर रखते हुए चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे विकास की व्यूह रचना अधिक रचनात्मक, विवेकशील और व्यापक थी। स्थायित्व के साथ विकास और सामाजिक समानता व न्याय पर आधारित सामाजिक, आर्थिक लोकतन्त्र का मार्ग प्रशस्त करने के लिय नवीन व्यूह रचना महत्वपूर्ण थी। इस व्यूह रचना की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं—

(1) कृषि उत्पादन मे होने वाले उतार-चढाव को रोकने के लिये कृषि मे हरित-क्रान्ति की शुरुआत तथा सुरक्षात्मक कार्यों का समावेश था। इसके अन्तर्गत सघन कृषि कार्यक्रमो का तेजी से विस्तार, कम समय मे अधिक उपज देने वाली फसलो की बुआई, पौध स क्षण, लघु सिंचाई साधनो का विकास, रासायनिक खादो का उपयोग, भूमि सुधारो मे तेजी तथा उपयुक्त एव प्राकृतिक प्रकोपो से सुरक्षित क्षेत्रो मे कृषि विकास कार्यक्रमो को प्राथमिकता देना आदि थ। इसके साथ-साथ कृषि मे पडतो के उत्पादक उद्योगो को औद्योगिक विकास म महत्वपूर्ण स्थान दिया गया जैसे खाद उद्योग, कीटाणु नाशक औषधि उद्योग, कृषि उपकरण उद्योग आदि। कृषि एवं सिंचाई पर कुल 3815 करोड रुपया व्यय की व्यवस्था थी।

(2) खाद्यान्नो मे आत्म-निर्भरता के लिये बफर स्टॉक का निर्माण।

(3) मूल्यो मे स्थायित्व तथा मुद्रा स्फीति को न बढाते हुए अतिरिक्त आन्तरिक साधन जुटाना।

(4) आत्म-निर्भरता तथा स्वावलम्बन के लिय उद्योगो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और औद्योगिक विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल व्यय 15,902 करोड के प्रस्तावित व्यय मे स वृहत उद्योगो व खनिज विकास पर 3,338 7 करोड तथा लघु एव कुटीर उद्योगो पर 293 करोड रुपय व्यय का प्रावधान था। इस प्रकार उद्योगो पर कुल व्यय का 24·5 प्रतिशत भाग व्यय का प्रावधान था। धात्विक रासायनिक, यातायात उद्योगो तथा मशीन निर्माण उद्योगो के विकास को प्रमुख स्थान दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के साथ-साथ निजी उद्योगपतियो व सहकारिता को पर्याप्त प्रोत्साहन देना था।

(5) राज्य स्तर एव जिला स्तर पर योजना निर्माण मशीनरी को अधिक सुदृढ करना।

(6) बैंकिग पर प्रभावी सामाजिक नियन्त्रण ताकि पूंजी निर्माण एव पूंजी विनियोग की प्राथमिकताओ के अनुरूप हो सके।

(7) एकाधिकार सम्बन्धी अधिनियम तथा प्रशुल्क नीति का उपयोग आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की समस्या का हल करने के लिये करना।

(8) सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की पूर्ण क्षमता का उपयोग तथा प्रशासन में कुशलता से हानि को कम करना तथा लाभ पर सचालन करना।

(9) सार्वजनिक क्षेत्र का अधिकांश परिव्यय कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च न होकर अर्थव्यवस्था के निबल अंगों के आर्थिक आधार को सुदृढ करने पर खर्च करना था।

(10) विदेशी सहायता की अनिश्चितता से सुरक्षा के लिये प्रति वर्ष निर्यातों मे 7 प्रतिशत वृद्धि तथा आयात में द्रुत गति से कमी की नीति भुगतान असन्तुलन को समाप्त कर आत्म निर्भरता की मूलभूत नीति थी।

मूल्यांकन

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि चतुर्थ योजना की व्यूह रचना अधिक व्यावहारिक तथा उद्देश्यों के निकट थी। इस व्यूह रचना मे **स्थिरता के साथ विकास** (Growth with Stability) तथा **राष्ट्रीय आत्म निर्भरता** (National Self Reliance) को प्रधानता दी गई। इसमे क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने के साथ-साथ समाज के निर्बल वर्गों को लाभान्वित कर सामाजिक समानता व न्याय का प्रयास निहित था। कृषि और औद्योगिक विकास को परस्पर सम्बद्ध कर विकास मे तेजी लाने के प्रयत्नों का समावेश था।

पांचवी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य एवं व्यूह रचना

(Objectives & Strategy of Fifth Plan)

पांचवी योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे—पहला **गरीबी हटाओ** तथा दूसरा **आत्मनिर्भरता लाओ**। इन दो व्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये योजना की व्यूह-रचना मे निम्न तत्वों का समावेश किया गया ताकि भारत में व्याप्त निर्धनता व गरीबी का उन्मूलन करने तथा आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

(1) कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे 5 5 प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि करना, सशोधित योजना मे वार्षिक वृद्धि दर 4 37 प्रतिशत निर्धारित की गई किन्तु विकास दर 3 9 प्रतिशत ही रही।

(2) उत्पादक रोजगार अवसरों का विस्तार,

(3) न्यूनतम आवश्यकताओं का राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू करना जिसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा, पौष्टिक आहार, गन्दी बस्तियों का सुधार, देहाती इलाकों में पानी, बिजली आवास व परिवहन व्यवस्था तथा निम्न स्तर की 30 प्रतिशत निर्धन जनता के प्रति व्यक्ति उपभोग को 25 रु० प्रतिमाह से बढ़ाकर 29 रु० प्रति माह करना।

(4) समाज कल्याण का व्यापक कार्यक्रम अपनाना।

(5) कृषि, आधारभूत उद्योगों तथा सामान्य उपभोग वस्तुओं का उत्पाद न करने वाले उद्योगो का तेजी से विकास एव विस्तार।

(6) गरीबो को उचित मूल्यो पर अनिवार्य उपभोग वस्तुओ के सार्वजनिक वितरण व प्राप्ति की पर्याप्त व्यवस्था करना।

(7) निर्यात सम्वर्द्धन तथा आयात प्रतिस्थापन के प्रभावी कदम उठाना।

(8) अनावश्यक उपभोग पर प्रभावी नियन्त्रण लगाना।

(9) कीमतो, मजदूरी व वेतन दरो व आयो मे सतुलन बैठाना तथा।

(10) सामाजिक, आर्थिक एव क्षेत्रीय असमानताओ को दूर करने के लिये सस्थागत राजकोषीय एव अन्य उपायो का सहारा लेना।

"गरीबी हटाओ" तथा "आत्मनिर्भरता लाओ" के लक्ष्यो की प्राप्ति के लि आर्थिक नीतियो का निर्धारण एव कार्यान्वयन इस प्रकार किया गया कि ... के साथ विकास हो, निर्यातो से अधिकाधिक विदेशी मुद्रा कमाई जाय तथा आयात लाइसेन्स पद्धति को योजना की प्राथमिकताओ के अनुरूप बनाया जाय ताकि विदेशी सहायता की न्यूनतम आवश्यकता के कारण आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हो सके।

छठी पचवर्षीय योजना के उद्देश्य एव कार्य-नीति

(Objectives & Strategy of Sixth Five year Plan)

जनता सरकार ने जन आकाक्षाओ व आशाओ की पूर्ति हेतु छठी पचवर्षीय योजना (1978-83) के प्रारूप के चार प्रमुख उद्देश्य हैं—

(1) अगले दस वर्षों मे बेकारी का निराकरण तथा अर्द्ध-बेकारी मे महत्वपूर्ण कमी करना।

(2) जनसख्या के सबसे गरीब वर्गों के जीवन स्तर मे उल्लेखनीय सुधार करना।

(3) इन आय समूहो के अन्तर्गत आने वाले लोगो के लिये राज्य द्वारा बुनियादी आवश्यकताओ—जैसे पीने का पानी, प्रौढ शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, ग्रामीण सडकें आवास आदि की व्यवस्था करना तथा।

(iv) अधिक समान समाज का निर्माण करना।

इन प्राथमिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये सरकार की कार्य-नीति (Strategy) मे निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

(क) पिछले समय की अपेक्षा अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास करना।

(ख) आय तथा सम्पत्ति की वर्तमान विषमताओ को पर्याप्त मात्रा मे कम करने की दिशा मे आगे बढना।

(ग) आत्म निर्भरता की दिशा मे देश की सतत् प्रगति सुनिश्चित करना।

इसके लिये योजना मे चार क्षेत्रो—कृषि, लघु एव कुटीर उद्योग, समन्वित ग्रामीण विकास के लिय क्षेत्रीय आयोजन तथा न्यूनतम आवश्यकताओ की व्यवस्था पर जोर देने के लिये कहा गया है।

पंचवर्षीय योजनाओं मे उद्देश्यों की पूर्ति का मूल्यांकन[1] (FULFILMENT OF OBJECTIVES DURING PLANS)

पंचवर्षीय योजनाओ के उद्देश्यो के सकलन से स्पष्ट होता है कि हमारी योजनाओ के प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना, कृषि का सन्तुलित विकास, शक्ति एव सिंचाई साधनो मे वृद्धि, आधारभूत एव मूल उद्योगो का विकास औद्योगीकरण मे तेजी, रोजगार अवसरो मे वृद्धि से बेकारी का निराकरण, खाद्यान्न मे आत्म-निर्भरता, सामाजिक न्याय की दृष्टि से आर्थिक विषमताओ मे कमी एव आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक आदि रहे है। योजनाबद्ध विकास के पिछले 28 वर्षो से इन उद्देश्यो की पूर्ति निम्न तथ्यो से स्पष्ट होती है।

(1) *राष्ट्रीय आय* —पिछले 27–28 वर्षो मे राष्ट्रीय आय मे 150% तथा प्रति व्यक्ति आय मे 50% वृद्धि हुई है जहाँ 1950–51 मे राष्ट्रीय आय 9850 करोड रु० तथा प्रति व्यक्ति आय 236 रु० थी चालू मूल्यो पर 1977–78 मे राष्ट्रीय आय 73157 करोड रु० तथा प्रति व्यक्ति आय 1163 रु० हो गई है।

(2) आर्थिक विकास की दर —जहाँ 1950–51 मे आर्थिक विकास की दर 1 प्रतिशत वार्षिक थी वह अब बढकर 5% होने का अनुमान है। बचत एव पूँजी निर्माण की दर भी क्रमश 5% और 7% से बढकर अब क्रमश 22% तथा 23 5% होने की सम्भावना है।

(3) कृषि मे तीव्र विकास —पिछले 28 वर्षो मे कृषि उत्पादन मे लगभग 121% की वृद्धि हुई है। खाद्यान्नो का उत्पादन 1950–51 मे 5 5 करोड टन से बढकर अब 13 करोड टन हो गया है। व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे भी लगभग 170% की वृद्धि हुई है। कृषि विकास की दर 0 5% से बढकर अब 4% हो गई है।

(4) *सिंचाई एव विद्युत विकास* —कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था मे सिंचाई के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है। जहाँ 1950–51 मे सिंचित क्षेत्र 2 08 करोड हैक्टर था अब बढकर 5 2 करोड हैक्टर हो गया है। इसी प्रकार उद्योगो एव कृषि मे विद्युत के महत्व को ध्यान मे रखते हुए विद्युत क्षमता भी 23 किलो वाट से बढकर 1 78–79 मे 270 लाख किलो वाट कर दी गई है। 1982–83 तक सिंचाई क्षमता 6 83 करोड हेक्टर तथा विद्युत क्षमता 445 किलो वाट करने का लक्ष्य है।

(5) औद्योगिक विकास —भारत मे योजना बद्ध विकास के 28 वर्षो मे औद्योगीकरण का सुदृढ आधार तैयार हो गया है। आधारभूत एव मूल भूत उद्योगो के उत्पादन म 400% की वृद्धि तथा रसायनिक उद्योगो म 500% वृद्धि हुई है। औद्योगिक विकास की दर 1950–51 म 2 5% था वह अब बढकर 8 से 10%

[1] अधिक विस्तृत विवरण के लिये अगले अध्याय "भारत म योजनाबद्ध विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ" शीर्षक म पढ़िये।

वार्षिक हो गई है सार्वजनिक क्षेत्र मे भी 155 उपक्रम हैं जिनमे लगभग 13500 करोड़ रु० की पूंजी लगाई। प्रमुख उद्योगो का उत्पादन निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

भारत में औद्योगिक विकास 1950–79

विवरण	इकाई	1950–57	1978–79 लक्ष्य
लोहा-इस्पात	लाख टन	10	४8
मशीनरी–	मूल्य लाख रु०	30	13000
एल्यूमिनियम	हजार टन	4	310
सीमेन्ट	लाख टन	27	208
पेट्रोलियम पदार्थ	लाख टन	2	270
कोयला	लाख टन	323	1240
सूती कपड़ा	करोड मी०	421	950
चीनी	लाख टन	11 3	54
विद्युत क्षमता	लाख kw	23	270

(6) परिवहन एव संचार —अर्थव्यवस्था मे तीव्र विकास के लिय परिवहन एव सचार विकास का भी पूरा ध्यान रखा गया है और सभी प्रकार के परिवहन साधनो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है यह निम्न तथ्यो से स्वय स्पष्ट है —

परिवहन एवं संचार विकास (1950–79)

विवरण	इकाई	1950–51	1978–79
रेलो की लम्बाई	हजार किलो मीटर	54	61 5
रेलो की माल ढोने की क्षमता	करोड टन	9 3	26
जहाजरानी क्षमता	लाख G R T	3 9	55
सतहदार सडकें	लाख Kms	1 6	6 0
डाकघर	हजार स०	36	150
तारघर	सख्या	8205	23000
टेली फोन	लाख	2	27

(7) रोजगार वृद्धि —यद्यपि पिछले 28 वर्षों मे विकास प्रयत्नो मे लगभग 6 5 करोड अतिरिक्त लोगो को रोजगार दिया गया है किन्तु फिर भी देश मे बेकारी द्रोपदी के चीर की भाँति बढती जा रही है। छठी योजना मे 10 वर्षों मे बेकारी को पूर्णत समाप्त करने का लक्ष्य है और योजना काल मे 4 92 करोड मानव वर्ष का रोजगार प्रदान किया जायगा फिर भी 1982–83 के अन्त तक बेकारी 155 लाख मानव वर्ष रहेगी।

(8) आर्थिक समानता एव सामाजिक न्याय —योजना काल मे आर्थिक विषमता घटन के स्थान पर निरन्तर बढी है और आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण हुआ है। अब गरीबो के उत्थान को प्राथमिकता दी जा रही है किन्तु उनसे भी विशेष प्रभाव की उम्मीद करना निरर्थक है।

(9) शिक्षा एव सामाजिक सेवाओ का तेजी से विस्तार किया गया है — देश मे औसत आयु 32 वर्ष से बढकर 55 वर्ष हो गई है। साक्षरता भी 16 5 से बढकर अब 33 प्रतिशत होने का अनुमान है।

(10) उपभोग एव जीवनस्तर —देश के आर्थिक विकास का अनुमान लोगो के जीवन स्तर मे वृद्धि से लगता है। पिछले 24 वर्षो मे उपभोग स्तर बढ़ा है और लोगो म परम्परागत दृष्टिकोण के स्थान पर भौतिक समृद्धि की प्रवृत्ति प्रबल हुई है। उपभोग की तुलना के निम्न आकडे जीवन स्तर मे सुधार को दर्शाते है —

प्रति व्यक्ति उपभोग वस्तुओ की उपलब्धता

विवरण		1950-51	1978-79
खाद्यान्न	(प्रति दिन ग्राम मे)	395	460
खाने का तेल	(प्रतिवर्ष किलोग्राम मे)	2 7	3 4
चीनी	,, ,,	3 0	7 5
सूती कपडा	(प्रतिवर्ष मीटर म)	11 0	14 0
विद्युत-शक्ति	(प्रतिवर्ष किलोवाट)	1 6	8 0

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यद्यपि देश मे तेजी से विकास हुआ है किन्तु जनसख्या मे तीव्र वृद्धि विकास का लाभ समृद्ध लोगो को ही मिलने तथा बढते मूल्यो के साथ बढती बेकारी के कारण लोगो को विकास के प्रति विशेष रुचि न होकर निराशा महसूस हुई है। यद्यपि देश मे सुदृढ औद्योगिक आधार तैयार हुआ है, खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुए हैं किन्तु क्षेत्रीय असमनता, बढी है। गरीबो और समृद्धिवान लोगो के बीच विषमता बढी है। औद्योगिक एव आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण बढा है। अत सामाजिक न्याय नही मिल पाया है। आर्थिक समानता कोरी कल्पना रह गयी है। मानव शक्ति के उपयुक्त नियोजन के अभाव म लगभग 4 07 करोड मानव वर्षों की बेकारी का ताण्डव नृत्य हो रहा है अत अधिक प्रभावी नियोजन एव क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 आर्थिक नियोजन के क्या-क्या उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यो की प्राप्ति किस प्रकार परस्पर निर्भर है?

(सकेत—प्रथम भाग म योजना के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक उद्देश्यो को समझाइये तथा दूसरे भाग मे उनकी परस्पर निर्भरता अध्याय के शीर्षकानुसार बताइये)—

2 भारत मे पचवर्षीय योजनाओ के क्या-क्या उद्देश्य रहे हैं तथा उनकी पूर्ति कहाँ तक सम्भव हुई है? विवेचना कीजिये।

(संकेत—प्रथम भाग मे योजनावार उद्देश्यो का उल्लेख कर द्वितीय भाग मे मूल्याकन देना है)

(3) "भारत मे आर्थिक नियोजन का उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना करना है।" भारत की योजनाओ के उद्देश्य इस कथन से कहाँ तक मेल खाते है ?

(संकेत—प्रथम भाग मे **"समाजवादी समाज"** का अभिप्राय स्पष्ट कर दूसरे भाग मे प्रत्येक योजना के उद्देश्यो का विवेचन करना है तथा निष्कर्ष मे बताना है कि उद्देश्य हैं तो अनुकूल पर उन उद्देश्यो की पूर्ति नही हो पाई है)

(4) नियोजन के उद्देश्य स्थायी प्रकृति के होते हैं किन्तु उनका रूप व सस्थाए जिनके द्वारा ये उद्देश्य अभिव्यक्ति पाते हैं बदलते रहते हैं" भारतीय नियोजन के उद्देश्यो के सन्दर्भ से इस कथन की पुष्टि कीजिये।

(संकेत—नियोजन के उद्देश्यो का उल्लेख कर दूसरे भाग मे बताना है कि वे भारत मे समय और परिस्थितियो के अनुसार बदलते रहे हैं और यही नही उनकी प्राथमिकता का क्रम भी बदला है)

(5) "आर्थिक शब्दावली मे" व्यूह रचना (Strategy) शब्द का क्या अभिप्राय है ? भारतीय योजनाओ के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए क्या व्यूह रचना अपनाई गई है ?

(संकेत—व्यूह रचना का अर्थ बताकर दूसरे भाग मे योजनावार व्यूह रचना बतानी है तथा उनका मूल्याकन करना है)

7

भारत में योजना-निर्माण व योजना तन्त्र

(PLAN FORMULATION & PLANNING MACHINERY IN INDIA)

आर्थिक नियोजन की जटिल प्रक्रिया को शुरू से अन्त तक अनेक अवस्थाओ से ही नहीं गुजरना पडता वरन् उनके सफल सम्पादन के लिए एक स्थायी नियोजन सगठन की भी आवश्यकता होती है । भारत मे भी योजना निर्माण की प्रक्रिया अनेक अवस्थाओ से गुजरती है उसके निर्माण सम्पादन व मूल्याकन के लिये एक स्थायी नियोजन सगठन के रूप मे *योजना-आयोग* (Planning Commission) है । इनका सक्षिप्त विवरण इस अध्याय म दिया जा रहा है ।

भारत मे योजना-निर्माण प्रक्रिया
(Plan Formulation Process In India)

भारत म योजना निर्माण का कार्य मुख्यत योजना आयोग द्वारा किया जाता है और उसकी प्रक्रिया अत्यन्त ही लोचपूर्ण व परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तनशील है । योजना की रूपरेखा तैयार करने से पूर्व राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक उद्देश्यो के परिप्रेक्ष्य में तकनीकी व गणितीय अध्ययनो के आधार पर एक दीर्घ-कालीन योजना (Perspective Plan) बनाई जाती है और इसी दीर्घकालीन योजना की पृष्ठभूमि म पचवर्षीय योजनाओ का निर्माण होता है । विकास के भिन्न-भिन्न मा [illegible] तैयार किये जाते है जिसमे विशेषज्ञो के कार्यकारक दल तथा उप दल तकनीकी, वि[illegible] आर्थिक बारीकियो का विश्लेषण कर योजना को व्यावहारिकता प्रदान करने [illegible] अनेक परामर्श समितियाँ व समन्वय समितियाँ, केन्द्रीय साख्यिकी सगठन, अर्थ[illegible] विकास सस्थान व सार्वजनिक प्रशासन सस्थाए आदि की भी योजना निर्माण म महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । योजना आयोग व राज्यों के बीच समन्वय के लिये 1952 म ही राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council NDC) की स्थापना की गई । प्रान्तीय-स्तर पर योजना निर्माण का कार्य राज्य योजना मण्डल (State Planning Board) अथवा राज्य योजना विभाग करता है ।

भारत म पचवर्षीय योजनाओ के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्न अवस्थाओ (Stages) से गुजरना पडता है और योजना का अन्तिम प्रारूप स्वीकृत होने

के बाद ही योजना आयोग उसे कार्यान्वित करने के लिये सरकार को सौंप देता है। वैसे व्यवहार मे योजना की अन्तिम स्वीकृति के पूर्व ही उसका कार्यान्वयन प्रारम्भ हो जाता है जैसे भारत की सभी योजनाओ मे दृष्टिगोचर होता है।

(1) सामान्य दृष्टिकोण व प्रतिवेदन के लिए विभिन्न अध्ययन दलों का सगठन—सर्वप्रथम योजना आयोग दीर्घकालीन योजना के सन्दर्भ म आगामी योजना के प्रारम्भ होने के दो-तीन वर्ष पूर्व ही अर्थव्यवस्था की तत्कालिक आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो के सामान्य अध्ययन के आधार पर आर्थिक विकास व उद्देश्यो सम्बन्धी विस्तृत प्रतिवेदन तैयार करता है। इस समन्वित प्रतिवदन को तैयार करने के लिए आयोग द्वारा प्रमुख क्षेत्रो के लिए कार्यकारी दल (Working Groups) उप-कार्यकारी दल (Sub-Working Groups) अर्थात् दल उप समितियाँ, अर्थशास्त्रियो के पेनल और विशेषज्ञ दल नियुक्त किय जाते हैं। प्रत्येक दल अपने-अपने क्षेत्र का अध्ययन कर तत्सम्बन्धी क्षेत्र की कमियो व विकास की योजना का प्रतिवेदन तैयार करता है। इन सब समूहो, कार्यकारी दलो, समितियो आदि के प्रतिवेदनो को प्राप्त कर योजना आयोग एक समन्वित व सुनिश्चित प्रतिवेदन तैयार कर उसे राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) तथा मन्त्रि परिषद् (Cabinet) के निरीक्षण व विचार विमर्श हेतु प्रस्तुत करता है।

(2) योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा (Draft Outline) तैयार करना—दीर्घकालीन योजना के सन्दर्भ मे योजना आयोग विभिन्न अध्ययन दलो व विशेषज्ञ समितियो के समन्वित प्रतिवेदन पर राष्ट्रीय विकास परिषद् व केन्द्रीय मन्त्रि परिषद् द्वारा विचार-विमर्श होने के बाद योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा तैयार करता है। रूप-रेखा तैयार करने का कार्य जटिल है। इसके लिये (i) आर्थिक विकास मॉडल (Economic Development Models) तथा विभिन्न साख्यिकी रीतियो, बजटिंग पद्धति, रेखीय कार्यक्रम प्रणाली (Linear Programming), विभिन्न क्षेत्रो मे सन्तुलन बैठाने के तरीको (*Methods of Balances*) *तथा अन्तर-उद्योग तालिकाओ* (Inter-Industry Tables) आदि का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार योजना की प्रारम्भिक रूप रेखा मे उसके उद्देश्य, भौतिक तथा वित्तीय लक्ष्यो का निर्धारण किया जाता है जिसमे राज्यो व केन्द्रीय योजनाओ मे समन्वय बैठाकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये एक एकीकृत, समन्वित व सुनिश्चित योजना तैयार हो जाती है।

(3) प्रारम्भिक रूपरेखा की स्वीकृति एव प्रकाशन—योजना आयोग अपने द्वारा तैयार योजना की प्रारम्भिक रूप रेखा को विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रियो व राज्यों के मुख्य मन्त्रियो को विचारार्थ भेजता है। फिर मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) इस रूपरेखा पर विचार-विमर्श कर स्वीकृति देती है तत्पश्चात् इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् (N D C) द्वारा स्वीकृति देने के बाद योजना आयोग

योजना की रूपरेखा को जनता के सूचनार्थ व विचारार्थ उनकी राय, प्रतिक्रिया व सुझावो के लिये प्रकाशित कर देता है।

(4) प्रारम्भिक रूपरेखा पर विस्तृत विचार-विमर्श—जनमत के लिए प्रकाशित योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा पर देश के प्रबुद्ध विचारक, राजनैतिक दल, व्यावसायिक संस्थान, विश्व-विद्यालय विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक संस्थाये तथा अन्य प्रतिनिधि संस्थायें व विचारक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं तथा उपयोगी सुझाव योजना आयोग को भेजते हैं और इधर योजना आयोग केन्द्रीय मन्त्रियो के सहयोग से राज्य-सरकारो से उसकी राज्य योजनाओ पर विस्तृत विचार-विमर्श करता है। प्रत्येक राज्य के विकास कार्यक्रमो तथा उसके भौतिक व वित्तीय साधनो के सम्बन्ध मे राजनैतिक एव विशेषज्ञ स्तर पर विचार-विमर्श किया जाता है और राज्य के मुख्यमन्त्री की सलाह पर आवश्यक सशोधन किया जाता है। विस्तृत विचार-विमर्श के उपरान्त उपयोगी व उचित सुझावो को योजना की नवीन रूपरेखा तैयार करते समय विशेष महत्व दिया जाता है।

(5) योजना की नवीन रूपरेखा तैयार करना—विभिन्न स्तरो पर विस्तृत विचार-विमर्श के दौरान प्राप्त उपयोगी सुझावो, प्रतिक्रियाओ तथा जनमत को ध्यान मे रखते हुए योजना आयोग फिर योजना का नवीन प्रारूप तैयार करता है जिसमे योजनाओ के उद्देश्यो, विभिन्न कार्यक्रमो व परियोजनाओ तथा विभिन्न भौतिक एव वित्तीय लक्ष्यो के साथ साथ योजना की व्यूह रचना तथा नीति आदि का विस्तृत उल्लेख होता है।

(6) नवीन प्रारूप पर राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति—योजना आयोग योजना की नवीन रूपरेखा तैयार करने के बाद मन्त्रि परिषद् को प्रस्तुत करता है और मन्त्रि परिषद् की अनुमति के बाद उसे स्वीकृति के लिये राष्ट्रीय विकास परिषद् (N D.C.) के सम्मुख प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना की इस नवीन रूपरेखा को पुन अध्ययन करती है। सशोधन का सुझाव भी दे सकती है और अन्तत इस नवीन प्रारूप को स्वीकृति प्रदान कर देती है।

(7) योजना का अन्तिम प्रारूप ससद की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करना—योजना के नवीन प्रारूप पर राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति होने के बाद देश का प्रधानमंत्री या योजना मंत्री इस योजना के अन्तिम प्रतिवेदन को ससद मे प्रस्तुत करता है। ससद म इस अन्तिम प्रारूप पर कई दिनो तक बहस होती है तथा कुछ छोटे-मोटे सशोधन किये जा सकते हैं पर ऐसे सशोधन नही किये जाते कि योजना का सम्पूर्ण प्रारूप ही बदलना पडे। आवश्यक सशोधनो के बाद ससद योजना को स्वीकृति प्रदान कर देती है। ससद की स्वीकृति के बाद योजना का यह प्रारूप वैधानिक रूप ग्रहण कर लेता है और योजना कार्यान्वयन के लिये मान्य हो जाती है। इसलिए ससद की स्वीकृति के बाद योजना का अन्तिम प्रारूप प्रकाशित कर दिया जाता है।

(8) योजना का कार्यान्वयन (Implementation of Plan)—जब योजना ससद की स्वीकृति के बाद वैधानिक रूप ग्रहण कर लेती है तो योजना आयोग उसे कार्यान्वयन के लिये केन्द्रीय व राज्य सरकारो को सौंप देता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग एक सलाहकार सस्था (Advisory Body) है उसका कार्य योजना का निर्माण करना, समन्वय बैठाना व उसका मूल्याकन करना है। योजना के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व केन्द्र व राज्य सरकारो का है। अतः केन्द्रीय व राज्य सरकारो के विभिन्न मन्त्रालय व विभाग योजना के क्रियान्वयन व उसके लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए जुट जाते हैं। विभिन्न विभागो व योजना आयोग मे योजना के क्रियान्वयन के समय निकट सम्पर्क रहता है ताकि नवीन परिवर्तित परिस्थितियो के अनुरूप आवश्यक सशोधन हो सकें।

(9) योजना क्रियान्वयन का निरीक्षण व मूल्याकन (Supervision & Evaluation of Plan Implementation)—योजना की सफलता केवल उसके निर्माण मे ही नही वरन् उसके कुशल क्रियान्वयन पर भी निर्भर करती है। अच्छी से अच्छी योजना भी ठीक व कुशलतापूर्वक क्रियान्वित न होने पर असफल हो सकती है अत योजना के कुशल क्रियान्वयन का समय-समय पर निरीक्षण व मूल्याकन एक स्वतन्त्र व निष्पक्ष व दक्ष व्यक्तियो की सस्था द्वारा होना आवश्यक है। भारत मे योजनाओ के क्रियान्वयन का निरीक्षण व मूल्याकन करने के लिये योजना आयोग के अन्तर्गत एक विशिष्ट सगठन के रूप म कार्यक्रम मूल्याकन सगठन (Programme Evaluation Organisation) की स्थापना 1952 मे की गई है। प्रारम्भ मे इस सगठन का कार्य क्षेत्र सामुदायिक विकास योजनाओ के मूल्याकन तक ही सीमित था पर अब इसका कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण योजना कार्यक्रमो के क्रियान्वयन, निरीक्षण व मूल्याकन करना है तथा उसकी कमियो की ओर ध्यान दिलाना है जैसे तृतीय तथा चतुर्थ पचवर्षीय योजनाओ का मध्यावधि मूल्याकन इसी सस्था द्वारा किया गया था और उसी के प्रतिवेदनो के आधार पर योजनाओ मे आवश्यक हेर-फेर व सशोधन किये गये थे।

(10) योजना मे अनुवर्तन (Follow-up-Action)—योजना कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन के निरीक्षण व मूल्यांकन प्रतिवेदनो के आधार पर ही योजनाओ म अनुवर्तन का कार्य किया जाता है। सगठन द्वारा निर्देशित कमियो व खामियो को दूर करने का प्रयास तेज किया जाता है। समय व परिस्थितियो के अनुरूप योजना लक्ष्यो, नीति, प्राथमिकताओ व व्यूह-रचना मे परिवर्तन कर योजना को कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करने के प्रयास तेज किये जाते हैं। विभिन्न मन्त्रालय व विभाग इन सशोधनो व नवीन परिवर्तनो को मूर्त रूप देने मे जुट जाते हैं।

भारत मे नियोजन-तंत्र अथवा योजना मशीनरी
(Planning Machinery in India)

आर्थिक नियोजन एक निरन्तर चलने वाली जटिल प्रक्रिया है अत योजनाओ

के निर्माण, क्रियान्वयन व मूल्याकन करने के लिए दक्ष-विशेषज्ञो, कुशल प्रशासक एव कर्मचारियो तथा स्वत त्र व निष्पक्ष निरीक्षण सगठन आदि की आवश्यकता है। इसी कारण 1950 मे भारत मे योजना निर्माण के लिये आर्थिक नियोजन के एक प्रमुख केन्द्रीय सगठन के रूप मे विशिष्ट सस्था **"योजना आयोग"** (Planning Commission) की स्थापना की गई। इस सस्था के सहयोग के लिये अन्य सस्थाएँ भी सगठित की गई हैं। *राज्य स्तर पर भी नियोजन की प्रक्रिया का सम्पादन राज्य* योजना विभाग अथवा राज्य योजना मण्डलो द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय स्तर व *राज्य स्तर पर नियोजन तन्त्र का सक्षिप्त विवेचन अलग-अलग इस प्रकार है—*

(A) केन्द्रीय-स्तर पर नियोजन-तन्त्र—भारतीय योजना आयोग

(Planning Machinery at Central Level Indian Planning Commission)

भारत मे आर्थिक नियोजन का प्रमुख केन्द्रीय सगठन भारतीय योजना आयोग है जिसकी स्थापना 15 मार्च 1950 को की गई। भारत मे योजनाओ के निर्माण, समन्वय व मूल्याकन का कार्य इसी केन्द्रीय सस्था के हाथ मे है। इस सस्था के कार्यो का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि यह एक सलाहकार एव समन्वयकर्ता सगठन है तथा योजनाओ के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारो की है पर व्यवहार मे योजना आयोग एक ऐसे शक्तिशाली सगठन के रूप मे प्रकट हुआ है कि इसे विरोधियो द्वारा सुपर केबीनेट (Super Cabinet) की सज्ञा दी जाती है।

योजना आयोग के कार्य (Functions of Planning Commission)—भारतीय योजना आयोग एक स्वतन्त्र केन्द्रीय नियोजन सत्ता के रूप मे (i) आर्थिक *योजनायें* बनाती है। (ii) देश के समस्त भौतिक व वित्तीय साधनो के प्रभावी उपयोग का सम्बन्धित कार्यक्रम लागू करने का सुझाव देती है (iii) प्राथमिकताओ का निर्धारण कर (iv) उनके *अनुरूप साधनो का आवटन करती है,* (v) *प्रगति का* निरीक्षण व मूल्याकन करती है व (vi) आवश्यक सुझाव देती है। इस प्रकार *भारतीय योजना आयोग एक सलाहकार व समन्वयकारी सस्था है। योजनाओ के* क्रियान्वयन व उनसे सम्बन्धी अन्तिम निर्णय लेने का कार्य केन्द्रीय व राज्य सरकारो का है। योजना आयोग को प्रशासनिक अधिकार नही है। योजना आयोग के प्रमुख काय भारत सरकार के पारित प्रस्ताव के अनुसार निम्न हैं—

(1) साधनों का अनुमान एव सर्वेक्षण (Survey & Assessment of Resources)—योजना आयोग का प्रथम कार्य देश क समस्त प्राकृतिक, भौतिक, पूंजीगत व मानवीय साधनो का अनुमान लगाना तथा राष्ट्रीय महत्व के अपर्याप्त साधनो की अभिवृद्धि की सम्भावनाओ का सर्वेक्षण करना आदि है। विकास की योजनाओ का निर्माण व उनका सफल कार्यान्वयन इस कार्य के अभाव मे कठिन ही होता है।

(2) योजना निर्माण करना (Plan Formulation)—योजना आयोग का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य देश के उपलब्ध साधनो के सर्वोत्तम व सन्तुलित उपयोग की

ऐसी योजनायें बनाना है जिससे देश का आर्थिक विकास उद्देश्यो के अनुरूप शीघ्रता से हो सके।

(3) प्राथमिकताओ का निर्धारण (Determination of Priorities)—साधनो की सीमितता व लक्ष्यो की अनन्तता, अनेकता व उनके वैकल्पिक प्रयोगो के कारण योजना आयोग का तीसरा प्रमुख कार्य योजनाओ मे प्राथमिकताओ का निर्धारण करना है।

(4) साधनो का आवटन (Allocation of Resources)—प्राथमिकताओ का निर्धारण करने के बाद वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनो का आवटन करने का कार्य भी योजना आयोग का कार्य है। आयोग साधनो का आवटन इस प्रकार करने का प्रयास करता है कि कम से कम समय मे अधिकाधिक प्रगति सम्भव हो, साधनो का सर्वोत्तम उपयोग हो और निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति करना सुगम हो जाय।

(5) बाधक तत्वो का सकेत व विकास की अनुकूल परिस्थितियो का निर्धारण—योजना आयोग का पांचवा कार्य उन तत्वो तथा घटको की ओर सकेत देना है जो विकास मे बाधक हैं तथा उन बाधक तत्वो के निराकरण की सलाह देने के साथ-साथ योजना की सफलता के लिये आवश्यक आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो के निर्धारण का सुझाव देना है।

(6) उपयुक्त योजना तन्त्र का निर्धारण (Determination of Suitable Planning Machinery)—योजना के विभिन्न कार्यक्रमो के सफल सचालन व क्रियान्वयन हेतु उपयुक्त नियोजन तन्त्र का निर्धारण भी योजना का एक मुख्य कार्य है।

(7) योजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन व समायोजन सम्बन्धी सिफारिशें करना (Plan Evaluation & Adjustment Recommendations)—योजना आयोग केवल योजनाओं का निर्माण ही नही करता वरन् समय-समय पर योजनाओं के क्रियान्वयन की जाच व प्रगति का मूल्याकन भी करता है और इस निरीक्षण व मूल्याकन के आधार पर आर्थिक नीतियो, सचालन विधियो मे आवश्यक समायोजन की सिफारिश करता है ताकि योजनाओ के क्रियान्वयन की खामियो, विकास सम्बन्धी रुकावटो को दूर करने के लिये प्रभावी कदम उठाये जा सकें।

(8) कर्त्तव्य-पालन के लिये अन्य आवश्यक सिफारिशें करना—योजना आयोग उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त ऐसे आन्तरिक व उपयोगी सुझाव देता है जिसके कार्यान्वियन से आयोग को उसे सौंपे गये कार्यों को पूरा करने मे सुविधा हो अथवा तत्कालिक परिस्थितियो मे आयोग उन सुझावो को आवश्यक समझता हो या केन्द्र व राज्य सरकारो द्वारा सौंपी गयी विशेष समस्या के अध्ययन व तत्सम्बन्धी सिफारिश करनी हो।
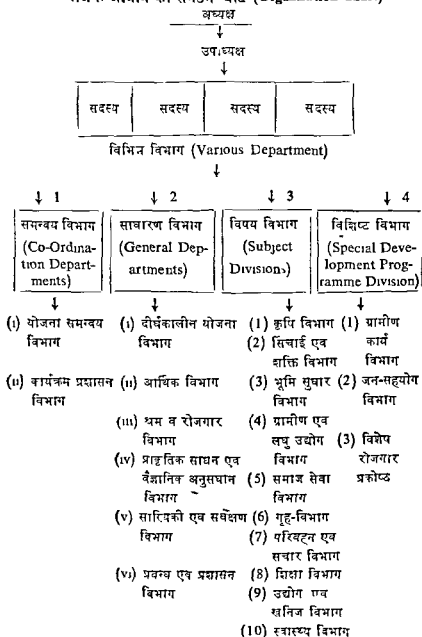
उपर्युक्त विभागों के अतिरिक्त योजना आयोग के अन्तर्गत चार और प्रतिनिधि

विभाग हैं जो आयोग के आन्तरिक संगठन के भाग न होते हुए भी उसके सहायक के रूप में कार्य करते हैं। और वे नियोजन प्रक्रिया मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं—

(i) कार्यक्रम मूल्याकन संगठन (Programme Evaluation Organisation)—यह सस्था योजना के अन्तर्गत सचालित कार्यक्रमो के क्रियान्वयन का निरीक्षण व मूल्याकन करती है तथा आवश्यकतानुसार समायोजन का सुझाव देती है यह उन कमियो व खामियो को बताती है जिनके कारण लक्ष्यो की प्राप्ति मे बाधा आई है। पहले इस सठन का कार्य केवल सामुदायिक विकास योजनाओ का मूल्याकन करना था पर अब इसको सभी योजनाओ के मूल्याकन का काम सौंप दिया दिया गया है।

(ii) परियोजना समिति (Committee on Plan Projects)—यह समिति राज्य सरकारो द्वारा आयोग को भेजी जाने वाली नयी-नयी परियोजनाओ की जाच करती है तथा विचार-विमर्श के बाद अपनी सिफारिश देती है।

(iii) राष्ट्रीय योजना परिषद् (National Planning Council)—यह परिषद् स्वतन्त्र तथा विशेषज्ञो की सस्था है जिसमे 15 से 20 सदस्य होते हैं। राष्ट्रीय योजनाओ म व्यावहारिकता, कुशलता तथा विशिष्टता लाने के लिए इस सस्था मे वैज्ञानिको, इन्जीनियरो, अर्थशास्त्रियो, समाजशास्त्रियो, तकनीकी व वित्तीय विशेषज्ञो का समावेश होता है। इस सस्था की स्थापना 1965 मे की गई।

(iv) अनुसधान कार्यक्रम समिति (Research Programme Committee) —यह समिति आयोग के कार्य मे सहयोग देती है। यह समिति विभिन्न अनुसधान कार्यों का आयोजन करती है। योजना आयोग का अध्यक्ष इसका भी अध्यक्ष होता है।

भारत में आर्थिक नियोजन से सम्बन्धित अन्य संस्थाएं

भारत मे योजना आयोग के अतिरिक्त कुछ अन्य सस्थाए भी है जो नियोजन के कार्य मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिसमे प्रमुख निम्न हैं—

(1) राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)—यह नियोजन क्षेत्र मे केन्द्र तथा राज्यो के बीच समन्वय करने वाली सस्था है जिसमे प्रधान मन्त्री, राज्यो के मुख्य मन्त्री व योजना आयोग के सदस्य इसके सदस्य होते हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् के मुख्य कार्य ये हैं —

(i) आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाली आर्थिक व सामाजिक नीतियो पर विचार-विमर्श करना,

(ii) योजनाओ के निर्धारित लक्ष्यो व उद्देश्यो की पूर्ति के लिये प्रभावी तरीको का सुझाव देना,

(iii) प्रशासनिक कुशलता मे वृद्धि के उपायो पर विचार करना तथा कार्यन्वयन का सुझाव देना।

(iv) राष्ट्रीय योजनाओ के कार्यों का पर्यवेक्षण करना,

(iiv) जन सहयोग प्राप्त करने के प्रयासो को लागू करने पर विचार करना तथा

(vi) क्षेत्रीय विषमताओ को मिटाकर सन्तुलित विकास का मार्ग प्रशस्त कराना आदि है।

योजना आयोग की प्रारम्भिक रूपरेखा तैयार करते समय भी राष्ट्रीय विकास परिषद से विचार विमर्श करता है तथा जब नवीन रूपरेखा विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित हो जाती है तभी उसे ससद की स्वीकृत के लिये प्रस्तुत किया जाता है—

(2) **सलाहकार सस्थाएं अथवा पैनल (Advisory Bodies or Panels)**—योजना आयोग को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे सलाह देने के लिये कृषि, भूमि सुधार, वित्त उद्योग, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास आदि क्षेत्रो मे सलाहकार समितियां बनाई गई है जिनमे **80 लोक सभा सदस्यो की एक सलाहकार समिति** का नाम उल्लेखनीय है।

(3) **सम्बद्ध सस्थाएं (Associated Bodies)**—योजना आयोग को योजना निर्माण मे रिजर्व बैंक तथा केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन द्वारा आवश्यक साख्यिकी रचना उपलब्ध को जाती है।

योजना आयोग की कार्य-विधि

(Working Procedure of Planning Commission)

योजना आयोग की कार्य-विधि बडी ही लोचपूर्ण है। पचवर्षीय योजनाओ का निर्माण करने मे सर्वप्रथम उद्देश्यों के सन्दर्भ मे तकनीकी व गणितीय अध्ययनो के आधार पर दीर्घकालीन योजना बनाई जाती है और इस दीर्घकालीन योजना की पृष्ठभूमि मे ही आर्थिक मॉडल तैयार किये जाते हैं। देश मे जनसख्या, राष्ट्रीय आय बचत, विनियोग, रोजगार आदि को ध्यान मे रखते हुए आयोग विभिन्न क्षेत्रो की अस्थायी योजनायें बनाकर उसमे समन्वय एव सन्तुलन बैठाना है। रूपरेखा तैयार करने मे अन्तर-उद्योग तालिकाओ बजट प्रणाली, रेखीय कार्यक्रम तथा तकनीकी बारीकियो का अध्ययन करने के लिये विशेषज्ञो के कार्यकारी दल तथा उप-दल नियुक्त किये जाते हैं। फिर विचार-विमर्श करने के बाद नवीन रूप-रेखा तैयार की जाती है। जिसमे उद्देश्यो, लक्ष्यो आदि का विस्तृत उल्लेख होता है। यद्यपि आयोग द्वारा किये जाने वाले कार्यों को विभिन्न विभागों मे बाट दिया जाता है किन्तु महत्वपूर्ण कार्यों को आयोग सामूहिक रूप से करता है। महत्वपूर्ण विषयो पर विचार-विमर्श के लिये सब सम्बन्धित विभागो, प्रभारी व मन्त्री से राय ली जाती है।

आयोग तथा राज्यो मे समन्वय हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद् से नवीन रूप-रेखा पर विचार-विमर्श कर अनुमोदन करवाता है। इस परिषद् मे प्रधान मन्त्री, योजना आयोग के सदस्य तथा राज्यो के मुख्य मन्त्रियो का समावेश होता है। परिषद्

के अनुमोदन के बाद आयोग योजना के अन्तिम प्रतिवेदन को संसद मे प्रस्तुत करता है तथा लम्बी बहस के बाद मामूली सशोधनों के उपरात ससद की स्वीकृति प्राप्त होने पर योजना वैधानिक प्रपत्र बन जाता है तथा उसके क्रियान्वयन के लिये सरकार को सौंप दिया जाता है। योजना के कार्यान्वियन का समय-समय पर मूल्यांकन व निरीक्षण तथा आवश्यक सुझाव का कार्य योजना आयोग का योजना मूल्यांकन सगठन करता है तथा उन सुझावो को लागू किया जाता है। इस प्रकार आयोग के द्वारा योजनायें बनाने की प्रक्रिया का विवरण अध्याय के प्रारम्भ मे दिया जा चुका है।

(B) राज्य-स्तर पर नियोजन-तन्त्र
(Planning Machinery at State Level)

भारत मे नियोजन की दोहरी प्रक्रिया है। केन्द्रीय स्तर पर नियोजन ऊपर के नियोजन (Planning from Above) है पर राज्य स्तर पर नियोजन नीचे से नियोजन (Planning from Below) का सूचक है : योजना आयोग राज्यो तथा केन्द्रीय योजनाओं के बीच सतुलन बैठाता है और एकीकृत व समन्वित योजना प्रस्तुत करता है।

राज्य स्तर पर नियोजन का कार्य योजना आयोग की भाति राज्य योजना मण्डलो (State Planning Boards) द्वारा किया जाता है जिन राज्यो मे योजना मण्डलो की स्थापना नही हुई है वहा राज्य का योजना विभाग (State Planning Department) ही इस कार्य को करता है। राज्य के विभिन्न विभागो की सहायता से योजना मन्डल राज्य की योजनायें तैयार करता है, राज्य की सांख्यिकी विभाग आवश्यक आकड़े उपलब्ध करता है। राज्यो मे योजना मण्डलो के सहयोग के लिये विकास मण्डल (Development Board) तथा योजना सलाहकार समिति (Plan Advisory Committee) कार्य करते हैं। इन दोनो के द्वारा योजना का प्रारूप अनुमोदित हो जाने पर राज्य योजना मण्डल उसे राज्य-विधान सभा को अन्तिम स्वीकृत के लिये प्रस्तुत करता है।

योजना का अन्तिम प्रारूप स्वीकृत होने के बाद यह सरकार के विभिन्न विभागों को क्रियान्वयन के लिये सौंप दिया जाता है। राज्यों की योजना को जिला स्तर पर जिलाधीश अर्थात जिला विकास अधिकारी (District Development Officers) तथा विकास खण्ड स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी (Block Development Officer) तथा पचायत-स्तर विकास पचायतें कार्यान्वित करती हैं।

भारत में नियोजन-तन्त्र के दोष व आलोचनायें
Defeclts & Criticisms of planning Machinery in India)

यद्यपि भारत मे पिछले 28 वर्षों मे आर्थिक नियोजन द्वारा तीव्र आर्थिक प्रगति हुई है। योजना आयोग ने देश मे छ. पंचवर्षीय योजनायें तथा तीन वार्षिक योजनाओं (1966–69) के निर्माण व समन्वय मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है फिर

भी उनकी कार्यप्रणाली व सगठन मे कुछ ऐसी कमिया रही है जिसके कारण भारतीय नियोजन तन्त्र की आलोचना की जाती है। मुख्य आलोचना इस प्रकार हैं—

(1) नियोजन के लिये एक स्वतन्त्र एव वैधानिक सस्था का अभाव—भारतीय योजना आयोग का कोई सवैधानिक अस्तित्व नही है जैसा कि लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग तथा चुनाव आयोग का है। योजना आयोग की स्थापना एक सरकारी प्रस्ताव के अन्तर्गत हुई है। इस सस्था मे सत्ताधारी राजनैतिक पार्टी का प्रभुत्व रहता है। यह एक सलाहकार व समन्वयकर्त्ता सस्था है। इसे अपने द्वारा निर्मित योजनाओ के क्रियान्वयन के लिये राष्ट्रीय विकास परिषद् तथा ससद की स्वीकृति लेनी पडती है। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है। योजना मन्त्री उसका सदस्य होता है अत योजना आयोग को वे अपने मत से काफी प्रभावित कर सकते है अत कभी कभी आर्थिक हितो की राजनैतिक हितो पर बलि चढा देने का भय रहता है।

(2) योजना निर्माण व क्रियान्वयन मे समन्वय का अभाव—आयोग एक सलाहकार सस्था है अत वह केवल योजना का निर्माण करती है जबकि योजना का क्रियान्वयन केन्द्र तथा राज्य सरकारो के हाथ मे होता है अलग-अलग कार्य विभाजन से योजना निर्माण व क्रियान्वयन मे समन्वय नही हो पाता और लक्ष्यो व उपलब्धियो मे काफी अन्तर हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय योजनाये निर्माण की दृष्टि से कुशल पर क्रियान्वयन की दृष्टि से असफल रही है। लक्ष्यो व उपलब्धियो म अन्तराल इसका परिचायक है।

(3) विभिन्न विभागो मे समन्वय व परस्पर सहयोग का अभाव—आयोग की स्थापना के बाद उसके विभागो व उप विभागो मे इतनी तीव्र गति के वृद्धि हुई है कि उनमे सहयोग व समन्वय बैठना कठिन प्रक्रिया बन गई है। उनके परस्पर विरोधी निर्णय, निर्णयो मे विलम्ब तथा समन्वय के अभाव म अकुशलता व फिजूलखर्ची को प्रोत्साहन करता है।

(4) राज्य स्तर पर उपयुक्त नियोजन-तन्त्र का अभाव—राज्य-स्तर पर प्रारम्भ मे उपयुक्त योजना तन्त्र का अभाव होने से राज्यो मे योजनाओ का निर्माण पक्ष ढीला रहा है। अब प्राय सभी राज्यो मे राज्य योजना मण्डल स्थापित किये गये हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद केन्द्रीय तथा राज्य योजनाओ मे समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है फिर भी राज्यो की नियोजन व्यवस्था पर प्रभावी नियन्त्रण नही है अत विभिन्न राज्यो म काफी अन्तर व विषमताओ की समस्या उत्पन्न हुई है। राज्य सरकारें अपनी योजनाओ को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित करने मे भी असफल रही है। जिला व ग्राम स्तर पर भी उचित नियोजन व क्रियान्वयन के सगठनो का अभाव है प्रशासनिक अधिकारी ही सर्वेसर्वा होकर नियोजन व उसके कार्यान्वयन पक्ष की अवहेलना करते हैं। आपातस्थिति की घोषणा के बाद स्थिति मे काफी सुधार आया है।

(5) **भौतिक तथा वित्तीय साधनो मे असन्तुलन की समस्या रही है** योजना की सफलता भौतिक व वित्तीय साधनो के असन्तुलन मे निहित है पर भारत म अब तक के अनुभव यह बतात है कि दोनो म काफी असन्तुलन पाया गया है। जिससे विकास की गति अवरुद्ध हुई है। एक दूसरे के स दर्भ म केवल भौतिक लक्ष्यो की परीक्षा करना ही पर्याप्त नही वरन् इसस भी अधिक महत्वपूर्ण समस्या उन वित्तीय साधनो की है जो भौतिक लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिय आवश्यक हैं।

(6) **विभागीय सम्मिश्रण की समस्या** (*Problem of over lapping*)—योजना आयोग मे अब इतन ज्यादा विभाग एव उप विभाग हो गये ह कि कार्यों का विभिन्न विभागो म वितरण ठीक-ठीक होना सम्भव नही होता। परिणामस्वरूप विभागीय सम्मिश्रण की समस्या उत्पन्न हो गई है यही नही राज्यो व केन्द्र क बाच वित्तीय साधनो के वितरण का काय वित्त आयोग तथा योजना आयोग दोनो के हाथ म होने से सम्मिश्रण की समस्या रहती है। इससे उलझन पैदा होती है। कार्यों के सचालन मे देरी होती है। एक विभाग अपनी फाइल दूसरे विभाग को सौंपता है जिसस अनावश्यक विलम्ब बढ जाता ह।

(7) **नियोजन तन्त्र के गठन मे गडबडी**—योजना आयोग का गठन करने म भी स्वार्थी व राजनैतिक हित प्रभावी होते है। सदस्यो के लिये कोई निश्चित योग्यता आदि न होने से आयोग के कभी-कभी ऐसे सदस्य भी हो सकते है जिन्हे किसी क्षत्र विशेष का तकनीकी ज्ञान भी नहीं होता। सदस्यों म कार्यों का विभाजन भी कभी-कभी ठीक प्रकार से नही किया जाता। सदस्यो की नियुक्ति मे भी विलम्ब होता है अत सदस्यो की अनुपस्थिति म उसक विभागो मे काय ठप्प हो जाता है। यही नही, समय समय पर सदस्यो की सख्या म भी मनमाने ढग से परिवतन होता रहा है। इसके अलावा जब सदस्यो के विभागो मे बार बार परिवतन किया जाता है तो उत्तरदायित्व निश्चित न होने स काय की अवहेलना होती है।

(8) **योजना आयोग का बढता व्यय**—योजना आयोग पर होने वाला व्यय निरन्तर बढता जा रहा है क्योकि योजना आयोग के आकार व कर्मचारियो की सख्या मे आश्चय जनक वृद्धि हुई ह। 1950 51 मे आयोग का कुल व्यय 85 6 लाख रुपये था वह बढ़कर 1960 61 मे 8 56 लाख रुपये 1965 66 मे 139 6 लाख रुपये अब 3 5 करोड से भी अधिक होने का अनुमान है। कर्मचारियो की सख्या भी लगभग 10 गुना हो गई हैं। इससे फिजूलखर्चों, लालफीताशाही व समन्वय के अभाव की समस्या उत्पन्न हुई है।

(9) **राजनैतिक प्रभाव के दुष्परिणाम**—यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से योजना आयोग को राजनैतिक एव दलगत भेदभावो से मुक्त रखने की व्यवस्था है पर योजना आयोग मे राजनीतिज्ञ सदस्य विशेषज्ञो की आवाज को दबा देते हैं। 1957 में योजना आयोग के प्रमुख सदस्य डा० मिन्हास का योजना मे लक्ष्यो सम्बन्धी मतभेद पर इस्तीफा देना तथा उस इस्तीफे को राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक मे कोई

प्रतिक्रिया न होने से आभास होता है कि जहा विशेषज्ञ आर्थिक दृष्टि से निष्पक्ष व विवेकपूर्ण निर्णय लेते है वहा राजनीतिज्ञ अपनी सत्ताधारी पार्टी के हितो व राजनैतिक दृष्टिकोण से निर्णय लेते है इससे उनमे प्राय मतभेद होने पर राजनीतिज्ञो के निर्णय विशेषज्ञो के निर्णयो को दबा देते है। परिणामस्वरूप योजना के निर्णय वास्तविकता से परे होते है।

(10) लालफीताशाही (Red-Tapism)—सरकार के अन्य विभागो की भाँति योजना आयोग के विशाल आकार, कार्य वितरण मे सम्मिश्रण, सदस्यो की नियुक्ति मे गडबडी आदि से योजना आयोग मे भी लालफीताशाही तथा नौकरशाही का बोलबाला है। जहा एक ओर योजनाओ को जल्दी ही मूर्त रूप देने तथा उनमे परस्पर समन्वय की आवश्यकता है वहा अत्यधिक विलम्ब न्यायसगत नही कहा जा सकता।

(11) योजनाओं के कार्यान्वयन पहलू की अवहेलना—भारतीय नियोजन तन्त्र का एक सबसे बडा दोष यह है कि योजनाओ के निर्माण पक्ष पर तो पर्याप्त ध्यान दिया जाता है पर इन योजनाओ को शीघ्रताशीघ्र कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करने पर पर्याप्त ध्यान नही दिया जाता। परिणामस्वरूप लक्ष्यो व उपलब्धियो मे काफी अन्तराल रहता है। श्रीमती बारबारा वार्ड के शब्दो मे "भारतीय नियोजन योजना निर्माण की दृष्टि से मजबूत रहा है बनिस्पत क्रियान्वयन के। यहा के नियोजक चीजो को सोचने मे अधिक रहे है। अपेक्षाकृत उन्हे किया हुआ देखने मे।"

भारत मे नियोजन-तन्त्र के दोषों को दूर करने व सुधार के सुझाव
(Suggestions for Improvement & Removal of Defects of Planning Machinery in India)

जब हमने प्रजातान्त्रिक नियोजन प्रणाली को आर्थिक विकास व नियन्त्रण का आधार बनाया है तो योजनाओ के सफल सचालन व क्रियान्वयन के लिये 'नियोजन तन्त्र' के दोषो का निराकरण कर उसमे सुधार के निम्न सुझाव विचारणीय हैं—

(1) योजना आयोग को एक स्वतन्त्र सवैधानिक सस्था का रूप प्रदान किया जाना चाहिये—ताकि उसमे राजनैतिक प्रभाव को कम किया जा सके तथा उसके निर्णयो को अनिवार्य रूप से लागू करने मे सुविधा हो जाये। आर्थिक, वित्तीय व तकनीकी विशेषज्ञो को आयोग मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का अवसर मिलना चाहिये।

(2) योजना निर्माण व क्रियान्वयन की कुशलता के लिये आयोग व प्रशासन मे निकटतम सम्बन्ध व समन्वय स्थापित करना चाहिये—ताकि लक्ष्यो व उपलब्धियो मे तालमेल बैठाना सम्भव हो सके। परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तन किए जा सकें।

(3) राज्य स्तर जिला स्तर व ग्राम स्तर पर नियोजन व उसकी क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये—यद्यपि अब प्राय सभी राज्यो मे राज्य स्तर पर नियोजन तन्त्र के रूप मे राज्य योजना मण्डलो की स्थापना की है पर उनका

अस्तित्व भी योजना आयोग की भाति ही स्वतन्त्र नही है। राज्य स्तर पर भी योजनाओ का मूल्याकन करने के लिये एक स्वतन्त्र सगठन होना चाहिये। जनता सरकार जिला स्तरीय नियोजन पर जोर दे रही है।

(4) नियोजन-तन्त्र की कार्य-प्रणाली मे कुशलता व सुधार किया जाना चाहिये—इसके लिये विभिन्न विभागो मे समन्वय बैठाया जाए, भौतिक व वित्तीय साधनो म सन्तुलन बैठाया जाए। कार्य आवटन मे विवेक से काम लेकर दोहरीकरण को रोका जाए। वैकल्पिक योजना प्रस्तुत की जाए ताकि बदलती परिस्थितियो मे उसे प्रतिस्थापित किया जा सके। इससे एक ओर लालफीताशाही व नौकरशाही के दुष्प्रभावो को दूर किया जा सकेगा तथा दूसरी ओर नियोजन की कुशलता बढेगी। यही नही, सावजनिक क्षेत्र की भाति निजी क्षेत्र की योजनाओ को भी योजना मे व्यापक व पर्याप्त महत्व दिया जाए।

(5) योजना-तन्त्र के गठन मे व्यापक दृष्टिकोण—योजना आयोग तथा योजना-निर्माण मे सलग्न सस्थाओ म सभी वर्गो को निष्पक्ष रूप मे प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। राजनीतिज्ञो की नियुक्ति मुख्यत उनकी योग्यता व विशिष्टता पर आधारित होनी चाहिये। योजना आयोग के विभिन्न सदस्यो को विभागो का वितरण उनकी उस विभाग सम्बन्धी योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए तथा उनम बार-बार जल्दी-जल्दी परिवतन न करके निश्चित दायित्व डालना चाहिये। रिक्त स्थानो को अविलम्ब भरना चाहिये। योजना आयोग मे आर्थिक व तकनीकी विशेषज्ञो की नियुक्ति को प्राथमिकता देनी चाहिये।

(6) राजनैतिक प्रभाव मे कमी—योजना आयाग व अन्य सम्बन्धित सस्थाओ मे यथा-सभव राजनैतिक प्रभाव को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिये ताकि योजनाओ को वास्तविकता के नजदीक लाने मे सुविधा हो। प्रशासनिक सुधार आयोग के मतानुसार तो आयोग मे कोई मन्त्री सदस्य नही होना चाहिये ताकि आयोग आर्थिक दृष्टि पर अधिक उपयुक्त स्वतन्त्र निर्णय ले सके।

(7) आयोग के व्यय मे मितव्ययता—भारत जैसे राष्ट्र मे वर्तमान परिस्थितियो मे योजना आयोग के विशाल आकार व बढते कर्मचारियो से बढता व्यय एक भारी भार है अत व्यय म मितव्ययता व आकार मे यथासम्भव कमी करके विभागीय सम्मिश्रण को रोकना चाहिये। इससे अनावश्यक विलम्ब व लालफीताशाही का भी निराकरण सम्भव होगा।

(8) योजना निर्माण के साथ साथ उसके कार्यान्वयन पहलू को भी महत्वपूर्ण माना जाना चाहिये—क्योकि योजना की सफलता अन्तत उसके कुशल क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है। चाहे योजना कितनी ही अच्छी क्यो न हो पर अगर उस योजना को सफलतापूर्वक क्रियान्वित न किया जा सके तो सारा उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है अत कार्यान्वयन पक्ष को सुदृढ, कुशल व तीव्रगामी बनाना चाहिये।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

(1) भारत मे योजनाओ के निर्माण (Formulation of Plans) की प्रक्रिया का विवेचन कीजिए।

अथवा

भारत मे पचवर्षीय योजनाएं कैसे तैयार की जाती हैं और योजना को लागू करने से पूर्व किन-किन अवस्थाओ से गुजरना पडता है ?

(संकेत—भारत मे योजना निर्माण प्रक्रिया का विवरण अध्याय मे दिये गये शीर्षकानुसार दीजिये)।

(2) भारत मे नियोजन-तन्त्र अथवा योजना आयोग का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।

अथवा

भारत मे नियोजन-तन्त्र व उसकी कार्य प्रणाली देकर इसके दोषो का उल्लेख कीजिये।

(संकेत—प्रथम भाग मे केन्द्रीय-स्तर पर योजना आयोग तथा राज्य स्तर पर योजना मण्डलों आदि का विवरण, गठन, कार्य-प्रणाली आदि देकर उनके दोषो का उल्लेख करना है)।

(3) भारत मे नियोजन तन्त्र के दोषो की आलोचनात्मक विवेचना कर उसके सुधार के सुझाव दीजिये।

अथवा

भारत मे नियोजन तन्त्र के मुख्य-मुख्य दोष क्या हैं, इनके निराकरण व सुधार के सुझाव दीजिये।

(संकेत—प्रथम भाग मे सक्षेप मे भारतीय नियोजन प्रणाली बताकर उसके दोष बताने है तथा दूसरे भाग मे उनके निराकरण व सुधार के सुझाव अध्याय मे शीर्षकानुसार देना है)। □

8

1951 से भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन

(EXECUTION & EVALUATION OF PLANS IN INDIA SINCE 1951)

भारत में योजनाबद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया की शुरुआत 1 अप्रैल 1951 से हुई और तब से अब तक देश मे चार पचवर्षीय योजनायें तथा तीन वार्षिक योजनायें क्रियान्वित की जा चुकी हैं और पाचवी पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो की पूर्ति के लिये पूरे जोश से प्रयत्न किया जा रहा है। पिछले 27 वर्षों मे भारत की अर्थव्यवस्था मे कृषि उत्पादन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन, औद्योगीकरण का सुदृढ आधार और परिवहन साधनो मे प्रगति से न केवल समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है बल्कि सामाजिक सेवाओ मे विस्तार से कल्याणकारी राज्य एव समाजवाद की स्थापना का स्वप्न साकार हो रहा है। योजनावार प्रगति का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–52 से 1955–56)
(*First Five Year Plan*)

प्रथम योजना का निर्माण तत्कालीन आर्थिक असन्तुलन एव युद्धोत्तरकालीन समस्याओ का समाधान तथा दीर्घकालीन विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिये किया गया। प्रारम्भ मे सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित व्यय 2,069 करोड रुपया था पर 1953 मे बेरोजगारी के निराकरण के लिए राशि बढाकर 2,356 करोड रुपया तथा *1954* मे बढाकर *2,378* करोड रु० कर दी गई। जबकि वास्तविक व्यय केवल 1960 करोड रुपये रहा जो कि कुल प्रस्तावित व्यय का 83 प्रतिशत ही था।

उद्देश्य--(i) इस योजना का उद्देश्य विभाजन तथा युद्धोत्तरकालीन समस्याओ –खाद्यान्न तथा कच्चे माल के अभाव, शरणार्थियो की समस्या को सुलझाना तथा अर्थव्यवस्था मे असन्तुलन को दूर करना, तथा

(ii) पूर्व चालित योजनाओं को पूरा करना तथा देश की अर्थव्यवस्था को इस प्रकार सबल बनाना जिससे भावी आर्थिक विकास द्रुतगति से सुगमतापूर्वक क्रियान्वित किया जा सके।

प्राथमिकतायें—इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इसमें कृषि, सिचाई एव विद्युत कार्यक्रमो पर कुल योजना व्यय का 44% भाग निर्धारित किया गया। यातायात एव सामाजिक सेवाओ को क्रमश. द्वितीय एवं तृतीय स्थान मिला जबकि उद्योगो का प्राथमिकता मे अन्तिम स्थान था।

प्रथम योजना का परिव्यय—यह योजना नियोजित विकास मे भारत का पहला प्रयास था। अत सार्वजनिक क्षेत्र मे परिव्यय 2069 करोड रुपये का प्रस्ताव था जबकि वास्तविक व्यय 1,960 करोड रुपया रहा जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय

(करोड रुपये)

मद	मूल प्रस्तावित व्यय	वास्तविक व्यय	वास्तविक व्यय का प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	360	291	15
सिचाई एव शक्ति	561	570	29
उद्योग एव खनिज	174	117	6
परिवहन एव सचार	497	523	27
सामाजिक सेवाये व अन्य	477	459	23
कुल योग	2069	1960	100

योजना में वित्तीय व्यवस्था—सार्वजनिक क्षेत्र मे किये जाने वाले परिव्यय की वित्तीय व्यवस्था मे करो व रेलो से 752 करोड रुपये, अल्प बचत व अन्य ऋणो से 304 करोड रुपये, बाजार ऋण से 205 करोड रुपये, अन्य पूंजीगत प्राप्तियों से 91 करोड रुपये जुटाये गये। घाटे की अर्थव्यवस्था से 290 करोड रुपये जुटाने का प्रस्ताव था पर इस स्रोत से 420 करोड रुपये जुटाये गये। विदेशी सहायता से 188 करोड रुपये प्राप्त हुए। इस प्रकार आन्तरिक एव बाह्य साधनो का अनुपात क्रमशः 90 : 10 रहा।

प्रथम योजना के लक्ष्य एवं उपलब्धियां
(Plan Targets & Their Achievements)

प्रथम योजना मे योजनाबद्ध विकास के अनुभव के अभाव मे लक्ष्य नीचे रखे गये तथा भाग्य से व प्राकृतिक अनुकम्पा से उपलब्धियाँ लक्ष्यो से अधिक रही। पहला प्रयास काफी सन्तोषजनक रहा। यह निम्न तथ्यो से स्पष्ट है—

(1) राष्ट्रीय आय एव विनियोग मे वृद्धि—राष्ट्रीय आय मे केवल 13% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था जबकि पाँच वर्षों मे राष्ट्रीय आय मे 18% की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय मे 11% की वृद्धि हुई। उपभोग स्तर मे 8 से 9% की वृद्धि

हुई। इस योजना मे विनियोग 3660 करोड रुपये हुआ। जहाँ 1950–51 मे पूँजी निर्माण की दर 5 प्रतिशत थी वह बढकर 1955–56 मे 7 3 प्रतिशत वार्षिक हो गई।

(2) कृषि, सिचाई एवं विद्युत विकास—योजना काल मे कृषि उत्पादन मे 1 ३ प्रतिशत वृद्धि हुई। खाद्यान्न का उत्पादन जो योजना के प्रारम्भ म 5 5 करोड टन था, बढकर 1953–54 मे 6 8 करोड टन हो गया जबकि लक्ष्य 6 5 करोड टन ही था। योजना के शुरू मे सिचित क्षेत्र 2·08 करोड हेक्टर था वह अन्त मे बढकर 2·26 करोड हेक्टर हो गया। इसी प्रकार कृषि विकास की दर जो पहले 0 5 प्रतिशत वार्षिक थी वह बढकर 3 6 प्रतिशत वार्षिक हो गई। विद्युत उत्पादन 23 लाख किलोवाट से बढकर 34 लाख किलोवाट कर दिया गया।

(3) उद्योग—इस योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे 40 प्रतिशत वृद्धि हुई। सार्वजनिक क्षेत्र मे बडी औद्योगिक योजनाओ पर 57 करोड रुपये व्यय हुए तथा हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हिन्दुस्तान शिपयार्ड, इन्टीग्रल कोच फेक्टरी, टेलीफोन कारखाना, हिन्दुस्तान केबल्स तथा चितरजन लोकोमोटिव, सिन्दरी खाद कारखाना आदि स्थापित किये गए। सीमेन्ट का उत्पादन 27 लाख टन स बढकर 46 लाख टन, इस्पात का उत्पादन 9 8 लाख टन से बढकर 15 8 लाख टन, चीनी का उत्पादन 11 34 लाख टन से बढकर 18 लाख टन से अधिक हो गया। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र मे सुदृढ आधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

(4) यातायात एव संचार—अर्थव्यवस्था के विकास मे परिवहन एव सचार साधनो का विकास आवश्यक है। इस योजना मे रेलो की 380 लम्बी लाइनो का निर्माण किया गया। वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। जहाज निर्माण के लिये हिन्दुस्तान शिपयार्ड बनाया गया और जहाजरानी क्षमता 3 9 लाख G.R T. से बढकर 4 8 लाख G R T कर दी गई। 4000 मीटर लम्बी सडको को सुधारा गया तथा 636 मील लम्बी राष्ट्रीय महत्व की सडको का निर्माण किया गया। सचार व्यवस्था मे काफी विस्तार और विकास हुआ।

(5) सामाजिक सेवाएँ—इस मद पर कुल वास्तविक व्यय का 23 प्रतिशत भाग व्यय हुआ। शिक्षा क्षेत्र मे प्राथमिक शालाओ की सख्या 2 लाख से बढकर 2 8 लाख, मेडिकल कालेजो की सख्या 30 से बढाकर 42, बुनियादी विद्यालयो की सख्या 1,751 से बढाकर 15,800 कर दी गई। अस्पतालो व औषधालयो की सख्या 8,600 से बढाकर 10 हजार कर दी गई। गृह निर्माण कार्यों पर 135 करोड रुपये व्यय हुआ। इसी प्रकार शिशु कल्याण, जल प्रदाय तथा पिछडे वर्गों के कल्याण के प्रयास किये गये।

(6) रोजगार—प्रारम्भ मे रोजगार की समस्या पर ध्यान नही दिया गया था पर जब 1953 मे समस्या विकट हुई तो योजना परिव्यय की राशि मे 308 करोड रु० वृद्धि से 58 लाख अतिरिक्त लोगो के लिये रोजगार व्यवस्था का प्रावधान

किया गया। प्रारम्भ मे 40 लाख लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान था। योजनाकाल मे 75 लाख लोगों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान किया फिर भी योजना के अन्त मे 53 लाख लोग बेकार थे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का मूल्यांकन

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना मे उपलब्धियाँ लक्ष्यो से अधिक रहीं और प्रगति ने भावी विकास के लिए सुदृढ आधार तथा जनता मे योजनाबद्ध विकास के प्रति श्रद्धा का सृजन किया फिर भी इसमे अनेक अपूर्णताएँ दृष्टिगोचर हुई जिनकी कुछ विचारकों ने आलोचना की है—

(1) प्राकृतिक तथा मानवीय साधनो का उचित अनुमान नही लगाया गया और लक्ष्य बहुत नीचे निर्धारित किये गए।

(2) योजना राशि के व्यय मे असमानता एव अपूर्णता रही। कुल प्रस्तावित व्यय 2,378 करोड रु० था पर वास्तविक व्यय, 1,9 0 करोड रु० ही हुआ अर्थात् 17 प्रतिशत कम हुआ। प्रारम्भिक वर्षों मे व्यय कम तथा अन्तिम वर्षों मे अधिक व्यय असमानता का द्योतक है।

(3) विदेशी सहायता के लिए 300 करोड रुपये उपलब्ध थे पर केवल 188 करोड रुपये की विदेशी सहायता का ही उपयोग हो पाया।

(4) हीनार्थ प्रबन्ध पर अत्यधिक निर्भरता से योजना के अन्तिम वर्षों मे मूल्यो मे वृद्धि का दौर चला।

(5) उद्योगो की उपेक्षा की गई क्योकि इस योजना मे उद्योगो पर योजना व्यय का केवल 6 प्रतिशत भाग व्यय हुआ और औद्योगीकरण के अभाव मे बेरोजगारी की समस्या जटिल हुई।

(6) इस योजना मे दीर्घकालीन विकास का जो आशावादी दृष्टिकोण अपनाया गया था वास्तविक तथ्यो पर आधारित न होकर काल्पनिक था। यह वर्तमान स्थिति से स्पष्ट है।

किन्तु इन सब आलोचनाओ के बावजूद प्रथम योजना मे आश्चर्यजनक सफलता मिली और मृत प्राय अर्थव्यवस्था मे नये जीवन के सचार से भावी आर्थिक विकास के लिये उचित वातावरण तैयार हुआ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–57 से 1960–61)
(Second Five Year Plan)

प्रथम योजना की सफलता से देश मे समाजवाद की स्थापना के लक्ष्य की पृष्ठभूमि मे द्वितीय योजना अधिक बडी एव औद्योगीकरण की प्रमुख योजना के रूप मे लागू की गई। इसके उद्देश्य अपेक्षाकृत व्यापक और समाजवाद के अनुकूल थे।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

(1) राष्ट्रीय आय मे पाँच वर्षों मे 25 प्रतिशत वृद्धि करना ताकि जनता का रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठ सके।

(2) द्रुतगति से औद्योगीकरण जिसमे आधारभूत उद्योगो के सुदृढ आधार पर बल दिया गया।

(3) रोजगार अवसरो मे व्यापक वृद्धि एव विस्तार।

(4) आय तथा धन की असमानता मे कमी कर आर्थिक सत्ता के समान वितरण की व्यवस्था।

इन एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित उद्देश्यो को सन्तुलित रूप से प्राप्त करने के प्रयासो की व्यवस्था पर जोर दिया गया।

द्वितीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय

उपर्युक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मे 4 800 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र मे 2,400 करोड रुपये परिव्यय निर्धारित किए गए पर वास्तविक व्यय क्रमश 4672 करोड रुपये तथा 3,100 करोड रुपय हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल विनियोग 3,650 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र मे 3,100 करोड रुपये हुआ। यह कुल विनियोग 6,750 करोड रुपये प्रथम योजना के विनियोग से लगभग दुगुना था। विभिन्न मदो पर व्यय का विवरण इस प्रकार है—

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय

(करोड रुपये)

मद	प्रस्तावित	वास्तविक	कुल वास्तविक व्यय
कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र	568	520	11
सिचाई एव शक्ति	9 3	865	19
उद्योग एव खनिज	890	1075	24
परिवहन एव सचार	1385	1300	28
सामाजिक सेवायें	945	830	18
विविध	99		
कुल योग	4800	4600	100

प्राथमिकतायें—यह औद्योगीकरण की योजना थी अत उद्योगो के विकास को प्राथमिकता मे सर्वोच्च स्थान दिया गया। द्वितीय स्थान परिवहन एव सचार तथा प्राथमिकता मे तृतीय स्थान सिचाई एव विद्युत विकास को दिया गया। सामाजिक सेवायें प्राथमिकता के अन्तिम क्रम मे थी। आधारभूत उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी जानी थी ताकि देश म तीव्र औद्योगीकरण के लिए सुदृढ आधार तैयार किया जा सके।

वित्तीय व्यवस्था—द्वितीय योजना का आकार प्रथम योजना के आकार से लगभग दुगुना था। अत अधिक आय के साधन जुटाने थे। वित्तीय व्यवस्था का ढाचा इस प्रकार रहा—

द्वितीय योजना में वित्तीय व्यवस्था

विवरण	प्रस्तावित आय	वास्तविक आय
राजस्व से बचत	800	1002
सार्वजनिक ऋण	1200	1180
अन्य बजट साधन	400	380
घाटे की वित्त व्यवस्था	1200	948
विदेशी सहायता	800	1090
अन्तर अनिश्चित साधन	400	—
कुल	4800	4600

इसमे 1062 करोड रुपये की नये करो से आय हुई जबकि चालू राजस्व में 50 करोड का घाटा रहा। विदेशी साधनो मे 190 करोड की वृद्धि के कारण हीनार्थ प्रबन्ध से 252 करोड रु० कम जुटाये गये। आन्तरिक साधन तथा बाह्य साधनो का अनुपात क्रमश 76 24 रहा। 1957-58 मे विदेशी विनिमय सकट जटिल हो गया।

द्वितीय योजना के लक्ष्य एवं उपलब्धियां
(Plan Targets & Achievements)

द्वितीय योजना मे ऊँचे लक्ष्य रखे गये तथा उपलब्धियां भी सन्तोषजनक कही जा सकती है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति निम्न तथ्यों से स्पष्ट है—

(1) **राष्ट्रीय आय एव विनियोग**—राष्ट्रीय आय मे 25% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया पर वास्तविक वृद्धि 20% ही रही। प्रति व्यक्ति आय मे 15% आय के मुकाबिले 11% वृद्धि रही। राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे विनियोग दर जो प्रारम्भ मे 7 3% थी, बढकर 11% हो गई। योजनाकाल मे कुल मिलाकर 6,750 करोड रुपये विनियोग हुआ। इस प्रकार जहाँ प्रथम योजना मे विनियोग का वार्षिक औसत 850 करोड रुपये था 1960-61 मे बढकर 1,609 करोड रुपये वार्षिक हो गया। राष्ट्रीय आय 10,800 करोड रुपये से बढकर 13,480 करोड रुपये तथा प्रति व्यक्ति आय, मे जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण केवल 11% ही वृद्धि हुई।

(2) **कृषि, सिंचाई, एव विद्युत विकास**—पाँच वर्षों मे कृषि उत्पादन मे 21·7% की वृद्धि हुई। खाद्यान्न का उत्पादन 1955-56 मे 6 5 करोड टन से बढकर 1960-61 मे 8 2 करोड टन हो गया जबकि लक्ष्य 7·5 करोड टन ही था। भूमि सुधार कार्यक्रमों मे तेजी रही। सिंचित क्षेत्र जहाँ पहले 2 26 करोड हेक्टर था वह योजना के अन्त मे बढकर 2 8 करोड हेक्टर हो गया। विद्युत उत्पादन 34 किलोवाट से बढकर 56 लाख किलोवाट हुआ जबकि लक्ष्य 69 लाख किलोवाट था।

(3) **उद्योगो का विकास**—1956 मे नई औद्योगिक नीति की घोषणा तथा उद्योगो को विकास मे प्राथमिकता देने से औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक (1950-51 के आधार वर्ष) 1955-56 के 139 से बढकर 1960 61 मे 194 हो गया। मशीन उत्पादन और रासायनिक उद्योगो मे क्रमश 400 प्रतिशत तथा 220°/₀ वृद्धि हुई। प्रमुख उद्योगो म लक्ष्य तथा प्राप्तियाँ इस प्रकार थी—

उद्योग	इकाई	उत्पादन 1955-56	लक्ष्य (सशोधित)	उपलब्धियाँ 1960 61
1 कोयला	लाख टन	384	600	546
2 इस्पात	"	17	43	35
3 शक्कर	"	17	23	30
4 सीमट	"	46	130	80
5 पेट्रोलियम पदार्थ	"	36	57	58
6 मशीन टूल्स	करोड रुपये	0 8	5 5	6

इस अवधि म सार्वजनिक क्षेत्र म तीन लोह इस्पात कारखाने दुर्गापुर, रूरकेला तथा भिलाई म स्थापित किये। नागल व दुर्गापुर म रासायनिक खाद कारखाने खोले। लघु एव कुटीर उद्योगो क विकास पर 180 करोड रुपया व्यय किया गया। नूनमती व बरौनी मे तेल शोधक कारखाने तथा खनिज तेल गैस का पता लगाने के लिए प्राकृतिक तेल एव गैस आयोग की स्थापना की गई।

(4) **परिवहन एव सचार**—इस योजना मे रेलो के विकास पर 1,044 करोड रुपये व्यय से 8 हजार मील रेल लाइनो मे सुधार, 1,300 मील लाइनो का दोहरीकरण व 9,500 मील रेलो का विद्युतीकरण किया। सडक विकास पर 224 करोड रुपये व्यय से कच्ची एव पक्की सडको की लम्बाई मे क्रमश 37 हजार तथा 22 हजार मील की वृद्धि हुई। जहाजरानी क्षमता 4 8 लाख GRT से बढाकर 8 6 लाख GRT कर दी गई। डाकघरो की सख्या 1955-56 मे 55 हजार थी उसे 1960-61 म बढाकर 77 हजार कर दी गई जबकि लक्ष्य 75 हजार था।

(5) **सामाजिक सेवाओ का विस्तार**—प्राथमिक एव तकनीकी शिक्षा तथा उच्च स्तर शिक्षा सुविधाओ मे वृद्धि की गई। प्राथमिक पाठशालाओ की सख्या 1955-56 मे 1 8 लाख थी वह 1960 61 मे बढकर 3 42 लाख हो गई। सभी छात्रो की सख्या जो प्रारम्भ म 3 13 करोड थी बढकर योजना के अन्त मे 4 35 करोड तक बढी। अस्पतालों की सख्या 10 हजार से बढाकर 12 6 हजार कर दी गई। मेडीकल कॉलेजो की सख्या पाँच वर्षों मे 42 से बढकर 57, आवास गृहो की सख्या मे 5 लाख की वृद्धि तथा पिछडे वर्गों के 4,800 छात्रो को आर्थिक सहायता देना महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थी।

(6) रोजगार—इस योजना में 80 लाख अतिरिक्त लोगों को गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य था। योजना में कुल मिलाकर 95 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया गया फिर भी रोजगार के अन्त में 90 लाख व्यक्तियों के बेरोजगार होने का अनुमान था।

द्वितीय योजना की समीक्षा

द्वितीय योजना में लक्ष्यों के ऊँचा होने पर भी बहुत से क्षेत्रों में अधिक उपलब्धियाँ रहीं पर सामान्य तौर पर प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही। राष्ट्रीय आय में 25% के स्थान पर 20% वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय में 18% के बजाय 11% वृद्धि, बेकारों की संख्या में वृद्धि तथा दोषपूर्ण वित्तीय व्यवस्था से योजना की आलोचना की गई है—

(1) **बहुत महत्वाकांक्षी**—प्रथम योजना के मुकाबले सार्वजनिक क्षेत्र में दुगुने से भी अधिक व्यय तथा ऊँचे लक्ष्यों का निर्धारण होने से विदेशी विनिमय संकट व ऊँचे मूल्य स्तर निराशा के कारण बने। योजना काल में मूल्य-स्तर में 24% की वृद्धि हुई।

(2) **उपभोग उद्योगों की अवहेलना**—आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता से, उपभोग उद्योगों की अवहेलना हुई। उसके कारण उपभोग वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि से जीवन-स्तर में सुधार सम्भव न हो सका।

(3) **बेकारी की समस्या जटिल**—प्रथम योजना में 1060 करोड़ रुपये व्यय से 75 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया गया जबकि द्वितीय योजना में दुगुनी राशि व्यय करके भी केवल 95 लाख लोगों को रोजगार दिया गया। योजना के अन्त में 90 लाख लोगों की बेकारी की समस्या निराशा व्याप्त कर रही थी।

(4) **दोषपूर्ण वित्तीय व्यवस्था**—विदेशी सहायता तथा हीनार्थ प्रबन्ध पर अत्यधिक आश्रितता से मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि तथा विदेशी विनिमय संकट उत्पन्न हुआ।

(5) **सैद्धान्तिक समाजवाद**—द्वितीय योजना में आर्थिक असमानता में वृद्धि, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण और सामाजिक विषमताओं में वृद्धि हुई। यह समाजवादी सिद्धान्त के विरुद्ध रहा।

(6) यातायात एवं संचार व्यवस्था के अभाव में औद्योगिक प्रगति में बाधा रही।

(7) **विनियोग एवं परिव्यय लक्ष्य से कम**—सार्वजनिक क्षेत्र में कुल वास्तविक व्यय लक्ष्य से 200 करोड़ रुपये कम रहा। इसी प्रकार विनियोग का लक्ष्य 3,800 करोड़ रुपये था यहाँ वास्तविक विनियोग 3,650 करोड़ रुपये ही रहा।

इन आलोचनाओं के बावजूद यह कहना न्यायसंगत है कि इस योजना में औद्योगीकरण की प्रगति भावी विकास के लिये सुदृढ़ आधार बनी। देश में विदेशी

विनिमय के सकट और मूल्य-स्तर मे अप्रत्याशित वृद्धि से निपटाने के लिये व्यावहारिक एव प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया गया है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–62 से 1965–66)

(Third Five year plan)

भारत मे योजनाबद्ध विकास की तीसरी कड़ी के रूप मे तृतीय पचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1961 को लागू हुई। इस योजना का लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था मे स्वा-स्फूर्त-अर्थव्यवस्था की स्थापना तथा समाजवाद के स्वप्न को साकार करने मे योगदान करना था। पिछले अनुभवो तथा दीर्घकालीन लक्ष्यो को ध्यान मे रखते हुए इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न थे—

तृतीय योजना के उद्देश्य (Objectives)

(1) *राष्ट्रीय आय मे 5 के 6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि से पाच वर्षों मे 30%* की वृद्धि करना तथा विनियोग के स्वरूप को इस प्रकार बनाना जिससे विकास की दर म वृद्धि हो सके।

(2) खाद्यान्नो मे आत्मा-निर्भरता तथा औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति के लिये कृषि उत्पादन मे वृद्धि।

(3) आधारभूत उद्योगो का विस्तार—जिससे भारत आगामी दस वर्षो मे अपने साधनो से भावी औद्योगिकरण की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके और विदेश : निर्भरता कम हो जाये।

(4) रोजगार के अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि—*जिससे देश मे उपलब्ध जन-शक्ति* ' यथासम्भव पूर्ण उपयोग हो सके।

(5) आय व सम्पत्ति की असमानता मे कमी और केन्द्रीयकरण पर रोक।

इस योजना की एक विशेषता यह थी कि यह योजना दीर्घकालीन विकास र्यक्रम के परिप्रेक्ष्य मे तैयार की गई थी। *दीघकालीन विकास कार्यक्रम मे अगली* न पचवर्षीय योजनाओ के लिये राष्ट्रीय, आय प्रति व्यक्ति आय और विनियोग दर अनुमान लगाये गये थे। तृतीय योजना इन दीर्घकालीन लक्ष्यो मे पहली महत्वपूर्ण ही थी।

तृतीय पचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय

तृतीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 7,500 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे ,100 करोड रु० व्यय होने का प्रावधान था। इस प्रकार कुल योजना परिव्यय 1,600 करोड रु० था उसम से 10,400 करोड रु० विनियोग का उद्देश्य था। तीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक व्यय 8,577 4 करोड रु० होन का नुमान है विवरण इस प्रकार रहा.—

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय

(करोड रुपये)

दर	कुल प्रस्तावि व्यय	वास्तविक व्यय	व्यय का प्रतिशत
कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र	1,068	1089	12 7
सिचाई एव बिजली	1 662	1,916	22 4
ग्राम एव लघु उद्योग	264	241	2 8
वृहत् उद्योग एव खनिज	1 520	1,726	20 1
परिवहन एव सचार	1,486	2,111	24 6
सामाजिक सेवाय व विविध	1 300	1,356	15 3
अवशिष्ट माल (Inventories)	200	138	1 6
कुल योग	7,500	8,577	170

उपर्युक्त तालिका के स्पष्ट होता है कि योजना का वास्तविक व्यय प्रस्तावित व्यय से काफी अधिक रहता है और फिर भी योजना मे लक्ष्यो से उपलब्धियाँ बहुत कम थी। क्योकि ऊँचे मूल्य-स्तर, देश पर 1962 मे चीनी आक्रमण तथा 1965 मे पाकिस्तानी आक्रमणो से अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। 1965-66 के अभूतपूर्व सूखा ने स्थिति को गम्भीर बनाने मे योग दिया।

योजना मे प्राथमिकतायें—अर्थव्यवस्था को स्वय-स्फूर्त एव आत्मनिर्भर बनाने क लिये कृषि व सिचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कृषि, सिचाई व शक्ति साधन पर कुल यय का लगभग 35% भाग व्यय हुआ। द्वितीय स्थान उद्योगो एव खनिजों विकास को मिला। प्राथमिकता मे तृतीय स्थान परिवहन एव सचार विकास तथा अन्तिम स्थान सामाजिक सेवाओ को दिया गया।

वित्तीय व्यव था—तृतीय योजना मे प्रस्तावित व्यय पहली दो योजनाओ के सम्मिलित व्यय से भी अधिक था। अत आय के स्रोतो में लोचता अपनायी गई। सार्वजनिक क्षेत्रो म वित्तीय व्यवस्था का स्वरूप अग्र तालिका से स्पष्ट है—

तृतीय पंचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे वित्तीय व्यवस्था

(करोड रुपये)

स्रोत	प्रस्तावित आय	वास्तविक आय
(1) चालू राजस्व म बचत	55ɔ	—419 (घाटा)
(2) रेलो का अन्शदान	100	6-
(3) सार्वजनिक उपक्रमो मे बचत	50	373
(4) अतिरिक्त करारोपण	1,710	2 892
(5) अल्प-बचत	600	5ɔ5
(6) जनता से ऋण (विशुद्ध)	800	823
(7) अन्य पूंजीगत प्राप्तियाँ	540	725
(8) विदेशी सहायता	2,200	2,423
(9) हीनार्थ प्रवन्ध	550	1,133
योग	7,500	8,577

वित्तीय व्यवस्था का अवलोकन स्पष्ट करता है कि चालू राजस्व म ता 419 करोड रुपये का घाटा रहा पर अतिरिक्त करारोपण से जहा केवल 1,710 करोड रु० जुटाना था वहा 2,892 करोड रुपये जुटाये गये। ठीक इसी प्रकार हीनार्थ प्रवन्ध का भी अत्यधिक सहारा लेने से अर्थव्यवस्था वढत मूल्यो के कुचक्र मे फस गई। विदेशी सहायता पर भी अधिक धन प्राप्त हुआ। इन सबका भार साधारण जनता के लिये असह्य हो गया था पर राष्ट्रीय भावना मे त्याग किया गया।

तृतीय पचवर्षीय योजना के लक्ष्य एव उपलब्धियाँ

यद्यपि तृतीय योजना मे लक्ष्य ऊँचे रखे गये पर योजना के क्रियान्वयन मे बाधायें उपस्थित होने तथा विदेशी आक्रमणो का मुकाबला करने से उपलब्धियाँ बहुत कम रही यहा तक कि निराशा व्याप्त ो गई। विभिन्न क्षेत्रो मे लक्ष एव उप-ब्धियो का सक्षिप्त विवरण निम्न है—

(1) राष्ट्रीय आय विनियोग एव प्रति व्यक्ति आय—तृतीय योजना म राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय मे क्रमश 30% तथा 1 % वृद्धि का लक्ष्य था ताकि राष्ट्रीय आय (960–61 के मूल्यो पर) 14,500 करोड रुपये से बढकर 19,000 करोड रुपये तथा प्रति व्यक्ति आय 330 रुपये से बढकर 385 रुपये हो जाये। पर योजना के अन्त मे राष्ट्रीय आय 15,930 करोड रुपये तथा प्रति व्यक्ति आय 325 रुपये ही थी। राष्ट्रीय आय मे जहा पाच वर्षों मे 3 % वृद्धि का लक्ष्य था वहा राष्ट्रीय आय मे 5 सालो मे 13 8% वृद्धि हुई जबकि प्रति व्यक्ति आय मे 5 3% की वृद्धि हुई।

विनियोग मे वृद्धि हुई। जहा 1960–61 मे विनियोग का आर्थिक औसत 1,600 करोड रुपये था वह 1965–66 मे बढकर 2,600 करोड रुपये वार्षिक हो गया। इस तरह विनियोग दर राष्ट्रीय आय के 11% से बढकर 14 15% हो गई। बचत दर भी 8 5% से बढकर 11 4% हो गई।

(2) **कृषि सामुदायिक विकास एव सिंचाई विकास**—इस योजनाकाल मे कृषि उत्पादन म 16% की वृद्धि हुई। *खाद्यान्न का उत्पादन लक्ष्य 10 करोड टन था* पर 1964–65 मे खाद्यान्न का उत्पादन 8 9 करोड टन पहुचकर 1965–66 मे 7 2 करोड टन ही रह गया। 1965–66 मे अभूतपूर्व सूखे के कारण कृषि उत्पादन सूचकांक (1964–65 मे 158 से) घटकर 131 ही रह गया। कृषि उत्पादन गन्ने के अलावा सभी फसलो का लक्ष्य से कम उत्पादन रहा। सिंचाई योजनाओ मे सिंचित क्षेत्र 2 8 करोड हैक्टर से बढकर 3 22 करोड हैक्टर हो गया।

(3) **उद्योग एव खनिज विकास**—योजना मे उद्योग एव खनिज विकास पर 1520 करोड रुपए व्यय का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 1,726 3 करोड रुपये रहा। इसके अलावा लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर 240 8 करोड रु० व्यय हुआ। इस प्रकार कुल योजना व्यय का 24% भाग उद्योगो पर व्यय हुआ। योजनाकाल म औद्योगिक उत्पादन मे 11% सचीय वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि वास्तविक वृद्धि 8% वार्षिक ही रही। 1960–61 के आधार वर्ष पर 1965–66 मे औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 182 हो गया। अधारभूत उद्योगो मे उत्पादन वृद्धि की दर 15 से 16% वार्षिक रही। प्रमुख उद्योगो मे उत्पादन वृद्धि इस प्रकार से रही—

प्रमुख उद्योगों मे उत्पादन

उद्योग	इकाई	1960–61 (वास्तविक)	1965–66 लक्ष्य	वास्तविक उपलब्धियां
लोहा स्पात	लाख टन	23	68	48
सीमेंट	लाख	80	130	108
मशीनरी	करोड र	7	30	20
विद्युत शक्ति	लाख K W.	56	127	102
एल्यूमिनियम	हजार टन	18	80	62
खनिज तेल	लाख टन	58	102	99
कोयला	लाख टन	546	970	680

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वास्तविक उत्पादन लक्ष्य से काफी नीचे रहे। इसके कारण विदेशी विनिमय की कमी, कच्चे माल का अभाव, शक्ति की कमी, दो आक्रमणों से कल पुर्जों व मशीनों के आयातो तथा विदेशी सहायता का अवरुद्ध हो जाना आदि थे। फिर भी उत्पादन मे वृद्धि सतोषजनक रही और आधार-

भूत उद्योगो के विकास से भावी औद्योगीकरण के लिये सुदृढ आधार तैयार हुआ। चीनी का उत्पादन लक्ष्य को पार कर गया। लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास की पर्याप्त सुविधाओ का विस्तार किया गया और उनके अलावा उपभोग वस्तुओ का भी उत्पादन बढा।

(4) परिवहन एवं संचार विकास—इस योजना मे परिवहन एव सचार पर 2,110 7 करोड रुपया व्यय किया गया। परिणामस्वरूप प्रगति सतोषजनक रही। योजनाकाल म रेलो की माल ढोने की क्षमता 15 6 करोड मीट्रिक टन से बढकर 20 30 करोड मी० टन हो गई। सडको के विकास से पक्की सडको की लम्बाई 1 44 लाख मील से बढकर 1 69 लाख मील हो गई अर्थात् 25 हजार मील की वृद्धि हुई। जहाज रानी क्षमता 9 लाख GRT से बढकर 15 लाख GRT हो गई।

सचार साधनो म भी विकास हुआ। योजना के अन्त मे देश म 98 हजार डाक घर, 8,800 तार-घर और 8,75 लाख टेलीफोन उपलब्ध थे।

(5) सामाजिक सेवायें—शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा एव सामाजिक सेवाओ पर 1,300 करोड रुपया व्यय का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 1,355 करोड रुपये हुआ। शिक्षा पर 600 करोड रुपये व्यय से स्कूलो की सख्या 4 लाख से बढकर 5 लाख तथा विद्यार्थियो की सख्या 4,5 करोड से बढकर 6 8 करोड हो गई। अस्पतालो की सख्या मे 2000 की वृद्धि हुई। परिवार नियोजन केन्द्रो की सख्या 1649 से बढकर 1965–66 मे 11,474 हो गई। तीन नये मेडिकल कालेज खोले गये। पिछडी जाति कल्याण पर 102 करोड रु० और गृह निर्माण योजनाओ पर 110 करोड रु० व्यय किया गया।

(6) रोजगार—तृतीय योजना के पाँच वर्षों मे गैर कृषि तथा कृषि क्षेत्र मे क्रमश 105 लाख तथा 35 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार देने का लक्ष्य था। योजना काल मे कुल 145 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार दिया गया फिर भी योजना के अन्त मे 140 लाख लोग बेकार थे।

तृतीय पचवर्षीय योजना की आलोचना एव मूल्यांकन

तृतीय योजना के आकार, विनियोग एव असफलता के कारण उसकी कुछ विचारको ने आलोचना की है। उपयुक्त उपलब्धियो के तथ्यो के साथ-साथ आलोचना के आधार पर समीक्षा के लिये आलोचनाओ पर ध्यान देना आवश्यक है।

(1) समाजवाद के निश्चित आदर्शों का अभाव—योजना मे समाजवाद के आदर्शों को प्राप्त करने के लिए स्पष्ट निर्देशो का अभाव तथा आय की असमानता की समाप्ति को उद्देश्यो मे अन्तिम स्थान देना समाजवाद का कोरा ढोग मात्र था।

(2) स्पष्ट मूल्य नीति का अभाव—मूल्यो मे 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि ने समूची अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। अगर मूल्य नीति को सही रूप से क्रियान्वित किया जाता तो जन-साधारण को सकट न झेलना पडता।

तीन वार्षिक योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र व्यय

(करोड रुपया)

विवरण	अनुमानित व्यय
(1) कृषि, सिचाई एव सम्बद्ध क्षेत्र	1481
(2) विद्युत शक्ति	1127
(3) उद्योग एव खनिज	1722
(4) परिवहन एव सचार	1302
(5) शिक्षा, स्वास्थ्य एव सामाजिक सेवायें	1160
कुल योग	6792

इन वार्षिक योजनाओ मे कृषि व सिचाई विकास को प्राथमिकता दी गई पर साथ ही उद्योगो के विकास को भी महत्व दिया गया। विदेशी सहायता पर आश्रितता बढने तथा भुगतान असन्तुलन को देखते हुए 1966 मे भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन करना पडा।

तीन वार्षिक योजनाओं में उपलब्धियां
(Achievements)

तीन वार्षिक योजनाओ मे अर्थव्यवस्था को इस प्रकार गतिशील किया गया कि प्रतिकूल परिस्थितियो पर विजय प्राप्त कर आर्थिक विकास को नियोजित ढग से द्रुतगति से समाजवाद की ओर अग्रसर कर सकें। तीन वर्षों मे ही चतुर्थ योजना को चालू करने का आवश्यक एव उचित वातावरण तैयार हो गया। विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति का सक्षिप्त विवरण यह है—

(1) कृषि, सिचाई एव सम्बद्ध क्षेत्र—1965–66 तथा 1966–67 के सूखे के बाद 1967–68 म कृषि उत्पादन मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई। 1968–69 मे खाद्यान्न का उत्पादन 1965–66 के 7 2 करोड के मुकाबले बढकर 9 4 करोड टन हो गया। सिंचित क्षेत्र इसी अवधि मे 3 2 करोड हैक्टर से बढकर 3 6 करोड हैक्टर हो गया। कृषि म नयी व्यूह रचना से वैज्ञानिक कृषि का अनुसरण कर रासायनिक उर्वरको, उत्तम बीजो तथा पौध सरक्षण कार्यों मे तेजी आयी।

(2) औद्योगिक, खनिज एव विद्युत विकास—1966 व 1967–68 में औद्योगिक शिथिलता को समाप्त करने के लिए सरकार ने रियायतें दी, आर्थिक सहयोग प्रदान किया। परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (1960–61 के आधार पर) 150 हो गया। विद्युत क्षमता 102 लाख Kw से बढकर 145 लाख Kw, सीमेंट का उत्पादन 104 लाख टन से 125 लाख टन, इस्पात का उत्पादन 46 लाख टन से 65 लाख टन, मशीनो का मूल्य 20 करोड रुपये से बढकर 25 करोड रुपये तथा खनिज तेल का उत्पादन 97 लाख टन से बढकर 161 लाख टन हो गया। इस प्रकार उद्योगो मे भी प्रगति अच्छी रही।

(3) यातायात एव संचार—तीन वार्षिक योजनाओ से पक्की सडको की लम्बाई मे 29 हजार किलोमीटर, जहाजरानी क्षमता मे 6 लाख GRT की वृद्धि हुई। रेलो तथा सचार व्यवस्था का विकास मन्द रहा।

(4) सामाजिक सेवायें—शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति सन्तोषजनक रही। सामान्य शिक्षा मे छात्रो की संख्या मे तीन वर्षो मे एक करोड की वृद्धि हुई। स्वास्थ्य सेवाओ का विस्तार हुआ। पिछडी जाति के कल्याण-कार्यो, जल-प्रदाय योजनाओ और पिछडी जाति के लोगो के कल्याण कार्य किये गये।

(5) राष्ट्रीय आय, बचत एव रोजगार—इस अवधि मे जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि धीमी गति से होने से प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि न हो सकी। केवल 1967-68 मे अच्छे मानसून से पहली बार राष्ट्रीय आय मे 9% की वृद्धि हुई। विनियोग व बचत की दर मे कमी हुई, जहा 1965-66 मे बचत व विनियोग की दरें राष्ट्रीय आय का क्रमश 10 4 तथा 13 8 प्रतिशत भाग था वह 1968-69 मे घटकर क्रमश 8 5 तथा 11 5 प्रतिशत ही रह गयी। रोजगार के अवसरो मे वृद्धि असन्तोषजनक रही। नवआगन्तुको के आगमन से 1968-69 के अन्त मे बेकारो की सख्या 3 5 करोड होने का अनुमान लगाया गया।

इन तीन वार्षिक योजनाओ मे विकास की गति मन्द रही। सक्रिय नीतियो का अभाव रहा। वित्तीय साधनो के अभाव मे नये कार्यक्रमो को हाथ मे न लेकर पुरानी परियोजनाओ को समाप्त करने की चेष्टा की गई। 1966-67 तथा 1968-69 सूखा स्थिति, 1967-68 मे उद्योगो मे शिथिलता, मूल्यो मे निरन्तर वृद्धि, बेकारी की समस्या मे वृद्धि आदि कठिन परिस्थितियो से निकालने मे वार्षिक योजनायें महत्वपूर्ण थी। □

9

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

(FOURTH FIVE YEAR PLAN)

चतुथ पचवर्षीय योजना तृतीय योजना की समाप्ति के तुरन्त बाद 1 अप्रैल, 1966 को प्रारम्भ होने वाली थी पर अर्थव्यवस्था मे वित्तीय साधनो की अनिश्चितता, विदेशी सहायता की सदिग्धता, 1965-66 मे अभूतपूर्व सूखा, मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र मे शिथिलता (Recession) आदि अनेक कारणो से चतुर्थ योजना को स्थगित कर दिया गया और उसके स्थान पर तीन वार्षिक योजनायें (1966 69) कार्यान्वित की गई। जब (1968-69) के अन्त तक अर्थ-व्यवस्था मे चतुथ योजना के शुभारम्भ के लिये उपयुक्त वातावरण बना तो 1 अप्रैल 1969 से चतुर्थ योजना प्रारम्भ की गई। चतुर्थ योजना का मूल प्रस्तावित परिव्यय 24398 करोड रु० होने का प्रावधान था पर 18 मई 1969 को ससद मे प्रस्तुत किये गये अन्तिम प्रलेख के अनुसार चतुर्थ पचवर्षीय योजनाकाल मे सशोधित परिव्यय 24882 करोड़ रुपये होने का प्रावधान था जिसमे से 15902 करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र मे तथा 8980 करोड रुपये निजी क्षेत्र मे व्यय होने का अनुमान था।

चतुर्थ योजना के प्रमुख उद्देश्य (Main Objectives)

चतुर्थ योजना के प्रमुख उद्देश्य—(1) स्थायित्व के साथ विकास, (2) सामाजिक न्याय एव आर्थिक समानता की ओर निरन्तर अग्रसर होना, (3) क्षेत्रीय असन्तुलन का समापन, (4) रोजगार अवसरो मे वृद्धि, (5) निर्यात सम्बर्द्धन तथा (6) आत्म-निर्भरता का मार्ग प्रशस्त करना था। इसके लिये अर्थव्यवस्था म आवश्यक सस्थागत परिवर्तन लाने पर भी जोर दिया गया था।

इन व्यापक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये योजना की व्यूह रचना मे निम्न तत्वो का समावेश किया गया—

(1) राष्ट्रीय आय मे 5 5% की दर से वार्षिक वृद्धि करना ताकि 1980-81 तक विकास की दर 6% वार्षिक हो जाय और देश आर्थिक स्थिरता के साथ प्रगति और आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर हो सके।

(2) कृषि उत्पादन मे 5 6% वार्षिक वृद्धि तथा 1970-71 तक खाद्यान्न मे आत्म निर्भरता प्राप्त करना।

(3) जनसख्या पर प्रभावी नियन्त्रण।

(4) उद्योगो के क्षेत्र मे 8 से 10% वार्षिक वृद्धि तथा आधारभूत उद्योगो का तेजी से विकास।

(5) प्रतिरक्षा एव आर्थिक स्वावलम्बन हेतु धातुओ, मशीनो, रसायनो, बिजली आधारभूत उद्योगो का निरन्तर विकास।

(6) मानवीय साधनो के विकास के लिये सामाजिक सेवाओ का विस्तार, रोजगार अवसरो मे वृद्धि तथा सामाजिक न्याय प्राप्ति की दिशा मे प्रगति।

(7) आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण एव उचित वितरण व्यवस्था।

(8) ग्रामीण जनता तथा समाज के कमजोर वर्गों को विकास योजनाओ से अधिकाधिक लाभ पहुचाना।

चतुर्थ योजना का कुल परिव्यय (Total Outlay)

चतुर्थ योजना मे कुल 24882 करोड रुपये व्यय होने का प्रावधान था जिसमे 15902 करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र मे तथा 8980 करोड रुपय निजी क्षेत्र मे व्यय होने थे पर योजना के अन्तिम अनुमानो के अनुसार कुल परिव्यय 25754 करोड रुपये हुआ जिसमे 16774 करोड रुपये सार्वजनिक क्षेत्र तथा लगभग 10,000 करोड रुपये निजी क्षेत्र मे व्यय हुए। चतुर्थ योजनाकाल मे उत्पादक परिसम्पत्तियो के निर्माण पर 22635 करोड रुपय विनियोग करने का प्रावधान था। पर योजनाकाल मे कुल विनियोग 22654 करोड रुपय होने का अनुमान था। चतुर्थ योजना के सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित व्यय तथा वास्तविक व्यय को निम्न तालिका म दर्शाया गया है—

चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित एव वास्तविक परिव्यय (Outlay)

विवरण	प्रस्तावित परिव्यय (करोड रुपये	वास्तविक व्यय (करोड रुपये)	कुल का प्रतिशत
कृषि एव सामुदायिक विकास	2728	3466	20 7
सिचाइ एव बाढ नियन्त्रण	1087		
विद्युत	2448	2448	14 6
ग्रामीण एव लघु उद्योग	293	3729	22 2
उद्योग एव सचार	3338		
परिवहन एव खनिज	3237	3887	2 2
व्यापार एव सग्रह (भण्डारण)	2,771	349	2 0
आवास एव भूमि		251	1 5
अन्य सामाजिक सेवायें-शिक्षा वैज्ञानिक अनुसधान, स्वास्थ्य कार्यक्रम, परिवार नियोजन पोषण, जल आदि आदि।		2644	15 8
कुल योग	15,902	16774	100

निजी क्षेत्र परिव्यय—निजी क्षेत्र मे कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र मे 1600 करोड रु०, विद्युत विकास पर 75 करोड रुपये लघु एव कुटीर उद्योगो पर 560 करोड़ रुपये, उद्योग एव खनिज विकास पर 2000 करोड रुपये, परिवहन एव सचार पर 920 करोड रुपये शिक्षा पर 50 करोड रुपये, आवास, क्षेत्रीय विकास पर 2175 करोड रुपये तथा खोज कार्यों पर 1600 करोड रुपये व्यय की व्यवस्था थी। वास्तविक व्यय 10000 करोड रु० होने का अनुमान है।

प्राथमिकतायें—चौथी योजना मे औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। उद्योगो के विकास पर कुल परिव्यय का 22 2 प्रतिशत व्यय हुआ। प्राथमिकताओ के क्रम मे दूसरा स्थान कृषि विकास व तृतीय स्थान परिवहन एव सचार विकास को दिया गया जिन पर योजना व्यय का क्रमश 20 7 प्रतिशत तथा 23·2 प्रतिशत भाग व्यय हुआ। सामाजिक सेवाओ मे परिवार नियोजन, शिक्षा व पिछड़े वर्गो के विकास पर बल दिया गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना की वित्त व्यवस्था

चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र म 15902 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 8980 करोड रु० व्यय का प्रावधान था पर सार्वजनिक क्षेत्र मे वास्तविक व्यय 16774 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र का व्यय 10000 करोड रु० रहा। प्रस्तावित परिव्यय की व्यवस्था निम्न स्रोतो से किये जाने का प्रावधान था—

		(करोड रुपया)
1 घरेलू बजट साधन	8734	**निजी क्षेत्र**
2 अतिरिक्त करारोपण	3198	
3 जीवन बीमा निगम से ऋण		निजी क्षेत्र मे बचतो से
व राजकीय उपक्रम	506	8950 करोड रु० तथा
4 घाटे की वित्त व्यवस्था	850	30 करोड रु० विदेशी
5 विदेशी सहायता	2614	धन की नेट बचतें।
कुल	15902	8980

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के लक्ष्य एव उपलब्धिया

(Targets & Achievements of Fourth Plan)

चौथी योजना एक ऐसी महत्वाकांक्षी योजना थी जिसमे स्थिरता के साथ विकास आत्मनिर्भरता व समाजवाद के स्वप्न को साकार करने की दिशा मे विभिन्न क्षेत्रो मे ऊचे लक्ष्य निर्धारित किये पर योजना की समाप्ति तक उन लक्ष्यो को प्राप्त नही किया जा सका। प्रमुख लक्ष्यो व उपलब्धियो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) **राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय एवं विनियोग**—इस योजना मे राष्ट्रीय आय मे 5 5% तथा प्रति व्यक्ति आय मे 3% वार्षीय वृद्धि का लक्ष्य रखा था। सार्वजनिक क्षेत्र मे 13655 करोड रु तथा निजी क्षेत्र मे 8980 करोड रु विनियोग का अनुमान था। विनियोग की औसत दर को 1968–69 की 11 8% की तुलना मे 1973–74 तक बढाकर 13 8% करने का लक्ष्य था। इसी प्रकार आन्तरिक बचत की दर को भी 9% से बढाकर राष्ट्रीय आय के 12 6% करने का लक्ष्य था।

चतुर्थ योजनाकाल मे विकास की दर मे काफी उतार-चढाव रहा। जहाँ 1969–70 मे विकास दर 5 2% थी वह 1972–73 मे केवल 0 6% ही रह गई। इस प्रकार लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नही हुई। विनियोग की मात्रा 1973–74 मे 22635 करोड रु० के मुकाबले 22645 करोड रु० रही। वार्षिक विनियोग दर 11·3% से बढकर 13 7% रही जबकि लक्ष्य 13 8% वृद्धि का था वचत की दर भी राष्ट्रीय आय के 12 6% करने का लक्ष्य था पर वास्तविक बचत दर 12 2% रही। प्रति व्यक्ति आय चालू मूल्यो के आधार पर 1965–66 के 426 रु० से बढकर 1973–74 मे 850 रु० हो गई।

(2) **कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र**—योजनाकाल मे कृषि एव सम्बद्ध विकास कार्यों पर सार्वजनिक क्षेत्र मे 2728 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 1600 करोड रु० व्यय का प्रावधान था और कृषि उत्पादन मे 5 6% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था। 1971–72 तक खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता के लिए खाद्यान्न का उत्पादन 1973–74 तक 12 9 करोड टन करने का लक्ष्य था तथा व्यापारिक फसलो मे भी 29 से 30 प्रतिशत वृद्धि करना था। कृषि के विभिन्न क्षेत्रो मे लक्ष्य एव उपलब्धियाँ निम्न तालिका से स्पष्ट है—

चतुर्थ योजना में कृषि के लक्ष्य एव उपलब्धियाँ

विवरण	इकाई	1973–74 का लक्ष्य	वास्तविक उपलब्धियाँ
कृषि विकास दर	वार्षिक वृद्धि	5 6%	3 9%
खाद्यान्न उत्पादन	करोड टन	12 9	10 47
तिलहन	लाख टन	105	94
गन्ना	,, ,,	150	140 8
कपास	,, गाठें	80	63
जूट	,, ,,	74	77
सब उर्वरको का उपभोग	लाख टन	46	28
अधिक उपज देने वाली फसलें	मिलियन हेक्टर	18 0	25 8
पौध सरक्षण	,, ,	80	80

हरित क्रान्ति के अन्तर्गत जहाँ 1970–71 मे केवल 114 लाख हेक्टर क्षेत्र म उन्नत बीजो का प्रयोग होता था वह बढ कर 1973–74 मे 258 लाख हेक्टर हो गया था। 4(ञ ख हेक्टर मे बहु फसल कार्यक्रम लागू किया गया। यन्त्रीकरण म भी तेजी से वृद्धि हुई। 1968–69 मे विद्युन सचालित पम्प-सैटो की सख्या लगभग 15 लाख म बढकर 25 लाख तथा ट्रैक्टरो की सख्या 25 हजार से बढकर एक लाख होन का अनुमान था।

(3) सिचाई एव विद्युत विकास—इन दोनो मदो पर क्रमश 1087 करोड रु तथा 2523 करोड रु व्यय का प्रावधान था। सिंचित क्षेत्र 360 लाख हैक्टर म बढाकर 430 लाख हैक्टर करन का लक्ष्य था पर योजना के अन्त मे सिंचित क्षेत्र 440 लाख हैक्टर होन का अनुमान है। इसी प्रकार विद्युत विकास पर किए गए व्यय मे कुल विद्युत क्षमता 145 लाख किलोवाट से बढाकर 220 लाख किलोवाट करन का लक्ष्य था पर 1973–74 के अन्त तक विद्युत उत्पादन क्षमता 184 लाख किलोवाट ही हो पाई थी। विद्युतीकृत बस्तियो की सख्या 1968–69 मे लगभग 70 हजार थी वह बढकर 1973–74 मे 1 40 लाख हो गई।

(4) उद्योग एव खनिज—योजना काल म उद्योग एव खनिज विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र म लघु एव कुटीर उद्योगो के लिये 293 करोड रुपये तथा वृहत् उद्योगो व खनिजो के लिय 3338 करोड रु व्यय किय जान का प्रावधान था तथा निजी क्षेत्र मे भी कुल 2560 करोड रु अतिरिक्त व्यय का प्रावधान था। योजना काल मे सार्वजनिक क्षेत्र म इस मद पर 3729 करोड रुपये व्यय हुआ औद्योगिक उत्पादन का सूचनाक 1970 मे 180 8 था वह बढकर 210 हो गया। पूँजीगत उद्योगो मे तेजी से विकास के साथ उपभोग उद्योगो के उत्पादन म भी वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र म चौथी योजना के लक्ष्य तथा वास्तविक उपलब्धियाँ अग्र सारणी से स्पष्ट हैं—

चतुर्थ योजना मे खनिज एव औद्योगिक क्षेत्र के मुख्य लक्ष्य एव उपलब्धियाँ

विवरण	इकाई	वास्तविक उत्पादन 1968 69	चतुथ योजना का लक्ष्य (73 74)	वास्तविक उपलब्धिया 1973-74
लाहा अयस्क	लाख टन	260	400	357
कोयला	,, ,,	695	935	790
पेट्रोलियम प॰	,, ,,	116	260	197
इस्पात पिण्ड थ	, ,,	65	108	63 2
तैयार इस्पात	,, ,,	46	82	48·3
मशीनरी मूल्य	करोड रुपया	25	65	67 0
अल्यूमिनियम	,,	1 2	2 2	14 8
लाख टन	लाख टन	125	180	146 6
सीमेंट	करोड मीटर	460	570	794
कपडा	लाख टन	35 6	47	39 5
चीनी	लाख किलोवाट	145	220	202
विद्युत उत्पादन	लाख टन	15	25	18
नाइटोजन खाद				

इस प्रकार स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना काल मे जहाँ औद्योगिक उत्पादन मे 8 से 10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था वहा वास्तव मे औद्योगिक उत्पादन मे 4 से 5% की वार्षिक वृद्धि हुई। जहाँ 1968 69 मे औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि 6 6% तथा 1969-70 मे 6 9% रही वह घटकर 1970-71 मे 3 5% तथा 1971-72 मे 1 5% से 2% रही। अन्तिम वर्ष मे भी विकास दर नीची ही रही। क्षेत्रो म प्राप्त उपलब्धियाँ लक्ष्य से काफी कम रही हैं जो उसकी असन्तोषजनक स्थिति का परिचायक है।

(5) परिवहन एव सचार—चौथी योजना मे परिवहन एव सचार विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र 3237 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 920 करोड रु० (कुल 4157 करोड रु०) व्यय करने का प्रावधान था। रेलो के विकास पर एक हजार करोड रु० व्यय होने थे। इससे रेलो की माल ढोने की क्षमता 20 3 करोड टन से बढाकर 1973-74 तक 26 5 करोड रु० करने का लक्ष्य था जबकि वास्तव मे योजना के अन्त तक रेलो के माल ढोने की क्षमता 21 5 करोड टन ही हो पाई। सडक विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। जहाँ 1968-69 म सतहदार सडको की कुल लम्बाई 3 17 लाख किलो मीटर थी और उसे बढाकर 1973-74 तक 3 67 लाख किलो मीटर करना था पर वास्तव म सतहदार सडको की कुल लम्बाई 4 74 लाख किलो मीटर थी। जहाजरानी क्षमता 21 लाख जी आर टी से बढाकर 35 लाख GRT का लक्ष्य था पर वास्तविक क्षमता 30 90 लाख GRT ही रही। सचार व्यवस्था के लिये 31 हजार नये डाकखाने, पाँच नये टेलीविजन केन्द्र तथा 7 6 लाख

नये टेलीफोन दिये जाने का लक्ष्य था। पर योजना के अन्त तक 23 हजार नए डाक खाने व 2450 तार घर खोले गए।

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत परिवहन एव सचार लक्ष्य एव उपलब्धियाँ

विवरण	इकाई	1968-69	लक्ष्य 1973-74	वास्तविक उपलब्धियाँ 1973-74
रेलो की कुल लम्बाई	हजार किलोमीटर	60	61	61
रेलो की माल ढोने की क्षमता	करोड टन	20 3	26 5	21 5
सतहदार सडकें	लाख किलोमीटर	3 17	3 67	4 90
जहाजरानी क्षमता	लाख GRT	21 4	35 0	30 00
डाक घर	हजार सख्या	107 0	133 3	117 00
तार घर	सख्या	14000	17000	17000

(6) सामाजिक सेवायें—सावजनिक क्षेत्र मे सामाजिक सेवाओ पर 1818 करोड रु० व्यय होने का प्रावधान था जिसमे से शिक्षा पर 825 66 करोड रु० व्यय होना था प्राथमिक शिक्षा के विस्तार मे पिछडे वर्गों, क्षेत्रो व लडकियो को प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया गया।

स्वास्थ्य एव चिकित्सा सेवाओ पर 435 करोड रु० व्यय करने का प्रावधान था। परिवार नियोजन पर 315 करोड रु० व्यय किये जाने थे जिससे 2 8 करोड दम्पत्तियो को परिवार नियोजन की परिधि मे लाये जाने थे। जन्म दर 39 प्रति हजार से घटाकर 25 प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया।

इसी प्रकार सामाजिक कल्याण-कार्यों, गृह निर्माण, श्रम-कल्याण, जल-प्रदाय आदि कार्य-क्रमो पर भी विशेष ध्यान दिया गया।

इन सब प्रयत्नो के फलस्वरूप योजना के अन्त मे प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत 6-11 वर्ष की उम्र के 637 करोड छात्र-छात्रा, माध्यमिक शिक्षा मे 1 50 करोड छात्र-छात्रा, हायर-सैण्डरी मे 85 लाख छात्र छात्रा तथा विश्व विद्यालयो मे 30 लाख छात्र छात्रा पजीकृत थे। स्वास्थ्य कार्यक्रमो के विकास से मेडीकल कालेजो की सख्या 93 से बढाकर 99 तथा रोगी शैयाओ की सख्या 2 56 लाख से बढाकर 7 82 लाख तथा अस्पतालो मे डाक्टरो व नर्सों की सख्या 1968-69 मे क्रमश 1 02 *लाख तथा 61 हजार से बढा कर 1 38 लाख व 88 हजार कर दी गई।* वैज्ञानिक अनुसधान पर 373 6 करोड रु० व्यय किया गया।

(7) रोजगार—यद्यपि योजना के अन्तर्गत रोजगार के सम्बन्ध मे निश्चित आँकडे प्रस्तुत नही किय गय थे पर विभिन्न क्षेत्रो मे विकास के कारण रोजगार अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि का लक्ष्य था। कृषि क्षेत्र मे तृतीय जन की तुलना मे लोगो को रोजगार देने की व्यवस्था थी।

पर चतुर्थ योजना मे भी रोजगार की स्थिति निरन्तर बिगडी है। शिक्षित बेरोजगारो की सख्या मे व्यापक वृद्धि हुई। 1973-74 मे बेरोजगारो की सख्या 3 5 करोड थी। शिक्षित बेरोजगारो की पजीकृत सख्या 50 लाख से भी अधिक थी। ग्रामीण क्षेत्रो मे त्वरित रोजगार कार्य-क्रम (Crash Employment Programme) के अन्तर्गत लगभग 2 5 लाख लोगो को रोजगार दिया गया। देश मे बेरोजगार डाक्टरो व इन्जीनियरो की सख्या क्रमश 3 हजार तथा 46 हजार होने का अनुमान था।

चतुर्थ योजना की आलोचनात्मक समीक्षा

चतुर्थ योजना के सम्बन्ध मे लोगो की मिली-जुली प्रतिक्रिया रही है। जहाँ कुछ इसे एक लोचपूर्ण एव व्यवहारिक योजना मानते थे जबकि कुछ ने इसे दुर्भाग्यपूर्ण, अत्यधिक महत्वाकाक्षी, भ्रमपूर्ण एव अव्यावहारिक बताया। योजना अपने निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त न कर सकी। मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई। आवश्यकताओ की वस्तुओ के नितान्त अभाव मे निर्धन जनता को काफी कष्ट उठाना पडा। कुछ आलोचको द्वारा की गई मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार है—

(1) अत्यधिक महत्वाकाक्षी योजना थी—इस योजना मे 24882 करोड रु० व्यय से राष्ट्रीय आय मे 5 5% कृषि उत्पादन मे 5 6 तथा औद्योगिक उत्पादन मे 8 से 10% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था जबकि योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय मे वार्षिक वृद्धि की औसत दर 3 4 से 4% ही रही। कृषि उत्पादन मे विकास की दर 3 9% तथा औद्योगिक उत्पादन मे औसत दर 5% ही रही। बचत एव पूँजी विनियोग मे भी उपलब्धियाँ लक्ष्य से काफी कम रही। खाद्यान का उत्पादन लक्ष्य 12 9 करोड टन था पर उत्पादन 10 47 करोड टन ही रहा। औद्योगिक क्षेत्र के लक्ष्य भी अधूरे रहे।

(2) योजना निर्माण में विलम्ब व कार्यान्वयन मे शिथिलता—चतुर्थ योजना 1 अप्रैल 1969 मे लागू की गई पर इसका अन्तिम प्रलेख लगभग डेढ वर्ष बाद ससद मे प्रस्तुत किया गया था अत इस अनिश्चितता व विलम्ब के वातावरण मे कार्यान्वयन मे अकुशलता व शिथिलता बनी रही। बगला देश के शरणार्थियो ने चतुर्थ योजना मे अनिश्चितता की ओर बढा दिया।

(3) वित्तीय साधनो की अनिश्चितता—चतुर्थ योजना की प्रस्तावित रूपरेखा के लिये सार्वजनिक क्षेत्र म 15902 करोड रु० व्यय की व्यवस्था की गई थी जबकि योजना काल मे सावजनिक क्षेत्र मे 16774 करोड रु० व्यय हुए हैं। जहां पूरी योजनावृद्धि मे हीनार्थ प्रबन्ध से 850 करोड रु० जुटाने का प्रावधान था जबकि योजनाकाल मे हीनार्थ प्रबन्ध से कुल 2858 करोड रु० जुटाय गय। नय करो मे भी अत्यधिक वृद्धि की गई। विदेशो से सहायता मे भी सन्दिग्धता बनी रही।

(4) भ्रमपूर्ण मान्यताओ पर आधारित थी—चतुर्थ योजना के लक्ष्यो का निर्धारण कुछ ऐसी मान्यताओ पर आधारित था जो असत्य सिद्ध हुइ। य मान्यताएँ

थी कि मूल्य स्तर मे स्थिरता रहेगी, निर्यात मे 7% वार्षिक वृद्धि, कृषि से अतिरिक्त साधन तथा सामान्य अनुकूल वर्षा, सुरक्षा व्यय मे स्थिरता रहेगी। योजना काल मे अनुभव हुआ कि ये मान्यताएँ भ्रमपूर्ण थी। मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई यहाँ तक कि 1972-73 मे मूल्यो मे 17% तथा 1973-74 मे केवल 7-8 महीनो मे ही मूल्यो म 21% वृद्धि हुई। सुरक्षा व्यय भी निरन्तर बढता ही गया। जहाँ 1969-70 म प्रतिरक्षा व्यय 11 0 करोड रु० व्यय हुए वहाँ 1973-74 मे व्यय 1600 करोड रु० पहुच गया। राजनैतिक अस्थिरता, प्रतिकूल मौसम व भयकर अतिवृष्टि व अकाल दोनो के कारण भी कृषि उत्पादन लक्ष्य से काफी नीचे रहे।

(५) **बेकारी की समस्या के समाधान के लिये विशेष कार्य क्रम का अभाव रहा**—*1970 के दशक म बरोजगारो की सख्या 3 5 करोड से बढकर 1980 तक* 6 9 करोड हो जाने का अनुमान है। बेकारी की इस विषम समस्या के समाधान के लिये इस योजना मे किसी विशेष व प्रभावी कदम का अभाव रहा। यद्यपि त्वरित रोजगार योजना के अन्तर्गत केवल 2 6 लाख लोगो को रोजगार दिया गया था जो कुल बेरोजगारो का एक नगण्य भाग है। यह योजना निर्माताओ की त्रुटि का परिचायक है।

(6) **समाजवाद एक विरोधाभास**—यद्यपि योजना मे सामाजिक न्याय एव समानता का सुखद स्वप्न सजोया गया था पर योजनाकाल मे किसी ऐसे क्रान्तिकारी कदम का अभाव रहा। समाजवाद के आकर्षक नारे से राजनीतिज्ञ अपना उल्लू सीधा कर रह तथा देश की भोली-भाली जनता को बुद्धू बनाते रहे। देश मे काला-बाजारी, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार के कारण आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण होता गया। आर्थिक विषमता बढी। निर्धनो का शोषण हुआ। पाखण्डी मौज उडाते रहे। इन पाँच वर्षों म गरीबी हटाने के स्थान पर गरीबो को ही समाप्त करने के वातावरण मे वृद्धि हुई। उनके सामान्य उपभोग की वस्तुओ का मूल्य आसमान छू रहा। था। उपभोक्ता मूल्य सूचकाँक 274 था।

(7) **हीनार्थ प्रबन्ध का अत्यधिक सहारा व मूल्यों मे वृद्धि**—यद्यपि चतुर्थ योजना मे स्थायित्व के साथ विकास की बात कही गई थी तथा हीनार्थ प्रबन्ध पर आश्रितता कम करने का आश्वासन था। इसी कारण हीनार्थ प्रबन्ध से 850 करोड रुपये ही जुटाने का प्रावधान था। पर योजनाकाल मे मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई। जहाँ 1969 मे उपभोक्ता मूल्य सूचकाक (1960=100) 175 था वह 1972 मे 221 तथा मार्च 1974 मे 274 हो गया था। 1972-73 मे मूल्यो मे 87% तथा 1973-74 म 21% की वृद्धि चौका देने वाली थी। जहाँ हीनार्थ प्रबन्ध से 850 करोड रुपये जुटाने का प्रावधान था वहाँ इस स्रोत से 2858 करोड रुपये की व्यवस्था की गई।

चतुर्थ योजना की उपलब्धियो के परिप्रेक्ष्य मे आलोचनाओ का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि भारत की प्राय सभी योजनाओ की भाति चतुर्थ योजना

मे भी अवास्तविक मान्यताओ को आधार बनाया गया। योजना के क्रियान्वन मे अकुशलता एव शिथिलता रही। प्राकृतिक प्रकोपो, श्रमिक आन्दोलनो, हडतालो, तालाबन्दी, तोड फोड आदि के कारण कृषि, उद्योग एव अन्य क्षेत्रो मे प्रगति धीमी रही। फिर भी अन्तत यही कहा कहा जाना चाहिये कि यह योजना काफी हद तक असफल रहने के बावजूद भी खाद्यान्न म आत्म निभरता, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र मे उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि, योजनाबद्ध विकास की शृखला मे एक महत्वपूर्ण कडी थी। इससे पाँचवी योजना के लिये सुदृढ आधार,तैयार हुआ। यही नही इसकी असफलताओ ने हमारे योजना निर्माताओ की विकास के प्रति ऊँची आशाओ एव आकाक्षाओ की निर्मूल धारणाओ को ठेस पहुचाकर उन्हे भावी योजना निर्माण एव कार्यान्वयन के लिये ठोस, व्यवहारिक एव विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के प्रति सजग किया।

10

पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79)

(FIFTH FIVE YEAR PLAN 1974-79)

भारत के योजनाबद्ध विकास में पांचवी योजना एक महत्वपूर्ण कडी थी। इस योजना के प्रारम्भ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 37250 करोड रु० व्यय की व्यवस्था थी किन्तु संशोधित योजना का कुल परिव्यय 69303 करोड रु० रखा गया जिसमे 42303 करोड रु० सार्वजनिक क्षेत्र मे तथा 27000 करोड रु० निजी क्षेत्र मे व्यय करने का प्रावधान था। इस परिव्यय मे कुल विनियोग 63571 करोड रु० होने थे और आर्थिक विकास की वार्षिक दर 4 37% करने का लक्ष्य था।

जनता सरकार के सत्तारूढ होने के साथ ही इसमे परिवर्तन का विचार था किन्तु फिर पाचवी योजना को अपनी निर्धारित अवधि के एक वर्ष पहले ही समाप्त कर जनता सरकार ने आवर्ती योजना (Rolling Plan) के अन्तर्गत छठी योजना (1978-83) का श्री गणेश कर दिया गया। इस प्रकार पाचवी योजना केवल चार वर्ष ही पूर कर पाई।

योजना के प्रमुख उद्देश्य (Objectives)—पाचवी योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे। (i) गरीबी हटाओ तथा (ii) आत्म निर्भरता की प्राप्ति इन दो मूल उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु योजना म निम्न व्यूह-रचना अपनाई जानी थी।

योजना की व्यूह रचना अथवा कार्य नीति (Strategy)—योजना काल मे प्रमुख उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कार्य-नीति की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थी—

(i) राष्ट्रीय आय म 4 37% वार्षिक वृद्धि की दर प्राप्त करना,
(ii) उत्पादक रोजगार का विस्तार
(iii) समाज कल्याण के व्यापक कार्यक्रम अपनाना
(iv) न्यूनतम आवश्यकताओ का राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू करना जिसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवा, पौष्टिक आहार, गन्दी बस्तियो का सुधार, शुद्ध पेय जल की व्यवस्था आदि।
(v) समाज कल्याण के व्यापक कार्यक्रम अपनाना।
(vi) कीमतो मजदूरी तथा आयो म न्यायोचित सन्तुलन बैठाना
(vii) सामाजिक, आर्थिक एव क्षेत्रीय विषमताओ को दूर करने के लिये सस्थागत, राजकोषीय एव अन्य उपायो का सहारा लेना।
(viii) निर्यात सम्वर्द्धन एव आयात प्रतिस्थापन के लिय जोरदार कदम उठाना,

(ix) गरीबो को उचित मूल्यो पर अनिवार्य उपभोग वस्तुओ के सार्वजनिक वितरण एव प्राप्ति की पर्याप्त व्यवस्था करना।

(x) कृषि, आधार-भूत उद्योगो एव व्यापक उपभोग वस्तुओ को उत्पादन करने वाले उद्योगो के विकास पर विशेष बल देना।

आर्थिक नीतियो का निर्धारण इस प्रकार किया जाना था कि स्थायित्व के साथ विकास हो सके, निर्यातो से अधिकाधिक विदेशी विनिमय कमाया जा सके। आयात लाइसेन्स पद्धति योजना की प्राथमिकताओ के अनुरूप हो और विदेशी सहायता पर निर्भरता कम से कम हो।

पाचवी योजना का परिव्यय एवं प्राथमिकतायें
(Outlay & Priorities of Fifth year Plan)

पांचवी योजना का कुल प्रस्तावित परिव्यय 69303 करोड रु० था उसमे से 42303 करोड रु० सार्वजनिक क्षेत्र तथा 27000 करोड रु० निजी क्षेत्र मे व्यय होने थे। सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय 42303 करोड रु० मे से 36703 करोड रु० का विनियोग, 2600 करोड रु० चालू परिव्यय तथा 3000 करोड रु० इन्वेन्टरी पर विनियोग होना था। निजी क्षेत्र का विनियोग 27048 करोड रु० रखा गया था। योजनाकाल मे कुल विनियोग 63751 करोड रु० करने का प्रावधान था इसके लिये 58320 करोड रु० आन्तरिक बचतो से तथा 5431 करोड रु० विदेशी सहायता से जुटाये जाने थे। पाचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित परिव्यय निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पाचवी योजना के मध्यावधि परिणाम के कारण योजना के चार वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 29571 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 12929 करोड रु० व्यय का अनुमान था इस प्रकार प्रथम चार वर्षो मे योजना का कुल परिव्यय 69303 करोड रु०के बजाय केवल 42500 करोड रु० ही रहने का अनुमान था।

पांचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित एव वास्तविक व्यय

(करोड रु०)

मद	प्रस्तावित व्यय 1974-79	वास्तविक व्यय 1974-78[1]
(1) कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र	4302	3400
(2) सिचाई, विद्युत एव बाढ नियत्रण	14517	8316
(3) उद्योग एव खनिज	7362	7820
(4) परिवहन एव सचार	6917	5188
(5) सामाजिक सेवायें	6224	4847
कुल परिव्यय	39322	29571

1 वास्तविक व्यय 1974–78 रिजर्व बैंक बुलेटिन के दिसम्बर 1978 के सप्लीमेन्ट "Basic Statistics" से लिया गया है। जबकि प्रस्तावित व्यय छठी योजना के प्रारूप से।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पाचवी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय चौथी योजना के परिव्यय का लगभग 2½ गुना तथा पिछली सभी योजनाओं के समग्र व्यय के बराबर था अकेली पाचवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 39322 करोड रु० व्यय की व्यवस्था उसके विशाल आकार और व्यापक उत्पादन क्षमता वृद्धि का परिचायक था।

प्राथमिकतायें (Priorities)—इस योजना मे औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई जिसके अन्तर्गत उपभोग उद्योगो मे तेजी से उत्पादन बढाने का लक्ष्य था। कृषि को प्राथमिकता के दूसरे क्रम पर तथा परिवहन एव सचार का स्थान प्राथमिकता क्रम मे तीसरा था।

सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय साधन

पाचवी योजना के लिये विशाल धन राशि जुटाने की व्यापक व्यवस्था की गई। घरेलू बजट साधनो से 32115 करोड रु० (80 5 प्रतिशत) साधन जुटाये जाने थे। केन्द्र तथा राज्यो को 14693 करोड़ रु० अतिरिक्त करारोपण से जुटाना था जो कुल सार्वजनिक परिव्यय का 32 प्रतिशत भाग था जबकि वाह्य साधनो से 5834 करोड रु० (15 प्रतिशत) जुटाने की व्यवस्था थी। हीनार्थ प्रबन्ध से 1354 करोड रु० जुटाने का प्रावधान था। ससाधनो के स्रोत निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पांचवी योजना के प्रस्तावित ससाधन (Finances)

(A) घरेलू बजट साधन	रु० 32115 करोड़ रु०
(i) 1973–74 की चालू दरो पर बजट अतिरेक	4901
(ii) सार्वजनिक उपक्रमो से बचत	849
(iii) बाजार से उधार	5879
(iv) अल्प बचतें	2022
(v) राज्य भविष्य निधियाँ	1987
(vi) वित्तीय सस्थानो से प्राप्ति	628
(vii) अतिरिक्त करारोपण	14693
(viii) विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ	556
(ix) विदेशी विनिमय कोष से उपयोग	600
(B) हीनार्थ प्रबन्ध (Deficit Financing)	1354 करोड रु०
(C) विदेशी सहायता (Foreign Assistance)	5834 करोड रु०
कुल योग	39303 करोड रु०

पांचवी योजना के लक्ष्य एवं उपलब्धियां

(Main targets & Achievments of Fifth Plan)

पाचवी योजना के बहुत ही महत्वाकाक्षी लक्ष्य निर्धारित किये गये थे किन्तु कांग्रेस सत्ता को पलट कर जनता पार्टी ने ज्यो हि शासन सत्ता सभाली तो चुनावी

वायदो को पूरा करने तथा जन आशाओं और आकाक्षाओं को मूर्त रूप देने के लिए पाँचवी योजना का मध्यावधि परित्याग कर उसे 1977–78 मे ही समाप्त कर दिया और नयी छठी योजना का श्री गणेश कर दिया है।

पाचवी योजना के 1974–79 के निर्धारित लक्ष्य तथा 1977–78 तक के चार वर्षों मे उपलब्धियो का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

(1) **राष्ट्रीय आय, बचत एवं विनियोग**—योजनाकाल मे वार्षिक विकास दर 4·37 प्रतिशत करने का लक्ष्य था किन्तु विकास दर 1977–78 तक 3 9 प्रतिशत रही जबकि 1977–78 मे राष्ट्रीय आय मे 3·9 प्रतिशत वृद्धि का अनुमान था पूँजी निर्माण दर 18 3 प्रतिशत करने का लक्ष्य था जबकि बचतो को राष्ट्रीय आय के 15 9 प्रतिशत तक बढान का लक्ष्य था। ताजा अनुमानो के अनुसार देश मे पूँजी निर्माण की दर 1978–79 मे 23 5 प्रतिशत तथा बचतो की दर 22 प्रतिशत होने की आशा हैं।

(2) **कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र**—कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र पर 4302 करोड रुपया व्यय की व्यवस्था थी जिसके द्वारा कृषि विकास दर को 3 9 प्रतिशत से बढाकर 4 67 प्रतिशत करने का लक्ष्य था। खाद्यान्न का उत्पादन 12·5 करोड रु० करने का लक्ष्य था। इसी प्रकार उर्वरको का प्रयोग 50 लाख टन वार्षिक तथा पौध सरक्षण दवाओं का प्रयोग 75 हजार टन वार्षिक करने का प्रावधान था। कृषि मे यत्रीकरण को बढावा देने के लिए ट्रेक्टरो की संख्या 5 लाख की जानी थी। पाचवी योजना के लक्ष्य और 1977–78 की उपलब्धियाँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं—

कृषि क्षेत्र के मुख्य लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ

मद	इकाई	पाचवी योजना के लक्ष्य 1974–79	पाचवी योजना की उपलब्धियाँ 1974-78
खाद्यान्न	करोड टन	12 5	12 5
तिलहन	लाख टन	120	118
गुड-गन्ना	,, ,,	165	57
कपास			
जूट	लाख गाठें	80	64 3
चाय	,, ,,	77	60
	करोड किलो ग्राम	56	50

(3) **सिचाई एव शक्ति**—पाचवी योजना से सार्वजनिक क्षेत्र मे सिचाई एव बाढ नियन्त्रण पर 4226 करोड रु० तथा विद्युत विकास पर 7294 करोड रुपया व्यय का प्रावधान था। इस विकास व्यय से सिंचित क्षेत्र मे 131 लाख हैक्टर क्षेत्र वृद्धि का लक्ष्य था जबकि योजना के चार वर्षों मे सिचित क्षेत्र मे केवल 86 लाख हैक्टर की वृद्धि हुई। जहाँ योजना के अन्त तक सिंचित क्षेत्र 584 लाख हैक्टर करने

का लक्ष्य था वहाँ 1977–78 तक केवल 484 लाख हैक्टर ही सिंचाई सुविधा की परिधि मे आया है।

विद्युत विकास को भी विशेष महत्व दिया गया था। योजनाकाल मे विद्युत उत्पादन क्षमता मे 12 5 मिलियन किलोवाट वृद्धि का लक्ष्य था किन्तु योजनाकाल मे विद्युत उत्पादन क्षमता केवल 66 लाख किलोवाट ही बढी। 1977–78 मे विद्युत उत्पादन क्षमता 250 लाख किलोवाट होने का अनुमान है। योजना के चार वर्षों मे 9 लाख पम्प सेटो और 80 हजार गावो को बिजली दी गई जबकि लक्ष्य 6 3 लाख पम्प सेटो और 81 हजार गावो का था। स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे प्रगति सन्तोष जनक रही।

(4) उद्योग एव खनिज विकास—इस योजना मे उद्योग एव खनिज विकास पर 7362 करोड रु० व्यय का प्रावधान था जिससे उद्योगो मे विकास दर 7 प्रतिशत तथा अन्तिम तीन वर्षों मे 10 प्रतिशत करने का लक्ष्य था। यह लक्ष्य 1976–77 मे ही पूरा हो गया जबकि इस दशक की सर्वाधिक विकास दर 10 4 प्रतिशत पहुच गई जबकि 1977–78 मे औद्योगिक विकास की दर 5 से 6 प्रतिशत ही रही। प्रमुख उद्योगो मे योजना का लक्ष्य एव उपलब्धियाँ निम्न तालिका से स्पष्ट हैं—

पाचवी योजना मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य एवं उपलब्धिया

विवरण	इकाई	पाचवी योजना के लक्ष्य 1974–79	उपलब्धियाँ 1974-78
लोहा अयस्क	लाख टन	560	430
कोयला	,, ,,	1240	1032
क्रूड पेट्रोलियम	,, ,,	141 8	107·7
इस्पात	,, ,,	88	77 3
मशीनें एव औजार	मूल्य करोड रु०	130	120
एल्यूमिनियम	हजार टन	190	180
सीमेन्ट	लाख टन	208	192
कपडा (दोनों क्षेत्र)	करोड मीटर	950	960
उर्वरक (नाइट्रोजन एव फास्फेट)	लाख टन	36 7	27 2

इसके अतिरिक्त लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर 535 करोड रु० व्यय कर 60 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार देने का लक्ष्य था किन्तु योजना के चार वर्षों मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर 388 करोड रु० व्यय किये गये। खनिजो के उत्पादन मूल्य मे भी तेजी से वृद्धि हुई यहाँ तक कि खनिजो का मूल्य 1977–78 मे 1300 करोड रु० से भी अधिक पहुँच गया।

(5) परिवहन एवं संचार—योजनाकाल में 6917 करोड रु० व्यय करने का प्रावधान था। रेलो की माल ढोने की क्षमता 25 26 करोड टन करने तथा ग्रामीण सडको के विकास पर अधिक बल दिया गया। 5 4 लाख नये टेलीफोन कनेक्शन देने तथा 31 हजार नये पोस्ट आफिस खोलने का लक्ष्य था। जहाजरानी क्षमता को बढाकर 65 लाख GRT करने की आशा थी। योजनाकाल मे इन लक्ष्यो को प्राप्त करने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया है।

(6) सामाजिक सेवाएं—इसके अन्तर्गत शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाए समाज कल्याण, आवास एव परिवार कल्याण कार्य क्रम आते हैं। शिक्षा पर 1285 करोड रु० व्यय, प्राथमिक शिक्षा मे छात्र प्रवेश सख्या 711 लाख, माध्यमिक शिक्षा मे शालाख, उच्च माध्यमिक मे 110 लाख, तथा विश्व विद्यालय शिक्षा मे 45 लाख करने का लक्ष्य था। इसी प्रकार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो की सख्या 5351 तक बढाने का लक्ष्य था। स्वास्थ्य एव परिवार कल्याण पर 1179 करोड रु० व्यय किये जाने थे। परिणामस्वरूप 59 लाख लूप लगाने तथा 180 लाख, लोगो की नसबन्दी का लक्ष्य था यह लक्ष्य आपात स्थिति के समय ही सीमा पार कर गया है।

विविध :—बढती बेरोजगारी के निराकरण के लिये कृषि क्षेत्र मे अधिक रोजगार देने की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे भी रोजगार अवसर बढाने का पूरा-पूरा प्रयास रहा। निर्यातो मे वृद्धि लक्ष्य से अधिक रही और आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाया गया।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, शुद्ध पेय जल की व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्रो मे सडको का विकास, भूमि हीनो को भूमि आवटन, गन्दी बस्तियो का सुधार, ग्रामीण क्षेत्रों मे विद्युतीकरण का व्यापक कार्यक्रम अपनाया गया। 70 लाख भूमिहीन मजदूरो को भूमि आवटन हुआ।

भारत के विदेशी विनिमय कोषो मे भारी वृद्धि हुई है और विदेशी विनिमय सकट का युग समाप्त हुआ है। अब भारत मे विदेशी विनिमय कोष 4 हजार करोड रु० से भी अधिक है। निर्यातो मे तेजी से वृद्धि और आयातो मे कमी से विदेशी व्यापार का 1975–76 का 1222 करोड रु० का घाटा, 1976–77 मे लगभग 69 करोड रु० बचत मे बदल गया यह उल्लेखनीय है कि 1976–77 से निर्यातो मे पिछले वर्ष के मुकाबले 27% की वृद्धि होने मे निर्यातो का मूल्य 5143 करोड रु० था जबकि आयातो मे 3 9% कमी से आयातो का मूल्य 5074 करोड रु० रहा और इस प्रकार विदेशी व्यापार 69 करोड रु० पक्ष मे रहा।

पाँचवी योजना की आलोचनात्मक समीक्षा

यद्यपि योजनाकाल मे "गरीबी हटाओ" एव आत्म निर्भरता लाओ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये योजना के अन्तर्गत भारी व्यय किया गया और व्यापक कार्यक्रम अपनाए गये किन्तु महत्वाकाक्षी लक्ष्यो, बढते मूल्यो और साधनो की अनिश्चितता के कारण वाछित सफलता न मिल सकी। यही नही, जनता पार्टी के सत्तारूढ होने के

कारण नयी प्राथमिकताओं और बदलती परिस्थितियों में पांचवी योजना का 1977-78 म ही मध्यावधि परित्याग कर छठी योजना का सूत्रपात कर दिया गया है। इसकी मुख्य आलोचनाओं की समीक्षा इस प्रकार है —

(1) **अत्यधिक महत्वाकांक्षी योजना थी** —चौथी योजना की भांति पाचवी योजना भी काफी महत्वाकांक्षी थी। आर्थिक विकास की दर 4 37% रखी गई जबकि 1977–78 तक विकास की वार्षिक दर 3 9% ही रही है। औद्योगिक विकास की वार्षिक दर भी 6 5% रही जबकि लक्ष्य 8 से 10% करने का था। खाद्यान्न का उत्पादन अपने लक्ष्य पर पहुच गया।

(2) **घाटे की वित्त व्यवस्था से मूल्यो मे वृद्धि हुई।** आपात स्थिति होने के कारण मूल्यों पर नियन्त्रण सभव हो गया अन्यथा मूल्य बहुत बढ जाते।

(3) **योजना निर्माण मे अत्यधिक विलम्ब एवं कार्यान्वयन मे शिथिलता** — योजना का अन्तिम स्वरूप योजना लागू होने के लगभग 2 वर्ष बाद भी स्पष्ट नहीं था। अत योजना निर्माण मे विलम्ब से उसके कार्यान्वयन म शिथिलता रही।

(4) *बेकारी की समस्या के निराकरण के लिये प्रभावी कार्यक्रम* का अभाव रहा। यहाँ तक कि योजना के चार वर्षों बाद भी समस्या की जटिलता को देखते हुए जनता सरकार ने छठी योजना लागू की है।

(5) **समाजवाद कोरी कल्पना रही** —आर्थिक विषमताओ मे नगण्य रही। यह कहना ठीक होगा कि यह एक राजनैतिक नारा है जिसे जनता को भ्रम मे डाल कर वोट बटोरने की व्यवस्था की जाती है।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद पाचवी योजना की उपलब्धियो को नजर-न्दाज नहीं किया जा सकता। योजना काल म अर्थव्यवस्था अधिक सुदृढ हुई है। सभी प्रकार के उत्पादन बढ़े हैं जैसा ऊपर उपलब्धियो के विवेचन से स्पष्ट है। यह *योजना योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया मे एक महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुई है।*

— ——

11

भारत में योजनाबद्ध विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ (1951-52 से 1978–79)

(IMPORTANT ACHIVEMENTS OF PLANNED DEVELOPMENT IN INDIA SINCE 1951 TO 1978–79)

भारत में पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक प्रगति

(Economic Progress in India During Five Year Plans)

भारत की निर्धन जनता को समृद्ध एवं विविधतापूर्ण जीवनयापन के नये अवसर प्रदान करने, उनके जीवन स्तर को उन्नत करने तथा रोजगार की अभिवृद्धि के साथ-साथ आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिये। अप्रेल 1951 से भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था मे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित आर्थिक नियोजन का सूत्रपात हुआ तब से 1978–79 तक योजनाबद्ध विकास के 28 वर्ष पूरे हो चुके हैं और इस अवधि मे पाच पचवर्षीय योजनायें तथा तीन वार्षिक योजनाओ (1966–1969) को कार्यान्वित किया गया। पहली पचवर्षीय योजना मे अल्पकालीन समस्याओं के समाधान पर ध्यान देकर भावी विकास के लिये सुदृढ आधार तैयार करने का लक्ष्य था, द्वितीय योजना मुख्यत औद्योगिकरण की योजना थी, तृतीय *योजना का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को स्वय स्फूर्त अवस्था की ओर अग्रसर करना था।* विदेशी विनिमय सकट, वित्तीय साधनों की सदिग्धता तथा अनिश्चित वातावरण मे तीन वार्षिक योजनायें (1966–69) कार्यान्वित की गईं। चतुर्थ योजना आत्म-निर्भरता के उद्देश्य से प्रेरित योजना थी। इस योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया मे यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था को सफलता-विफलताओ को कठिन परिस्थितियो के दौर से गुजरना पडा है फिर भी कठिनाइयों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था तीव्र गति से आर्थिक विकास की ओर अग्रसर हुई हैं। देश मे भावी विकास के लिये सुदृढ आधार तैयार हुआ है। निर्धनता व बेरोजगारी की समस्याओं से निबटने के लिये भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्षमता में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र में 1960 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र मे 1800 करोड रु० व्यय किया गया। इसमे कृषि विकास को सर्वोच्च

प्राथमिकता दी गई थी। द्वितीय योजना मुख्यतः औद्योगीकरण की योजना थी जिसमें आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। इस योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 4672 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 3100 करोड रु व्यय किया गया। तृतीय योजना मे कृषि व उद्योगो के सन्तुलित विकास के लिये अर्थव्यवस्था को स्वय-स्फूर्त बनाने का लक्ष्य था और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये सार्वजनिक क्षेत्र मे 8577 करोड रु तथा निजी क्षेत्र मे 4100 करोड रु व्यय किए गए। तीन वार्षिक योजनाओ (1966 69) मे सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र पर क्रमशः 6676 करोड रु तथा 3640 करोड रु व्यय हुआ। चौथी योजना मे स्वय सिद्ध तथा आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के स्वप्न को साकार करने के लिये पाच वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र मे 15902 करोड रु तथा निजी क्षेत्र मे 8980 करोड रु व्यय का प्रावधान था पर बढती कीमतो के कारण वास्तविक व्यय क्रमश 16,774 करोड रु तथा 10 हजार करोड रु होने का अनुमान है। पाचवी योजना के प्रथम चार वर्षों (1974–78) सार्वजनिक क्षेत्र मे 29571 करोड रु. तथा निजी क्षेत्र मे 12900 करोड रु व्यय हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त व्यय को तालिकाबद्ध करने पर स्पष्ट होता है कि योजनाबद्ध विकास के लिये पिछले 27 वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल मिलाकर लगभग 68230 तथा निजी क्षेत्र मे 35569 करोड रु व्यय हुआ है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे होने वाली प्रगति का मूल्याकन निम्न तथ्यो से स्पष्ट होता है—

(1) राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि—किसी भी देश के आर्थिक विकास को मापने का मोटा मापदड राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे होने वाली वृद्धि है। इस दृष्टि से देखने पर जहा 1950–51 मे चालू मूल्यो पर राष्ट्रीय आय 9330 करोड रु थी वह 1960–61 म बढकर 13284 करोड रु तथा 1977–78 मे 73157 करोड रु होने का अनुमान है। प्रति व्यक्ति आय भी 1950–51 में चालू मूल्यो पर 266 5 रु थी वह 1960–61 मे बढकर 306 रु० तथा 1977–78 मे बढकर 1163 रु० हो गई है। इस प्रकार पिछले 27 वर्षों मे राष्ट्रीय आय 150 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय मे 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि की धीमी गति का कारण जनसख्या मे प्रतिवर्ष 2 5 प्रतिशत की विस्फोटक वृद्धि वृद्धि होना है। अगर हम 1948-49 के मूल्यो पर गौर करें तो राष्ट्रीय आय मे केवल 96 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय मे केवल 45 प्रतिशत ही वृद्धि हुई है। फिर भी हमारी राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि आर्थिक विकास का परिचायक है। 1975–76 मे राष्ट्रीय आय मे 8 8 प्रतिशत वृद्धि हुई जबकि 1977–78 म राष्ट्रीय आय मे लगभग 7 24 प्रतिशत वृद्धि का अनुमान था।

2 विनियोग बचत एव पूंजी निर्माण मे वृद्धि—योजना बद्ध विकास के पिछले 27–28 वर्षों मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो मे कुल मिलाकर लगभग 98000 करोड रु का पूजी विनियोग हुआ। जहाँ 1950–51 मे विनियोग की दर राष्ट्रीय आय का $5\frac{1}{6}$% थी वह 1965–66 मे बढकर 14 से 15% हो गई। उसके बाद अर्थ-व्यवस्था पर प्राकृतिक प्रकोप, बगला देश सकट, पाकिस्तान से युद्ध व मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि के कारण विनियोग दर 1968–69 मे 11 3% तथा 1978-79 मे 23% हो होने का अनुमान है। जहा 1950–51 मे विनियोगो का वार्षिक औसत 500 करोड रु था वह 1955-56 मे बढकर 2600 करोड रु वार्षिक तथा 1970-71 मे 3000 करोड रु वार्षिक हो गया। चतुर्थ योजना के अन्त मे विनियोगो का वार्षिक औसत 4412 करोड रु का अनुमान है। इसी प्रकार आन्तरिक बचतें 1950–51 मे राष्ट्रीय आय का लगभग 4 5% भाग थी वह 1978–79 मे बढकर राष्ट्रीय आय के 22% के बराबर हो गई। योजनावार विनियोग-मात्रा निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पचवर्षीय योजनाओ मे विनियोग

(करोड रुपये)

क्षेत्र	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	तीन वार्षिक योजनाये	चतुर्थ योजना	कुल योग 1951–74	पाचवी योजना अनुमान 1974–78
सावजनिक क्षत्र	1560	3650	6300	5817	13665	30992	26000
निजी क्षेत्र	1800	3100	4100	3640	8980	21620	23000
कुल योग	3360	6750	1040	9457	22,645	52612	49000

3 कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र—योजनाबद्ध विकास के 27–28 वर्षों मे जहा कृषि क्षेत्र मे भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई है वहा 1950–51 मे कृषि विकास की दर 0 5% थी वह दर 1973–74 मे बढकर 3 9% हो गई। खाद्यान्न उत्पादन जो 1950–51 मे केवल 5 4 करोड टन था वह 1978–79 मे 12 8 करोड टन होने का अनुमान है। इसी प्रकार व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है। कृषि मे हरित क्रान्ति के कारण उर्वरको के प्रयोग व उन्नत बीजो के प्रयोग मे वृद्धि होने के साथ कृषि मे परम्परागत दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावसायिक दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ है। कृषि उत्पादन का सूचकांक, (1949=100) 1950–51 मे 96·6 था वह 1960–61 मे बढकर 139 तथा 1978–79 मे बढकर 221 होने का अनुमान है। कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अग्र तालिका से स्पष्ट हैं—

कृषि क्षेत्र की प्रमुख उपलब्धिया

विवरण	इकाई	1950–51	1960–61	1970–71	1973–74	1978–79
(1) कृषि उत्पादन सूचाक	(949=100)	95 6	139	182	198	221
(2) खाद्यान्न उत्पादन	करोड़ टन	5 5	8 2	10·8	10 47	12 8
(3) तिलहन	लाख टन	52	70	92	94	134
(4) गन्ना (गुड के रूप मे)	" "	71	114	132	141	
(5) कपास	लाख गाँठें	29	53	46	66	72
(6) जूट	" "	35	41	49	o5	70
(7) उर्वरको का उपभोग	हजार टन	69	306	2180	2439	5000

Source—Compilation from Various plans

हरित क्रान्ति के अन्तर्गत उन्नत बीजो के प्रयोग मे भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जहाँ 1969–70 मे केवल 114 लाख हैक्टर मे अधिक उपज देने वाली फसले बोई गयी वहाँ 1978–79 मे यह क्षेत्र बढकर 430 लाख हैक्टर होने का अनुमान था। 169 लाख हैक्टर मे बहु फसल कार्यक्रम लागू किया गया है जबकि 196*–66 से पूर्व इसकी प्रगति नगण्य थी। जागीरदारी एव जमीदारी प्रथा का उन्मूलन तो बहुत पहले ही किया जा चुका है। कृषि मे यत्रीकरण भी निरन्तर बढ रहा है। जहाँ 1956 मे विद्युत सचालित पम्प सैटो की सख्या 47 हजार थी जबकि 1970–71 मे यह सख्या 16 6 लाख तथा 1978–79 मे 35 लाख होने का अनुमान है। ट्रैक्टरों की माँग 196*–67 मे 20 हजार थी वह 1970–71 मे 40 हजार हो गई तथा अब यह माँग 2 5 लाख होने की सम्भावना है। कीटाणुनाशक दवाओं का उपभोग 1978-79 मे 65 हजार टन होने का अनुमान है। जहाँ 1965–66 मे केवल 16 6 लाख हैक्टर क्षेत्र मे पौध सरक्षण कार्यक्रम लागू था अब लगभग 850 लाख हैक्टर क्षेत्र मे पौध सरक्षण लागू है। रासायनिक खादो का प्रयोग 1974-75 मे 27 लाख टन था जबकि 1978–79 मे 50 लाख टन होने का अनुमान है।

4 सिचाई एवं विद्युत शक्ति विकास—ये दोनो कृषि तथा औद्योगिक विकास के आधार-स्तम्भ हैं। पिछले 28 वर्षों मे सिचाई साधनो के विकास पर लगभग 6500 करोड़ रु व्यय हो चुका है। फलस्वरूप जहाँ 1950–51 मे सिचित क्षेत्र 208 लाख हैक्टर था वह 1960–61 मे बढकर 283 लाख हैक्टर व 1968–69 मे 360 लाख हैक्टर हो गया तथा 1973-74 मे सिचित क्षेत्र 440 लाख हैक्टर हो गया था 1978–79 मे सिचित क्षेत्र 520 लाख हैक्टर था इस प्रकार सिचित क्षेत्र दुगने

से अधिक हो गया है। विशालकाय बहुउद्देशीय परियोजनाओं मे भाखरा नागल, दामोदर घाटी, हीरा-कुन्ड, तुगभद्रा, चम्बल नागार्जुन सागर, रिहिन्द सेरावती, परियार व कासी योजनाओ का नाम उल्लेखनीय है।

विद्युत उत्पादन मे पिछले 28 वर्षों मे लगभग 12 गुना वृद्धि हुई है जहाँ 1950-51 म केवल 23 लाख Kw विद्युत उत्पादन क्षमता थी। 1960-61 मे यह क्षमता 56 लाख Kw थी जबकि 1968-69 मे क्षमता 145 लाख Kw हो गई। 1973-74 के अन्त तक विद्युत क्षमता 184 6 लाख Kw हो गई। 1978 79 मे विद्युत क्षमता मे 270 लाख किलोवाट होने का अनुमान है। विद्युतीकृत बस्तियो की सख्या 1950-51 मे 3671 से बढकर 1973-74 मे 1 40 लाख हो गई। 1978-79 तक विद्युतीकृत बस्तियों की सख्या 2 5 लाख होने का अनुमान है।

पचवर्षीय योजना मे विद्युत शक्ति एव सिंचाई क्षमता का विकास

विवरण	इकाई	1950–51	1960–61	1968–69	1973–73	1978–79
सिंचित क्षेत्र	लाख हैक्टर	208	283	360	440	520
विद्युत उत्पादन क्षमता	लाख कि वा	23	56	145	184	270
विद्युतीकृत — बस्तियाँ	सख्या	3671	25000	70,000	1 40 लाख	2 5 ला·

Source—Compilation from various plans

(5) उद्योग एवं खनिज विकास—यद्यपि प्रथम योजना मे औद्योगिक विकास को कोई विशेष महत्व नही दिया गया पर द्वितीय पचवर्षीय योजना मुख्यत औद्योगीकरण की योजना थी तथा उसके बाद की सब योजनाओ म उद्योगो व खनिज विकास को प्राथमिकता मे विशेष स्थान प्राप्त था। सार्वजनिक क्षेत्र मे औद्योगिक विकास पर पिछले 27-28 वर्षों मे लगभग 15000 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र म 12000 करोड रुपये व्यय हो चुके हैं। परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन मे लगभग 300% की वृद्धि हुई है। 1968–69 मे औद्योगिक उत्पादन 1950–51 के उत्पादन से तिगुना था। 28 वर्षों मे आधारभूत उद्योगो के उत्पादन म 300 से 600 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। औद्योगिक-उत्पादन का सूचकाक (1960=100) 1951 मे54·8 था वह 1961 मे 110 6 पहुच गया। 1970 मे यह सूचकाक 180 8 था तथ 1978–79 तक यह सूचकाक 270 होने का अनुमान है। मशीनरी उत्पादन मे लगभग 42 गुना वृद्धि हुई है। औद्योगिक सरचना म क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ

है जहाँ 1950–51 मे औद्योगिक उत्पादन मे उपभोग वस्तुओ, मध्यम वस्तुओं व पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन का अनुपात क्रमश 68%, 23% तथा 8% था वह 1965–66 मे बदलकर क्रमश 34%, 43 3% तथा 22% हो गया। हमारे औद्योगिक उत्पादन मे पूंजीगत वस्तुओ का बढता अनुपात सुदृढ औद्योगिक आधार का द्योतक है। 1951 के मुकाबले औद्योगिक उत्पादन 3½ गुना हो गया है।

आधारभूत उद्यागो मे रूरकेला, भिलाई दुर्गापुर व बोकारो के इस्पात कारखाने, बगलौर, राची एव पिन्जौर म मशीन टूल्स कारखाने, चितरजन व वाराणसी मे रेल इजन कारखाने, हिन्दुस्तान उर्वरक निगम के सात कारखानें, हिन्दुस्तान कवल्स हिन्दुस्तान शिपयार्ड, जिक स्मेल्टर, तॉबा-शोधक कारखाना, भोपाल हैवी इलेक्टोनिक कारखाना तथा बगलौर व कानपुर के हवाई जहाज निर्माण कारखाने योजनाबद्ध विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। सार्वजनिक क्षेत्र मे लगभग 155 ऐसे औद्योगिक उपक्रम हैं जिनम लगभग 13500 करोड रुपये की पूँजी नियोजित है। खनिजो का उत्पादन भी निरन्तर बढ रहा है जहाँ 1950–51 मे खनिज उत्पादन का कुल मूल्य केवल 89 करोड रुपये था यह बढकर 1978–79 मे 1400 करोड रु० हो गया।

पचवर्षीय योजनाओ मे खनिज एवं औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख उपलब्धियाँ

(लक्ष्य)

विवरण	इकाई	1950–51	1960–61	1968–69	1973–74	1978–79
लोहा अयस्क	लाख टन	32	120	260	357	560
कोयला	लाख टन	323	546	695	790	1240
पेट्रोलियम पदार्थ	लाख टन	2	58	161	197	270
तैयार इस्पात पिंड	लाख टन	10	22	46	48 9	88 0
मशीनरी	मूल्य लाख रु	30	700	2500	6730	13000
एल्यूमिनियम	हजार टन	4	18	120	148	310
सीमेंट	लाख टन	27	80	125	1467	208
विद्युत उत्पादन	लाख कि वा	23	56	145	284	270
सूती कपडा	करोड मीटर	421	512	460	780	950
चीनी	लाख टन	11 3	30	35 6	39 5	54

मोटे रूप मे यह कहा जा सकता है कि (1960=100) के आधार पर आधारभूत उद्योगों के सूचकांक 1961 मे 112 से बढकर 1972 में 246, पूंजीगत उद्योगो मे 118 से बढकर 227 तथा उपभोग उद्योगों में यह 106 से बढकर

175 जबकि सामान्य औद्योगिक उत्पादन सूचकाक जो 1951 मे 54 8 था वह 1961 मे 110 6 तथा 1977–78 मे 270 होने का अनुमान है।

(6) परिवहन एवं सचार परिवहन एव सचार व्यवस्था अर्थतन्त्र की वे रक्त धमनिया हैं जो कृषि व उद्योगो के विकास का मार्ग प्रशस्त करती हैं। पिछले 27– 8 वर्षों मे इस क्षेत्र के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र मे 13000 करोड रुपये व्यय किया जा चुका है। प्रथम योजना मे वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। अनेक राज्यो मे सडक परिवहन का भी राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है। बगलौर व कानपुर मे वायुयान बनाने के कारखाने खोले गये हैं। सामुद्रिक जहाज बनाने के शिपयार्ड विशाखापट्टनम व कोचीन म कार्यरत हैं। चितरजन और वाराणमी मे रेल इन्जन कारखाने, पेराम्बूर मे रेल बेगन कारखाना रेल विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धिया हैं। 35 राष्ट्रो को भारत के वायुयान जाते हैं, 85 हवाई अड्डे हैं। 400 सामुद्रिक जहाज हैं परिवहन व सचार क्षेत्र म प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है —

योजना में परिवहन एवं संचार व्यवस्था की प्रगति

विवरण	इकाई	1950–51	1968–69	19–7374	1978–79
रेलो की लम्बाई	हजार कि.मी	54	60	61	61 5
रेलो की माल ढोने की क्षमता	करोड टन	9 3	20 3	21 5	26
जहाजरानी क्षमता	लाख GRT	3 9	21 4	3000	55
सतहदार सडकें	लाख कि मी	1 56	3 17	4 90	6 0
डाकघर	हजार सख्या	36	102	117	130
तारघर	सख्या	8205	14000	17000	2000
टेलीफोन	लाख सख्या	N A.	N A	16 4	25

भारत की जहाजरानी क्षमता पिछले 28 वर्षों मे लगभग 13 गुना बढ गई है और जहा 1950–51 मे भारतीय जहाजरानी हमारे विदेशी व्यापार का 6 8 प्रतिशत भाग होती थी अब यह बढकर 25 प्रतिशत हो गया है। सतहदार सडको की लम्बाई भी 3½ गुनी हो गई है।

(7) सामाजिक सेवायें—भारत जैसे पिछडे देश मे निर्धन जनता के लिये सामाजिक सेवाओ का व्यापक कार्यक्रम भी अपर्याप्त ही रहा है। शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाओ, परिवार नियोजन, पेय जल, आवास व्यवस्था आदि पर पिछले 28 वर्षों में काफी राशि व्यय की जा चुकी है।

सामान्य शिक्षा के क्षेत्र मे जहा 1950–51 मे केवल 2 31 लाख शिक्षण सस्थायें थी और उसमे 235 लाख छात्र-छात्रा पढते थे। 1968–69 मे शिक्षण सस्थाओ की सख्या 6 लाख व छात्र-छात्राओ की सख्या 752 लाख हो गई थी। 1977–78 मे छात्र-छात्राओ की सख्या 902 लाख होने का अनुमान है। यही नही इन्जीनियरिंग एव तकनीकी शिक्षा मे डिग्री एव डिप्लोमा स्तर की प्रवेश क्षमता 1950–51 मे क्रमश 4 हजार तथा 5 9 हजार थी उसे बढाकर 1968–69 मे क्रमश 25 हजार तथा 50 हजार कर दिया था। चौथी योजना मे सस्थानो से प्रशिक्षितो के गुणात्मक विकास पर अधिक बल दिया गया। नयी क्षमता के विस्तार पर नियन्त्रण रहा। सब प्रयत्नो से भारत मे साक्षरता का प्रतिशत 1951 मे 16 5 से बढकर 1971 मे 29 4% हो गया है।

स्वास्थ्य एव चिकित्सा सुविधाओ मे भी पिछले 28 वर्षो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। जहा 1950–51 मे रोगी शैयाओ की सख्या 1 13 लाख थी वहा 1968–69 मे 2 6 लाख तथा 1973–74 मे 2 81 लाख हो गई। डाक्टरो की सख्या 56 हजार था वहा 1968–69 मे 102 हजारतथा 1973–74 मे 138 हजारहोने का अनुमान है। परिवार नियोजन केन्द्रो का सारे देश म जाल बिछा दिया गया है। इस प्रकार स्वास्थ्य एव चिकित्सा सेवाओ मे सुधारो से मृत्यु दर 27 4 प्रतिशत हजार से घटकर अब 15 प्रति हजार हो गई है तथा प्रत्येक भारतीय की औसत आयु भी 32 वर्ष से बढकर अब 55 वष होने का अनुमान है। अब देश मे 12500 प्रवेश क्षमता के 99 मेडिकल कालिज है जबकि 1950–51 मे मेडीकल कालेजो की सख्या 30 और उनमे प्रवेश क्षमता 2500 ही थी। मलेरिया चेचक तथा अन्य कई छुआछूत की बीमारियों पर नियन्त्रण किया जा चुका है।

पिछले वर्षो के कल्याण एव सामान्य कल्याण कार्यक्रमो पर योजनाबद्ध विकास के प्रथम 28 वर्षो म लगभग 800 करोड रु० व्यय किया। उनमे से 400 करोड र अनुसूचित जातियो के कल्याण कार्यक्रमो पर 300 करोड र आदिम जाति कल्याण व 100 करोड र अन्य पिछडे वर्गों पर इस व्यय में 140 करोड र शिक्षा 110 करोड रु० आर्थिक विकास तथा 80 करोड र स्वास्थ्य, आवास अन्य योजनाओ पर व्यय हुआ है।

इन सबके अतिरिक्त सामाजिक कल्याण कार्यक्रमो मे आवास गृहो, जल-प्रदाय योजनाओ आदि पर ध्यान दिया गया है।

(7) रोजगार—मानव शक्ति सदुपयोग के मानवीय एव सामाजिक पहलुओं को ध्यान मे रखते हुए पिछले 28 वर्षों मे विभिन्न क्षेत्रों मे लगभग 6 5 करोड अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार दिया गया है। पहली योजना में 75 लाख दूसरी योजना मे 95 लाख, तृतीय योजना मे 145 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार प्रदान किया गया। चौथी योजना में लगभग 170 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार प्रदान किये

जाने की सम्भावना थी। फिर भी देश में जनसख्या की विस्फोटक वृद्धि, विकास की धीमी गति व योजनाओ मे मानव शक्ति नियोजन की दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण बेकारो की सख्या अब भी लगभग 4 करोड तक पहुच गई है। इसमे शिक्षित बेकारो की सख्या 60 लाख है, 1980 तक देश मे बेकारो की सख्या 5 से 6 करोड तक पहुचने का भय है। इसी कारण छठी योजना मे 4 9 करोड अतिरिक्त लोगो को रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य है।

(8) **उपभोग एवं जीवन स्तर मे सुधार**—देश मे विकास के फलस्वरूप आय, उत्पादन रोजगार व उपभोग मे सुधार हुआ। लोगों के जीवन-स्तर मे सुधार हुआ है। आज अधिकाश ग्रामीणो के पास साइकिलें ट्रान्जिस्टर, घडिया, घरेलू सामान अच्छे कपडे व उत्तम आवास व्यवस्था नजर आती है। स्वास्थ्य सेवाओ व शिक्षा मे वृद्धि हुई है। उपभोग के प्रारम्भिक स्तर से तुलना करने पर बढते जीवन स्तर व उपभोग स्तर का मोटा चित्र सामने आता है—

प्रति व्यक्ति उपभोग वस्तुओ की उपलब्धता

विवरण		1951	1978—7 (अनुमान)
खाद्यान्न	(प्रतिदिन-ग्राम म)	395	460
खाने का तेल	(प्रतिवर्ष-किलोग्राम)	2 7	3·4
चीनी	(, ,,)	3 0	7 5
सूती कपडा	(,, मीटर)	11	14 8
विद्युत उपभोग	(, किलोवाट)	1 6	8 0

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यो की एक झलक से ही ज्ञात होता है कि पिछले 27-28 वर्षों के योजनाबद्ध विकास के द्वारा मृतप्राय भारतीय अर्थव्यवस्था को प्राणवान एव प्रगतिशील बनाया गया है। देश मे औद्योगीकरण का सुदृढ आधार तैयार हुआ है। भारत का विदेशी व्यापार 1950-51 के मुकाबले मे अब लगभग 10 गुना है। कृषि मे हरित क्रान्ति से कृषि उपज मे तेजी से वृद्धि हुई है तथा किसानो मे व्यावसायिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ है। परिवहन व सचार व्यवस्था मे क्रान्तिकारी प्रगति हुई है पर योजन ओ मे अनेक असफलताएँ भी रही हैं जिनके कारण आज जन साधारण का जीवन सकटमय हो गया है। देश मे 22 करोड जनसख्या गरीबी के न्यूनतम स्तर पर है उन्हें 28 वर्षों की इस लम्बी अवधि मे भी न्यूनतम जीवन स्तर की अनिवार्य वस्तुओ की पूर्ति भी सम्भव नहीं हुई। देश मे बेकारी द्रोपदी के चीर की भाति बढती हा जा रही है। आर्थिक विषमता व एकाधिकारी प्रवृत्तियो को बल मिला है। गरीब और अधिक गरीब तथा धनी अधिकाधिक धनी बनते जा रहे हैं। समाजवाद केवल एक थोथा नारा प्रतीत होने लगा है। गरीबी हटाओ व आत्म-निर्भरता के सुखद स्वप्नो के काल्पनिक महल निराशा के झोको से ढह रहे हैं, जन असन्तोष विभिन्न रूपो म विनाशकारी कृत्यो म रत है यह सत्ताधारी शासको के लिये व भारतीय नियोजको के लिये एक ऐसी चुनौती है जिसका समय पर समाधान न होने

पर देश मे खूनी क्रान्ति से प्रजातान्त्रिक समाजवाद, अधिनायकवाद या अराजकवाद मे परिवर्तन का सकेत देती है। आपात स्थिति की घोषणा के बाद 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के लागू होने से कई नई आशाए बधी थी और नियोजन के क्षेत्र मे एक नये दृष्टिकोण का सूत्रपात एव युग प्रवर्तक मोड आया। जनता पार्टी के सत्ता मे आने से तीव्रगामी आर्थिक परिवर्तनो की आशा है।

योजनाओं की विफलताएं (Failures of Plans)

भारतीय योजनाओ के कार्यान्वयन मे अकुशलता व जनसहयोग के अभाव मे अनेक विफलताए रही हैं और देश का आर्थिक विकास वाछित गति से नही हुआ। समाजवाद कोरा स्वप्न बनकर रह गया तथा गरीबी हटाओ की कल्पना बिल्कुल झूठी सिद्ध हुई। बेरोजगारी निरन्तर बढती गई है। कीमतो में अप्रत्याशित वृद्धि से लोगो का जीवन स्तर नही बढ पाया। आर्थिक विषमताए बढी। गरीब और अधिक गरीब और धनवान निरन्तर धनवान होते गये। जहा योजनाओ से जनता मे जोश व विश्वास की भावना जागृत होनी चाहिये थी वहा निराशा व असन्तोष भडका। ,2 करोड जनसख्या अभी तक अपनी निर्धनता में अनिवार्य आवश्यकताए भी पूरी करने में असमर्थ है तो दूसरी ओर धनवानो में विलासितापूर्ण जीवन व राजशाही ठाट-बाट में गुलछर्रे उडाने की प्रवृत्ति प्रबल है। मुख्य विफलताए सक्षेप में इस प्रकार हैं—

(1) लक्ष्यों व उपलब्धियों मे गहरी खाई बढी—जहा तीसरी योजना में तथा चौथी योजना में आर्थिक विकास की वार्षिक दर क्रमश 5 व 5 5 प्रतिशत निर्धारित की गई थी वहा विकास की दर 1965 में 2 5 प्रतिशत ही थी तथा 1978-79 में विकास की दर 3 5 प्रतिशत रही। औद्योगिक उत्पादन में 8 से 10 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य था वहा वास्तविक वृद्धि केवल 8 0 प्रतिशत होने का अनुमान था। खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता की कल्पना थी पर विदेशी आयातो पर निर्भरता बाद में भी बनी रही। गरीबी का भयकर रूप सामने आया और असन्तोष के रूप में भभका।

(2) बेकारी की समस्या निरन्तर बढ़ती गई—योजनाबद्ध विकास के पिछले 27 वर्षों में बेकारी की समस्या के उन्मूलन की बात तो दूर रही, यह समस्या निरन्तर जटिल होती जा रही है। जहा बेकारो की सख्या 1950-51 में केवल 40 लाख थी वहां 1973-74 के अन्त तक बकारो की सख्या 4 करोड होने का अनुमान था अब लगभग 60 लाख शिक्षित बेकार होंगे जिसमें 47 5 हजार इन्जीनियरो, डाक्टरो व तकनीकी प्रशिक्षितों के बेकार होने का अनुमान है। राष्ट्रपति श्री वी. वी गिरी के अनुसार 1980 में बेकारो की सख्या 6 5 करोड होगी जबकि दीर्घकालीन योजना समिति ने भी 5 करोड लोगो के बेकार होने की सम्भावना व्यक्त की थी जहाँ रूस ने अपनी पहली योजना के 5 वर्षों में ही बेकारी का उन्मूलन कर दिया वहा भारत में 28 वर्षों के योजनाबद्ध विकास में भी यह समस्या और अधिक जटिल व व्यापक होती गई। जनता पार्टी के सत्ता मे आने पर अगले 10 वर्षों में बेकारी

को समाप्त करने की घोषणा उज्जवल भविष्य का द्योतक है। छठी योजना मे 492 लाख अतिरिक्त लोगो को रोजगार दिये जाने का लक्ष्य है।

(3) विदेशी सहायता व हीनार्थ प्रबन्ध पर अत्यधिक आश्रितता होने से देश मे विदेशी विनिमय सकटो की समस्या उत्पन्न हुई तथा 1966 मे रुपय का 36 5% अवमूल्यन करना पडा। हीनार्थ प्रबन्ध से प्रथम 18 वर्षों मे 3262 करोड रुपये जुटाये गय। चतुर्थ योजना मे इस श्रोत से केवल 857 करोड रुपये जुटाने का प्रावधान था पर योजना के अन्तर्गत हीनार्थ प्रबन्ध 2885 करोड से भी अधिक होने का अनुमान था।

(4) बढते मूल्यों की समस्या व उपयुक्त मूल्य नीति का अभाव—पहली व दूसरी योजना मे तो कोई निश्चित मूल्य नोति थी ही नही, तृतीय योजना मे पहली बार मूल्य नियन्त्रण की एक एसी सीमित घोषणा की गई जो उपभोक्ता तथा उत्पादको के हितो को दृष्टिगत रखते हुए विकासोन्मुख हो पर इस नीति के कुशल कार्यान्वयन के अभाव, अनिवार्य वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि की धीमी गति तथा बडे पैमाने पर हीनार्थ प्रबन्ध व अप्रत्यक्ष करो से मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 1961 = 1:0 के आधार मूल्यो पर 1974 म थोक मूल्य सूचनाक 335 तक पहुच गया। 1973–74 तथा 1974–75 मे मूल्य वृद्धि की दर क्रमश 15% तथा 21% रही है। परिणामस्वरूप चोर बाजारी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी व भ्रष्टाचार बढा। सामान्य जनता का जीवन दूभर हो गया और सारी प्रगति पर नकारात्मक प्रभाव पडा। आपात स्थिति के दौरान मूल्य स्तर मे गिरावट आई किन्तु अप्रैल 1977 से अब तक मूल्यो मे 12% से 15% वृद्धि का अनुमान है।

(5) आर्थिक विषमता व आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण मे वृद्धि हुई है—यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ म आर्थिक समानता व आर्थिक सत्ता मे विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य था पर वास्तव मे आर्थिक विषमता बढी है, धनी अधिक धनी और गरीब अधिक गरीब हुए हैं। आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कतिपय पूँजीपतियो व सत्ताधारियो के हाथ मे हुआ है। पुराने जागीरदारो व जमीदारो के स्थान पर नये पूँजीवादी सामन्तो का उदय हुआ है। इसमे आर्थिक नियन्त्रण, घाटे की वित्त व्यवस्था व लाइसेन्स पद्धति सहायक रही है। डा० के एन राज के शब्दो मे "आज आय व धन की असमानतायें नियोजित विकास की अवधि के प्रारम्भ की तुलना मे अधिक हो गई हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था के तत्व इसे समाजवाद की अपेक्षा पूँजीवादी प्रारुप के ही अधिक समीप ले जा रहे है।" डाँ आर के हजारी, दत्त समिति व एकाधिकारी आयोग आदि सबके प्रतिवेदन इस मत की पुष्टि करते हैं।

(6) समाजवाद व आत्म निर्भरता के लक्ष्य कोरी कल्पना रहे—28 वर्षों के नियोजन के बावजूद भी भारत अपने खाद्यान्न की पूर्ति मे आत्म-निर्भर नही हो पाया। प्रथम योजना मे खाद्यान्न का आयात 595 करोड रुपये का था वह बढ़कर द्वितीय व तृतीय योजना मे क्रमशः 850 करोड रु० व 1150 करोड रु० मूल्य का हो

गया। अब भी प्रतिवर्ष हमें 1200 करोड रु की मशीनरी, 305 करोड रु का लोहा-इस्पात व 1500 करोड रु पट्रोलियम का आयात करना पडता है। समाजवाद की सुखद कल्पना केवल सिद्धान्त बनकर रह गयी है। गरीबो का साम्राज्य व्याप्त है, आर्थिक विषमता व आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ है। देश की 22 करोड जनसख्या निर्धनता का जीवन बिता रही है। कार्यशील जनसख्या का लगभग 30% बेकारी का शिकार है। यह कौन सा समाजवाद है ?

(7) वृहद योजनाओ के चक्कर मे लघु योजनाओं की उपेक्षा—भारतीय नियोजको ने बडी-बडी योजनाओ के निर्माण व कार्यान्वियन पर अधिक ध्यान दिया है तथा उनको क्रियान्वित करने म लघु योजनाओ की उपेक्षा की। वे यह भूल गये कि बडी तथा दीर्घावधि वाली योजनाओ मे अधिक विनियोग करने मे दीर्घकाल के लाभ मिलने से अर्थव्यवस्था मे मुद्रा स्फीति उत्पन्न होगी तथा निश्चित क्षेत्र के लोगो को ही लाभ मिलने से क्षेत्रीय विषमतायें बढेगी। परिणामस्वरूप छोटी छोटी सिंचाई योजनाओ, लघु एव कुटीर उद्योगो पर कम ध्यान दिया जाने से आशानुकूल लाभ न मिल सका। इसी प्रकार आधारभूत उद्योगो के विकास मे उपभोग उद्योगो की उपेक्षा की गई। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि से लोगो के जीवन स्तर मे सुधार सम्भव नही हुआ।

(8) आत्म निर्भरता का अभाव—योजनाबद्ध विकास के 28 वर्षों की समाप्ति के बाद भी देश आत्म-निर्भर नही हो पाया। हमे अब तक विदेशो से खाद्यान का आयात करना पडता है। इसी प्रकार हमे औद्योगिक कच्चे माल, मशीनरी व खनिज तेल आदि के लिए विदेशी आयातो पर निर्भर करना पडता है। अब तेल सकट बढ जाने के बाद भारत पर पाँचवी योजना के दौरान साधनो पर भार पड रहा है। जहाँ प्रथम योजना मे खाद्यान्नो का कुल आयात मूल्य 595 करोड रु था वह द्वितीय योजना म बढकर 850 करोड रु तथा तृतीय योजना मे 1150 करोड रु पहुच गया। अब भी प्रतिवर्ष लगभग 305 करोड रु का लोहा इस्पात, 1200 करोड रु की मशीनरी एव परिवहन समान तथा 1500 करोड रु का खनिज तेल, पट्रोलियम आदि का आयात करना पडता है।

(9) क्षेत्रीय विषमताओ मे वृद्धि तथा असन्तुलित विकास—देश मे बडी बडी योजनाओ पर अधिक बल, लाइसेन्स नीति के कार्यान्वियन म व्याप्त भ्रष्टाचार, परियोजनाओ मे राजनैतिक स्वार्थपरायणता, व अविवेकपूर्ण नीति से क्षेत्रीय विषमतायें बढी। यही नही विकास कार्यों का अधिकाश लाभ बडे भूस्वामियो, राजनीतिज्ञो तथा पूंजीपतियो को मिला है। हरित-क्रान्ति का लाभ भी बडे व समृद्ध किसानो को मिला है। इस प्रकार धनी अधिक धनी व गरीब अधिक गरीब हो गया है।

(10) केन्द्र तथा राज्य मे सहयोग का अभाव—पिछले 11-12 वर्षों से राज्यो व केन्द्र के बीच मतभेद, भूमि-सुधार कार्यक्रमो को लागू करने, योजनाओ के लिए

अतिरिक्त वित्तीय साधन जुटाने, कुछ योजनाओं में पारस्परिक विवाद आदि के कारण योजनाओं के लक्ष्यों व उपलब्धियों में अन्तर रहा है। धीरे धीरे यह प्रवृति बढ़ती जा रही है। राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता विकास में बाधक बन रही है।

(11) विविध—इसके अतिरिक्त योजनाओं की विफलता अन्य क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हुई है। सरकारी आन्दोलन के संख्यात्मक विकास म गुणात्मक प्रगति का अभाव रहा है। भारत में जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि को रोकने के लिये किये गये प्रयासों की सफलता नगण्य है क्योंकि अब तक केवल 350 लाख अतिरिक्त बच्चों के जन्म को रोका गया है जबकि इससे भी अधिक वृद्धि केवल एक साल म हो जाती है। आज देश में जनसंख्या में 2 5% की दर से वार्षिक वृद्धि हो रही है। वित्तीय व्यय पर अधिक ध्यान दिया है जबकि भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति का गौण स्थान रहा है।

निष्कर्ष—भारत के योजनाबद्ध विकास के 25 वर्षों में सफलताओं व विफलताओं का एक विचित्र संयोग रहा है जो योजना निर्माताओं को अधिक सतर्क रहने का संकेत दे रहे हैं कि थोथे नारों व राजनैतिक उद्देश्यों में लिप्त आर्थिक नीतियों से आर्थिक विकास सम्भव नहीं वरन् योजनाओं का विवेकपूर्ण निर्माण, कुशल क्रियान्वयन तथा कथनी के अनुरूप ही परिश्रम व त्याग करने में आर्थिक विकास की सम्भावनायें निहित हैं। बेरोजगारी के निराकरण क लिय श्रम प्रधान योजनाओं को प्राथमिकता देने की आवश्यकता थी। प्रदर्शनात्मक व्यय तथा अनुत्पादक व्ययों पर रोक लगा कर साधनों को विकास की ओर प्रवाहित करना था। भूमि सुधारों म तेजी, क्षेत्रीय विषमताओं में कमी, पिछड़े वर्गों के कल्याण कार्यों म वृद्धि व प्रशासन में कुशलता लाने की आवश्यकता है। विकास कठोर श्रम, उच्च नैतिक स्तर, स्वार्थ रहित त्याग तथा संशय रहित राष्ट्र भक्ति म ही निहित है।

भावी आयोजन के सुझाव

(Suggestions for Future Planned Development)

आयोजन समस्त आर्थिक रोगों की रामबाण औषधि तो है ही पर अगर औषधि का उपयोग सही ढंग से न हो तो संकट को बढ़ा देती है। भारत के आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में भी उपयुक्त त्रुटियाँ रहीं उसके कारण आर्थिक प्रगति मन्द रही और जनता के कष्टों में वृद्धि से निराशा का वातावरण बना। भावी नियोजन म निम्न सुझाव उपयुक्त लगते हैं—

(1) समाजवाद के लक्ष्य की सच्चे दिल से स्वीकृति—इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आर्थिक नीतियों को इस प्रकार से क्रियान्वित किया जाय कि लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। यह थोथा नारा नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न कार्यक्रमों में परिलक्षित हो। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भूमिहीनों को भूमि, शोषण से मुक्ति समाज के कमजोर वर्गों का विकास, उपयुक्त कर नीति तथा विदेशी व्यापार पर प्रभावी नियन्त्रण से समाजवाद की ओर अग्रसर होने की पूरी कोशिश की जाय।

(2) श्रम प्रधान शीघ्र फलदायी योजनाओं को विशेष महत्व—ये योजनायें बेकारी की समस्या का निराकरण करने तथा मूल्यों पर नियन्त्रण रखने में विशेष लाभदायक सिद्ध होंगी। इनसे देश में विदेशी सहायता पर भी निर्भरता कम होगी और राष्ट्र की आत्म-निर्भरता का मार्ग प्रशस्त होगा। अतः लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना चाहिये। पांचवी योजना में 1 60 लाख लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य था। छठी योजना में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर बल उपयुक्त है।

(3) कृषि विकास में तेजी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण—कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिये नवीन व्यूह रचना (हरित क्रान्ति) को सतर्कता एवं कुशलता से लागू किया जाय। भूमि सुधारों में तेजी लाई जाये और भूमिहीनों को भूमि का आवंटन करने, उपखण्डन व उप विभाजन की समस्या के निराकरण के लिये चकबन्दी व सहकारी कृषि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। बड़ी योजनाओं के बजाय लघु एवं मध्यम सिंचाई योजनाओं को प्राथमिकता दी जाय भूगर्भ जल का उपयोग बढ़ाया जाय।

(4) आन्तरिक वित्तीय साधनों को गतिमान करना तथा विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करना—भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने के लिये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में विदेशी सहायता को कम किया जाय। चतुर्थ योजना में विदेशी साधनों को कम महत्व अच्छा संकेत है। इसी प्रकार आन्तरिक साधनों में भी इस प्रकार समन्वय बैठाया जाय कि अधिकाधिक साधन कम भार तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों की पूर्ति कर सकें। कृषि क्षेत्र में भी अधिक वित्तीय साधन जुटाये जायें।

(5) मूल्यों पर प्रभावी नियन्त्रण—देश में योजना की सफलता के लिये एक समग्रीकृत मूल्य नीति आवश्यक है। मूल्य नीति, आयात नीति तथा उत्पादन नीति में परस्पर समन्वय बैठाना चाहिये। आवश्यकता इस बात की है कि स्थिरता के साथ विकास हो। चतुर्थ योजना में इस उद्देश्य को ध्यान में रखने के बावजूद भी मूल्यों पर प्रभावी नियन्त्रण नहीं हो पाया है। हीनार्थ प्रबन्ध की व्यवस्था में सतर्कता बरती जाने की आवश्यकता है।

(6) जनसंख्या नियन्त्रण—हमारी योजनाओं की असफलता का एक प्रमुख कारण जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि है। पिछले दो दशकों में जनसंख्या में तीव्र गति से (2 5 प्रतिशत वार्षिक) वृद्धि हुई है। जो 1951 में जनसंख्या 36 5 करोड़ थी वह अब बढ़कर 63 5 करोड़ हो गई '। बढ़ती हुई जनसंख्या के रोजगार, खाना, कपड़ा आवास सभी की व्यवस्था करनी पड़ती है। बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ में योजना की प्रगति बह जाती है। अतः प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, उच्च जीवन स्तर, रोजगार की व्यवस्था के लिए जनसंख्या पर प्रभावी नियन्त्रण होना चाहिये।

(7) आर्थिक केन्द्रीयकरण व उत्कृष्ट उपभोग पर रोक—धन का असमान वितरण उत्कृष्ट उपभोग को बढावा देता है तथा साहस को हतोत्साहित करता है। आर्थिक केन्द्रीकरण से वर्ग सघर्ष की भावना प्रबल होनी है। अत इन पर रोक से समाजवाद का मार्ग प्रशस्त होगा तथा विदेशी विनिमय देश के आर्थिक विकास मे सहायक होगा।

(8) निजी क्षेत्र की आर्थिक नीतियों के अन्तर्गत स्वतन्त्रता—भारतीय अर्थ-व्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था है और उसमे प्रजातान्त्रिक नियोजन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार मोटे रूप से आर्थिक नीतियो का निर्धारण कर उनके अन्तर्गत निजी साहसियो को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने दे। राज्य का ध्यान प्रत्येक छोटी-छोटी बातो म न होकर केवल महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दो पर ही रहे जिससे प्रशासनिक कुशलता बढे और दिन प्रतिदिन के हस्तक्षेप से व्याप्त भ्रष्टाचार का समापन हो।

(9) सामाजिक सेवाओं तथा उपभोग उद्योगों का विस्तार—यद्यपि विकास-शील राष्ट्रो मे साधनो की स्वल्पता और अभावो की अधिकता है पर जन साधारण मे आर्थिक नियोजन के प्रति निष्ठा एव सहयोग की भावना जागने के लिये उनकी उपभोग वस्तुओ मे वृद्धि तथा उनक लिये सामाजिक सेवाओ मे वृद्धि की जाय। भारत म अब उपभोग उद्योग का विकास भी साथ-साथ चलना चाहिये।

(10) प्रशासन मे कुशलता की वृद्धि तथा भ्रष्टाचार पर रोक—आर्थिक योजनाओ की सफलता योजनाओ के क्रियान्वयन की कुशलता पर निर्भर करती है। प्रशासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार से विकास कार्यक्रमों मे अनावश्यक विलम्ब होता है। निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिये विकास की बलि दी जाती है। अत इस दिशा मे सुधार आवश्यक है।

इस प्रकार हम निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि आर्थिक आयोजन से ही हम अपनी आर्थिक समृद्धि, राजनैतिक सुरक्षा और सामाजिक समानता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं पर नियोजन की सफलता के लिए कुशलता, समन्वय, सन्तुलन व साधनो के पूर्ण उपयोग की आवश्यकता है। अत अगर उपर्युक्त सुझावो पर अमल किया गया तो भारत म समाजवाद के स्वप्न को साकार किया जा सकता है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

(1) भारतीय योजनाओ की सफलताओ एव असफलताओ का मूल्यांकन कीजिये। (Raj III yr B Com 1979)

संकेत—भारत मे योजनाबद्ध विकास की उपलब्धियो एव विफलताओ को शीर्षकनुसार देना है। □

12

छठी पंचवर्षीय योजना (1978-83) का प्रारूप*
(DRAFT OF SIXTH FIVE YEAR PLAN 1978–83)

योजना आयोग ने जन आकांक्षाओं एवं आशाओं को मूर्त रूप देने तथा देश में व्याप्त गरीबी, व्यापक बेरोजगारी तथा आर्थिक असमानताओं को तेजी से कम करने के लिए पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का एक वर्ष पहले ही परित्याग कर जनता सरकार की आर्थिक नीतियों के अनुरूप छठी पंचवर्षीय योजना (1978–83) का प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रारूप के अनुसार छठी पंचवर्षीय योजना में कुल परिव्यय 1,16,240 करोड़ रुपये होने का प्रस्ताव है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 69380 करोड़ रु० तथा निजी क्षेत्र का कुल परिव्यय 46860 करोड़ रु० होने का अनुमान है। प्रारूप में 4.7 प्रतिशत विकास दर की परिकल्पना की गई है जो योजना के अन्त तक बढ़कर 5.5 प्रतिशत होने की आशा है। इस योजना में अगले दस वर्षों में पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने, गरीबी को समाप्त करने तथा अधिक समानता वाले समाज की रचना करने के लक्ष्यों की प्राप्ति पर मुख्य रूप से जोर दिया गया है।

छठी योजना के उद्देश्य एवं कार्यनीति
(Objectives & Strategy of Sixth Plan)

इस योजना के प्रारूप में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्य चार हैं जिनमें दस वर्ष की अवधि के भीतर—

(i) काफी सीमा तक बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी का निराकरण,

(ii) जनसंख्या के सबसे गरीब तबकों के जीवन स्तर में उल्लेखनीय सुधार करना,

(iii) इन आय समूहों में आने वाले लोगों के लिये राज्य द्वारा बुनियादी आवश्यकताओं जैसे पीने का साफ पानी, प्रौढ़ शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा ग्रामीण सड़कें, आवास आदि की व्यवस्था करना, तथा

(iv) अधिक समानता वाले समाज की रचना करना।

इन प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रारूप में सरकार की कार्यनीति (Strategy) की प्रमुख बातें उल्लेखनीय हैं—

*छठी योजना का अन्तिम स्वरूप आने पर छात्र उसके अनुसार लिखें।

(i) पिछले वर्षों की अपेक्षा अर्थव्यवस्था की उच्च विकास दर प्राप्त करना,

(ii) आय तथा सम्पत्ति की वर्तमान विषमताओ को पर्याप्त मात्रा मे कम करने की दिशा मे आगे बढना, तथा

(iii) आत्म निर्भरता की दिशा मे देश की सतत् प्रगति सुनिश्चित करना।

इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए योजना प्रारूप मे चार क्षेत्रो — (i) कृषि, (ii) लघु एव कुटीर उद्योग, (iii) समन्वित ग्रामीण विकास के लिय क्षेत्रीय आयोजन तथा (iv) न्यूनतम आवश्यकताओ की व्यवस्था पर विशेष जोर दिया जाएगा।

छठी योजना का परिव्यय एव प्राथमिकतायें
(Outlay & Priorities of Sixth Plan)

छठी पचवर्षीय योजना (1978-83) का कुल प्रस्तावित परिव्यय 16240 करोड रु० है जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र म 69380 करोड रु० तथा निजी क्षेत्र मे 46860 करोड रु० व्यय का प्रावधान है। सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 69380 करोड रु० होगा जो कुल योजना परिव्यय का लगभग 59 7 प्रतिशत भाग है योजना प्रारूप को ग्रामोन्मुखी बनाया गया है। यही कारण है कि कृषि एव ग्रामीण विकास पर कुल याजना परिव्यय का लगभग 43 1 प्रतिशत भाग खर्च होगा जो पाचवी योजना की निर्धारित राशि से लगभग दुगुनी होगी। अगले दस वर्षों मे बेरोजगारी एव अर्द्धबेकारी के समापन के लिए लघु एव कुटीर उद्योगो, यातायात, कृषि एव सिंचाई विकास को प्राथमिकता के उच्च क्रम म रखा गया है। सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रस्तावित परिव्यय निम्न तालिका से स्पष्ट है—

छठी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय (Outlay)

(1978-83) (राशि करोड रु०)

क्षेत्र	परिव्यय	कुल परिव्यय का भाग
1 कृषि एव सम्बद्ध क्षत्र	8600	12 4%
2 सिचाई एव बाढ नियत्रण	9650	33 9%
3 उद्योग एव खनिज	10350	14 9%
4 शक्ति, विज्ञान एव टेकनोलोजी	20800	30 0%
5 परिवहन एव सचार	10625	15 ·%
6 सामाजिक सेवायें	9355	13 5%
कुल योग	69380	100%

Source—Yojna-April 16, 1978

छठी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र की वित्त व्यवस्था के स्रोत
(Financing of Public Sector outlay in Sixth Plan)

(करोड रुपये)

[A] घरेलू बजट साधन	
(i) 1977-78 की चालू दरो पर बजट अतिरेक	12889
(ii) सार्वजनिक उपक्रमो से प्राप्त शुद्ध बचत	10.96
(iii) अतिरिक्त करारोपण—केन्द्र 9000, राज्य 4000	13000
(iv) बाजार ऋण	15986
(v) अल्प बचते	3150
(vi) राज्य भविष्य निधियाँ	2953
(vii) वित्तीय सस्थाओ के समयावधि ऋण	1296
(viii) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ	450
कुल बजट साधन	60020
[B] (i) विदेशी सहायता	5954
(ii) विदेशी विनिमय कोषो का प्रयोग	1180
[C] हीनार्थ प्रवन्ध (अपूरित अन्तर)	2226
कुल योग	69380

Source—Yojna–16 April, 1978 Page 7

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि योजना के लिये घरेलू बजट साधनो से कुल सार्वजनिक परिव्यय लगभग 85 प्रतिशत साधन जुटाये जायेंगे जबकि विदेशी सहायता से केवल 8 5 भाग प्राप्त होगा। अतिरिक्त करारोपण से लगभग 19 प्रतिशत भाग की व्यवस्था है जबकि हीनार्थ प्रबन्ध से केवल 2226 करोड रु० की व्यवस्था का प्रावधान भ्रमपूर्ण लगता है क्योकि इस योजना के प्रथम वर्ष 1978-79 मे ही 1950 करोड रुपये हीनार्थ प्रबन्ध की व्यवस्था है।

समूची छठी योजना मे कुल परिव्यय 116240 करोड रुपये की व्यवस्था है। इसकी वित्त व्यवस्था भी योजना के प्रारूप मे दी गयी है। अत सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र की सम्पूर्ण छठी योजना के लिये 116240 करोड रुपये की वित्त व्यवस्था निम्न प्रकार करने की व्यवस्था है—

(i) सार्वजनिक क्षेत्र से बचत 27444 करोड रुपये, (ii) वित्तीय संस्थाओ से बचत 1973 करोड रुपये, (iii) गैर सरकारी निगम क्षेत्र से बचतें 9074 करोड रुपये, पारिवारिक बचतें 62354 करोड रुपये होगी। इस प्रकार कुल आन्तरिक सराधन 100855 करोड रुपये होंगे। विदेशी सहायता से 3955 करोड रुपये, विदेशी

विनिमय कोषो के धन का उपयोग 1180 करोड रुपये तथा चालू विकास परिव्यय के लिये बजट व्यवस्था से 10250 करोड रुपये जुटाये जायेंगे।

छठी पचवर्षीय योजना के प्रमुख लक्ष्य (1978–83)
(Main Targets of Sixth Five Year Plan)

छठी योजना मे आधारभूत उद्देश्यो की पूर्ति हेतु अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे महत्वाकाक्षी लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार हैं—

(1) **राष्ट्रीय आय, बचत एव विनियोग**—योजना में 4 7% वार्षिक विकास दर की परिकल्पना की गई है जो योजना के अन्त तक बढकर 5 5% होने की आशा है। कृषि क्षेत्र मे वार्षिक विकास दर 3 98% होगी जबकि औद्योगिक विकास दर 6 9% होने की आशा है। प्रति व्यक्ति खपत के स्तर मे 1978-83 की अवधि मे 2 11% की वृद्धि होगी। सकल घरेलू उत्पादन के रूप मे बचतें राष्ट्रीय आय के 19·8% से बढकर 1982 83 म 23 4 प्रतिशत हो जायेंगी। पूँजी निर्माण की दर भी 1982 83 तक 25 प्रतिशत होने की आशा है।

(2) **कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र**—योजनाकाल मे कृषि एव ग्रामीण विकास पर कुल परिव्यय लगभग 43 1 प्रतिशत भाग व्यय किया जायगा। परिणामस्वरूप खाद्यान्न का उत्पादन 12 5 करोड टन से बढाकर 14 05 करोड टन करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार अन्य फसलो के लक्ष्य भी ऊँचे निर्धारित किए गए हैं जो निम्न तालिका से स्पष्ट हैं—

कृषि उत्पादन के प्रमुख लक्ष्य (1978–83)

विवरण	इकाई	1977-78	1982-83
1 खाद्यान्न	करोड टन	12 5	14 05से 14 45
2 गन्ना	" "	15 69	18 8
3 कपास	लाख गाठें	64 3	81 5 से 92 5
4 तिलहन	लाख टन	92	112 से 115
5 रासायनिक खाद का उपयोग	" "	42	78

(3) **सिचाई विकास**—योजनाकाल मे सिचाई एव बाढ नियन्त्रण पर 9650 करोड रुपये व्यय का प्रावधान है जबकि पाँचवी योजना मे केवल 4226 करोड रु० व्यय की ही व्यवस्था थी। पाँचवी योजना के चार वर्षों मे 86 लाख हैक्टर सिंचाई क्षमता बढी जबकि छठी योजना मे 170 लाख हैक्टर अतिरिक्त सिचाई क्षमता बढ़ाने मे

का लक्ष्य है। उसमे छोटी सिचाई योजनाओ से 90 लाख हैक्टर तथा बडी एव मध्यम योजनाओ से 80 लाख हैक्टर सिंचाई क्षमता बढेगी। इस प्रकार वर्तमान क्षमता 484 लाख हैक्टर से बढकर 654 लाख हैक्टर हो जायेगी।

(4) ऊर्जा विकास (Energy Development)—इसके अन्तर्गत विद्युत, पैंट्रोलियम एव कोयला उत्पादन के विकास का समावेश है। ऊर्जा विकास पर छठी योजना मे 20150 करोड रु० व्यय का प्रावधान है जिसमे विद्युत विकास पर 15750 करोड रु०, पैंट्रोलियम विकास पर 2550 करोड रु० तथा कोयला विकास पर 1850 करोड रु० व्यय की व्यवस्था है। परिणामस्वरूप योजना के अन्त तक देश मे विद्युत की संस्थापित क्षमता 445 लाख किलोवाट हो जायेगी। 90 लाख पम्प सैटो व एक लाख गावो को बिजली दी जायेगी। पैंट्रोलियम का वार्षिक उत्पादन 125 लाख टन हो जाएगा। कोयले का उत्पादन 10 3 करोड टन से बढाकर 1982-83 तक 14 9 करोड टन कर दिया जायेगा।

(5) उद्योग एव खनिज विकास—छठी योजना मे उद्योग एव खनिज विकास पर 10350 करोड रु० व्यय का प्रावधान है जिसके द्वारा वृहत उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ लघु एव कुटीर उद्योगो का तेजी से विकास किया जायेगा। इस्पात उद्योग का उत्पादन 77 लाख टन से बढ़ाकर 118 लाख टन करने का लक्ष्य है। सीमेंट, उर्वरक, चीनी एव अन्य प्रमुख उद्योगो के उत्पादन लक्ष्य निम्न तालिका से स्पष्ट है।

ग्रामोद्योगो एव लघु उद्योगो के विकास पर 1410 करोड रुपये व्यय का प्रावधान है जबकि पांचवी योजना मे यह राशि केवल 387 8 करोड रु० ही थी। इस क्षेत्र मे भी उत्पादन के ऊँचे लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

छठी योजना मे औद्योगिक उत्पादन के प्रमुख लक्ष्य (1982-83)

विवरण	इकाई	1977-78	1982-83 लक्ष्य
इस्पात (Stee)	लाख टन	77 3	118
सीमेन्ट	लाख टन	192	290-300
कोयला	लाख टन	1032	1490
कपडा-मिल क्षेत्र	करोड मीटर	420	460
विकेन्द्रित क्षेत्र	,, ,,	540	760
कागज एव कागज-गत्ते	हजार टन	900	1250
एल्यूमिनियम	,, ,,	180	ſ 300
उर्वरक-नाईट्रोजन (N)	,, ,,	2060	4100
फोस्फरिक (P^2O_5)	,, ,,	660	1125

इस अवधि मे औद्योगिक विकास की दर 6 9% होगी। खनिजो के उत्पादन मे भी वृद्धि की जायेगी।

सामाजिक सेवायें (Social Services) —सामाजिक सेवाओ पर योजना काल मे 9355 करोड रु० व्यय का प्रावधान है। शिक्षा के क्षेत्र मे निरक्षता दूर करने, शिक्षा को रोजगारोन्मुख एव समाज के लिये सार्थक बनाने को प्राथमिकता दी जायेगी। व्यावसायिक शिक्षा को बढावा दिया जायेगा। उस पर 1955 करोड रु० व्यय होगे।

स्वास्थ्य एव परिवार कल्याण पर 2095 करोड रु० व्यय किये जायेंगे जिससे गरीब ग्रामीण एव शहरी जनता को चिकित्सा सुविधायें सुलभ होगी। सक्रामक रोगो की रोकथाम, उन्मूलन एव मलेरिया नियन्त्रण परे विशेष ध्यान दिया जायेगा।

रोजगर एव बेकारी निवारण —छठी योजना मे 4 9 करोड अतिरिक्त मानव वर्ष रोजगार उपलब्ध करने का लक्ष्य है ताकि दस वर्षों मे बेकारी एव अर्द्ध बेकारी का समापन हो सके।

न्यूनतम आवश्यक्ता कार्यक्रम—इस पर योजनाकाल मे 4180 करोड रु० व्यय का प्रावधान है। जिसके फलस्वरूप योजना के अन्त तक 3 2 करोड बच्चो को प्राथमिक शिक्षा तथा 6 6 करोड प्रोढो को साक्षर बनाना है। एक लाख गाँव मे शुद्ध पेय जल की व्यवस्था की जायेगी। वर्तमान ग्रामण विद्युतीकरण प्रणाली को बढाने के अतिरिक्त 1982–83 तक 40 हजार अतिरिक्त ग्रामो का विद्युतीकरण किया जायेगा। लगभग 80 लाख भूमिहीन मजदूरो को आवासीय भूखण्ड दिये जायेंगे। पोषाहार योजना के अन्तर्गत 26 लाख बच्चो तथा दोपहर का भोजन योजना के अन्तर्गत 40 लाख अतिरिक्त वच्चो को लाभ मिलने की आशा हैं।

छठी योजना की आलोचनाए (*Criticisms*)

यद्यपि छठी पचवर्षीय योजना अर्थव्यवस्था मे तीव्र प्रगति,बेकारी का निराकरण एव गरीबी उन्मूलन के लक्ष्यो से प्रेरित है फिर भी विद्वानो ने इसकी कई कारणो से आलोचना की है—

(1) बहुत महत्वाकाक्षी योजना—योजना मे निर्धारित लक्ष्य बहुत ऊचे हैं और योजना का कुल परिव्यय पाचवी योजना के मुकाबले दुगुने से भी अधिक है जिसके लिये साधन जुटा पाना भी मुश्किल होगा।

(2) बढती बेकारी का उन्मूलन कठिन लगता है—यद्यपि योजना के प्रारूप मे अगले दस वर्षों मे वेकारी तथा अर्द्ध-वेकारी का समापन करने का लक्ष्य है किन्तु मानव शक्ति नियोजन की कोई ठोस योजना के अभाव तथा रोजगार अवसरो के बढाने की अपूर्ण योजना से लक्ष्य की प्राप्ति कठिन लगती हैं।

(3) वित्तीय साधनों की कठिनाई—इतनी विशाल योजना के लिये 13000 करोड रु० के अतिरिक्त कराधान की समस्या विकट होगी। करो म चोरी की प्रवृत्ति, बढते मूल्यो पर सरकार के अपव्यय के कारण जहाँ 1978–79 के पहले वर्ष मे ही

1050 करोड रु० घाटे की वित्त व्यवस्था है वहा पूरे योजनाकाल मे घाटे की वित्त व्यवस्था निर्धारित राशि 2226 करोड रुपये से कही अधिक बढ जाने की सभावना है।

(4) आय, वेतन एवं मूल्य की समन्वित नीति का अभाव—अन्य योजनाओ की भाँति इस योजना मे भी आय, वेतन एव मूल्यो की एक समन्वित नीति का अभाव है उसमे आर्थिक विषमता का निराकरण करना कठिन होगा। मूल्यो मे वृद्धि के कारण योजना के बढते व्यय मे योजना का कार्यान्वयन कठिन हो जायेगा।

(5) आर्थिक समानता कोरी कल्पना है—इस योजना मे भी आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने, आर्थिक विषमता को कम करने तथा एकाधिकारी प्रवृत्तियो को रोकने की कोई ठोस योजना नही है यह 27 वर्षों के अनुभव से कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास को कम करने के लिये अधिक प्रभावी कार्यक्रम की आवश्यकता है।

(6) राजनैतिक मतभेदो मे उलझी जनता सरकार—द्वारा लक्ष्यो की प्राप्ति सन्दिग्ध लगती हैं क्योकि पारस्परिक मतभेदो और राजनैतिक दाव-पेचो मे कुशल प्रशासन नही रहता और सफलता कठिन हो जाती है। कुर्सी हथियाने के हथकण्डे, दल बदल आदि भी दिक्कत उत्पन्न करते हैं।

(7) योजना एव आर्थिक उद्देश्यों की अपेक्षा राजनैतिक उद्देश्यो से भी प्रेरित है—यही कारण है कि अगले दस वर्षों मे बेकारी का समापन, गरीबी का निराकरण एव सामाजिक न्याय के उद्देश्य जनता को महत्वाकाक्षी लक्ष्यो के भ्रमजाल मे डालकर जनता पार्टी की सत्ता को सुदृढ करने का प्रयास है।

निष्कर्ष—यद्यपि योजना को बहुत महत्वाकाक्षी बताया जाता है फिर भी बेकारी, भुखमरी तथा आर्थिक विषमता को कम करने की दिशा मे यह एक क्रान्तिकारी कदम है। इससे न केवल बेकारी की विकट समस्या को निबटाने का बल मिलेगा वरन् अर्थव्यवस्था सुदृढ होगी। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम से देश की 22 करोड गरीब जनता को राहत मिलेगी और उन्हें समृद्ध एव विविधितापूर्ण जीवन यापन का सुअवसर मिलेगा। क्षेत्रीय विषमतायें कम होगी और आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। इसके लिये जनता सरकार को आपसी मतभेदो से ऊपर उठकर कुशल एव स्वच्छ प्रशासन के द्वारा योजना के कार्यान्वयन मे तत्परता बरतनी पड़ेगी तभी लक्ष्यो की प्राप्ति सम्भव होगी और उद्देश्यो को मूर्त रूप दिया जा सकेगा।

———

13

परिशिष्ट (APPENDIX)

आवर्ती योजना अथवा अनवरत योजना
(ROLLING PLAN)

आवर्ती योजना की धारणा से भारतीय जनता मे उत्सुकता स्वाभाविक है । स्थिर नियोजन पद्धति के कारण योजनाबद्ध विकास के पिछले वर्षो मे भारतीय अर्थ-व्यवस्था एव उसके विकास कार्यों म अनेक विकृतिया उत्पन्न हुई हैं । भ्रमपूर्ण मान्यताओ एव उनके अनिश्चितताओ पर आधारित पचवर्षीय योजनाओ मे बदलती परिस्थितियो के अनुरूप योजनाओ म परिवर्तन की उपेक्षा लक्ष्यो और वास्तविक उपलब्धियो मे भारी अन्तराल के कारण जन साधारण की आशाओ और आकाक्षाओ पर पानी फिर गया । अत आर्थिक नियोजन को अधिक व्यवहारिक, लोचशील एव गत्यात्मक (Dynamuc) बनाने के लिये जनता सरकार द्वारा पुनगठित योजना आयोग ने 10 सितम्बर 1977 को अपनी बैठक मे भारतीय आयोजन प्रणाली मे एक मौलिक परिवर्तन का फैसला कर यह घोषणा की 1 अप्रैल 1978 से छठी अनवरत योजना लागू होगी । इस निर्णय से पाँचवी योजना की अवधि चार वर्ष मे ही 31 मार्च 1978 को समाप्त हो गई और पाचवी योजना को अन्तिम वर्ष आवर्ती योजना (Rolling Plan) का पहला वर्ष हो गया ।

(आवर्ती या अनवरत योजना की धारणा)
(Concept of Rolling Plan)

आवर्ती योजना अथवा अनवरत योजना का अभिप्राय आर्थिक नियोजन की उस तकनीक एव विधि से है जिसके अन्तगत विकास लक्ष्यो की समीक्षा वर्ष प्रतिवर्ष की उपलब्धियो और विकास क उपलब्ध साधनो के परिप्रेक्ष्य मे की जाती है । वर्षानुरुप परिस्थितियो म हुए परिवर्तनो को दृष्टिगत रखते हुए योजना की प्राथमिकताओं, साधन आवटन तथा लक्ष्यो मे परिवर्तन एव परिवर्द्धन किया जाना है जिससे नियोजन प्रक्रिया मे निरन्तरता के साथ-साथ व्यावहारिकता, लोचशीलता एव गत्यात्मकता लाई जा सके ।

आवर्ती योजना मे आयोजन की निरन्तरता बनाये रखने के लिये नियोजन प्रक्षेप (Planning project on) का सामवेश होता है। इसके लिये योजना के प्रत्येक वर्ष की समाप्ति पर पाच वर्षो की अवधि के बाद, प्रत्येक वर्ष के लिये वर्तमान प्रगति के आधार पर योजना की एक रूपरेखा तैयारकर ली जाती है। इस प्रकार एव अनवरत योजना (Rolling Plan) के समाप्त होते-२ योजना निर्माताओ के पास एक प्रक्षिप्त योजना (Projected Plan) तैयार हो जाता है। जिससे नियोजन की प्रक्रिया मे निरन्तरता बनी रहती है और क्रम भग नही होता।

भारत मे आवर्ती योजना का पहला वर्ष 1978-79 है। छठी योजना अनवरत योजना के रूप मे 1978-83 की अवधि के लिये दीर्घकालीन दृष्टिकोण वाली पचवर्षीय योजना ही है 1978-79 की समाप्ति पर 1979–80 की वार्षिक योजना के साथ-साथ 1979-84 की पाच वर्ष की अवधि के लक्ष्य 1978-79 की समीक्षा एव परिवर्तित परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे निर्धारित किये जायेगे, इस प्रकार वह प्रतिवर्ष आगे की अवधि की वार्षिक एव पाँच वर्षो की योजना क्रमश 1981-85, 1982-86 1983-87 का भी प्रोजेक्शन कर लिया जायेगा। इस प्रकार छटी योजना की समाप्ति से पूर्व ही आगे 5 वर्षों के नियोजन प्रक्षेप तैयार हो जायेगे।

प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने राज्यो के मुख्यमन्त्रियो के नाम अपने प्रसारण मे स्पष्ट कर दिया कि अनवरत योजना दीर्घकालीन दृष्टिकोण वाली पचवर्षीय योजना ही है। अत अब पाच वर्षो की अनवरत योजना तैयार की जाती रहेगी जिसकी एक वर्ष की अवधि पूरी होने पर उसके अन्तिम वर्ष मे आगे का एक वर्ष और जुड जायेगा। परिणामस्वरूप वर्षानुवर्ष उसकी अवधि बढ़ती चली जायेगी और हर वर्ष उसकी अवधि पाच वर्ष ही बनी रहेगी।

आवर्ती योजना की धारणा मे चार आधारभूत तत्व है—(1) भूतकालीन उपलब्धियो का भावी नियोजन प्रयत्नो से एकीकरण, (2) कार्यों मे समन्वय एव दायित्व निर्धारण. (3) रोजगार अवसरो द्वारा प्रोत्साहन तथा (4) आर्थिक भविष्य तथा प्रगति मूल्याकन के लिये कुशल सूचना व्यवस्था। इनके अभाव मे आवर्ती योजना की धारणा निरर्थक सिद्ध होगी। आवर्ती योजना की धारणा बिल्कुल नयी नही है। इस धारणा का प्रतिपादन सर्वप्रथम प्रो० रेगनर फ्रिश्च ने किया जिसको बाद मे प्रो० गुनार मिर्डल ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "एशियन ड्रामा" म लोकप्रिय बनाया। भारत मे भी 1962 मे चीनी आक्रमण के बाद प्रतिरक्षा की पाच वर्षों की आवर्ती योजना (Five years Rolling Plan for Defence) लागू की गई थी। इसके बाद केन्द्र ने इस्पात उद्योग के विकास के लिये भी पाच वर्षो की रोलिंग प्लान लागू करने की घोषणा की थी। रक्षा योजना मे यह काफी उपयोगी रही।

यह उल्लेखनीय है कि आवर्ती योजना पद्धति कई देशो मे अपनाई गई है। जिसमे पौलेण्ड, रूमानिय, बलगेरिया, चीन, जापान तथा फिलीपाईन्स प्रमुख हैं। भारत मे भी वित्त वर्ष 1978-79 से यह तकनीक पूर्णत. अपनायी गयी है।

अनवरत योजना की स्थिर योजना की तुलना मे श्रेष्ठता
अथवा
स्थिर योजना एवं अनवरत (आवर्ती) योजना मे अन्तर

इन दो नियोजन पद्धतियो मे काफी अन्तर है जिनमे निम्न उल्लेखनीय हैं—

(1) तकनीकी अन्तर—*स्थिर योजना का प्रारूप तैयार करते समय विकास के* लक्ष्य पाच वर्षों की निश्चित अवधि के लिये एक वारगी तय कर लिये जाते है और योजना के दौरान प्राप्त होने वाली उपलब्धियों का जायजा पाच साल की अवधि खत्म होने पर ही लिया जाता है।

जबकि आवर्ती योजना के लक्ष्य एक बार निर्धारित हो जाने के बाद के वर्ष प्रतिवर्ष की वास्तविक उपलब्धियो और विकास के उपलब्ध ससाधनो के परिप्रेय मे प्रतिवर्ष परिवर्तनीय एव परिवर्द्धनीय है। इससे लक्ष्यो एव उपलब्धियों के विकास अन्तर की समीक्षा कर अगले वर्ष की नियोजन सम्बन्धी गणनाओ म महत्वपूर्ण स्थान देता है।

(2) प्रकृति—स्थिर नियोजन की कठोर प्रकृति है। परिस्थितियो मे परिवर्तन होने तथा विकास अतर की उपेक्षा की जाती है अत लक्ष्यो, प्राथमिकताओ आदि मे कठोरता का रुप अपनाया जाता है।

अनवरत योजना लोचपूर्ण होती है लक्ष्यो एव प्राथमिकताओ मे समयानुकूल एव परिस्थितियो के अनुकूल ससोधन की लोचता रहती है।

(3) निरन्तरता—स्थिर नियोजन मे नियोजन प्रक्रिया की निरन्तरता का अभाव होना है जबकि अनवरत योजना मे आगे से आगे नियोजन प्रक्षेप (Planning projections) *की महत्वर्ण भूमिका होती है।*

(4) सजगता—स्थिर योजना मे विकास की रणनीति पाच वर्षों के लिये स्थिर मान ली जाती है अत प्रायमिकताओ, लक्ष्यो की वास्तविक उपलब्धियो व अर्थव्यवस्था के अन्तंप्रवाहो के प्रति सजगता का अभाव रहता है जबकि अन्वरत योजना मे वर्षानुवर्ष प्राथमिताओ, लक्ष्यो के मुकाबले उपलब्धियो तथा अर्थव्यस्वथा के अन्तर प्रवाहो के प्रति जागरूकता रहती है।

(5) व्यवहारिकता—स्थिर योजना मे सामान्यत लक्ष्यो और उपलब्धियो मे काफी अन्तर हो जाता है अत नियोजन अव्यावहारिक लगता है जबकि अनवरत योजना अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक एव वास्तविकता के निकट होती है।

(6) रणनीति—स्थिर योजना में पाच वर्षों के विकास की एक विशिष्ट रणनीति (Strategy) होती है जबकि अनवरत योजना की रणनीति आर्थिक परिस्थितियो एव उद्देश्यो के अनुरूप ढाली जाती है अर्थात् अनवरत योजना की रणनीति देश की आर्थिक आवश्यकताओ के अनुरूप आर्थिक विकास के बदलते दृष्टिकोणो (Rolling perspectives of Development) को भी स्वीकार करती है।

अनवरत योजना (Rolling Plan) के लाभ/गुण

अनवरत योजना की तकनीक के अनेक गुण एवं लाभ हैं जिनमे निम्न उल्लेखनीय हैं—

(1) परिवर्तनशीलता एव लोचता—इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ यह है कि हर वर्ष योजना पर तात्कालिक आर्थिक परिस्थितियो के सन्दर्भ मे लक्ष्यो एव वास्तविक उपलब्धियो की समीक्षा करने से विकास अन्तर (Development Gap) को पाटने के लिये योजना मे आवश्यकतानुसार परिवतन एव सशोधन किया जा सकता है। लक्ष्यो एव वित्तीय सशोधनो मे लोचशीलता बनी रहती है।

(2) निरन्तर प्रगति समीक्षा—अनवरत योजना मे योजना के कार्यान्वियन की प्रगति के बारे मे आकडे लगातार एकत्रित किये जाते है अत हर वर्ष योजना के लक्ष्यो एव उपलब्धियो का मूयाल्कन होता है।

(3) गत्यात्मक दृष्टिकोण—अनवरत योजना म गत्यात्मक दृष्टिकोण पाया जाता है क्योकि योजना मे समयानुकूल एव परिस्थितियानुकूल तालमेल बैठाने की तत्परता रहती है।

(4) मूल उद्देश्यो के प्रति जागरूकता बनी रहती है—क्योकि उन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये ही तो सतत योजना कायशील रहती है। योजना को कार्यान्वित करने वाले उद्देश्यो से भटक नही सकते है।

(5) नियोजन की निरन्तरता—अनवरत योजना का यह भी लाभ है कि इसमे हर वर्ष से अन्त म अगले पाच वर्षो के योजना का लक्ष्य आदि तैयार किय जाते हैं अत नियोजन प्रक्षेपो (Planning Projections) के कारण योजना की निरन्तरता की प्रक्रिया अविरल गति से चलती रहती है। उसमे कही योजना छुट्टी (Plan Holiday) की समस्या नही आती जैसी भारत मे 1966–69 की अवधि मे आई।

(6) व्यावहारिक नियोजन—अनवरत योजना मे योजनायें वास्तविकता के निकट और व्यावहारिक बनी रहती है क्योकि लक्ष्यो और उपलब्धियो का सामन्जस्य रहता है। निरन्तर योजना की समीक्षा होती रहने से अनिश्चितता एव अव्यवहारिकता को समाप्त कर दिया जाता है।

(7) भावी नियोजन मे सुविधा तथा आर्थिक भविष्यवाणियों मे सत्यता—अनवरत योजना मे अर्थव्यवस्था मे योजना का निरन्तर मूल्यांकन होता रहता है। अत विश्वसनीय आकडे भावी नियोजन तथा भविष्यवाणियो को सरल बना देते हैं।

अनवरत योजना की आलोचनायें
(Criticisms of Rolling Plan)

यद्यपि अनवरत योजना तकनीक नियोजन की बहुत ही उपयुक्त, व्यावहारिक गत्यात्मक एव लोचपूर्ण विधि है फिर भी इस धारणा का भारत मे कुछ विद्वानो ने विरोध किया है। प्रमुख आलोचनायें इस प्रकार हैं:—

(1) योजनाबद्ध विकास की समाप्ति का प्रयास.—श्रीमति गांधी ने राजनैतिक लाभ की दृष्टि से जनता पार्टी पर यह आरोप लगाया कि आवर्ती योजना द्वारा योजनाबद्ध विकास को समाप्त किया जा रहा है। उसके अनुसार रोलिंग प्लान से प्लानिंग को रोल-अप किया जा रहा है।

(2) योजना की विफलता को छिपाने का चतुराईपूर्ण प्रयत्न.—कुछ विद्वान यह आरोप लगाते हैं कि आवर्ती योजना सरकार का एक ऐसा चतुराई पूर्ण प्रयत्न है जिससे योजना आयोग पर योजना की असफलताओ का दोषारोपण नही किया जा सकेगा क्योकि जो लक्ष्य प्राप्त नही होगे उन्हे पहले ही समायोजित कर लिया जायेगा।

(3) जनता की सहमति नहीं ली गई:—कुछ विद्वान कहते हैं कि भारत मे प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning) की व्यवस्था है जिसमे जनता की सहमति के बिना योजना प्रणाली मे परिवर्तन अनुचित है। इसी प्रकार राज्यो की भी सहमति न लेकर उनसे विश्वास प्राप्त करने का प्रयास नही किया गया, यह अनुचित है।

(4) पंचवर्षीय योजना की प्रणाली अधिक वैज्ञानिक थी:—क्योकि उसमे सफलता-विफलता का स्पष्ट संकेत होता है किन्तु अनवरत योजना मे असफलता को छिपा कर समायोजित करने से भावी योजनाओ की सफलता की तुलना पिछली पचवर्षीय योजनाओ से सम्भव नही हो सकेगी।

(5) नेहरू जी के समाजवादी आर्थिक दर्शन की समाप्ति:—अनवरत योजना नेहरू जी द्वारा कार्यान्वित योजना पद्धति का समापन उनके आर्थिक दर्शन की समाप्ति का संकेत है।

निष्कर्ष:—योजना आयोग के अनुसार आवर्ती योजना न तो किसी को गुमराह करने का प्रयास है और न नियोजन की समाप्ति ही वरन् आवर्ती योजना प्रणाली का उद्देश्य नियोजन को अधिक कुशल, लोचपूर्ण गत्यात्मक एव व्यवहारिक बनाने का क्रान्तिकारी कदम है जिसमे नियोजन प्रक्रिया की निरन्तरता और स्वचालिता के तत्व विद्यमान हैं। योजना की प्रतिवर्ष प्रगति समीक्षा, उद्देश्यो की पूर्ति हेतु समयानुसार परिवर्तन, तथा लक्ष्यो एव उपलब्धियो मे व्यावहारिकता लाने के लिये यह प्रणाली बड़ी वैज्ञानिक है। योजना आयोग के प्रमुख सदस्य प्रो० राजकृष्ण ने बार-बार दोहराया है कि आवर्ती योजना मे पचवर्षीय परिकल्पना को पूर्णत छोड़ा नहीं गया है और न विकास के लक्ष्यो के अनुरूप तरीकों एव कार्य-प्रणाली मे कोई आमूल-चूल या आधारभूत परिवर्तन है। आवर्ती योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के मूल्यांकन सम्बन्धी

व्यवस्था कितनी कुशल एव विश्वसनीय आकडे उपलब्ध करना है तथा सरकार उन्हे कितनी तत्परता से मूर्तरूप देती है।

II अन्त्योदय (Antyodaya) योजना

भारत मे योजनाबद्ध विकास के पिछले 3 दशको मे देश तेजी से आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है किन्तु विकास का अधिकाश लाभ समाज के अपेक्षाकृत समृद्ध वर्ग तक ही सीमित हो जाने से देश का एक बडा तबका गरीबी का असह्य जीवन जीने को विवश हो रहा है। अत अन्त्योदय योजना ऐसे गरीबो के आर्थिक उत्थान की योजना है जो विकास के क्रम मे सबसे अन्त मे खडे है। राजस्थान में अन्त्योदय योजना गरीवो के उत्थान की सरकारी पहल है जिसका उद्देश्य राज्य को प्रत्येक गाँव के पाँच सर्वाधिक गरीब परिवारो का आर्थिक दृष्टि से विकास करना है।

राजस्थान की अन्त्योदय योजना मे पहले वर्ष मे 33000 गाँवो के लगभग 1 6 लाख ऐसे गरीब परिवारो के आर्थिक उत्थान की व्यवस्था की गई है जो विकास क्रम की पक्ति मे सबसे अन्त मे खडे है। प्रथम 1 6 लाख परिवारो के आर्थिक उत्थान के अनुभव के आधार पर अगले वर्ष फिर इसी प्रकार अन्य गरीब परिवारो को विकास हेतु लिया जायेगा और यह क्रम भविष्य मे भी चलता रहेगा।

अन्त्योदय योजना के परिवारों के चयन की विधि —

अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत सहायता देने के लिये गरीब परिवारो के चयन मे निम्न प्राथमिकतायें निर्धारित की गई हैं।

(1) साधनहीन परिवार, अशक्तता, अपगता अथवा वृद्धावस्था के जीवन यापन की असमर्थता वाले परिवार अथवा 15 से 59 वर्ष की आयु श्रेणी मे कोई कमाने वाले व्यक्ति का न होना।

(2) साधन हीन किन्तु पाँच व्यक्तियों के ऐसे परिवार मे वार्षिक आय 1200 रु० से कम हो। साधारण तथा भूमिहीन मजदूर एव दस्तकार ऐसी श्रेणी मे आते हैं।

(3) द्वितीय श्रेणी मे 1200 से 1800 रु की वार्षिक आय वाले परिवार।

(4) वे परिवार जिनके पास भूमि व सम्पत्ति तो हो किन्तु वे गरीबी रेखा (प्रति व्यक्ति 55 रु० मासिक आय) से भी नीचे की स्थिति मे हो।

कार्य-क्रम का क्रियान्वयन

राज्य के 33000 गाँवो के 1·6 लाख परिवारो की अलग-अलग आर्थिक एव सामाजिक पृष्ठ भूमि के कारण एक सी कार्यवाहों से उनका उत्थान सम्भव नही हो सकता अत गरीब परिवारो को अनेक कार्यक्रमो के तहत सहायता दी जावेगी राज्य के सभी विकास कार्यक्रम अन्त्योदय योजना का अग माने जायेंगे और इन कार्यक्रमो के तहत पहला काम अन्त्योदय परिवारो की मदद करना होगा। अन्त्योदय परिवारों को निम्न प्रकार से आर्थिक सहायता प्रदान की जायेगी।

(1) भूमि आवंटन—गाँवो मे उपलब्ध भूमि अन्त्योदय परिवारो को ही दी जायेगी। रेगिस्तानी इलाकों में जहाँ कहीं भूमि आवटन पर पाबन्दी है वहा भी

अन्त्योदय परिवारो को अपवाद स्वरूप भूमि आवटिन की जायेगी। इस वर्ष 40 हजार अन्त्योदय परिवारो को भूमि आवटन का लक्ष्य है।

(2) कृषि उपकरण एवं बैल —भूमि आवटन के साथ-साथ अन्त्योदय परिवारो को खेती करने के लिये बैल व कृषि उपकरण खरीदने के लिये सहायता दी जायेगी। लघु कृषक योजना और सूखा सम्भाविन क्षेत्र का कार्यक्रम के तहत उनके खर्च की राशि का 33% अनुदान भी दिया जायेगा।

(3) पशु ऋण:—डेयरी निगम वाले क्षेत्रो मे अन्त्योदय परिवारो को पशु खरीदने के ऋण दिये जायेंगे जिस पर 33% अनुदान की भी व्यवस्था है, दूध विपणन राज्य विपणन सघ द्वारा होगा।

(4) भेड व बकरी का रेवड —राज्य के जिन 10 जिलो मे विशेष पशु पालन कार्यक्रम चल रहा है उनके अन्त्योदय परिवारो को 30 भेडो व एक मेंढे की रेवड दिया जा सकेगा और इनके विपणन की व्यवस्था भी राज्य सहकारी भेड एव ऊन सघ से जोड दिया जायेगा।

(5) बकरो की इकाई, कुकुट पालन एव शूकर विकास सहायता —अन्त्योदय परिवारो को उनकी आवश्यकतानुसार 10 बकरो की इकाई, शहरो के पास वाले गावो के अन्त्योदय परिवारो को कुकुट पालन के लिये आर्थिक सहायता तथा भरतपुर एव अलवर जिलो मे शुकर विकास कार्यक्रम के तहत सहायता दी जायेगी।

(6) रोजगार एवं गृह-उद्योग विकास:—अन्त्योदय परिवारो को बडी सख्या मे छोटी साथ करघा इकाइया स्थापित करवाने चरखे एव करघे वितरित करन सेल चालित तेल धानिया लगवाने, चमडा कमाने व खाती गिरी के व्यवसाय व चूने के भट्टे लगवाकर सहायता की जायगी। इसके खादी ग्रामोद्योग निगम की सक्रिय सहायता रहेगी। 15 किलोमीटर की परिधि वाले बडे उद्योगो मे अन्त्योदय परिवारो को रोजगार की प्राथमिकता दी जायेगी।

(7) राजस्थान नहर परियोजना क्षेत्र में·—अन्त्योदय परिवारो को कृषि योग्य भूमि आवटित करने तथा हर प्रकार की सहायता दी जायेगी। रोजगार मे भी प्रमुखता रहेगी।

(8) वृद्ध, असहाय एव अपगो को पेन्शन —विना सम्पत्ति एव बिना कमाने वालो के अभाव ग्रसित आश्रितो को 40 रु० महावार पेन्शन दी जायेगी।

(9) खनिज एव सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे रोजगार व व्यवसाय की प्राथमिकता —अन्त्योदय परिवारो को खनिज क्षेत्रो मे उचित रोजगार व खनन पट्टो मे प्राथमिकता दी जायेगी. इसी प्रकार सार्वजनिक निर्माण विभाग मे रोजगार प्राथमिकता व चाहने पर काम उपलब्ध किया जायेगा।

अन्त्योदय योजना की प्रगति की समीक्षा
(अप्रैल 1977 से जून 1979)

2 अक्टूबर 1977 से प्रारम्भ इस योजना के अगले पांच वर्षो मे लगभग 6 लाख निर्धन परिवारो का चयन किया जायेगा और इनम से 2 9 लाख परिवारो को 105 करोड रु० के ऋण उपलब्ध किये जायेंगे और शेष 41 हजार परिवारो को वृद्धावस्था पेन्शन, 44 हजार परिवारो को भूमि आवटन, 85 हजार परिवारो को खादी एव ग्रामोद्योग तथा 36 हजार परिवारो को ग्रमीण एव कुटीर उद्योगों के तहत

(Source पेम्फलिट राजस्थान मे जनता सरकार के दो वर्ष जून 1979)

लाभान्वित करने का लक्ष्य है इसके लिये सरकार को 5 वर्षों मे 50 करोड रु० व्यय की आवश्यकता होगी।

आज अन्त्योदय का नाम राजस्थान के साथ अभिन्न रूप से जुडा हुआ है। राजस्थान के पद-चिन्हो का अनुसरण करते हुए उत्तर प्रदेश, हिमालय प्रदेश, उडीसा तथा बिहार राज्यो ने भी अपने यहाँ इस कार्यक्रम को प्रारम्भ किया है इसके अन्तर्गत सारी सरकारी गति विधिया दरिद्र नारायण के सेवार्थ केन्द्रित की गई है अब तक विभिन्न रूपो मे दी गई सुविधाये निम्न है।

अन्त्योदय योजना से लाभान्वित परिवार

विवरण	प्रथम चरण मे चयनित परिवार (हजार मे)	द्वितीय चरण मे चयनित परिवार (हजार म)	कुल सख्या (हजार मे)
भू-आवटन	43 8	13 5	57 3
ऋण-स्वीकृति	57 8	32 0	89 8
रोजगार प्रदान	6 8	3 2	10 0
वृद्धावस्था पेन्शन	24 1	20 4	44 5
आय लाभ	5 9	1 1	7 0
कुल योग	138 6	70 2	208 8
प्रतिशत उपलब्धि	89 6	62·3	78 1

अब तक 17 4 करोड रु० की राशि अन्त्योदय परिवारो को ऋण के रूप मे स्वीकृत की जा चुकी है। कर्ज से राहत देने के लिये 500 रु० तक के सरकारी ऋणो को अपलिखित किया जा रहा है तथा 500 से 1000 तक के सरकारी ऋणो वालो का ब्याज अपलिखित किया जा रहा है।

स्पष्ट है कि अब तक 57 3 हजार परिवारो को कृषि भूमि आवटित की गई है और लगभग 89 4 हजार व्यक्तियो को अपना रोजगार प्रारम्भ करन व अपने पेरो पर खडा होने के लिये 17 4 करोड रु० के ऋण दिये जा चुके हैं। सर्वाधिक उपलब्धियाँ उदयपुर, जोधपुर बीकानेर एव बासवाडा जिलो म रहा है। 44 5 हजार परिवारो का वृद्धावस्था पन्शन देने स सामाजिक सुरक्षा का माग प्रशस्त हुआ है। कुल मिलाकर राज्य के 209 परिवारो को निधनता से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत चुने गये परिवारो म 95% अल्प सख्यक तथा पिछडी जाति के हो।

यद्यपि अन्त्योदय परिवारो के चयन मे विषम्य एव पक्षपात के आरोप लाये गये है फिर भी अन्तत पर पावन कार्य-क्रम दरिद्र नारायण क आर्थिक उत्थान एव सामाजिक सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त करेगा। योजना आयोग ने भी इस कार्यक्रम की प्रशसा की है तथा 2 करोड रु० योजना व्यय मे स्वीकार किय हैं रिजर्व बैंक भी विशेष सुविधाएँ देने की पहल कर रहा है।

मुद्रक—प्रोवर प्रेस खैर नगर बाजार मेरठ फोन नं. 72035

भाग 2
(Part-Two)
स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में आर्थिक विकास
(ECONOMIC DEVELOPMENT IN INDIA SINCE INDEPENDENCE)

1

स्वतन्त्रता प्राप्ति की पूर्व संध्या को भारतीय अर्थव्यवस्था की दशा

(The State of Indian Economy on the Eve of Independence)

भारतीय अर्थव्यवस्था जो अग्रेजी शासन से पूर्व धन धान्य पूर्ण, सम्पन्न तथा विश्व के अन्य देशो के मुकाबले काफी उन्नत थी अग्रजी शासन के शोषण व दोषपूर्ण नीतियो से 1947 की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक लगभग निष्क्रिय हो गई थी। घी-दूध की नदियाँ बहने वाले तथा सोने की चिड़िया कहलाने वाले देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति की पूर्व सध्या को गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, विषमता तथा शोषण का साम्राज्य व्याप्त था। डॉ० बी० बी० सिह के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी मे भारत ससार का "अधिकतम धनी देश एशिया की कृषि जननी व सभ्यता का औद्योगिक निर्माण गृह था।" वही भारत अग्रेजो की घातक एव दोषपूर्ण आर्थिक नीतियो स स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक पूर्णत मृतप्राय बन गया था। लघु उद्योगो का पूर्णत पतन हो गया था। कृषि मे विकास की वार्षिक दर 0 5% तथा उद्योगो मे केवल 2 5% रह गई थी। दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था ने जागीरदारी व जमीदारी प्रथा को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। भोली भाली जनता निर्धनता, बेकारी व शोषण से त्रस्त थी। आर्थिक विषमता, अन्धविश्वास व अशिक्षा का बोलबाला था। गुलामी की जजीरो से जकडे भारतीयो मे धीरे धीरे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये विरोध की ज्वाला इतनी भभक चुकी थी कि अन्तत अग्रेजो को बाध्य होकर 15 अगस्त 1947 को भारतीय जनता को स्वतन्त्रता प्रदान करनी ही पडी। फिर भी जाते-जाते "फूट डालो व राज्य करो" की कूटनीति के अन्तिम दाव मे देश को भारत एव पाकिस्तान मे विभाजित कर ही गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति की पूर्व सध्या को भारतीय अर्थ-व्यवस्था की हीन दशा की झलक निम्न तथ्यो से मिलती है—

1 *राष्ट्रीय आय*—मोटे रूप मे किसी अर्थव्यवस्था का अन्दाज राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय से लगाया जा सकता है। इस सन्दर्भ मे देखने पर 1947 मे भारत की राष्ट्रीय आय 8650 करोड रु थी तथा प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 248 रु थी जो कि विश्व के विकसित देशों की तुलना मे नगण्य थी। यही नहीं राष्ट्रीय आय का ठ0% से भी अधिक भाग कृषि से प्राप्त होता था। औद्योगिक उत्पादन का राष्ट्रीय आय मे केवल 10% से 12% भाग था। राष्ट्रीय आय में

वार्षिक वृद्धि की दर 1 से 1 5% थी। राष्ट्रीय आय के वितरण मे घोर असमानता व्याप्त थी।

2 बचत एव विनियोग—राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय का नीचा स्तर होने से बचत, उपभोग व विनियोग का स्तर भी बहुत नीचा था। बचतें राष्ट्रीय आय के लगभग 4 से 5% थी तथा विनियोग की वार्षिक दर 6 से 7% थी जब कि अब बचत व विनियोग की दर क्रमश 22% तथा 23 5% है।

3 कृषि की दयनीय दशा व दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था—स्वतन्त्रता प्राप्ति की पूर्व सध्या को कृषि की शोचनीय दशा थी। कृषि मे वार्षिक विकास की औसत दर 0 5% थी। कुल क्षेत्रफल 55 8 करोड एकड मे से केवल 24 करोड एकड (अर्थात् कुल भूमि के 43%) मे खेती की जाती थी। उसमे से केवल 4 7 करोड एकड मे सिंचाई होती थी अर्थात् कृषि योग्य भूमि के केवल 20% भाग मे सिंचाई व्यवस्था थी और शेष 80% भाग मानसून पर निर्भर था। अग्रेजो ने भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश उद्योगो के कच्चे माल उत्पादक उपनिवेश बना दिया था। खाद्यान्न का उत्पादन 4 4 करोड टन, चाय का उत्पादन 55 7 करोड पौण्ड तथा मूंगफली का उत्पादन 31 लाख टन था। खाद्यान्न का नितान्त अभाव था और विदेशी आयात पर निर्भरता बढती जा रही थी। जहाँ देश मे रुई तथा पटसन की वार्षिक माग क्रमश 42 लाख व 70 लाख गाठे थी वहा उत्पादन क्रमशः 26 लाख गाठें तथा 17 लाख गाठें ही थी। विभाजन के कारण पटसन उद्योग भारत मे तथा पटसन उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान मे चले जाने से उद्योग को सकट का सामना करना पड रहा था।

अंग्रेजों की दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था से भारतीय कृषि मे जमीदारी व जागीरदारी प्रथा के कारण कृषको का शोषण हो रहा था। भूमिहीनो की दशा तो और भी शोचनीय हो गई थी। जागीरदारो के जुल्मो व उनके विलासिता पूर्ण जीवन से कृषि की दशा दयनीय थी। भूमि पर उत्पत्ति का स्तर बहुत नीचा था।

4 औद्योगिक पिछडापन—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय 1947 मे देश औद्योगिक दृष्टि से भी काफी पिछडा था। आधारभूत और मूलभूत उद्योगो का तो नितान्त अभाव था ही पर उपभोग उद्योग भी अपनी पिछडी अवस्था मे थे। आधुनिक उद्योगो का जो कुछ विकास 1930 के बाद हुआ था वह देश की विशालता व आवश्यकता को देखते हुए नगण्य था। औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 1 से 1·5% ही थी और उद्योगो से राष्ट्रीय आय का लगभग 10–12% भाग प्राप्त होता था। लघु एव कुटीर उद्योगो का प्राय पतन हो चुका था। बडे पैमाने के उद्योगो मे नियोजित श्रमिको की सख्या लगभग 27 लाख थी। शक्कर तथा सीमेन्ट के अभाव के कारण उनके वितरण मे राशन व्यवस्था लागू थी। कतिपय प्रमुख उद्योगो का उत्पादन इस प्रकार था—

1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय प्रमुख उद्योगो का उत्पादन

तैयार इस्पात	9 97 लाख टन	सूती वस्त्र	391 करोड गज
सीमेन्ट	15 00 ,, ,,	सूती धागा	136 7 करोड पौण्ड
शक्कर	9 000 ,, ,,	पटसन का माल	9 6 लाख टन

खनिजो का उत्पादन भी बहुत कम था और जो खनिज निकाले जाते थे उनमे भी अभ्रक तथा मैंगनीज का क्रमश 98% तथा 90% भाग निर्यात कर दिया जाता था। कच्चा लोहा भी निर्यात किया जाता था। विद्युत शक्ति क्षमता 13 96 लाख किलोवाट थी जिसम 2/3 भाग कोयले तथा खनिज तेल स प्राप्त होती थी जबकि जल-विद्युत क्षमता 4 लाख किलोवाट थी।

5 **परिवहन एव सचार**—अर्थव्यवस्था के पिछडेपन के कारण देश की परिवहन एव सचार व्यवस्था भी अविकसित एव अपर्याप्त थी। 1947 म रेलो की कुल लम्बाई 34159 मील थी जिनम 15639 मील ब्राडगेज 14957 मील मीटर गेज तथा 3563 मील नेरो गेज रेल लाइनें थी और उनमे सरकार की 667 करोड की पूंजी लगी हुई थी। सडको की दशा भी दयनीय थी। देश मे 1947 म सडको की कुल लम्बाई 2 39 लाख मील थी जिसमे 86 हजार मील सडकें पक्की व 1·53 लाख मील लम्बी कच्ची सडके थीं। जहाँ इगलैड व अमेरिका म प्रति 100 वर्ग मील मे सडको की लम्बाई क्रमश 200 व 100 मील थी वहा भारत मे यह लम्बाई 19 मील ही थी।

जहाजरानी की कुल क्षमता 3 लाख जी आर टी थी। जहाज बनाने का एक कारखाना विशाखापट्नम मे था जिसमे 1946 तक केवल 3 जलयान बनाए गये थे। अधिकाश माल विदेशी जहाजो से लाया जाता था। वायु परिवहन भी नाम मात्र था। 10 वायु परिवहन कम्पनियां थी जिनके पास लगभग 170 छोटे-मोटे वायुयान थे। 1947 मे भारत मे 2 55 लाख यात्रियो को 93 6 लाख मील लम्बी वायु-सेवा उपलब्ध की गई थी।

सचार व्यवस्था भी अत्यन्त पिछडी थी।

6 **मुद्रा एव बैंकिंग**—1947 मे देश मे केवल 558 बैंक थे। उनके कार्यालय की कुल शाखाये 5532 तथा उनकी कुल जमा 1012 करोड रुपये थी। बैंकिंग विकास तथा नियन्त्रण के लिये कोई विशेष विधान नही था। भारतीय कपनी अधिनियम की बैंकिंग सम्बन्धी कुछ धाराए बैंकिंग प्रणाली के सुनिश्चित विकास व नियन्त्रण मे अपर्याप्त थी। बैंको के फेल होने की प्रवृत्ति से जनता मे उनके प्रति विश्वास उठ गया था।

मुद्रा निर्गमन रिजर्व बैंक के हाथ मे था और आनुपातिक कोष प्रणाली के

अन्तर्गत 40% कोष (उसमे 40 करोड रुपये का सोना) रखकर नोट प्रचलित किये जाते थे। उपयुक्त मौद्रिक नीति का अभाव था। 1947 की 31 मार्च को रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित नोटो का मूल्य 1242 करोड रुपये था। द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल मे मुद्रा-स्फीति का दुष्प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा था।

7 **विदेशी व्यापार**—भारत का विदेशी व्यापार 1947 मे कुल विश्व व्यापार का लगभग 4% था। कुल विदेशी व्यापार 856 करोड रु था उसमे 446 करोड रु. के आयात तथा 408 करोड रु का निर्यात होने से विदेशी व्यापार का घाटा 38 करोड रु था जबकि 1946 मे विदेशी व्यापार का घाटा केवल 11 करोड रु ही था। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व भारत का व्यापार शेष प्राय हमेशा पक्ष म ही था। निर्यातो मे औद्योगिक कच्चा माल, चाय, तिलहन, अभ्रक, मैंगनीज, मसाले व तम्बाकू की प्रधानता थी। परम्परागत वस्तुओ का निर्यात मे लगभग 75% भाग था जबकि आयातो म निर्मित माल, मशीनें, रसायन, बिजली व परिवहन के भारी सामान की प्रधानता तथा खाद्यान्नो का कुछ भाग होता था। भारत के विदेशी व्यापार मे ब्रिटेन का मुख्य स्थान था। उसके बाद अमेरिका व पश्चिमी राष्ट्रों का स्थान था। रूस के साथ विदेशी व्यापार नगण्य था।

8 **लोक वित्त**—भारत सरकार को 1946–47 मे करो से कुल आय लगभग 391 करोड रु थी जबकि कुल व्यय 444 करोड रु था। इस प्रकार राजस्व खाते मे लगभग 45 करोड रु का घाटा था जबकि पूंजी खाते मे लगभग 62 करोड रु का घाटा था। सरकार को कुल कर राजस्व का 22% सीमा शुल्क से, 11% केन्द्रीय आबकारी से, 23% भाग आय कर तथा 19% निगम कर से प्राप्त होता था। अ-कर राजस्व नगण्य था। इसी प्रकार राजस्व का 62 4% भाग प्रतिरक्षा तथा 8 9% भाग नागरिक प्रशासन पर खर्च होता था जबकि विकास व्यय नाम-मात्र का था। ब्रिटिश शासको ने अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिये सैनिक शक्ति पुलिस आदि पर ही ध्यान देकर भारतीय क्रान्तिकारियो को दबाने की असफल चेष्टा की।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक भारतीय अर्थ व्यवस्था प्राय निष्क्रिय, गतिहीन व मृतप्राय हो गई थी। शोषण, निर्धनता, आर्थिक असमानता, अशिक्षा, अन्धविश्वास व व्यापक अभावो का साम्राज्य था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की दुर्दशा, निष्क्रियता व गतिहीनता के कारण
(Causes of Stagnation & Downfall of Indian Economy During British Government)

जो भारतीय अर्थव्यवस्था सत्रहवी शताब्दी तक आर्थिक दृष्टि से धन-धान्य

पूर्ण, सम्पन्न एव समृद्ध थी वह अग्रेजी शासनकाल मे उनके शोषण, साधनो के बाह्य बहाव तथा घातक एव दोषपूर्ण आर्थिक नीतियो के परिणामस्वरूप छिन्न-भिन्न व निष्क्रिय हो गई। अग्रेजो ने भारतीय अर्थव्यवस्था का जो निर्मम शोषण किया उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है और इस शोषण को विश्व आर्थिक इतिहास का सबसे अधिक कालिमामय अध्याय कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नही होगी। भारतीय अर्थव्यवस्था की इस दुर्दशा, निष्क्रियता व गतिहीनता के कारण अनेक थे जिनमे निम्न का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1 **ब्रिटिश सरकार की घातक नीतिया**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण की नीति सक्रिय हो गई थी। अग्रेजी सरकार भारत को ब्रिटेन के निर्मित माल के लिए बाजार तथा कच्चे माल का उत्पादक बनाकर भारतीय उद्योगो के पतन की घातक नीति का अनुसरण करती रही। अनेक प्रकार से उन्होने भारत के आर्थिक साधन का बाह्य बहाव किया। दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था से जागीरदारी व जमीदारी प्रथा को विकसित किया जिससे अग्रेज सरकार को अपने शासन की जडें मजबूत करने के लिए चाटुकार पिट्ठू राजा-महाराजा उपलब्ध हो गये और वे 'फूट डालो व राज करो' की नीति मे सफल रहे।

2 **परतन्त्रता मे विकास कार्यक्रमो की उपेक्षा**—ब्रिटिश शासन भारतीय अर्थव्यवस्था मे रुचि न लेकर अपने शासन की जडें मजबूत करके उसके शोषण मे रुचि रखते थे अत उन्होंने देश को आधुनिक औद्योगीकरण की ओर अग्रसर नही होने दिया यहा तक कि लघु एव कुटीर उद्योगो के पतन की पुरजोर कोशिश की और श्रमिको पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। रक्षा पर व्यय कुल राजस्व का लगभग 3% भाग था जबकि विकास व्यय नगण्य था।

3 **साधनो का बाह्य बहाव व पूँजी निर्माण का अभाव**—अग्रेजी शासन के अन्तर्गत बडे पैमाने पर भारतीय बचतो व साधनो का बाह्य-बहाव हुआ जो राष्ट्रीय आय का लगभग 2 से 3% था। यह अग्रेजो डकैती व लूट-पाट ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा व्यापार के अत्यधिक लाभ अर्जन रेलवे निर्माण मे ब्रिटिश पूजीपतियो की गारण्टी पद्धति से लाभ पहुँचाने भारत पर थोपे गये होम चार्जेज तथा युद्धो से सम्बन्धित व्यय को भारतीयों से वसूली आदि के रूप मे 150 वर्षों तक निरन्तर चलती रही। प्रो सी एन वकील के मतानुसार 'भारत मे अग्रेजी शासनकाल मे सरकारी खाते मे ही बाह्य-बहाव की राशि 105 से 120 करोड पौण्ड थी। माण्टोगोमरी मार्टिन के अनुसार वार्षिक बाह्य-बहाव लगभग 30 लाख पौण्ड था। इतने बाह्य-बहाव की मात्रा ब्रिटेन जैसे देश को भी कगाल बना देती।" साधनो के बाह्य-बहाव से देश मे पूँजी निर्माण न हो सका। जो समृद्ध वर्ग थोडी बहुत बचतें करते थे उन्ह भी घातक नीतियो के वातावरण मे पूँजी विनियोग का कोई प्रोत्साहन

न मिला। जमीदारो व जागीरदारो ने विलासिता का जीवन बिताने मे बचतो का दुरुपयोग किया।

4 कृषि का पिछड़ापन व दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था—अंग्रेजो ने कृषि क्षेत्र मे विकास कार्यक्रमो की अवहेलना की। दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था ने ऐसे मध्यस्थो को जन्म दिया जो कृषको का शोषण कर स्वय विलासिता मे डूब गये। उन्होने शोषण का बहुत बडा भाग अंग्रेजी शासको को उपलब्ध कर उन्हे सशक्त बनाया और उनके शासन की नीव मजबूत करने मे देशभक्तो व क्रान्तिकारियो के दमन मे कोई कसर न छोडी। कृषि भूमि का असमान वितरण व कतिपय लोगो के पास केन्द्रीयकरण ने भूमिहीनो की दशा और भी दयनीय बनाई। इस प्रकार कृषि के पिछडेपन मे भी दासता की बेडिया हानिप्रद रही।

5 दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति व तकनीकी एव प्राविधिक शिक्षा का अभाव—अंग्रेजो ने या तो शिक्षा के विकास के बहुत कम प्रयास किए और जो कुछ शिक्षा का स्वरूप मेकाले ने दिया उससे सफेद-पोश बाबुओ व क्लर्को को तैयार करने की व्यवस्था थी। अंग्रेजी भाषा जानने वालो को नौकरी मे प्राथमिकता से नई सभ्यता का उदय हुआ। भारतीय अपने देश मे निर्मित वस्तुओ को हेय तथा घटिया समझने लगे तथा ब्रिटेन व विदेशो मे निर्मित वस्तुओ के उपभोग मे शान समझने लगे। परिणाम यह हुआ कि विदेशी माल भारत मे धडाधड आने लगा। स्वदेशी माल के उपभोग की अवहेलना होने से स्वदेशी उद्योगो का पतन स्वाभाविक था।

देश मे तकनीकी ज्ञान व प्राविधिक शिक्षा का अभाव होने से कृषि, उद्योग तथा परिवहन के आधुनिक ढग का विकास न हो सका।

6 सामाजिक जडता—देश मे शिक्षा के अभाव, धार्मिक रूढिवादिता व अन्धविश्वास के कारण सामाजिक जडता उत्पन्न हो गई थी। देश मे जाति प्रथा, बाल विवाह, पर्दा-प्रथा, छुआछूत, सयुक्त परिवार प्रणाली तथा धार्मिक रूढिवादिता से भारतीय जनता की प्रगति के सब द्वार बन्द हो गये। देश मे अंग्रेजो द्वारा विकसित पूँजीवादी प्रणाली मे निर्धन वर्ग का शोषण हुआ। मध्यम वर्ग कुचल गया। सामाजिक गतिरोध व कुण्ठाओ ने समूची अर्थव्यवस्था को दीन-हीन बनाने मे योग दिया।

7. घातक व्यापारिक नीति—ब्रिटिश सरकार भारत को ब्रिटेन का एक ऐसा उपनिवेश बनाना चाहती थी जो उसके निर्मित माल के लिए बाजार तथा औद्योगिक कच्चे माल का पूर्तिकर्त्ता हो। अत उन्होने भारत मे उद्योगो के विकास की बात तो दूर रही, रहे सहे उद्योगो के विनाश का पूरा-पूरा प्रयास किया। उन्होने साम्राज्य वरीयता (Imperial Preference) के अन्तर्गत रियायती तटकरो के आधार पर आयातो को प्रोत्साहन दिया तथा नीची कीमतो पर निर्यात किया गया। देश की तटकर नीति भी ब्रिटिश शासको के शोषण के अनुकूल थी।

8. परिवहन व सचार विकास की अवहेलना—ब्रिटिश शासकों ने भारत के यातायात व सचार विकास पर कोई ध्यान नही दिया। उन्होने केवल उन क्षेत्रो मे

परिवहन का विकास किया जो उनकी शासन सत्ता को मजबूत करने तथा आन्तरिक क्रान्तियो को दबाने के लिए जरूरी था। रेलो के विकास मे भारतीय साधनो का बाह्य-बहाव हुआ। भारत का अधिकाश विदेशी व्यापार ब्रिटेन की जहाजरानी द्वारा होता था। वायु-परिवहन मे भी विदेशी हितो की कम्पनिया रत थी।

9. असन्तुलित औद्योगिक विकास—भारत मे आर्थिक निष्क्रियता का एक महत्वपूर्ण कारण देश मे उद्योगो का असन्तुलित विकास होना है। देश मे आधारभूत व मूलभूत उद्योगो के विकास पर ध्यान न देकर केवल परम्परागत उपभोग उद्योगो के विकास पर ही ध्यान दिया। लघु एव बड उद्योगो मे पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से वे स्वय उनके पतन का कारण बने। आधुनिकीकरण पर ध्यान नही दिया गया। देश मे पूँजीगत व वित्तीय सस्थाओ के अभाव मे भी उद्योगो का सन्तुलित विकास न हो सका। अत औद्योगिक पिछडापन बढा।

10 प्रतिरक्षा व नागरिक प्रशासन पर अत्यधिक अपव्यय—जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अग्रेजी शासको की रुचि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास मे न होकर अपने शासन की जडें मजबूत करने की ही रही। अत प्रतिरक्षा व नागरिक प्रशासन के लिए कुल राजस्व का क्रमश 62 4% तथा 8 9% व्यय करते थे और विकास कार्यों व सामाजिक सेवाओ की उपेक्षा करते थे। ऐसी परिस्थिति म विकास की कल्पना निरर्थक लगती है।

इस प्रकार इन कतिपय कारणो का विवेचन यह सिद्ध कर देता है कि अग्रेजी शासको ने भारतीय अर्थव्यवस्था के कारण व विकास मे कोई कसर नही छोडी। जो कुछ प्रगति हुई वह उनके प्रयासो का प्रतिफल न होकर परिस्थितियो की देन थी। भारतीय भाग्यवादी भीरु, अन्ध विश्वासी व धार्मिक रूढिवादी जनता ने भी समय व परिस्थितियो के साथ अपने को परिवर्तित नही किया। वे जुल्म सहते रहे, शोषण होता रहा और अग्रेजी शासन 150 वर्षो तक चलता रहा जिसमे भारतीय अर्थ-व्यवस्था गतिहीन, निष्क्रिय, निर्धन व पिछडी रह गई।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय सकेत

1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की दशा बताते हुए उसकी गतिहीनता के कारण दीजिये।

अथवा

"अग्रेजी शासन की दोषपूर्ण नीतियो व शोषण से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय अर्थव्यवस्था मृतप्राय, दरिद्र व निष्क्रिय हो गई थी।" इस कथन की पुष्टि कीजिये।

संकेत—अध्याय के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की हीन दशा बताते हुए कारणो का उल्लेख करना है तथा यह निष्कर्ष देना है कि वह दोषपूर्ण नीतियो व शोषण का परिणाम था।

2

भारत में कृषि नीति एवं विकास

(Agricultural Policy & Development in India)

भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था है। देश की 70 प्रतिशत जनसख्या कृषि पर आश्रित है। कृषि से राष्ट्रीय आय का 45 से 50 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। कृषि की हीन दशा और कृषको का रूढिवादी दृष्टिकोण, भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के प्रमुख कारण हैं। कृषि व्यवसाय के रूप मे नही होकर जीवन-यापन का साधन माना जाता है। डॉ० क्लाउडस्टन के शब्दो मे "भारत मे हमारी पिछडी जातिया तो हैं ही, पिछडे उद्योग भी हैं और दुर्भाग्य से इन उद्योगो मे कृषि भी एक है।" कृषि की हीन दशा को देखकर ही स्वर्गीय पडित नेहरू ने कहा था—"Every thing may wait but agriculture can not There is nothing more important in India to-day than better agriculture" कैसी विडम्बना है कि भारत मे 70 प्रतिशत जनसख्या कृषि मे सलग्न है पर भारत अपने खाद्यान्नो के लिए दूसरे राष्ट्रो से भीख मागता है जबकि अमेरिका मे कृषि मे जनसख्या का केवल 6 प्रतिशत भाग सलग्न है पर वह विश्व की एक तिहाई जन-सख्या के खाद्यान्नो की पूर्ति करने मे सक्षम है।

भारतीय भूमि मे निर्भरता के ताण्डव नृत्य के समापन, कृषि के सर्वाङ्गीण विकास और भारतीय जन-जीवन की समृद्धि के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। चार पचवर्षीय योजनाओ तथा तीन वार्षिक योजनाओ मे कृषि विकास के लिए यथासम्भव प्रयत्न किये गये हैं और अब देश खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। हरितक्रान्ति से ग्रामीण जन-जीवन को विविधतापूर्ण बनाने तथा उसकी समृद्धि के लिए पृष्ठभूमि तैयार की गई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व

(Importance of Agriculture in Indian Economy)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला, 70% जनसंख्या के जीविको-

पार्जन का साधन और विदेशी व्यापार का मूल स्रोत है। यह निम्न तथ्यो से स्पष्ट है :—

1 जीविकोपार्जन व रोजगार का आधार—कृषि भारत की 70% जनसख्या के रोजगार तथा जीविकोपार्जन का मूल आधार है। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल कार्यशील जनसख्या 18 8 करोड थी उसमे से 9 95 करोड़ कृषक तथा 3 15 करोड खेतिहर मजदूर थे। इस प्रकार कृषि मे कुल 13 1 करोड व्यक्ति नियोजित थे।

2 राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत—कृषि से राष्ट्रीय आय का 45 से 50 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। 1950–51 मे यह 51 3% था, 1965–66 मे यह घटकर 46% प्रतिशत रह गया पर अब भी यह राष्ट्रीय आय का 42 से 50 प्रतिशत भाग है।

3. औद्योगिक कच्चा माल—कृषि देश मे कृषि पर आधारित उद्योगो (Agro-Industries) के लिए कच्चा माल उपलब्ध करती है। सूती वस्त्र उद्योग के लिए कपास, चीनी उद्योग के लिए गन्ना, वनस्पति उद्योग के लिए तिलहन तथा इसी प्रकार जूट, चाय, रबर, तम्बाकू और कागज उद्योगो के लिए कच्चे माल की पूर्ति भी कृषि से होती है।

4. खाद्यान्न की पूर्ति—भारत की विशाल शाकाहारी जनसख्या के लिए कृषि ही खाद्यान्नो की पूर्ति करती है। जहाँ 1950–51 मे खाद्यान्नो का उत्पादन 5·49 करोड टन था वह 1978–79 मे 12 8 करोड टन होने का अनुमान है। अब देश खाद्यान्न मे आत्म-निर्भरता की ओर अग्रसर है।

5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विदेशी मुद्रा-अर्जन—भारत के निर्यातो मे कृषि-जन्य पदार्थों का विशिष्ट महत्व है। 1955–56 मे जूट एव जूट निर्मित वस्तुएँ, कपास तथा सूती माल और चाय आदि का निर्यात मे 43% भाग था। अब भी इन सबसे देश को विदेशी व्यापार से लगभग 2500 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

6 राज्य सरकारो की आय का प्रमुख स्रोत—कृषि से राज्य सरकारो को भू-राजस्व, कृषि आय कर, सिंचाई वसूली तथा व्यापारिक फसलो से कर द्वारा लगभग 800–1000 करोड रुपये की वार्षिक आय होती है।

7. आर्थिक विकास मे साधनों का आधार—भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास कृषि विकास से सम्बद्ध है। कृषि विकास के बिना औद्योगीकरण और बेरोजगारी का समापन मुश्किल है। कृषि की समृद्धि मे ही निर्धनता का समापन, बेकारी का उन्मूलन तथा जन-जीवन की खुशहाली निर्भर करती है।

8. यातायात, मूल्य स्थिरता, व्यापार और वित्त व्यवस्था—देश की यातायात व्यवस्था भी कृषि पर निर्भर करती है क्योकि औद्योगीकरण तो अभी नाम मात्र का

हुआ है। निम्न जीवन-स्तर होने से उपभोग मे कृषि वस्तुओ का महत्व है और मूल्य स्थिरता के लिए कृषि उत्पादन की स्थिरता आवश्यक है। देश का व्यापार और बैंकिंग आदि वित्तीय संस्थाओ का कारोबार कृषि पर निर्भर करता है।

9 राजनैतिक एव सामाजिक महत्व—कृषक भारतीय गणतन्त्र का बहु-सख्यक नागरिक है और प्रजातान्त्रिक प्रणाली मे कृषक का महत्व रीढ की हड्डी के समान है।

भारतीय कृषि की बाधाए एव पिछडेपन के कारण

(Obstacles & Causes of Backwardness of Indian Agriculture)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ है और उसका अपना राजनैतिक तथा सामाजिक महत्व भी है पर इस महत्व के बावजूद भी इसकी हीन दशा है। कृषि की हीन दशा के कुछ प्राकृतिक कारण है तो कुछ आर्थिक एव सामाजिक। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजनैतिक कारण भी महत्वपूर्ण था पर अब यह कारण कृषि के पिछडेपन के लिए नही परन्तु उसके विकास के लिए प्रयत्नशील है। कृषि-विकास की मुख्य बाधाएँ तथा पिछडेपन के कारण संक्षेप मे इस प्रकार है—

(अ) प्राकृतिक कारण— कृषि विकास मे अनेक प्राकृतिक बाधाएँ है और य ही मुख्य रूप से कृषि के पिछडेपन मे योगदान करती हैं–(i) मानसूनी अर्थ-व्यवस्था होने से कृषि भी मानसून का जुआ है। 'अगर मानसून न आवे तो कृषि उद्योग मे तालाबन्दी" हो जाती है। 1965–66, 1966–67 तथा 1974–75 के अभूतपूर्व सूखो की इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। (ii) कीडे-मकोडे तथा पौधो की बीमारियो से कृषि उत्पादन मे लगभग 10% क्षति होती है। (iii) भूमि मे कटाव से उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है तथा कुछ समय बाद वह कृषि योग्य नहीं रहती लगभग 20 करोड एकड क्षेत्र भूमिक्षरणता (Soil Erosion) से ग्रसित है। (iv) कृषि क्षेत्र सीमित है जबकि जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि होने तथा उसके रोजगार का अन्य विकल्प न होने से कृषि पर जन भार बढाया जा रहा है। प्रति व्यक्ति 0 85 एकड से घटकर 0 75 एकड रह गया है।

(ब) आर्थिक बाधाएँ—कृषि मे आर्थिक बाधाएँ भी अनेक है और इन बाधाओ से कृषि विकास की ओर अग्रसर नही हो पा रही है। इन कारणो मे—

1 वित्तीय साधनो का अभाव—कृषि को प्रतिवर्ष 5 000 करोड रुपये ऋण की आवश्यकता होती है पर इस ऋण के 55% की पूर्ति तो साहूकार करते है जबकि सरकार तथा बैंको का योगदान, क्रमश 4 5% तथा 15% ही है। अत वित्तीय साधनो के अभाव से कृषि मे पूंजी विनियोग, यन्त्रीकरण, उत्तम बीज, रासायनिक खाद आदि का प्रयोग मुश्किल होता है।

2 वैज्ञानिक यन्त्रो एव उपकरणों का अभाव—यह भी कृषि मे कम उपज और अधिक लागत के लिए जिम्मेदार है।

3 रासायनिक खादो के उपयोग का अभाव—भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि तथा उसके स्थायित्व के लिए रासायनिक खादो का महत्व विवादो से परे है। भारत की तुलना मे प्रति एकड रासायनिक खादो का उपयोग इगलैण्ड मे 60 गुना, जापान मे 90 गुना, पश्चिमी जर्मनी मे 100 गुना, बेल्जियम मे 150 गुना तथा नीदरलैण्ड मे 170 गुना अधिक होता है। हम गोबर जैसी उत्तम खाद को जलाकर राख कर देते हैं। अत प्रति एकड उपज बहुत कम है। देश मे प्रतिवर्ष 50 लाख टन रासायनिक खाद का उपयोग हो रहा है पर देश मे उत्पादन कम होने से आयात पर निर्भर करना पडता है। अब भी देश की कुल माग की 60% की उत्पादन क्षमता ही है।

4 सिचाई के साधनो का अभाव—भारत मे लगभग 1,680 लाख हैक्टर कृषि योग्य भूमि है पर केवल ऽ20 लाख हैक्टर भूमि पर ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध है जबकि, 1160 लाख हैक्टर भूमि अब भी प्राकृतिक मानसून पर आश्रित है।

5 उत्तम बीजो तथा कीटाणुनाशक औषधियो का अभाव—यद्यपि पहले 28 वर्षों मे योजनाबद्ध विकास तथा 1965 से मुख्य रूप से इन कार्यो म सुधार हुआ है फिर भी अब तक उत्तम बीजो की उपलब्धि तथा पौध सरक्षण औषधियाँ सामान्य किसान की पहुच से परे हैं।

(स) सगठनात्मक बाधाएँ व कारण—सगठनात्मक कार्यो से भी कृषि के विकास की गति धीमी रही है। प्रमुख सगठनात्मक बाधाएँ निम्न हैं—

1 खेतो का उपखण्डन एव उप विभाजन—भूमि पर बढते जन-भार, दोषपूर्ण उत्तराधिकार नियमो तथा कृषको की ऋण ग्रस्तता आदि से देश म उप-खण्डन एव उप-विभाजन समस्या इतनी जटिल है कि इससे मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन तथा पूँजी विनियोग को हतोत्साहन रहता है।

2 दोषपूर्ण भूमिव्यवस्था एव भूमि सुधार की धीमी गति—अग्रेजी शासन-काल में तो जागीरदारी एव जमीदारी प्रथा भारतीय कृषि के पिछडेपन के लिए उत्तरदायी थे पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी भूमि-सुधार कार्यक्रमो की प्रगति इतनी धीमी रही है कि प्रगति मे बाधक है।

3 कृषि विशेषज्ञो तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव—कृषि भी एक व्यवसाय है और इस उद्योग मे अधिक उत्पादन के लिए अनुसधान, प्रयोग आवश्यक है। भारत मे कृषि विशेषज्ञो की आवश्यकता रूढि एव परम्परावादी किसान की मनोवृत्ति मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्थापित करने के लिए भी आवश्यक है। अब यद्यपि इस दिशा मे प्रगति हुई है परन्तु समूची अर्थव्यवस्था ऊँट के मुँह मे जीरे के समान है।

4. अनार्थिक जोत—कृषि जोत का आकार अनार्थिक है अत वैज्ञानिक कृषि सम्भव नही होती है और प्रति एकड कम उपज कृपक के जोश को समाप्त कर देती है।

(द) सामाजिक एवं राजनैतिक बाधाएँ—कृषि विकास म प्राकृतिक, आर्थिक तथा सगठनात्मक बाधाओं के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनैतिक बाधाएँ भी महत्वपूर्ण हैं।

1 जनसख्या मे तीव्र वृद्धि और कृषि पर बढता जन भार—जनसख्या मे प्रतिवर्ष 130 लाख की वृद्धि होती है और लगभग 65 लाख लोगो को रोजगार प्रदान करने की आवश्यकता सामने आती है पर रोजगार के लिए कोई विकल्प कृषि के अलावा दृष्टिगोचर नही होता। स्वाभाविक रूप से कृषि पर जन भार म तेजी से वृद्धि हो रही है। प्रो रसेल के अनुसार प्रति 100 एकड भूमि पर पौण्ड मे 31 व्यक्ति, ब्रिटेन मे 6 जबकि भारत मे 148 व्यक्ति आश्रित हैं।

2 अशिक्षित रूढिवादी एव परम्परागत दृष्टिकोण—भारत में 70 7 प्रतिशत जनसख्या अशिक्षित है जबकि केवल 29 3% जनसख्या ही साक्षर है। अशिक्षा के कारण ग्रामीण कृषको का भाग्यवादी एव परम्परावादी दृष्टिकोण उन्हे वैज्ञानिक तरीको के अपनाने मे बाधा पहुचाता है। अब धीरे धीरे उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन हो रहा है परन्तु फिर भी कृषि के विकास के लिए पर्याप्त प्रेरणा का अभाव है।

3 राजनैतिक कारण—भूमि सुधार अधिनियमो का प्रतिपादन तथा उनका क्रियान्वयन राज्य सरकारो के हाथ मे है। इसके साथ साथ आजकल राजनैतिक जीवन मे भ्रष्टाचार बढता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति म भूमि सुधार क्रान्तिकारी ढग से सम्पन्न नहीं हुए हैं। अब इस दिशा म प्रगतिशील दृष्टिकोण ज्यो ज्यो चुनाव का समय आ रहा है तेजी से कार्यरूप म परिणत किये जाने की प्रवृत्ति है।

इस प्रकार कृषि विकास की अनन्त बाधाओ का समापन भारतीय जनसख्या की निर्धनता निवारण, औद्योगिक विकास और कृषि समृद्धि के लिए जरूरी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि नीति
(1947 से 1979)
(Agricultural Policy during Five Year Plans)
(From 1947 to 1979)

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था म खाद्यान्न सकट औद्योगिक कच्चे माल का अभाव, दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था और कृषको की हीन दशा से प्रभावित हो सरकार ने कृषि के सम्बन्ध मे एक व्यावहारिक एव सुनिश्चित नीति अपनाने का दृढ निश्चय किया। इस समय कृषि नीति का मूल उद्देश्य खाद्यान्न पदार्थों म आत्म निर्भरता तथा औद्योगिक कच्चे माल की उत्पत्ति म वृद्धि करना था। अत 1949 म अधिक अन्न

उपजाम्रो म्रान्दोलन' प्रारम्भ किया गया। यह तत्कालीन खाद्यान्न संकट मे मुक्ति पाने के लिए प्रारम्भिक प्रयास था।

1950 मे योजना ग्रायोग का निर्माण हुग्रा ग्रौर योजना ग्रायोग ने भी देश के भावी ग्रार्थिक विकास मे कृषि विकास को प्राथमिकता दी। यही कारण था कि प्रथम योजना के सार्वजनिक क्षेत्र मे होने वाले 1,960 करोड रु व्यय मे से कृषि तथा सम्बद्ध कार्यक्रमो ग्रौर सिंचाई पर 601 करोड रु व्यय हुग्रा जो कि कुल योजना व्यय का 30 6% भाग था। प्रकृति की कृपा दृष्टि से कृषि उत्पादन मे लक्ष्य से भी ग्रधिक उत्पत्ति के ग्रासार दृष्टिगोचर हुए। 1952 मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सर्वाङ्गीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्य-क्रम तथा 1953 मे राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्य-क्रम प्रारम्भ किया गया। 1953 मे खाद्यान्न का पर्याप्त उत्पादन होने से 1954 तक खाद्यान्न से नियन्त्रण हटा लिया गया। पर इसके कारण कृषि उत्पादित वस्तुग्रो के मूल्यो मे 15 से 20% की कमी हुई यद्यपि 1955-56 से खाद्यान्न तथा ग्रन्य वस्तुग्रो के मूल्यो मे वृद्धि का दौर प्रारम्भ हो चुका था।

खाद्यान्न के ग्रायात के सम्बन्ध मे यह नीति ग्रपनाई गई थी कि ग्रायात केवल सक्टकाल के लिये भण्डार (Buffer Stock) निर्मित करने के लिये ही किया जायगा। योजना ग्रायोग ने कृषि उत्पादन मे वृद्धि के लिये सस्थागत परिवर्तनो तथा ग्रौद्योगिक (Technological) परिवर्तनो पर ही ग्रधिक बल दिया। फलस्वरूप 1960–61 तक सम्पूर्ण देश 40% कृषि योग्य भूमि पर फैली हुई जागीरदारी तथा जमीदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया। भूमि धर मे काश्तकारी व्यवस्था मे सुधार के लिये लगान की ग्रधिकतम सीमा, काश्तकारो को बेदखली के विरुद्ध सुरक्षा, भू-स्वामित्व ग्रधिकार दिलाना तथा कृषि पुनर्सगठन मे जोत की सीमा निर्धारण, चकबन्दी, सहकारी कृषि, भूदान ग्रान्दोलन तथा भूमिहीनो को भूमि वितरित करने की नीति रही ताकि सामाजिक न्याय के परिवेश मे उत्पत्ति वृद्धि की प्रेरणा मिले। सस्थागत परिवर्तनो मे वित्तीय सस्थाग्रो का विकास कृषि विपणन व्यवस्था ग्रादि महत्वपूर्ण रहे। 1956 मे खाद्यान्न मे राज्य व्यापार की व्यवस्था लागू हुई। 1957 मे ही ग्रशोक मेहता समिति ने खाद्यान्न स्थिरीकरण संगठन की स्थापना का सुभाव दिया था। 1959 के नागपुर ग्रधिवेशन मे कृषि भूमि सुधारो को गति प्रदान करने तथा सहकारी कृषि को प्रोत्साहित करने का प्रस्ताव पारित किया था। ग्रौद्योगिक परिवर्तनो से सिंचाई साधनो का विकास, उत्तम बीज, रसायनिक खाद ग्रौर कृषि के वैज्ञानिक उपकरणो के उपयोग मे विस्तार की नीति थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय पचवर्षीय योजना के ग्रन्त तक योजना ग्रायोग की कृषि नीति कुछ सीमा तक सस्थागत ग्रौर ग्रौद्योगिक उत्पादनों से परिवर्तन वृद्धि के उद्देश्य मे तो सफल हो

सकी पर कृषि क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तनों का श्रीगणेश नहीं हो पाया। कृषि क्षेत्र मे ऐसे तत्वो के अकुर नही पनपे जो कृषि उत्पादन मे परम्पराओ के विरुद्ध नई पद्धतियो की घुसपैठ से किसानो मे नये जीवन का सचार कर उन्हे प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने को अग्रसर कर सकें। बडी और मध्यम सिचाई योजनाओ को अधिक महत्व देने से क्षेत्रीय विषमता मे वृद्धि होने के साथ-साथ दीर्घकाल मे लाभ मिलने से मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न हुई। अत देश मे कृषि विकास के लिये एक प्रभावी, व्यावहारिक, सुनिश्चित तथा सुदृढ नीति की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। जनसख्या की विस्फोटक वृद्धि ने नीति-निर्माताओ को अधिक सजग होने का सकेत दिया।

कृषि विकास की नई नीति का प्रादुर्भाव

(Evolution of New Strategy of Agriculture Development)

आर्थिक समृद्धि की आकाक्षा मे प्रगतिशील दृष्टिकोण पनपता है। भारतीय किसानो मे आर्थिक नियोजन के दस वर्षों मे वांछित लाभ न मिलने से निराशा के साथ-साथ मनोबल की सुदृढता व आर्थिक समृद्धि की आकाक्षा से उचित मूल्यो, अधिक उपज देने वाली फसलो तथा रासायनिक उर्वरको के उपयोग की प्रवृत्ति बढी। उनकी यह प्रवृत्ति उज्ज्वल भविष्य का सूचक थी। 1960 61 के बाद कृषि उत्पादन मे अत्यधिक उतार चढाव का दौर चला। 1964-65 मे अच्छी उपज के साथ 1965-66 तथा 1966-67 के अभूतपूर्व सूखा, फिर 1967-68 म अच्छी फसल के बाद 1968-69 मे स्थिरता, कृषि क्षेत्र म विकास की विफलता और सफलता का अस्वाभाविक मिश्रण है। इस वातावरण से जहाँ कृषको मे उचित मूल्यो, अधिक उत्पत्ति के लिये अधिक उपज देने वाले बीजो और रासायनिक खाद के प्रयोग को बढावा मिला वहाँ साथ ही साथ कृषि के सम्बन्ध मे परम्परागत निर्वाह दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावसायिक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ। सिचाई की दृष्टि से उपयुक्त अधिक उपजाऊ क्षेत्रो म अधिक उत्पादन करने की सुनिश्चित नीति का प्रादुर्भाव हुआ। इस नीति को कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना की सज्ञा दी जाती है।

इस नवीन व्यूह रचना के प्रथम चरण मे 1960-61 मे चयनित 3 जिलो म सघन कृषि जिला कार्यक्रम (*Intensive Agriculture District Programme*) के नाम से फोर्ड फाउन्डेशन से प्राप्त आर्थिक सहायता से चालू किया गया। इसे पैकेज प्रोग्राम (Package Programme) के नाम से भी पुकारा जाता है क्योकि इसमे विभिन्न कृषि साधनो—उत्तम बीज, रासायनिक खाद, साख, औजार और सिंचाई सुविधाएँ—को एक साथ चुने क्षेत्रों मे प्रयोग किया जाना है तथा

आवश्यक तकनीकी तथा आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है। यह एक समन्वित ऐवं सघन प्रयास था जो बाद मे 13 जिलो मे फैला और अब 308 विकास खण्डो मे चल रहा है।

1964-65 से अन्य क्षेत्रो से कम खर्च तथा कम साधनो से छोटे पैमाने पर सघन कृषि क्षेत्र कार्य-क्रम (Intensive Agriculture Programme) चालू किया गया जिसमे विशिष्ट क्षेत्रो मे विशिष्ट फसलो के उत्पादन पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया।

इस तरह दोनो कार्यक्रम—सघन कृषि जिला कार्यक्रम और सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम प्रचलित किस्मों से ही अधिक गहन कृषि करने तक सीमित रहे। कृषि मे अन्य पडत (Inputs) को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया पर 1960 से ही अधिक उपज देने वाली फसलो को किस्मो का प्रयोग निरन्तर बढने लगा। 1963 तक इनका बहुत उपयोग होना शुरू हुआ। 1966 की खरीफ की फसल की बुआई मे अधिक उपज देने वाली फसलो की व्यापक वृद्धि हुई, यहाँ तक कि चतुर्थ योजना के आरम्भ मे 8 5 मिलियन हेक्टर मे अधिक उपज देने वाली फसलो का प्रयोग किया जा रहा था। चतुर्थ योजना के प्रारम्भ तक गेहू, धान, मक्का बाजरा और ज्वार की इन पाँच फसलो मे ही अधिक उपज देने वाले बीजो का विस्तार हुआ। दूसरी फसलो के सम्बन्ध मे प्रयोग एव शोध कार्य प्रगति पर है।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कृषि नीति एव कृषि विकास (1951-79)
(Agriculture Policy & Development during 1951–79)

देश के योजनाबद्ध विकास के प्रारम्भ से ही कृषि व सिचाई विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया। प्रथम योजना मे कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी ही गई किन्तु बाद की योजनाओ मे भी कृषि विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। 1965 66 मे कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना अपनाई गई ताकि सीमित साधनों का चयनित सुरक्षित क्षेत्रों मे प्रयोग कर खाद्यान्न व कृषि जन्य पदार्थों की उत्पत्ति मे तीव्र वृद्धि की जा सके और देश को खाद्यान्न मे आत्म निर्भर बनाने का मार्ग प्रशस्त हो। चौथी योजना मे तो 1970-71 तक खाद्यान मे आत्म निर्भरता का लक्ष्य रखा गया था। योजनाबद्ध विकास के पिछले 28 वर्षों (1951-79) मे पाँच पचवर्षीय योजनायें व चार वार्षिक योजनाएँ कार्यान्वित की जा चुकी हैं और इस अवधि मे कृषि व सिचाई विकास पर सार्वजनिक क्षत्र में लगभग 16500 करोड रु व्यय हुआ है जो सार्वजनिक क्षेत्र मे होने वाले समग्र योग का लगभग 20% भाग है। पचवर्षीय योजनाओ के अन्तगत व्यय का विवरण निम्न सारणी से स्पष्ट है—

तालिका 1. योजनाओं के अन्तर्गत कृषि एवं सिंचाई विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र का व्यय (1951–77)

अवधि	सार्वजनिक क्षेत्र का कुल व्यय	कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्र पर व्यय	सिचाई विकास पर व्यय	कुल योग 3+4	कृषि व सिंचाई पर व्यय का प्रतिशत
प्रथम योजना 1951–56	1960	291	310	601	30 6
द्वितीय योजना 1956–61	4600	530	340	870	21
तृतीय योजना 1961–66	8577	1089	580	1669	19
तीन वार्षिक योजनाए 1966–69	6756	1167	414	1581	23
चतुर्थ योजना 1969–74	16774	2566	900	3466	20 7
पाँचवी योजना के चार वष 1974–78	29571	3400	2100	5500	
पिछल 27 वर्षों म कुल व्यय	68238	9043	4644	13687	20%

Source—Compilation from various plans

उपयुक्त तालिका पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि योजनाबद्ध विकास के 27 वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल व्यय 68238 करोड रु व लगभग रहा है उसमे से कृषि एव सिंचाई विकास पर क्रमश 9043 करोड रु का तथा 4644 करोड रु व्यय हुआ है अर्थात् दोनो पर कुल व्यय 13687 करोड रु रहा है जो कुल सार्वजनिक क्षेत्र व्यय का लगभग 20% भाग है। यद्यपि इन 26 वर्षों म कृषि व सिंचाई क क्षेत्र म आश्चर्यजनक प्रगति हुई है फिर भी भारतीय मानसून की अनिश्चितता व प्राकृतिक प्रकोपो के कारण अब तक भारत खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है। कृषि विकास की दर नख्या मे कम रही है। योजनाबद्ध विकास क 27 28 वर्षों म कृषि विकास की प्रगति का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

1 कृषि विकास दर मे वृद्धि—पचवर्षीय योजनाओं के सूत्रपात मे पूर्व 1900 से 1950 तक भारत मे कृषि विकास की वार्षिक दर केवल 0 3% थी पर पिछले 28 वर्षों म कृषि की वार्षिक दर बढकर लगभग 5% हो गई है। पिछले 28 वर्षों म कृषि उत्पादन म लगभग 100 से 121% प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जहा

1950-51 मे कृषि उत्पादन का सूचकाक (आधार वर्ष 1949=100) 96 था वह 1960-61 मे बढकर 139, 1970-71 मे 182 तथा 1978-79 मे बढकर 221 होने का अनुमान है। 1969-70 से 1971-72 तक कृषि विकास की औसत वार्षिक दर 5% थी किन्तु चतुर्थ योजना मे कृषि विकास की वार्षिक दर 3 9% ही रही जबकि लक्ष्य 5 5% का था। 1978-79 मे कृषि विकास दर 2 7% होने का अनुमान है।

2. खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि— पिछले 27-28 वर्षों मे खाद्यान्न के उत्पादन मे भी लगभग दुगुनी वृद्धि हुई है। जहाँ 1950-51 मे भारत मे खाद्यान्न का उत्पादन 5·49 करोड टन था वह प्रथम योजना मे ही लक्ष्य 6 5 करोड टन को पार कर 6·9 करोड टन पहुच गया। 1960-61 मे खाद्यान्न का उत्पादन 8·2 करोड टन था किन्तु तीसरी योजना के 1964-65 मे 8 9 करोड टन तक पहुच कर 1965-66 मे अकाल के कारण गिरकर 7 2 करोड टन ही रह गया। 1968-69 मे खाद्यान्न का उत्पादन पुन बढकर 9 5 करोड टन हो गया। चतुर्थ योजना मे खाद्यान्न का उत्पादन 12 9 करोड टन करने का लक्ष्य था पर 1973-74 मे खाद्यान्न का उत्पादन 10 47 करोड टन ही रहा। 1978-79 मे खाद्यान्न का उत्पादन 12 8 करोड टन होने का अनुमान है।

3 व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे वृद्धि—औद्योगिक व व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे भी तीव्र गति से वृद्धि हुई है। कपास, गन्ना तथा मूगफली के उत्पादन मे लगभग 4 से 4 5% की वार्षिक वृद्धि हुई है। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि पिछले 28 वर्षों मे व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे 100 से 105% की वृद्धि होने का अनुमान है। जहाँ 1950-51 मे तिलहन का उत्पादन 52 लाख टन, गन्ने का उत्पादन 71 लाख टन, कपास का उत्पादन 29 लाख गाठें तथा जूट का उत्पादन 35 लाख गाठें थी वह बढाकर 1973-74 मे क्रमश 94 लाख टन, 13 6 लाख टन, 605 लाख गाठें कर दी गई हैं, योजना वार उत्पादन वृद्धि आगे तालिका 2 मे स्पष्ट है। 1978-79 मे तिलहनो का उत्पादन 1 3 करोड टन, गन्ने का उत्पादन 1 75 करोड टन तथा कपास और जूट का उत्पादन क्रमश 72 लाख तथा 70 लाख गाठें होने का अनुमान है।

4. सिंचाई साधनो का विकास—योजनाबद्ध विकास के पिछले 25 वर्षों म सिंचाई सुविधाओ का तीव्र गति से विकास हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र मे 3500 करोड रुपये तथा निजी क्षेत्र मे भी लगभग इतनी राशि सिंचाई सुविधाओ के विकास पर व्यय किये जाने के परिणामस्वरूप जहाँ 1950-51 मे सिंचित क्षेत्र 208 लाख हेक्टर था वह बढकर 1973-74 मे 440 लाख हेक्टर हो गया। अब अनेक लघु पर मध्यम व बहु उद्देश्यीय योजनाओ के विकास के कारण सिंचाई के लिए उपलब्ध जल साधनों का प्रयोग 17% से बढकर 50% तक पहुच गया है। मोटे अनुमानो के अनुसार भारत मे 1978-79 तक 14 5 करोड हेक्टर भूमि पर खेती की जा

रही थी उसमे केवल 5 2 करोड हेक्टर क्षेत्र मे सिचाई क्षेत्र मे सिचाई सुविधा उपलब्ध थी। 21 सूत्रीय कार्यक्रम के द्वारा 50 लाख हेक्टर अतिरिक्त क्षेत्र मे सिचाई सुविधा की व्यवस्था थी। पांचवी योजना के अन्त मे सिंचित क्षेत्र 4 84 करोड हेक्टर था।

5 भूमि सुधारो की प्रगति—प्रथम योजना से ही क्रान्तिकारी भूमि सुधारो का क्रम प्रारम्भ हुआ जो अब तक चल रहा है। 1960–61 तक जागीरदारी एव जमीदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया। मध्यस्थो की समाप्ति से लगभग 2 करोड काश्तकार सीधे सरकार के सम्पर्क मे आ गये। उप-खण्डन एव उप-विभाजन की समस्या के समाधान के लिए और अधिक छोटे खेतो पर प्रतिबन्ध तथा लगभग 5·2 करोड हेक्टर भूमि की चकबन्दी की जा चुकी है। प्राय सभी राज्यो मे काश्तकारो की भूमि से बेदखली काश्त की सुरक्षा तथा उचित लगान वसूली सम्बन्धी अधिनियम पारित किये जा चुके हैं और उन्हे प्रभावी ढग से लागू करने का प्रयास जारी है। भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण सम्बन्धी अधिनियमो को बडी मुस्तैदी से लागू किया जा रहा है पर अधिनियमो मे कानूनी खामियो का लाभ उठाकर बडे भूस्वामी भूमिहीनो को वचित करने मे सतत् प्रयत्नशील हैं। 20–सूत्रीय कार्यक्रम मे भूमि सुधारो मे तेजी लाई गई। अब जनता सरकार भी भूमि सुधारो को कार्यान्वित करने मे प्रयत्नशील है।

6 उन्नत बीजों व रासायनिक खादों के प्रयोग की प्रगति – कृषि विकास मे उन्नत बीजो व रासायनिक खादो का विशेष महत्व है। इसी कारण उन्नत बीजो व रासायनिक खादो के प्रयोग म निरन्तर वृद्धि हुई है। 1960–61 तक लगभग 4 हजार बीज गुणक फार्म स्थापित किये गये। 1963–64 मे स्थापित राष्ट्रीय बीज निगम उन्नत बीजो के उत्पादन व वितरण मे काफी सक्रिय है। जहाँ 1950–51 मे केवल 15 लाख हेक्टर भूमि मे उन्नत बीजो की बुआई होती थी वहा 1968-69 म 80 लाख हेक्टर भूमि मे उन्नत बीजो की बुआई हो रही थी। 1965–66 के बाद लगभग 140 लाख हेक्टर भूमि मे बहु फसल कार्यक्रम लागू किया जा चुका है। जहाँ 1950–51 मे अधिक उपज देने वाली फसलो की बुआई नगण्य थी वह बढाकर 1969–70 मे 114 लाख हेक्टर तथा 1973–74 मे 259 लाख हेक्टर कर दी गई है। 1978–79 मे 430 लाख हेक्टर होने का अनुमान है।

रासायनिक खादों के प्रयोग मे पिछले 28 वर्षों मे लगभग 55 से 60 गुना वृद्धि हुई है। देश मे रासायनिक उर्वरको की बढी हुई माग की पूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र म ही फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया के अन्तर्गत सात कारखाने सचालित हैं। जहाँ 1950–51 मे उर्वरको का उपयोग 69 हजार टन था वह 1960–61 म बढकर 3 6 लाख टन, 1970–71 मे 21 8 लाख टन तथा 1973-74 मे 19 7 लाख टन होने का अनुमान है। 1978-79 म उर्वरको का उपयोग 50 लाख टन था जो कि छठी योजना के अन्त तक बढाकर 78 लाख टन कर दिया जायेगा।

7. भूमि संरक्षण एवं पौध संरक्षण—भूमि का धीरे-धीरे कटाव व उपजाऊ मिट्टी का बहाव रेंगती हुई मौत के समान है अत भूसरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। 1953 मे केन्द्रीय भूसरक्षण मण्डल की स्थापना की गई। बढते रेगिस्तान को रोकने के लिए जोधपुर मे एक केन्द्र स्थापित किया गया है। पिछले 28 वर्षों मे लगभग 25 लाख हेक्टर भूमिमे भूसरक्षण की व्यवस्था की जा चुकी है।

फसलो को नष्ट होने से बचाने के लिए पिछले दशक मे कीटाणुनाशक औषधियो का प्रयोग तेजी से बढा है। जहा 1960–61 मे केवल 65 लाख हेक्टर क्षेत्र मे पौध-सरक्षण किया गया था वहा 1968–69 मे 540 लाख हेक्टर तथा 1978–79 तक लगभग 850 लाख हेक्टर पौ-सरक्षण की परिधि मे आ चुका था। 1974–75 मे कीटाणुनाशक दवाओ का कुल उपभोग 47·3 हजार टन था 1978-79 मे यह बढकर 65 हजार टन होने का अनुमान है।

8 कृषि मे यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन—भारतीय कृषि विकास मे यन्त्रीकरण की प्रगति भी आश्चर्यजनक कही जा सकती है। तृतीय योजना से ही वैज्ञानिक कृषि उपकरणो व यन्त्रों को बढाने के लिए केन्द्रीय कृषि यन्त्र एव उपकरण मण्डल स्थापित किया गया। राज्यो मे भी कृषि उपकरण मण्डलो की स्थापना की गई है। कृषि उपकरणो के निर्माण के लिए लगभग 55 वर्कशॉप स्थापित किये जा चुके हैं। विभिन्न राज्यो मे कृषि उद्योग निगमो (Agro Industries Corporations) की स्थापना की गई है जो किराया क्रय पद्धति (Hire Purchase System) पर कृषि यन्त्रों का विक्रय करते हैं, तकनीकी सेवा उपलब्ध करते हैं तथा कृषि व उद्योग मे निकट सम्पर्क स्थापित करते हैं। देश मे पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत कृषि मे द्रुत गति से यन्त्रीकरण की एक झलक इस बात से मिलती है कि जहा 1956 मे विद्युत सचालित पम्प सेटो की सख्या 47 हजार थी वह बढकर 1970–71 मे 16 9 लाख तथा 1978–79 मे 35 लाख होने का अनुमान है। इसी प्रकार ट्रैक्टरों की कुल माग 1966–67 मे 20 हजार थी वह 1970–71 मे बढकर 40 हजार तथा अब ट्रैक्टरो की माग 2 5 लाख के लगभग है।

9. कृषि विपणन व्यवस्था मे सुधार—कृषको को उनके द्वारा उत्पादित उपज को उचित मूल्य दिलाने तथा उन्हे महाजनो की धोखा-धडी से बचाने के लिए कृषि विपणन व्यवस्था मे अनेक सुधार किये गये हैं जिसके अन्तर्गत नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना की गई है। 19५0–51 मे नियन्त्रित मडियो की सख्या केवल 265 थी अब वह सख्या लगभग 2500 है। वर्गीकरण एव प्रमाणीकरण अधिनियम के अन्तर्गत लगभग 50 वस्तुओ का वर्गीकरण किया गया है। 1964 मे राष्ट्रीय सहकारी विपणन सघ बनाया जिसके अन्तर्गत अभी 3500 कृषि विपणन सहकारी समितिया काम कर रही हैं। कृषि मूल्यो मे स्थायित्व व उचित मूल्यो के निर्धारण के लिए 1965 मे कृषि मूल्य आयोग स्थापित किया गया। कृषि उपज के सग्रह के लिए गोदामो की

उचित व्यवस्था भी उतनी ही महत्वपूर्ण है अत 1956 म राष्ट्रीय सरकारी विकास एव गोदाम अधिनियम के अन्तर्गत 1957 मे केन्द्रीय गोदाम निगम तथा सभी राज्य म राज्य गोदाम निगम स्थापित किये गये। इनके सभी गोदामो की सग्रह क्षमता 1973–74 तक 131 लाख टन थी। देश मे प्रचलित बाटो मे एकरूपता लाने क लिए 1958 म मट्रिक तौल प्रणाली लागू की गई। रेडियो पर भावो का प्रसारण किया जाता है समाचार पत्रो मे भी समीक्षा छापी जाती है। सरकार का विपणन एव निरीक्षण निदेशालय शोध व सर्वेक्षण कार्यों मे रत है।

10 कृषि साख मे वृद्धि—*कृषको को सुविधाजनक उचित शर्तों पर साख उपलब्ध कराने के लिए सस्थागत वित्त व्यवस्था के विकास पर ध्यान दिया गया है। 1955 से स्टेट बैंक का राष्ट्रीयकरण व रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी बैंको के माध्यम से कृषि को दीर्घकालीन व मध्यम कालीन साख प्रदान करने के लिए क्रमश कृषि साख (दीघकालीन कोष) तथा कृषि साख (स्थिरीकरण कोष) स्थापित किये है। प्रथम 23 वर्षों मे सरकार तथा अन्य वित्तीय सस्थाओ द्वारा कृषि के लिए प्रथम योजना म 43 करोड रुपये, द्वितीय योजना म 240 करोड़ रुपये, तृतीय योजना मे 492 करोड रु, तीन वार्षिक योजनाओ म 600 करोड रुपये तथा चतुर्थ योजना म लगभग 1200 करोड रुपये होने का अनुमान था। 14 बडे बैंको का जुलाई 1969 म राष्ट्रीयकरण करके कृषि क्षत्र मे ऋणो की मात्रा बढाई गई है। जहा जुलाई 1969 म इन बैंको द्वारा कृषि के लिए दिया जाने वाला कुछ ऋण 162 करोड था वह 1978–79 तक 2000 करोड रुपय तक पहुच गया।*

11 विविध—कृषको म व्यावसायिक एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करन क लिए 1960–61 म फोड फाउन्डेशन की आर्थिक अनुदान क सात राज्यो म प्रारम्भ किया गया सघन कृषि जिला कायक्रम 1965–66 म 308 विकास खण्डो म लागू कर दिया गया था। छोटे पैमाने पर तकनीकी जानकारी साख व उपकरण उपलब्ध करने के लिए सघन कृषि क्षेत्रीय कायक्रम लागू किय।

कृषि शिक्षा व शोध कार्य में भी आश्चयजनक प्रगति हुई है। उदयपुर, लुधियाना, पतनगर व भुवनेश्वर, हरियाणा आदि में कृषि विश्वविद्यालय खोले गये है। 1929 में स्थापित भारतीय कृषि अनुसधान परिषद कृषि क्षेत्र में अनुसधान का काय करती है उसके अन्तगत 23 अनुसधान सस्थाय काम कर रही है। इसके अन्तगत आठ भूसरक्षण अनुसधान, प्रदशन व प्रशिक्षण केन्द्र क्रमश आगरा बेलारी देहरादून, कोटा, हैदराबाद, उटकमण्ड व चण्डीगढ में है।

इस प्रकार पचवर्षीय योजनाओ के पिछले 28 वर्षों में कृषि के सभी क्षेत्रो म प्रगति का माग प्रशस्त हुआ है।

पिछले 28 वर्षों के योजनाबद्ध विकास के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में 100 स 121% की वृद्धि हुई है। खाद्यान्न का उत्पादन दुगुने स भी अधिक हो गया है।

व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे भी 105% की वृद्धि हुई है। जहा 1950–51 से पूर्व कृषि विकास की औसत दर 0 5% वार्षिक थी वह 5% तक पहुँच गई थी। चतुर्थ योजना मे कृषि विकास दर 3 9% हो गई थी। 1966–67 मे लागू हरित क्रान्ति के फलस्वरूप देश मे उन्नत बीजो, रासायनिक उर्वरको व यन्त्रीकरण का काफी प्रयोग होने लगा है। देश खाद्यान्न उत्पादन मे प्राय आत्म निर्भरता के स्तर पर पहुँच चुका है। सिंचित क्षेत्र भी 2 08 करोड हेक्टर से बढकर अब 520 लाख हेक्टर हो गया है। कृषि अनुसधान भी प्रगति पर है।

कृषि क्षेत्र मे प्रगति की एक झलक निम्न तालिका से मिलती है—

तालिका—2 पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि की प्रगति (1951–79)

विवरण	इकाई	1950-51	1960-61	1970-71	1973-74	1978-79 अनुमान
कृषि-उत्पादन सूचकाक	(1949 = 100)	96	139	182	198	221
खाद्यान्न का उत्पादन	करोड टन	5·5	8 2	10 8	10 47	12 8
तिलहन	लाख टन	52	70	92	94	134 4
गन्ना (गुड के रूप मे)	" "	71	114	132	141	175 0
कपास	लाख गाठ	29	53	46	63	72 0
जूट	" "	35	41	49	65	70 0
उर्वरको का उपभोग	हजार टन	69	306	2180	1970	5000
सिंचित क्षेत्र	करोड हेक्टर	2 08	2 83	4 2	4 30	520
अधिक उपज देने वाले बीजो का प्रयोग	क्षेत्र लाख हेक्टर	15	50	140	259	430
बहुफसल कार्यक्रम	" "	—	—	40	140	220
पौध सरक्षण	" "	—	65	560	630	850
विद्युत पम्प सेट	लाखसख्या	0 2	1	16 9	25	35

यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि के विभिन्न क्षेत्रो मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई है फिर भी योजनाओ के क्रियान्वयन मे अनेक त्रुटिया हैं—

1 खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता का अभाव—लम्बी अवधि के नियोजन के बावजूद भारत अब खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर नही हो पाया है । जहां प्रथम योजना मे 595 करोड रु० खाद्यान्न का आयात किया वहां तृतीय योजना मे खाद्यान्न का आयात मूल्य 1150 करोड रु० रहा । 1973–74 मे खाद्यान्न का आयात 200 करोड रु० तथा 1977–78 मे 878 करोड रु० होने का अनुमान है । यद्यपि हमने 1970–71 तक ही खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता का लक्ष्य रखा था परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति नही हो पाई है ।

2 सिंचाई की अपर्याप्तता—भारत मे कुल कृषि योग्य भूमि 16 80 करोड हेक्टर है उसमे से केवल 5 2 करोड हेक्टर मे ही सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध है जबकि 11 60 करोड हेक्टर क्षेत्र अब भी प्राकृतिक मानसूनो की अनिश्चितता पर आश्रित है ।

3 भूमि सुधारो की असतोषजनक प्रगति—भारत की स्वतन्त्रता के 28 वर्षों के बाद भी बडे किसानो व भूस्वामियो द्वारा भूमिहीनो का शोषण होता है । भूमि सुधारो के अधिनियमों मे विभिन्न खामियो के कारण वांछित लाभ नही मिल पाया है । 'भूमि हथियाओ" आन्दोलन भूमिहीनो की समस्या का परिचायक है ।

4 कृषि वित्त की अपर्याप्तता—कृषि मे वित्त व्यवस्था अब भी अपर्याप्त एव असतोषजनक है । कृषको का महाजनो द्वारा भयकर शोषण हो रहा है । ऋण-ग्रस्तता अब भी काफी है । ऊँची दरो से ब्याज शोषण का प्रमुख कारण है । वित्तीय-सुविधाओ का लाभ बडे किसानो को ही मिला है ।

5 छोटी सिंचाई योजनाओ की उपेक्षा—योजनाओ के अन्तर्गत बडी एव मध्यम सिंचाई योजनाओ के विकास पर अत्यधिक जोर दिया जबकि छोटी छोटी सिंचाई योजनाओ की उपेक्षा की गई । इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कुछ ही क्षेत्रो को इसका लाभ मिला और कुछ क्षेत्रों मे असमानता बढी है ।

6 कृषि अनुसधान पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है इसमे और काफी गु जाइश है ।

7 भूमिहीनों व छोटे किसानो की दयनीय दशा है—जहा एक ओर पुराने जमींदारो व जागीरदारो के स्थान पर नये सफेदपोश जागीरदारो का जन्म हुआ है और अधिकाश लाभ उन्ही को मिला है, जबकि छोटे किसानो व भूमिहीनो की दशा मे कोई विशेष सुधार नही हुआ है, उनमे अब भी भुखमरी, गरीबी व परम्परागत दृष्टिकोण व्याप्त है ।

कृषि क्षेत्र म अनेक असफलताओ के आवरण मे सफलताओ को छुपाया नहीं

जा सकता। जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप व मानसून की अनिश्चितता ने हमे परेशानी मे डाला है फिर भी कृषि विकास की दर 0 5 से बढकर 5% हो जाना, प्रति एकड उपज मे 40% वृद्धि, रासायनिक खादो के उपभोग मे 60 से 80 गुना वृद्धि, खाद्यान्न उत्पादन मे 120% वृद्धि सिंचित क्षेत्र का लगभग दुगुना हो जाना, जमीदारी प्रथा व मध्यस्थो का उन्मूलन आदि कृषि विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धिया हैं। पिछले 28 वर्षो मे कृषि उत्पादन मे 100 से 121% की वृद्धि भावी भविष्य के लिए उचित सकेत है। कृषि उत्पादन वृद्धि से किसानो की आर्थिक समृद्धि बढी है। कृषको मे रूढिवादी तथा परम्परागत दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावसायिक एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ है। देश मे कृषि को प्राकृतिक प्रकोपो से सुरक्षा मिली है और खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हुआ है। हरित क्रान्ति से कृषि के सर्वांगीण विकास व भारतीय कृषको की आर्थिक समृद्धि से समाजवाद के स्वप्न को साकार करने मे सहायता मिलने की आशा बढी है।

पाचवीं योजना मे कृषि विकास के लक्ष्य एव उपलब्धिया

(Targets & Achievements of Agriculture in Fifth Plan)

पाचवी योजना मे कृषि विकास एव सिंचाई सुविधाओ के विस्तार के लिए क्रमश 4302 करोड रु० तथा 4226 करोड रु० परिव्यय का प्रावधान था और इस विकास व्यय से कृषि विकास की दर को 3 9% से बढाकर 4 67% करने का लक्ष्य था और खाद्यान्न का उत्पादन 12 5 करोड टन करने का लक्ष्य था। इसी प्रकार कृषि मे रासायनिक खादो के प्रयोगो को बढावा, पौध सरक्षण कार्यक्रमो मे तेजी तथा कृषि मे यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देना था। परिणाम स्वरूप रासायनिक उर्वरको का उपयोग 50 लाख टन करने तथा ट्रैक्टरो की पूर्ति 5 लाख करने की आशा व्यक्त की गई थी। योजना के अन्त तक विद्युतीकृत पम्प सेटो की सख्या 40 लाख करनी थी।

योजना की मध्यावधि समाप्ति के चार वर्षो मे खाद्यान्न का उत्पादन 12 5 करोड टन हुआ। उवरको का प्रयोग 1977–78 मे 42 लाख टन था। ट्रैक्टरो की सख्या भी काफी बढी है और विद्युत सचालित पम्प सेटो की सख्या भी 34 लाख होने की आशा थी।

पाचवी योजना मे सिंचाई क्षमता मे 131 लाख हेक्टर वृद्धि का लक्ष्य था किन्तु योजना के चार वर्षों मे सिंचाई क्षमता 86 लाख हेक्टर बढी। परिणामस्वरूप 1977–78 में सिंचित क्षेत्र 484 लाख हेक्टर हो गया जबकि लक्ष्य 584 लाख हेक्टर का था। प्रमुख क्षेत्रो मे लक्ष्य एव प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पांचवीं योजना में कृषि विकास के प्रमुख लक्ष्य एवं उपलब्धियां

मद	इकाई	लक्ष्य	उपलब्धियां
खाद्यान्न	करोड़ टन	12 5	12·5
तिलहन	लाख टन	120	118
गन्ना	"	165	157
कपास	लाख गांठें	80	64 3
सिंचित क्षेत्र	लाख हेक्टर	584	484
विद्युत पम्प सेट	लाख संख्या	40	34
उर्वरकों का प्रयोग	लाख टन	50	42

छठी योजना में कृषि एवं सिंचाई विकास (1978–83)

छठी योजना में कृषि एवं ग्रामीण विकास तथा सिंचाई साधनों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। तदानुसार कृषि विकास पर 8600 करोड़ रु० तथा सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण पर 9650 करोड़ रु० व्यय का प्रावधान है। परिणाम स्वरूप कृषि विकास की औसत दर 3 98% तक बढ़ाने तथा खाद्यान्न का उत्पादन 14 करोड़ टन से 14 5 करोड़ टन करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार सिंचाई साधनों के विकास से योजना के अन्त तक सिंचाई क्षमता में 170 लाख हेक्टर की वृद्धि की जायगी ताकि सिंचाई की वर्तमान क्षमता 484 लाख हेक्टर से बढ़कर योजना के अन्त तक 654 लाख हेक्टर हो जाय। छोटी सिंचाई योजनाओं से 90 लाख हेक्टर तथा बड़ी एवं मध्यम योजनाओं से 80 लाख हेक्टर अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की व्यवस्था का प्रावधान है। प्रस्तावित लक्ष्य निम्न तालिका में स्पष्ट है —

छठी योजना में कृषि एवं सिंचाई विकास के लक्ष्य (1978–83)

मद	इकाई	1977–78	1982–83 (लक्ष्य)
खाद्यान्न का उत्पादन	करोड़ टन	12 5	14 से 14 5
गन्ना	लाख टन	156 9	188
कपास	लाख गांठें	64·3	81 5 से 92 5
प्रमुख तिलहन	लाख टन	92	112 से 115
सिंचाई क्षमता	लाख हेक्टर	484	654

इस योजना से कृषि में उपलब्ध साधनों का पूर्णतम उपयोग हो सकेगा, उत्पादन में वृद्धि होगी और कृषि में व्यावसायिक दृष्टिकोण को बल मिलेगा। आशा है इसमें कृषि क्षेत्र में न केवल व्यापक रोजगार अवसर बढ़ेंगे वरन् कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होकर गरीबी के निराकरण में सहायक सिद्ध होगी।

3

कृषि विकास की नवीन व्यूह-रचना बनाम हरित क्रांति

(New Agricultural Strategy or Green-Revolution)

तृतीय पचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्याकन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि कृषि उत्पादन कार्यों मे पुनर्विचार की आवश्यकता है। अगर हम खाद्यान्न मे आत्म-निर्भर होना चाहते हैं तो उत्पादन की आधुनिक विधियो का अधिकाधिक प्रयोग तथा माग और पूर्ति मे सन्तुलन के लिए कृषि तथा विज्ञान के क्षेत्र मे होने वाली प्रगति का उपयोग करना होगा और अल्पकाल मे परिणाम प्राप्त करने के लिए नई नीति अपनानी होगी।

प्रो गाडगिल ने नवीन व्यूह रचना मे पैकेज प्रोग्राम, कम अवधि मे तैयार होने वाली फसलो तथा अधिक उपज देने वाले बीजो के सहारे सिंचाई क्षेत्रो मे अधिकाधिक उत्पादन करने पर जोर दिया है। प्रो० वी० के० आर० वी० राव ने भारतीय कृषि में तीव्र गति से प्रवेग (Dynamism) लाने पर बल दिया है। "नई व्यूह रचना भूमि, जल-शक्ति तथा अन्य आन्तारक साधनों के विकासशील क्षेत्रों मे समन्वित उपयोग से अधिकतम उत्पत्ति कम से कम समय में प्राप्त करने की अपेक्षा करती है। अत. इस नीति से सीमित साधनों का चयनित क्षेत्रो मे उपयोग कर कम से कम समय मे कृषि उत्पत्ति मे क्रातिकारी परिवर्तन लाकर वर्षा तथा प्रकृति के प्रकोपो से होने वाली अनिश्चितता को समाप्त करना है। इस तरह कृषि विकास की नवीन नीति मे निम्न तत्व पाये जाते हैं—

हरित क्रांति अथवा कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना के मुख्य तत्व
(Main Features of New Strategy of Agriculture Development or Green Revolution)

नवीन व्यूह रचना मे देश के सीमित साधनो मे अनन्त आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए कृषि उत्पादन की माग और पूर्ति के अन्तराल को पाटने मे निम्न तत्वो की प्रधानता है—

1. कृषि विकास की प्राथमिकता के क्षेत्रों का चयन—कृषि उत्पादन मे आशानुकूल वृद्धि के लिए उन क्षेत्रों मे कृषि विकास प्रयत्नो को बड़े पैमाने पर लागू

किया जायेगा, जहाँ कृषि विकास की आर्थिक सम्भावनाएँ हैं तथा जिन क्षेत्रो में *सिंचाई साधनो की पर्याप्तता है और प्राकृतिक प्रकोपो के अभाव से सुरक्षित हैं।* अधिक उपज देने वाली फसलो के उत्पादन मे ऐसे क्षेत्रो को प्राथमिकता दी जाती है। उन्नत बीजो, रसायनिक खादो तथा पौध सरक्षण का वृहत्तर उपयोग (IADP) तथा (IAAP) क्षेत्रो मे ही किया जाय, जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा, कृषि कर्मचारी तथा निर्देशनकर्ता हैं।

2 उन्नत बीजों के प्रयोग पर बल (High Yield Variety Programme)-कृषि उत्पादन म वृद्धि के लिए अधिक उपज देने वाली फसल की बुग्राई के क्षेत्र मे निरन्तर वृद्धि करना। 1968 मे 8 5 मिलियन हेक्टर क्षेत्र मे अधिक उपज देने वाली किस्मो का प्रयोग हो रहा था। चतुर्थ योजना के अन्तर्गत 15·6 मिलियन हेक्टर अतिरिक्त क्षेत्र मे फैलाया गया। 1978–79 मे 43 मिलियन हेक्टर क्षेत्र मे इन बीजो का उपयोग होने का अनुमान है। इन आर्थिक उपज देने वाली फसलो मे सिर्फ 5 फसलो मे यह कार्यक्रम लागू है। गेहू, मेक्सीकन, 64–A, सोनारा–64 और लरमा रोजो की अधिक उपज लोकप्रिय हो रही है। इसी प्रकार धान की उपज म ताईचुंग-नेटिव-1, ताईचुंग 65, तैनान-3, आई आर ए भारत मे विकसित ए. डी. टी –27, जय, पद्मा किस्मे हैं। शकर मक्का तथा शकर ज्वार भी लोकप्रिय हो गई है।

3 रासायनिक उर्वरकों के उपयोग मे तीव्र गति से वृद्धि (Increased use of Fertilizers)—भूमि की उत्पत्ति क्षमता मे वृद्धि से केवल प्रति एकड उपज मे ही वृद्धि होती है बल्कि कम समय मे तैयार होती है अत नवीन नीति मे खाद की बर्बादी को रोकने तथा रासायनिक खादो के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है। देश मे रासायनिक खाद की उत्पत्ति मे वृद्धि के लिए पूर्व स्थापित इकाइयो की उत्पादन क्षमता मे विस्तार, नई इकाइयो की स्थापना तथा आयात की नीति अपनाई गई है। जहाँ 1965–66 मे नाइट्रोजन, फॉस्फेटिक तथा पोटेशिक खाद का उपभोग क्रमश 5 50 लाख टन, 9 30 लाख टन तथा 80 हजार टन था वह 1968–69 के तीन वर्षों मे ही बढकर क्रमश 9 4 लाख टन, 4 लाख टन तथा 1 80 लाख टन होने का अनुमान है। चतुर्थ योजना के अन्त मे इसके उपभोग का लक्ष्य क्रमशः 37 लाख टन, 18 लाख टन और 11 लाख टन रखा गया था अर्थात् नाइट्रोजन के उपभोग म 5 सालो म $3\frac{1}{2}$ गुना से अधिक वृद्धि, फोसफेटिक म $4\frac{1}{2}$ गुना वृद्धि तथा पोटेशिक मे 6 गुना वृद्धि करने का अनुमान था जबकि देश मे नाइट्रोजन और फोस्फेटिक का उपभोग 1978–79 मे क्रमश 50 लाख टन का ही था। चतुर्थ योजना के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र मे उर्वरक कारखानो की सख्या 13 करने का लक्ष्य था फिर भी हम अपनी माँग का केवल 60% भाग उत्पादन करते हैं। 40% विदेशो से आयात करते है।

4 सिंचाई साधनो के प्रति नया दृष्टिकोण—सिंचाई की व्यवस्था सिर्फ अनावृष्टि, अनियमित वर्षा तथा अल्प वृष्टि से सुरक्षा के लिए ही नही बल्कि अब उसे कृषि उपज मे महत्वपूर्ण घटक माना जाने लगा है। जहाँ पहले बडी सिंचाई योजनाओ को महत्व दिया गया अब छोटी सिंचाई योजनाओ को जो शीघ्र फलदायिनी हैं अधिक बल दिया गया है। वर्षा की अनिश्चितता की समाप्ति के लिये भू गर्भ जल योजनाओ को कार्यान्वित किया जा रहा है। अमेरिकन सहायता के अन्तर्गत Spill over Tube well Projects शुरू किए गए है। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा प्राप्त क्षेत्रो को ही प्राथमिकता दिये जाने से सिंचाई का महत्व अधिक उपज की दृष्टि से बहुत बढ गया है। जहाँ 1965–66 मे लघु सिंचाई योजना से 170 लाख हेक्टर भूमि मे सिंचाई होती थी वह 1968–69 मे बढकर 190 लाख हेक्टर होने का अनुमान है तथा 1969–74 की चतुर्थ योजना के अन्त मे बढकर 202 लाख हेक्टर हो गई। 1974–78 की अवधि मे सिंचाई क्षमता 86 लाख हेक्टर बढी और 1978–79 मे सिंचाई क्षमता 520 लाख हेक्टर थी।

5 बहु फसल कार्यक्रम (Multi-cropping Programme)—नवीन व्यूह रचना का उद्देश्य केवल अधिक उपज देने वाले उन्नत बीजो के प्रयोग के विस्तार ही नही बल्कि कम अवधि मे तैयार होने वाली फसलो के उपभोग से अल्प काल मे उत्पादन वृद्धि से भी है। इससे कम अवधि मे फसल परिवर्तनो की नई पद्धति से बहु फसल कार्यक्रम को सफल बनाने मे सफलता सम्भव है। 1967–68 मे Multi-cropping Programme के अन्तगत 30 लाख हेक्टर भूमि आ चुकी थी। 1968–69 मे यह 61 लाख हेक्टर हो गया तथा 1978–79 मे इसे बढाकर 220 लाख हेक्टर कर दिये जाने का अनुमान है जैसे पद्मा और जया जैसी धान की किस्मे 90 दिन मे तैयार हो जाती हैं इसी प्रकार मेक्सीकन गेहूँ कम समय मे पक जाता है। शकर मक्का भी देशी बीज के मुकाबले शीघ्र तैयार होती है।

6 कीटाणुनाशक औषधियों का अधिकाधिक प्रयोग एव पौध सरक्षण—कृषि उत्पादन म वृद्धि के लिए चयनित क्षेत्रो मे अधिक उपज देन वाली किस्मो के उपयोग, रासायनिक खाद की उत्तरोत्तर वृद्धि से फसलो मे रोग तथा कीडे मकोडो से होने वाली हानि स सुरक्षा भी महत्वपूर्ण है। अत नवीन नीति मे पौध सरक्षण कार्यों के विस्तार पर बल दिया गया है। चतुर्थ योजना म कुल 8 करोड हेक्टर मे पौध सरक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम जसे बीजोपचार चूहों पर नियन्त्रण, फसलो के रोगो पर नियन्त्रण अनावश्यक झाडियों पर नियन्त्रण तथा गहन उपचार शामिल हैं। इसके लिए निरन्तर शोध काय करना आवश्यक होगा। महामारी नियन्त्रण एव कीटे मारने के छिडकाव काय के लिए सरकार स्वय व सामूहिक प्रयत्नो से साधन जुटायेगी। जहाँ 1965–66 म केवल 1 66 करोड हेक्टर मे पौध सरक्षण तथा कीटाणुनाशक कार्यक्रम से लाभ पहुचा वहाँ 1968–69 मे यह बढकर 5 4 करोड हेक्टर तथा 1978–79 मे 8 5 करोड हेक्टर हो गया है। कीटाणुनाशक औषधियो के उत्पादन

मे वृद्धि तथा आयात मे पर्याप्त पूर्ति के साथ साथ अनावश्यक उपकरणो की पूरी व्यवस्था का प्रावधान है। इसके अलावा तकनीकी सुविधाओ की पर्याप्त व्यवस्था, आवश्यक अनुसधान एव शोध कार्य तथा लागत मे कमी का पूरा प्रयत्न किया जायेगा। देश मे एक **पौध सरक्षण निदेशालय** की स्थापना की गई है जिसके आधीन **17 केन्द्रीय पौध** सरक्षण केन्द्र कार्य कर रहे हैं। 1978–79 मे दवाओ का उपयोग 65 हजार टन था।

7 **सहायक खाद्य पदार्थों के उत्पादन मे वृद्धि पर बल**—उत्तम स्वास्थ्य तथा शारीरिक स्वस्थता के लिए पोषक तत्वो से युक्त सन्तुलित आहार महत्वपूर्ण माना जाता है। अत नवीन नीति म खाद्यान्न के अभाव की पूर्ति के साथ साथ पोषक तत्वो की वृद्धि के लिए सहायक खाद्यान्नो की उत्पादन वृद्धि पर बल दिया है। इसके अन्तर्गत आलू शकरकन्द केले अन्य फल दूध मछली अण्डे और अन्य प्रोटीन-युक्त वस्तुओ की उत्पादन वृद्धि पर जोर दिया जा रहा है। इसके लिए सम्बन्धित क्षेत्रो पर पर्याप्त ध्यान देकर परामर्श और सुविधाएँ उपलब्ध की जाती हैं।

8 **कृषि विकास के लिए विभिन्न सस्थाओ की स्थापना**—उन्नत बीजो की पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार के पाच कृषि फाम क्रमश सूरतगढ, जेतसर, उडीसा, पजाब और हरियाणा मे स्थापित किये गए है। 1963 म राष्ट्रीय बीज निगम (National Seed Corporation) की स्थापना की गई है। कृषि के कुशल विकास के लिये कृषि उपकरणो एव मशीनो और गोदामी व्यवस्था के लिए 1965 से अब तक 13 राज्यो मे कृषि उद्योग निगम (Agro Industries Corporations) की स्थापना की गई। कृषि साख सुविधा की वृद्धि के लिए Agriculture Refinance Corporation की स्थापना 1963 मे की गई। कृषि साख मे वृद्धि के लिए अभी 14 बडे बैंको का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है। फसल ऋण प्रणाली को बढावा दिये जाने की नीति है। इसके अलावा खाद्य निगम उर्वरक साख गारन्टी निगम, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम राष्ट्रीय सरकारी विकास निगम, कृषि मूल्य आयोग और केन्द्रीय उवरक वितरण निगम के नाम उल्लेखनीय हैं। आगे भी आवश्यक सस्थाओ की स्थापना पर जोर दिया जायेगा। अब तक 4000 बीज गुणन फार्म स्थापित किए जा चुके है तथा केन्द्रीय सरकार और अधिक बीज गणन फार्म स्थापित करने को प्रोत्साहित कर रही है। मशीनें किराये पर देने वाले केन्द्रो की सख्या लगभग 300 है।

9 **भूमि सुधार एव भू-सरक्षण**—भूमि सुधार के अन्तगत जमीदारी और जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन किया जा चुका है पर फिर भी 1970–71 तक सभी म यस्थो एव बिचोलियो को समाप्त करने की नीति है। अब तक लागू किय गए भूमि सुधार क दोषो को निवारण करने के भी यथासम्भव प्रयत्न किये जाने का दृढ़ सकल्प है जिसमे कृषको को सुरक्षा स्वामित्व और शोषण से मुक्ति दिलाई जा सके। भू सरक्षण के लिय आवश्यक सर्वेक्षण और भू सरक्षण कार्यक्रमो को तेजी से विस्तार करने की नीति का अनुसरण किया गया है। 28–29 नवम्बर 1969 का

दिल्ली मे होने वाले मुख्य मन्त्रियो के सम्मेलन मे नवीन व्यूह रचना के सन्दर्भ मे भू-सुधार कार्यक्रमो मे अधिक तेजी तथा कुशलता लाने का प्रस्ताव पारित किया है। इसको सरकारी कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन तथा संगठन कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन मे भी अनुमोदित किया है। 21-सूत्रीय कार्यक्रम मे भूमि सुधारो को शीघ्रता से लागू करने के प्रभावी कदमों का समावेश था। अब जनता सरकार भी सतर्क है।

10 कृषि मे यन्त्रीकरण तथा उन्नत उपकरणो के उपयोग को बढ़ावा—नवीन नीति मे कृषि विकास के लिये उन्नत उपकरणो तथा यन्त्रो के उपयोग को बढावा देने का प्रावधान है। इससे कृषि और उद्योगो मे अधिक घनिष्ठता आयेगी। देश मे 13 कृषि उद्योग निगम (Agro Industries Corporation) मशीनो और औजारो के निमाताओ तथा किसानों मे सम्पर्क स्थापित कर औजारो तथा यन्त्रो की खरीद, मरम्मत आदि की व्यवस्था करेंगे। देश मे इन यन्त्रो तथा उपकरणो की पूर्ति मे वृद्धि का प्रयत्न भी सम्मिलित है। चौथी योजना के दौरान ट्रैक्टरो की पूर्ति म वृद्धि के लिए उद्योगो को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया है। 250 चुने हुए क्षेत्रो मे कृषि औजार केन्द्र स्थापित किये हैं जिनमे उन्नत कृषि उपकरणो का उत्पादन, मरम्मत सर्विसिंग तथा किराये पर देने की व्यवस्था है। इससे कम से कम 20% कृषको को उन्नत उपकरण औजार तथा यन्त्र देने का लक्ष्य है।

11 कृषको को उचित मूल्य की गारन्टी—कृषको को उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा तथा मूल्यो म होने वाली गिरावट से सुरक्षा प्रदान करने के लिय नवीन उचित मूल्यो की गारन्टी दी गई है। कृषि मूल्य आयोग (Agriculture Price Commission) सिफारिशो को ध्यान म रखते हुए सरकार कृषि उपज का वसूली व खरीद मूल्य निर्धारित करती है। केन्द्रीय खाद्य निगम और राज्य खाद्यान्न निगमो द्वारा सरकारी नीति को मूर्तरूप दिया जाने की चेष्टा की जाती है। मूल्य निर्धारण करते समय उपभोक्ताओ के हितो का भी पूरा पूरा ध्यान रखा जाता है। इस तरह अधिक उत्पादन की स्थिति म कृषि उपज की कम लोचदार माग के कारण होने वाली क्षति से सुरक्षा प्रदान कर किसान को अधिक उत्पादन की प्रेरणा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक लगती है। 1975 76 म खाद्यान्नो की कीमतो मे गिरावट को रोकने के लिए खाद्य निगम ने खरीद शुरू कर दी। कृषि मूल्य आयोग इस दिशा मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

12 ऊष्मा कृषि (Dry Farming) का विकास—भारत म 1380 लाख हेक्टर कृषि योग्य भूमि म से केवल 484 लाख हेक्टर भूमि ही सिंचित है और बहुप्रचारित हरित-क्रान्ति 360 लाख हेक्टर मे ही लागू हुई है जबकि 1,120 लाख हेक्टर भूमि मे हरित-क्रान्ति हो जाने पर भारत न केवल आत्म निर्भर ही बल्कि निर्यातक बन सकता है। विशेषज्ञो के अनुसार अगले 10 वर्षों मे भी भूमिगत तथा

भूमि की ऊपरी सतह के जल साधनों का उपभोग होने पर भी सिंचित भूमि का विस्तार 820 लाख हेक्टर से अधिक नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में आगामी दस वर्षों में भी 300 लाख हेक्टर भूमि का वर्षा के पानी पर ही निर्भर रहना होगा। इस कारण ऐसे क्षेत्रों में ऊष्मा कृषि (सूखी खेती) को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है। अतः नवीन नीति में ऐसे क्षेत्रों में जहां सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं ऐसी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जायगा जिनमें कम पानी की आवश्यकता होती है। सत्ता कांग्रेस के 1969 के बम्बई अधिवेशन में भी ऊष्मा कृषि के विस्तार पर बल दिया गया था। वैज्ञानिकों को यह चुनौती स्वीकार करनी है कि अगर इजराइल जैसा छोटा सा देश अपने रेगिस्तानी क्षेत्र को लहलहाते खेतों में परिवर्तित कर सकता है, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में ऊष्मा कृषि के प्रयत्न सफल हो सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि थार के रेगिस्तान में अकाल के ताण्डव नृत्य का समापन न हो सके। इसके लिये शोध एवं अनुसंधान प्रगति पर है तथा इसके बढ़ाने पर कारगर कदम उठाये जाने की नीति का अनुसरण किया जा रहा है। ऊष्मा कृषि के अनुकूल बीजों तथा आवश्यक साधनों का विस्तार किया जाना है।

13 पशु पालन विकास—पशु पालन विकास कृषि विकास का महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य अंग है। इसलिए नवीन नीति में नस्ल-सुधार, रोगों की रोकथाम, उनके पर्याप्त चारे की व्यवस्था, मुर्गी पालन, सूअर पालन, मत्स्य पालन, डेयरी उद्योग आदि को उन्नत एवं आधुनिकतम बनाने के प्रयत्नों का समावेश है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि नवीन कृषि नीति चुने हुए क्षेत्रों में जिनमें से सिंचाई की पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध हैं—चुने हुए फसलों के विस्तार, अल्पावधि फसलों के प्रचार (Short Duration Crops), अधिक उपज वाले बीजों तथा उन्नत बीजों के प्रयोग भूमि सुधार, पौध-संरक्षण कार्य-क्रमों तथा कीटाणु नाशक औषधियों के अधिकाधिक प्रयोग, लघु सिंचाई योजना के विकास, कृषि ऋण सुविधाओं के विस्तार तथा रासायनिक खाद के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि की नीति है। इसमें कृषि उत्पादन में वृद्धि की प्रेरणा निहित है। उचित मूल्य नीति का समावेश है और वैज्ञानिक पद्धतियों तथा प्रौद्योगिक ज्ञान के उपयोग से कृषि उत्पादन में कम से कम समय में अधिक से अधिक उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य है, जिस पर देश की आर्थिक समृद्धि औद्योगिक विकास और कृषि प्रगति निर्भर करती है। इस प्रकार देश के सीमित साधनों के समुचित उपयोग से कृषि क्षेत्र के बहुमुखी विकास की यह वृहत् नीति अधिक व्यावहारिक तथा शीघ्र फल देने वाली नीति है जिससे पांचवीं योजना के अन्त तक खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता, कृषि में व्यावसायिक दृष्टिकोण तथा औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्तता सम्भव हो सकेगी।

नवीन व्यूह रचना के पक्ष में तर्क (हरित-क्रान्ति के पक्ष में तर्क)

अनेक विद्वानों ने कृषि विकास की नवीन नीति की उचित, न्यायपूर्ण तथा

व्यावहारिक बताया है और उनके अनुसार भारतीय कृषि का विकास अल्प काल मे इसी नीति से सम्भव है। पक्ष मे मुख्य तर्क निम्न हैं :—

1 सीमित साधनों का सर्वोत्तम उपयोग—इस नीति मे अनुकूल क्षेत्रो मे जहाँ सिंचाई साधनो की पर्याप्त सुविधा है तथा जो दैवी प्रकोप से सुरक्षित है कृषि विकास कार्यों को वृहद् रूप मे चलाने से अधिक उत्पत्ति कम से कम समय मे सम्भव हो सकती है। दैवी प्रकोप का भय न होने से साधनो की क्षति की सम्भावना नही है।

2 अल्प काल मे खाद्यान्नों मे आत्म निर्भरता—उन्नत तथा अधिक उपज देने वाले बीजों तथा कम समय मे तैयार होने वाली फसलो के विस्तार से अधिक उत्पत्ति कम समय मे हो जायेगी। इससे 2 5 करोड टन अतिरिक्त खाद्यान्न की पूर्ति अल्पावधि में ही करना सम्भव हो सकेगा।

3 उर्वरको के उपयोग से प्रति एकड उत्पादन मे वृद्धि—उर्वरको के उपयोग से प्रति एकड उपज मे वृद्धि होगी और साथ ही कुल उत्पादन मे भी वृद्धि होगी। इससे कृषको की आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा।

4 किसानो मे कृषि के प्रति व्यावसायिक दृष्टिकोण—भारतीय किसान कृषि को व्यवसाय न मानकर जीवन-यापन का साधन मानता रहा है पर नवीन नीति उसके परम्परागत दृष्टिकोण को बदलने मे सहायक होगी। वह कृषि मे लगाये गये साधनो मे अधिकाधिक लाभोपार्जन करने को प्रेरित होगा।

5. विदेशी विनिमय की बचत—कृषि उत्पादन मे वृद्धि से खाद्यान्न तथा कच्चे माल के उत्पादन मे अल्प काल मे ही तीव्र वृद्धि भारत मे आत्मनिर्भरता नही लायेगी बल्कि निर्यात से विदेशी विनिमय प्राप्त होगा।

6 व्यापक फैलाव प्रभाव—(Wide Spread Effect)—कृषि विकास कृषि वृहत् कार्य-क्रमो के सम्भाव्य क्षेत्रो मे लागू करने तथा उनके सफल सम्पादन से ये क्षेत्र दूसरे क्षेत्र के लिये आदर्श उपस्थित करेंगे और दूसरे किसान उनकी सफलताओ से प्रेरित हो नई पद्धतियो की ओर आकर्षित होंगे। इस तरह से शनै शनै यह कार्य-क्रम दूसरे क्षेत्रो मे भी फैल जायगा। सीमित क्षेत्रो मे प्रयोग दूसरो का मार्ग-दर्शन करेंगे तथा अनुभव का लाभ उठाकर अवाछनीय गतिविधियो का अन्त होगा।

7. कृषि मे टेक्नोलोजिकल परिवर्तन का दौर—नवीन नीति मे सस्थागत परिवर्तनों की अपेक्षा टेक्नोलोजिकल परिवर्तन को अधिक महत्व दिया गया है। इस से कृषि तथा विज्ञान के क्षेत्र मे प्रगति का उत्पादन वृद्धि मे योगदान सम्भव होगा। उत्पादन के क्षेत्र मे प्रौद्योगिक परिवर्तनो को अपनाने को प्रोत्साहन मिलेगा।

8 औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति—देश मे औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति औद्योगीकरण को बढावा देगी। साथ ही उद्योगों और कृषि में घनिष्ठ सम्बन्धो की स्थापना दोनो के विकास मे परस्पर सहायक होंगे।

इस तरह कृषि विकास की नवीन नीति मे कृषि के उज्ज्वल भविष्य की

सम्भावनाए निहित हैं। देश मे उत्पादन वृद्धि कृषको की खुशहाली का मार्ग प्रशस्त कर देश के आर्थिक विकास को बढावा देगी तथा निर्धनता के अन्धकार मे समृद्धि की किरण प्रस्फुटित होगी।

हरित-क्रान्ति अथवा नवीन कृषि नीति की आलोचना

कृषि विकास की इस नवीन-नीति की मिली-जुली प्रतिक्रिया सामने आई है। जहाँ एक ओर इस नीति से कृषि विकास का अल्पकाल मे उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न सजोया है वहाँ दूसरी ओर इस नीति की सफलता से सन्देह और क्षेत्रीय विषमताओं की वृद्धि की आशका व्यक्त की गई है। य आलोचनाए निम्न हैं--

1. **क्षेत्रीय विषमता मे वृद्धि**--नवीन नीति म अनुकूल क्षेत्रो की उत्पादन-क्षमता को बढाने के लिये ही कृषि विकास कार्य क्रमो को वृहत् स्तर पर फैलाया जायगा। यह कार्य-क्रम मुख्यतया उन क्षेत्रो को ही लाभान्वित करेगा जहाँ सिचाई की पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध हैं तथा फसलो को दैवी-प्रकोप से सुरक्षा है। ऐसे क्षेत्र भारत के 520 लाख हेक्टर म हैं जबकि बाकी 1,160 लाख हेक्टर कृषि योग्य भूमि का इसको लाभ न मिल पायगा। प्रो० वी० के आर० वी० राव का मत है कि इससे क्षत्रीय विषमता म वृद्धि होगी और 6 करोड कृषक परिवारो म असन्तोष फैलेगा। सम्पन्न क्षेत्रो को अधिक सम्पन्न बनाने वाली यह नीति अविकसित क्षेत्रो की उपेक्षा करती है।

2. **समाजवादी विचारधारा के प्रतिकूल नीति**-- इस नीति से सम्पन्न क्षेत्रों म सम्पन्न कृषक परिवारो को अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो रहा है जिससे देहातो मे एक धनिक वर्ग पनप रहा है। दूसरी ओर खेतिहर मजदूरो, छोटे कृषको तथा परम्परागत पद्धति के पोषक वर्ग की आर्थिक स्थिति म स्थिरता है। इससे आर्थिक असमानता म वृद्धि हो रही है जो कि समाजवादी समाज की स्थापना के प्रतिकूल नीति है।

3. **उर्वरकों के उपयोग पर अनावश्यक बल**--श्री आर० एस० सावले (R S Savale) ने नवीन कृषि नीति की यह आलोचना की है कि इसमे उर्वरकों के प्रयोग पर सिचाई से भी अधिक बल दिया गया है जबकि सिचाई के अभाव मे उर्वरको का प्रयोग असफल ही रहेगा। अत कृषि अर्थव्यवस्था म सिचाई को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त होना कृषि विकास की दृष्टि से आवश्यक है। यह आलोचना उनके द्वारा प्रथम प्रवाह अध्ययनो के निष्कर्ष पर आधारित है।

4. **उर्वरकों की प्रस्तावित मात्रा त्रुटिपूर्ण**--प्रो० मिन्हास व श्रीनिवासन ने नवीन कृषि नीति का विश्लेषण करते हुए बताया है (योजना जनवरी 26, 1966 पेज 22) अगर 1970 71 म गेहूँ के क्षेत्र मे नियत निर्धारित नाइट्रोजन केवल नई किस्मो तक सीमित रखा गया तो अतिरिक्त उत्पादन 3·18 मि टन होगा जबकि इसे नई व पुरानी किस्मो मे वितरित करने पर अतिरिक्त उत्पादन 4 70 मिलियन टन (1 52 मिलियन टन अधिक) होगा अर्थात् उर्वरको की प्रस्तावित मात्रा को नई

किस्मो मे ही उपयोग करने से उनको सर्वोत्तम लाभ प्राप्त नही होगा। प्रो पान्से ने भी प्रस्तावित उर्वरको की मात्रा को अत्यधिक बताते हुए प्रति एकड 100 पौंड (N) के बजाय 50 पौंड (N) का उपयोग अधिक श्रेष्ठ बताया है।

5 **टेक्नोलोजिकल दृष्टिकोण के पीछे संस्थागत परिवर्तनो की उपेक्षा**—इस नीति मे औद्योगिक परिवर्तनो को सस्थागत परिवर्तनो की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है जबकि हम यह जानते हैं कि दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था, भू सुधारो के अभाव तथा भूमि-हीन किसानो के शोषण मे कृषि विकास असम्भव सा लगता है। टेक्नोलोजिकल परिवर्तनो का लाभ प्राप्त करने के लिए सस्थागत परिवर्तनो को आधार बनाना आवश्यक है। अत भूमि सुधारो पर अधिक ध्यान जरूरी है।

6. **अनुभवों तथा विफलताओं की अवहेलना**—1960-61 से चलाये गये सघन जिला कृषि कार्यक्रम (Intensive District Agricultural Programme) के रोबर्टसन, सेनी व शर्मा के अध्ययन से पता चलता है कि उत्पादन मे वृद्धि आशानुकूल नही रही है। इसमे प्रशासनिक अकुशलता, विलम्ब तथा भ्रष्टाचार के कारण प्रगति लक्ष्यो से कम रही है। अतः इस नीति मे पुन IDAP और IAAP क्षेत्रो मे कृषि विकास कार्यक्रमो को चालू करने की नीति मे अनुभवो की अवहेलना का सकेत है और इस नीति से लक्ष्यो की प्राप्ति मे सन्देह है।

7. **भारतीय परिस्थितियो मे विदेशी किस्मों के बीजो के प्रयोग तथा अनुभव का अभाव**—प्रो पान्से के अनुसार विदेशी किस्म के बीजो को भारत मे अपर्याप्त अनुभव व अपर्याप्त प्रयोगो के आधार पर लागू करने मे तथा आवश्यक वैज्ञानिक आक्डो के अभाव मे उन बीजो की अधिकाधिक बुआई खतरे से खाली नही है। अत आगे चलकर कठिनाई मे फसने की अपेक्षा अभी अनुभवो से शिक्षा लेकर डग भरना उपयुक्त है।

8 **कृषि पडतो (Inputs) की पूर्ति तथा वितरण की समस्या**—नवीन नीति मे अधिक उपज देने वाले बीजो, कम समय मे तैयार होने वाली फसलो, रासायनिक खाद, कीटाणुनाशक औषधियो, औजारो, साख तथा सिचाई के विस्तार पर बल दिया है पर उनकी पूर्ति बढाये बिना कुशल एव शीघ्र वितरण के बिना सफलता मे सन्देह है। वर्तमान प्रशासनिक ढिलाई भ्रष्टाचार, विलम्ब, असमान वितरण, ऊचे मूल्य तथा कृषि पडतो की अपर्याप्त पूर्ति मे इन साधनो की उपलब्धि होना एक चुनौती है। ऐसी स्थिति मे नवीन नीति के सफल कार्यान्वयन मे सन्देह स्वाभाविक है।

नवीन नीति की उपर्युक्त आलोचनाओ मे कुछ सत्यता अवश्य है पर अगर हमे सीमित साधनो के उपयोग से कृषि विकास के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना है और कृषको मे एक नई चेतना, प्रगतिशील दृष्टिकोण तथा परम्परावादी कृषि-पद्धति से छुटकारा दिलाना है तो यह नीति भारतीय कृषि को उन्नति की ओर अग्रसर करने का महत्वपूर्ण कदम है।

हरित-क्रान्ति अथवा कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना की सफलता का मूल्यांकन

अथवा

हरित क्रान्ति कहां तक हरी है ?
(How much Green is the Green Revolution)

तृतीय पचवर्षीय योजना मे कृषि क्षेत्र की अप्रत्याशित असफलता को दृष्टिगत रखते हुए कृषि विकास की नवीन नीति (व्यूह रचना) अपनाई गई जिसके अन्तर्गत सीमित साधनो के चयनित प्रयोग व उत्पादन मे वैज्ञानिक विधियो के प्रयोग मे अल्पकाल मे ही कृषि उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि पर जोर दिया गया। इस प्रकार हरित क्रान्ति की शुरूआत 1966–67 से हुई और कृषि क्षेत्र मे 12 वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस अल्प अवधि मे कृषि क्षेत्र मे उन्नत व अधिक उपज देने वाली फसलो के विस्तार, रासायनिक उर्वरको व कीटाणुनाशक दवाइयो के उपभोग मे वृद्धि, मध्यम व लघु सिंचाई योजनाओ के कार्यान्वयन से सिंचित क्षेत्र की अभिवृद्धि तथा कृषि के वैज्ञानिकीकरण व यन्त्रीकरण के द्वारा न केवल कृषि उत्पादन मे तीव्र वृद्धि हुई है वरन् कृषको मे व्यावसायिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ है। कृषि क्षेत्र मे हरित-क्रान्ति की सफलता निम्न तथ्यो से स्पष्ट है—

1 खाद्यान्न उत्पादन मे तीव्र वृद्धि—जहा 1965–66 मे खाद्यान उत्पादन केवल 7 2 करोड टन था वह बढकर 1973–74 मे 7 47 करोड टन तथा 1978-79 मे ही 12·8 करोड टन होने का अनुमान है। केवल 12 वर्षो मे खाद्यान्न उत्पादन मे 5 6 करोड टन की वृद्धि हुई है जबकि इतनी वृद्धि 1950–65 के 15 वर्षो मे नही हो पाई थी। छठी योजना म खाद्यान्न का उत्पादन लक्ष्य 14 से 14 5 करोड टन रखा गया है। वैसे तो देश 1970–71 तक खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाता पर अकाल, प्राकृतिक प्रकोपो व जनसख्या म विस्फोटक वृद्धि के कारण अब भी विदेशो से खाद्यानो का आयात करना पड रहा है।

2 सिंचित क्षेत्र का विस्तार—पिछले 8 वर्षो मे सिंचित क्षेत्र मे भी काफी वृद्धि हुई है। 1965–66 म सिंचित क्षेत्र 3 22 करोड हेक्टर था वह बढकर अब 5 2 करोड हेक्टर हो गया है। छठी योजना मे मध्यम व बडी सिंचाई योजनाओ के 80 लाख हेक्टर तथा लघु सिंचाई योजनाओ से 90 लाख हेक्टर अतिरिक्त भूमि मे सिंचाई होने से कुल सिंचित क्षेत्र 1982–83 तक 654 लाख हेक्टर हो जायेगा।

3 व्यापारिक फसलों के उत्पादन में वृद्धि—देश मे औद्योगिक कच्चे माल व निर्यात के लिए व्यापारिक फसलो के उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है। कपास, गन्ना, जूट तथा तिलहन की उत्पादन वृद्धि अग्रांकित तालिका 3 में स्पष्ट है।

4 यन्त्रीकरण—कृषि यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिला है। जहा 1956 मे देश मे विद्युत पम्प सेटो की सख्या 47 हजार थी वह संख्या 1970-71 से बढकर 16 91

लाख तथा 1978–79 मे 35 लाख हो गई है। इसी प्रकार ट्रैक्टरो की कुल माग 1966–67 मे 20 हजार थी वह बढकर 1970–71 मे 40 हजार तथा अब 4 लाख है। पाचवी पचवर्षीय योजना मे विद्युत पम्पसेटो की सख्या 40 लाख तथा ट्रैक्टरो की माग 5 लाख तक बढ जाने का लक्ष्य था। इसी प्रकार शक्ति सचालित हलो का प्रयोग 10 हजार से 1 लाख होने का अनुमान था।

5 रासायनिक उर्वरकों का उपयोग—पिछले 8 वर्षों मे रासायनिक खादो के उपभोग मे भी क्रान्तिकारी वृद्धि हुई है। 1965–66 मे रासायनिक खादो का कुल उपयोग 7·6 लाख टन था वह बढकर 1970–71 मे लगभग 21 लाख टन तथा 1974–75 तक 27 लाख टन तथा 1978–79 तक 50 लाख टन होने का अनुमान है। छठी योजना मे उर्वरको का उपयोग बढाकर 78 लाख टन करने का लक्ष्य है।

6 पौध संरक्षण एवं कीटाणुनाशक दवाइयो का प्रयोग—पौधो को कीटाणुओ से नष्ट होने से बचाने के लिए पौध सरक्षण कार्यक्रम मे तेजी आई है। जहा 1965-66 मे 16 6 लाख हेक्टर में पौध-सरक्षण किया गया वहा चतुर्थ योजना के अन्त तक 650 लाख हेक्टर क्षेत्र मे पौध-सरक्षण लागू था। अभी देश मे लगभग 65 हजार टन कीटाणुनाशक दवाओ का प्रयोग होता है तथा उसके अन्तर्गत 850 लाख हेक्टर क्षेत्र था।

7 उन्नत बीजों व अधिक उपज देने वाली फसलो का क्षेत्र विस्तार—कृषि उत्पादन मे वृद्धि के लिए उन्नत बीजो व अधिक उपज देने वाली फसलो के क्षेत्र मे वृद्धि की गई है। जहाँ 1965–66 मे अधिक उपज देने वाली फसलो का क्षेत्र नगण्य था वह बढकर 1969–70 मे 114 लाख हेक्टर तथा 1978–79 मे 430 लाख हेक्टर हो गया है।

8 विविध—बहु-फसल कार्यक्रम के अन्तर्गत भी 1968–69 मे 61 लाख हेक्टर था, वह 1978–79 मे बढकर 220 लाख हेक्टर होने का अनुमान है। इसी प्रकार 5 2 करोड हेक्टर मे चकबन्दी का कार्य पूरा हो चुका है। भूमि सरक्षण का लाभ अब 25 लाख हेक्टर क्षेत्र मे हो रहा है। 1978–79 तक 25 लाख हेक्टर क्षेत्र को भूसरक्षण का लाभ मिला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले 12 वर्षों मे हरित-क्रान्ति से कृषि क्षेत्र मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। एक दृष्टि मे प्रगति व सफलता अग्र सारणी से स्पष्ट है—

तालिका—3

हरित क्रान्ति की सफलता और कृषि विकास (एक दृष्टि मे)

विवरण	इकाई	1965-66	1968-69	1973-74	1978-79
कृषि उत्पादन का सूचनाक	(1949=100)	158	160	198	221
खाद्यान्न उत्पादन	करोड टन	72	9 4	10 47	12 8
तिलहन	लाख टन	63	8 5	94	134 4
गन्ना	लाख टन	131	120	140 8	175 0
कपास	लाख गाठें	48	60	63	72
जूट एव मेस्टा	लाख गाठें	45	62	76	70
रासायनिक उर्वरको का उपयोग	लाख टन	76	17 6	19 7	50
सिंचित क्षेत्र	करोड हक्टर	3 22	3 6	4 30	5 2
पौध सरक्षण कार्य	लाख हक्टर	166	400	630	850
अधिक उपज देन वाली फसलें	लाख हेक्टर	—	92	259	430

यद्यपि उपर्युक्त तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि हरित क्रान्ति काफी सफल रही है इसके विपरीत इस नीति के आलोचको का कहना है कि हरित क्रान्ति केवल गेहू, बाजरा तथा चावल आदि कतिपय वस्तुओ म ही सफल रही है बाकी फसलो मे यह विफल रही है। कृषि मूल्य आयोग ने भी आलोचना करते हुए लिखा है कि कृषि उत्पादन म तीव्र गति से वृद्धि अनुकूल मौसम, कृषि क्षत्र के विस्तार तथा अन्य अनुकूल परिस्थितियो के कारण हुई है। हरित-क्रान्ति के कारण उत्पादन वृद्धि बहुत कम रही है।

यही नही हरित-क्रान्ति का लाभ अधिक समृद्ध वर्गों व कृषको तक ही सीमित रहा है। गरीब कृषको व भूमिहीनो की दशा मे विशष सुधार नही हुआ है। क्षेत्रीय विषमताओ मे वृद्धि हुई है जो कि राजनैतिक एव आर्थिक दोनो ही दृष्टियो स अवांछित है। अन्दाज स उवरको के प्रयोग से कृषि योग्य भूमि बेकार हुई है।

इन आलोचनाओ के बावजूद भी तथ्यो को नजरदाज नही किया जा सकता। पिछले आठ वर्षों म कृषि उत्पादन म जो तीव्र वृद्धि हुई है उससे कृषि क्षेत्र म एक नीरव क्रान्ति आई है। हरित क्रान्ति क कारण कृषको म वैज्ञानिक व व्यावसायिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ है। देश खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ है। कृषि म यन्त्रीकरण का बोलबाला है। समूचे प्रयत्नो का लाभ यह रहा है कि कृषको की समृद्धि बढ़ी है।

कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना के सफल कार्यान्वयन की शर्तें एवं सुझाव
(Conditions & suggestions for Successful Implementation of the New Strategy of Agricultural Development)

कृषि विकास की नवीन नीति की असफलता उसके कार्यान्वयन मे कुशलता, ईमानदारी, जन-सहयोग तथा सस्थागत परिवर्तनो की उपयुक्तता और समन्वय पर निर्भर करती है। हरित क्रान्ति की नीति की सफलता की मुख्य शर्तें एव सुझाव निम्न है—

1 मिट्टी के पर्यवेक्षण के आधार पर बीजों का प्रयोग—भारत की विशालता मे मिट्टी की विभिन्नता पाई जाती है। भिन्न-भिन्न मिट्टियो मे उपज की भिन्नता के साथ अच्छे बीजो के समान रूप से सफलता की कल्पना करना त्रुटिपूर्ण है। अत मिट्टी के पर्यवेक्षण के आधार पर ही उसके अनुकूल बीजो का उपयोग अनावश्यक क्षति से सुरक्षा प्रदान करेगा।

2 उर्वरकों की पूर्ति तथा उद्योग मे उचित मार्ग-दर्शन—नई नीति के अच्छे परिणामो की प्राप्ति के लिए उचित समय पर उचित उर्वरको की पर्याप्त पूर्ति उचित मूल्यो पर हो जाना आवश्यक है। इसके लिए उर्वरको का आवश्यक उत्पादन एव आयात, मूल्यो की कमी वितरण मे कुशलता तथा आवश्यक तकनीकी मार्ग-दर्शन मिलना जरूरी है।

3. विभिन्न विभागो मे समन्वय एव सहयोग—इस नीति की सफलता के लिए कृषि विकास से सम्बद्ध सभी विभागो मे—सरकारी विभागो, पचायतो, सहकारी सस्थाओ तथा अन्य सस्थाओ मे समन्वय एव सहयोग होना चाहिये जिससे अनावश्यक विलम्ब से छुटकारा तथा कुशलता मे वृद्धि हो सके।

4 कृषि मूल्यो मे स्थिरता तथा गारन्टी—नवीन कृषि नीति मे अधिक जोखिम है। अत इस नीति की सफलता के लिए कृषि मूल्यो मे यथा सम्भव स्थिरता लाकर कृषको को सम्भावित हानि से सुरक्षा का आश्वासन होना चाहिए।

5. कृषि वित्त तथा ऋण सुविधाओ का विस्तार—भारत के गरीब किसानो को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध होने पर ही रासायनिक खाद, उन्नत बीज, कीटाणुनाशक औषधियो, कृषि उपकरणो का उत्तरोत्तर उपयोग सम्भव होगा। अत कम ब्याज दर पर पर्याप्त ऋण उपलब्ध किये जाने चाहियें।

6 पौध सरक्षण के प्रभावी प्रयत्न—उन्नत बीजो, रासायनिक खादो तथा तकनीकी मार्ग दर्शन म कृषि उत्पत्ति मे तभी वृद्धि होगी जबकि फसलो को बीमारियो से बचाया जा सके तथा कीटाणुनाशक औषधियो से पौध सरक्षण सम्भव हो। अत. नवीन नीति की सफलता के लिए समय पर कीटाणुनाशक औषधियाँ उपलब्ध करना, पौध सरक्षण के सम्बन्ध मे अनुसन्धान तथा किसानो को उन्हे अपनाने को प्रेरित

करना होगा। उचित मूल्यों पर कुशल वितरण भी होना आवश्यक है। इस दिशा में फसल बीमा योजना अपनाना उपयुक्त होगा।

7 भूमि सुधार कार्यक्रमों में तेजी—यद्यपि देश को स्वतन्त्र हुए काफी लम्बी अवधि बीत चुकी है पर भूमि सुधार कार्यक्रमों में अनेक कमियाँ रहने से अभी भी ऊँचे लगान, बेदखली, भूमिहीनों को शोषण, स्वामित्व अधिकारों का अभाव कृषि विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। अत भूमि-सुधार कार्यक्रमों में तेजी लाकर उनको कुशलता तथा सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना चाहिये।

8 निर्धन किन्तु प्रगतिशील किसानों को प्रोत्साहन—समाजवादी समाज की स्थापना के लिए बहुसख्यक, निर्धन किन्तु प्रगतिशील किसानों को सभी प्रकार की रियायतें तथा सुविधाएं देकर नवीन नीति को क्रियान्वित करने में प्रोत्साहन देना चाहिये। इससे सम्पन्न वर्गों के साथ निर्धन वर्ग के लोगों को भी अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने का अवसर मिलेगा। इससे सामाजिक समानता तथा वर्ग सहयोग बढ़ेगा।

9 प्रशासनिक कुशलता—नवीन नीति की सफलता के लिए प्रशासन के सभी स्तरों पर ढिलाई, भ्रष्टाचार और अनावश्यक विलम्ब को समाप्त कर कुशलता लानी चाहिए। इन कार्यों में सलग्न अधिकारियों को प्रगति के विकास से सम्बद्ध करना चाहिए जिससे वे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनावें।

10 अविकसित क्षेत्रों में भी यथासम्भव विकास कार्यों को प्रोत्साहन देना चाहिये तथा वहा जन-जागृति से नई चेतना उत्पन्न कर कृषि विकास में प्रेरित करना चाहिये। निर्णय राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित न होकर आर्थिक दृष्टि से प्रेरित होने चाहिए। सिचाई का अन्य क्षेत्रों में विस्तार कर उनसे भी नई फसलों का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना हरित-क्रान्ति (Green Revolution) की सफलता के लिये एक महत्वाकांक्षी एव व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। सस्थागत परिवर्तनों, सिचाई के साधनों के विकास एव विस्तार, वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद रासायनिक खादों एव उन्नत बीजों का उपयोग तथा टेक्नोलोजिकल परिवर्तन को अपनाने में हमारा व्यवहार एव क्रियान्वयन के प्रति दृष्टिकोण सैद्धान्तिक व वेनोचदार न होकर प्रगतिशील, समाजवादी एव व्यावहारिक होना चाहिए। नीति की सफलता जनसहयोग तथा सरकार द्वारा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का क्या महत्व है? और पचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के लिये किये गये प्रयासों का मूल्याकन कीजिये।

(सकेत—भारत में कृषि के महत्व को बताकर दूसरे भाग में पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कृषि विकास का मूल्याकन करना है)।

2. भारतीय कृषि के पिछड़े होने के क्या-क्या कारण हैं, योजनाबद्ध विकास के अन्तर्गत कृषि की प्रगति का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

भारत मे कृषि विकास के मार्ग मे मुख्य-मुख्य कठिनाइयाँ क्या-क्या हैं ? पच-वर्षीय योजनाओ मे इन कठिनाइयो को दूर करने के लिए क्या-क्या कदम उठाये गये हैं और वे कहाँ तक सफल रहे हैं ?

(सकेत—कृषि विभाग की मुख्य बाधाओ का प्रथम भाग मे विवेचन करके दूसरे भाग मे योजनाओ के अन्तर्गत कृषि की प्रगति का मूल्यांकन देना है।)

3. कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना से आप क्या समझते हैं ? यह नीति कृषि विकास मे कहाँ तक सहायक सिद्ध हुई है ? 1980

अथवा

हरित-क्रान्ति से आप क्या समझते हैं ? हरित-क्रांति कहा तक हरी है ?

(संकेत—कृषि की नवीन व्यूह-रचना (हरित-क्रान्ति) का अर्थ बताकर उसकी विशेषताए बताना है तथा दूसरे भाग मे कृषि विकास का मूल्यांकन देना है कि 1965 के बाद प्रति एकड़ उत्पादन, कुल उत्पादन व स्वरूप मे तीव्र गति से परिवर्तन आया है।

4 "भारत मे कृषि असफल रही है उसको सफल होना है" इस परिप्रेक्ष्य मे कृषि के विकास का मूल्यांकन कीजिये।

(संकेत—विभिन्न योजनाओ मे कृषि विकास पर भारी व्यय के बावजूद भी कृषि उत्पादन कम रहा है अत सफलता के लिये प्रभावी प्रयासो का उल्लेख कीजिये तथा भावी सुधार के सुझाव दीजिये।)

1981 5. भारत मे हरित-क्रान्ति से आप क्या समझते हैं ? इसकी सफलताओ एव असफलताओ की विवेचना कीजिये। (Raj IIIyr B Com 1979)

(सकेत—हरित-क्रान्ति का अर्थ देकर उसकी विशेषताए सक्षेप मे बताइये। फिर दूसरे भाग मे उसकी उपलब्धियाँ "हरित-क्रान्ति कहा तक हरी" शीर्षक की सामग्री देना है और तीसरे भाग मे आलोचनाये देना है।)

भारत में भूमि-सुधार

(Land Reforms In India)

(राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में)

किसी भी कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था मे कृषि उत्पादन व कृषकों की समृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ भूमि-व्यवस्था (Land Tenure System) कैसी है, कृषकों व भू-स्वामियों मे पारस्परिक सम्बन्ध अधिकार व उत्तरदायित्व क्या है ? लगान निर्धारण व वसूली का क्या ढग है ? भू सीमा क्या है ? जोतों की सुरक्षा कितनी है तथा कृषि का पुनर्गठन कितना कुशल है ? जिस देश मे समूची अर्थव्यवस्था की समृद्धि का आधार ही कृषि हो उनमें भूमि-सुधारों की आवश्यकता सर्वाधिक होता है ।

भूमि सुधार का आशय

भूमि-सुधार शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है जिसके अन्तर्गत वे सुधार आ जाते है जो भूमि-व्यवस्था (*Land Tenure System*), भूमि के स्वामित्व, अधिकार, दायित्व, जोतों के आकार, जोतों की सुरक्षा, लगान निर्धारण व वसूली की बाबत व्यवस्था, सहकारी कृषि, चकबन्दी, कृषि का पुनर्संगठन आदि से सम्बन्धित होते है । भूमि-व्यवस्था का अभिप्राय, भूमि पर स्वामित्व तथा भूमि पर वास्तविक खेती करने वाले के अधिकार व दायित्वों की व्याख्या करना होता है ।

भूमि सुधार का उद्देश्य एव महत्व

विद्वान सुकरात के शब्दों मे 'जब खेती फलती-फूलती है तो उद्योग-धन्धे पनपते हैं और जब भूमि बजर छोड़ दी जाती है तो अन्य धन्धे भी अस्त हो जाते है ।" भारत के सन्दर्भ मे यह कथन सत्य उतरता है । दूसरे शब्दों मे कृषि क्षेत्र की समृद्धि बहुत कुछ भूमि-व्यवस्था की उपयुक्त प्रणाली पर निर्भर करती है क्योंकि भूमि का स्वामित्व रेत को सोने मे परिवर्तित कर देता है । कृषि कार्य मे कुशलता आती है, उत्पादकता बढती है तथा कृषि के विकास मे समूची अर्थव्यवस्था के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है । डा० राधाकमल मुकर्जी का यह कथन "भारतीय कृषकों का जीवन-स्तर तब तक उन्नत नहीं किया जा सकता जब तक कि भूमि प्रणाली मे ऐसा परिवर्तन नहीं किया जाय जिससे कृषकों को अधिक कुशल कृषि करने का अवसर

मिले" युक्तिसगत है । यही नही भूमि सुधारो का सामाजिक परिवर्तनो व सामाजिक न्याय से भी गहरा सम्बन्ध है । अत भूमि सुधारो के उद्देश्य व महत्व को निम्न-शीर्षको के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(i) कृषि विकास—भूमि-सुधारो मे वास्तविक कृषको को भू-स्वामित्व सौंपने मे उत्पादन मे वृद्धि, कुशलता व पर्याप्तता सम्भव है। "जमीन उसकी जो जमीन जोते" का नारा कार्यरूप मे परिणत करने मे ही भूमि, श्रम व पूँजी का आदर्श सयोग सम्भव होगा ।

(ii) आय तथा अवसर की सामाजिक असमानता दूर करने से एक समाजवादी अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय उद्देश्य पूरा होता है ।

(iii) कृषको को शोषण से मुक्ति मिल जाती है क्योकि जोत की सुरक्षा, लगान का उचित निर्धारण, व न्यायोचित वसूली, अनुपस्थित जमीदारो का उन्मूलन सभी सुधार इस दिशा मे सहायक सिद्ध होते है ।

(iv) भूमि का समान वितरण आर्थिक विषमता को कम करता है और यह सामाजिक समानता का मार्ग प्रशस्त करता है ।

(v) भूमि-धारण व काश्तकारी अधिकारो से सम्बन्धित दोषो का निराकरण करना ताकि कृषि मे कुशलता आ जावे ।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सुधार के मुख्य उद्देश्य कृषि की सरचना के कारण पैदावार के मार्ग मे आने वाली अडचनो को दूर कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना जिससे कृषि उत्पादन व कुशलता दोनो बढे और समाज मे असमानता का उन्मूलन हो । इसलिये भूमि सुधारो के अन्तर्गत मध्यस्थो के उन्मूलन पट्टेदारी की सुरक्षा, लगान का नियन्त्रण, जोतो की सीमा बन्दी, चकबन्दी तथा खेतो क पुनर्सगठन का प्रयास किया गया है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत मे प्रचलित भूमि-व्यवस्था

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत मे अग्रेज शासको ने भूमि-व्यवस्था की ऐसी दोषपूर्ण प्रणाली को सुदृढ बना दिया था कि जागीरदारी व जमीदारी प्रथा कृषको के शोषण मे सक्रिय थी । किसान जमीदारो की कृपा के पात्र व साधनहीन बन गये थे । उनको कभी भी भूमि से बेदखल करना सम्भव था । पट्टे धारण की सुरक्षा नाममात्र की थी । ऊचे लगान लेना सामान्य था । भू धारण की तीन प्रणालिया मुख्य रूप मे कृषि, विकास की जड़ता के लिये उत्तरदायी थी । भूमि-व्यवस्था की मुख्य प्रणालिया निम्न थी—

1 रैयतवाडी प्रथा (Ryotwari System)—यह प्रथा थॉमस मुनरो द्वारा सर्व प्रथम 1772 मे मद्रास मे लागू की गई । यह प्रथा धीरे-धीरे बम्बई, बरार, आसाम, मध्य प्रदेश आदि मे प्रचलित हो गई थी । इस प्रथा के अन्तर्गत किसान और सरकार का सीधा सम्बन्ध था, किसान स्वय खेतो का लगान सरकारी खजाने मे

जमा करवाता और लगान न देने की स्थिति मे बेदखल किया जा सकता था। पर धीरे-धीरे सरकार और किसान के बीच मे मध्यस्थ पनपते गये और काश्तकार व उप-काश्तकार बन गये जिसमे शोषण होना स्वाभाविक था। 1947 मे यह प्रथा मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र व मध्य-प्रदेश मे प्रचलित थी।

2 महलवाडी प्रथा (Mahalwari System)—यह प्रथा 1833 मे आगरा व अवध मे लागू की गयी पर बाद मे पजाब, मध्य प्रदेश के कुछ भागो मे प्रचलित हुई। *इस प्रथा के अन्तर्गत सम्पूर्ण गाव को एक इकाई के रूप मे मानकर उस गाव के* किसानो का लगान निर्धारित किया जाता। वे सब सयुक्त व व्यक्तिगत रूप मे एक मुखिया (नम्बरदार) के माध्यम से मालगुजारी सरकारी कोष मे जमा करवाते। भूमि पर सभी गाव वालो का सयुक्त स्वामित्व माना गया था। यद्यपि इस प्रथा मे रैयतवाडी के समान ही किसानो को अपनी भूमि हस्तान्तरण व उपयोग का अधिकार था पर इसमे भी बडे बडे किसानो ने भूमि पर खुद काश्त न कर उपकाश्तकारो को जन्म दिया।

3 जमींदारी प्रथा (Zamindari System)—इस प्रथा का श्री गणेश लार्ड कार्नवालिस द्वारा 1793 मे किया गया। इस प्रथा के अन्तर्गत एक निश्चित भू-राजस्व के बदले मे जमीदारो का स्वामित्व अधिकार सौप दिये गये। जमीदार भूमि-स्वामी के रूप मे स्वय भूमि को नही जोतता था पर लगान पर उठा देता था। इस प्रकार किसान और सरकार के बीच मध्यस्थ उत्पन्न हो गये। अग्रेज शासको ने जमीदारी प्रथा को इसलिये लागू किया था कि सरकारी आय मे निश्चितता व स्थिरता आयेगी, भूमि मे सुधार से कृषि का विकास होगा और एक ऐसे वर्ग का निर्माण होगा जो अग्रेजो के स्वामिभक्त सेवक के रूप मे उनके शासन की जडे मजबूत बनायेंगे। अग्रेजो का अन्तिम उद्देश्य पूरा हुआ।

जमींदारी प्रथा के दोष-दुष्प्रभाव

जमीदारी प्रथा मे ऐसे अनेक दोष उत्पन्न हो गये कि भारतीय कृषि के विकास का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। जमीदारी व जागीरदारी प्रथा के निम्न दोष थे —

1 कृषको का शोषण—जमीदारी प्रथा मे जमीदार किसानो से मनमाना लगान वसूल करने लगे। चूंकि भूमि पर जमीदारो का स्वामित्व था अत वे बेदखल करने मे स्वतन्त्र थे और इस कारण कृषक उन जमीदारो की दया पर आश्रित थे। इस आश्रितता के कारण जमीदार बेगार लेते थे। ऋणो पर मनमाना ब्याज वसूल करते थे। अनेक प्रकार की लागतें व भेंट लेते थे। इस प्रकार जमीदार व उनके कर्मचारी सभी कृषको का शोषण करने मे व्यस्त थे।

2 सरकार व जनता मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध विच्छेद हो गया और दोनों के बीच एक खाई बढती चली गई। जमीदार ही सर्वेसर्वा प्रतिनिधि था और वह सरकार को जनता के कष्टो से अवगत कराना तो दूर रहा अपने जुल्मो को बढ़ाता ही चला गया।

3. मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन—किसानो पर जमीदारों के अत्याचारो, बेदखली आदि के विरुद्ध झगड़ो मे मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन मिला। इससे कृपको मे ऋणग्रस्तता बढती ही गई।

4 कृषि का पतन—कृपको के शोषण, मुकदमेबाजी, बेदखली व भू-धारण की अनिश्चितता मे कृपक भूमि विकास मे कोई रुचि नही लेते थे और न कोई विनियोग ही करने मे पहल करते थे। परिणामस्वरूप भूमि की उत्पादन-शक्ति निरन्तर गिरती ही गई।

5 आर्थिक जडता—जमीदारी प्रथा ने कृषि विकास का मार्ग ही अवरुद्ध नही किया वरन् समाज मे ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो परजीवी बन कर विलासिता के कारण नैतिक पतन की ओर अग्रसर हुआ। जो कुछ आय थी उसे अनुत्पादक कार्यों मे लगाते थे। विकास कार्यों मे कोई रुचि नहीं थी। अत अर्थव्यवस्था मे स्थिरता आ गई।

6 सरकारी आय में स्थिरता—यद्यपि अग्रेजो ने एक निश्चित आय के लिये जमीदारो को भू-स्वामित्व अधिकार दिए पर विकास व परिस्थितियो के अनुसार उसमे वृद्धि नही हुई। जमीदार किसानो से तो मनमाना लगान वसूल करते थे पर सरकारी खजाने मे एक निश्चित राशि देते थे तथा बची रकम को वे विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने मे लगाते थे। अत सरकारी आय मे स्थिरता आ गई।

7 मध्यस्थो की भरमार—जमीदारी प्रथा मे बडे जागीरदारो ने अपने अधिकारो को छोटे-छोटे जागीरदारों मे हस्तान्तरित किया और बदले मे कुछ लाभ लेने लगे। परिणामस्वरूप मध्यस्थो की एक शृ खला बढ़ती ही गयी यहाँ तक कि जमीदार व किसान के बीच 50 से अधिक बिचौलिये बन गये इससे शोषण भी बढना स्वाभाविक था।

8. असन्तोष मे वृद्धि—कृपकों के शोषण, जमीदारो के अत्याचारों, बेगारो व नैतिक पतन के कारण जमीदारो के विरुद्ध जनता का विरोध निरन्तर बढ रहा था। यही नही, जमीदार भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के सेनापतियो के विरुद्ध दमनकारी नीति अपनाकर उन्हें कुचलने मे भरसक प्रयत्नशील थे। इससे भी जनता मे इन देशद्रोहियो के प्रति रोष बढता जा रहा था।

9 नैतिक पतन—जमीदारी प्रथा मे जागीरदारो को परोपजीवी बनने का सौभाग्य मिला। वे कृपको का मनमाना शोषण करते थे इससे बिना कमाई आय से उनको विलासिता के जीवन—शराबखोरी, वेश्यावृत्ति आदि को बढावा मिला इससे ग्रामीण जीवन सर्वथा नारकीय बनता गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में भूमि सुधार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश मे भूमि-सुधारो का व्यापक कार्यक्रम अपनाया गया है जिससे न केवल दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था का समापन हुआ है वरन् प्रगतिशील

कृषि का मार्ग प्रशस्त हुआ है। मध्यस्थों के अन्त से कृषकों को शोषण व अत्याचारों से मुक्ति मिली है। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत किए गए भूमि-सुधारों का अध्ययन की दृष्टि से निम्न तालिका के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और विवरण बाद में दिया जा रहा है—
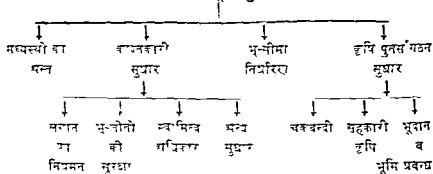
1 जमींदारी प्रथा का उन्मूलन व मध्यस्थों का अन्त

जमींदारी प्रथा के अनेक दोषों के कारण जनता का विरोध उनके प्रति बहुत पहले से पनप रहा था। 1928 में ही झांसी कांग्रेस में प. नेहरू ने जमींदारी प्रथा के समापन का प्रस्ताव किया था। 1935 में पुनः माग की गई पर अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को बनाये रखा। आजादी के बाद 1948 में कृषि सुधार समिति ने यह सिफारिश की कि भूमि पर स्वामित्व किसान का होना चाहिये और जिन व्यक्तियों ने 6 वर्ष तक किसी भू खण्ड पर खेती की है उन्हें उस भूमि का स्वामी मान लेना चाहिये तदनुसार मध्यस्थों के उन्मूलन का निर्णय किया गया।

देश के लगभग 40 क्षेत्र में जमींदार, जागीरदार, बटाईदार व बिचौलिये थे, अब तक विभिन्न राज्यों में पारित अधिनियम से मध्यस्थों के उन्मूलन का कार्य लगभग पूरा हो चुका है। परिणामस्वरूप दो करोड़ से भी अधिक काश्तकार भूमि के स्वयं मालिक बन गए तथा उनका सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया है। मध्यस्थों की बहुत सारी परती भूमि भी सरकार के हाथ में आ गई। उसकी लगभग 57·7 लाख हेक्टर भूमि को एक करोड़ से अधिक भूमिहीन किसानों में बांट दिया गया है। जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए विभिन्न राज्यों ने जो अधिनियम पारित कर भूमि अधिग्रहण की है उसके बदले में 641 करोड़ रु. मुआवजा देना तय हुआ है जिसमें 421 करोड़ रु. भूमि का मुआवजा, 92 करोड़ रु. पुनर्स्थापित सहायता व 128 करोड़ रु. ब्याज के रूप में देना पड़ेगा। अब तक लगभग 350 करोड़ रु. का मुआवजा दिया जाने का अनुमान है।

यद्यपि कुछ राज्यों में भूमि अधिकार सम्बन्धी अपर्याप्त रिकार्ड व कुशल कर्मचारियों के अभाव में मध्यस्थों के समापन में कठिनाई आई है। क्षतिपूर्ति का भी

सरकार पर भारी दबाव पड़ा है फिर भी इस दोषपूर्ण प्रथा के समापन से सरकार व किसान मे सीधा सम्पर्क हो गया है। कानूनी अड़चनो को संविधान म सशोधन करके भी दूर किया गया है।

2 काश्तकारी सुधार (Tenancy Reforms)

भारत के विभिन्न राज्यों मे काश्तकारी कानूनो मे भी सुधार किया गया है जिसके परिणामस्वरूप लगान की कमी, किसानो को भूमि का मालिकाना हक देने व स्थायी सुधारो के लिए मुआवजे की व्यवस्था की गई है। किसानो की बेदखली पर रोक लगाकर भू-धारण की सुरक्षा प्रदान की गई है। काश्तकारी सुधारो के अन्तर्गत निम्न विवरण युक्तिसगत है—

(i) लगान का नियम (Regulation of Rents)—कृषि विकास के लिए लगान का न्यायोचित निर्धारण व सरल रूप मे वसूली आवश्यक है। जमीदारी प्रथा मे साधारणत आधी से अधिक उपज लगान के रूप मे किसान से ले ली जाती है इससे किसान के पास उपज का बहुत ही कम भाग रह जाता था। प्रथम योजना मे योजना आयोग ने लगान कृषि उपज के $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{5}$ भाग पर ही निर्धारित करने की सिफारिश की। द्वितीय व तृतीय योजनाओं मे भी इसी पर विशेष बल दिया गया। परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यो मे अधिनियम पारित कर लगान में कमी कर दी गई है तथा लगान की दरे निर्धारित कर दी गई हैं।

उन दरो से अधिक लगान वसूल करना अवैधानिक है। सभी राज्यो मे लगान की दरें समान नही हैं जहाँ राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र मे लगान दर उपज का $\frac{1}{6}$ है, दिल्ली मे $\frac{1}{5}$ भाग, उड़ीसा मे $\frac{1}{4}$ भाग तथा आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी बंगाल व जम्मू काश्मीर मे $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{3}$ भाग है अब भी कुछ राज्यो मे लगान की दरें ऊँची हैं उन्हे नियमित करना आवश्यक है।

(ii) भूमि धारण की सुरक्षा (Security of Tenure)—भूमि धारण की सुरक्षा का अभिप्राय काश्तकारो को स्थायी भूमि सुधार मिलने से है ताकि उन्हे बेदखल नही किया जा सके। इस सुरक्षा मे दोहरा लाभ मिलता है। पहला उत्पादन मे वृद्धि व दूसरा सामाजिक न्याय। योजना आयोग के अनुसार भी लगान का प्रभावी नियमन तभी सम्भव है जबकि काश्तकारों को पट्टेदारी की सुरक्षा प्राप्त हो। अत सभी राज्यो मे भू जोतों की सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियम पारित किये जा चुके है। परिणामस्वरूप कृषि योग्य 9% भूमि मे भू धारण की पूरी सुरक्षा मिल चुकी है। 59% क्षेत्र मे आंशिक सुरक्षा, 19% क्षेत्र मे अस्थायी सुरक्षा हो पाई है पर 12% क्षेत्र मे अभी भी पट्टेदारी सुरक्षा का अभाव है।

इन अधिनियमो के बावजूद भी बेदखली होती है इस पर रोक के लिए प्रभावी व व्यावहारिक कानूनो की आवश्यकता है।

(iii) काश्तकारी का पुनर्ग्रहण (Resumption of Tenancies)—काश्तकारों को भू-स्वामियों को भू-स्वामियों द्वारा बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न राज्यों में पुनर्ग्रहण अधिकार को यथासम्भव सीमित करने का प्रयास किया है। उत्तरप्रदेश, बंगाल व दिल्ली में भू स्वामियों को भूमि के पुनर्ग्रहण की इजाजत नहीं है। बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, मणीपुर व हिमालय-प्रदेश में भू-स्वामियों द्वारा काश्तकारी व पुनर्ग्रहण की यह शर्त है कि यह खुदकाश्त के लिए हो तथा कृषक के पास भी भूमि की न्यूनतम जोत छोड़ना आवश्यक है। पंजाब व आसाम में पुनर्ग्रहण का अधिकार काश्तकार को अन्यत्र भूमि देने पर ही सम्भव है जबकि आन्ध्र-प्रदेश व तामिलनाडू में भू-स्वामी काश्तकारी का पुनर्ग्रहण निर्धारित सीमा तक ही कर सकते हैं। अत. आवश्यकता इस बात की है कि काश्तकार से भूमि अधिग्रहण का अधिकार खुदकाश्त के लिए भी तब हो जबकि काश्तकार को अन्यत्र जमीन की व्यवस्था कर दी जाय।

(iv) काश्तकारों को स्वामित्व अधिकार (Ownership Rights for Tenants)—आर्थर यग का यह कथन "निजी सम्पत्ति का जादू रेत को भी सोना बना देता है। किसी व्यक्ति को काली चट्टान का अधिकार दे दीजिए वह उसे उपवन में बदल देगा और अगर नौ वर्ष के ठेके पर उपवन दे दिया जाय तो मरुस्थल में बदल देगा।" इस बात की पुष्टि करती है कि जब तक जमीन जोतने वालों की नहीं होगी तब तक तीव्र विकास की कल्पना बेकार लगती है। अत. उन क्षेत्रों में जिनका पुनर्ग्रहण नहीं किया जा सकता, काश्तकारों को मालिकाना हक दिया जाना उपयुक्त है। भारत के विभिन्न राज्यों में काश्तकारों को भूमि का मालिकाना हक सौंपने के लिए अधिनियम पारित हुए हैं। काश्तकारों को भू-स्वामी बनाने के लिए तीन प्रकार की व्यवस्था की गई है–(i) मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र में काश्तकारों को भूमि का स्वामी घोषित कर उनके स्वामियों को उचित मुआवजा उपयुक्त किश्तों में चुकाने का प्रावधान किया गया, (ii) दिल्ली तथा कुछ राज्यों में सरकार ने स्वयं भू-स्वामियों को मुआवजा चुकाकर काश्तकारों को भू-स्वामित्व अधिकार उचित किस्तों के बदले में सौंपा है। (iii) केरल तथा उत्तर-प्रदेश में सरकार ने भू स्वामियों से भूमि के अधिकार प्राप्त कर काश्तकारों को निर्धारित मुआवजा चुकाकर स्वामी बनने की छूट दे दी है।

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप 30 लाख काश्तकारों, उपकाश्तकारों या बटाईदारों को 28 लाख हेक्टर भूमि में मालिकाना हक मिल चुका है जिसमें राजस्थान में 1·7 लाख आसामी से भूमि के मालिक बन चुके हैं। गुजरात में 4 62 लाख काश्तकारों को 14 लाख एकड़ में, महाराष्ट्र में 6 2 लाख काश्तकारों को 17 लाख एकड़ तथा उत्तर-प्रदेश में 15 लाख आसामियों को 20 लाख एकड़ में स्वामित्व अधिकार दिए जा चुके हैं।

(v) स्थायी सुधारो के लिए मुआवजे—काश्तकारो को भू-स्वामियो की बेदखली से सुरक्षा के रूप मे स्थायी सुधारो—जैसे नालियाँ बनाने, कुआ बनाने, खाद देने, पेड लगाने या मेड लगाने आदि के लिए मुआवजा चुकाने पर ही बेदखली सम्भव है।

(vi) अन्य सुधारों के अन्तर्गत काश्तकारो से ली जाने वाली बेगार अवैधानिक है। प्राकृतिक सकटो के समय—बाड, सूखा, अकाल आदि काश्तकारो को लगान मे छूट की व्यवस्था है। यदि लगान देने मे काश्तकार असमर्थ रहे तो उसके हल, बैल, वर्तमान फसल व कृषि यन्त्र नीलाम नही किये जा सकते हैं।

3 जोतो की सीमा निर्धारण (Ceiling on Holdings)

आर्थिक जोतो के निर्माण तथा भूमि के वितरण मे समानता लाने की दृष्टि से जोतो की सीमा निर्धारण आवश्यक है। सीमा निर्धारण के अन्तर्गत न्यूनतम सीमा निर्धारण उप-खण्डन व उप-विभाजन को रोकने के लिए आवश्यक है जबकि उच्चतम सीमा निर्धारण का उद्देश्य किसी भी भू-स्वामी के पास आवश्यकता से अधिक भूमि लेकर भूमिहीनो मे बाटने से भूमि के सदुपयोग की व्यवस्था सम्भव है।

उच्चतम सीमा निर्धारण के उद्देश्य—सीमा निर्धारण के अनेक उद्देश्य हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं—

(i) सब किसानो के लिए भूमि का समान वितरण करना।
(ii) सीमा निर्धारण से खेतो को आर्थिक जोतो के रूप मे परिवर्तित करना।
(iii) बडे आकार के खेतो को उचित आकार मे परिवर्तित करना ताकि उनकी प्रबन्ध कुशलता बढे।
(iv) उच्चतम सीमा से अधिक भूमि को लेकर उसे भूमिहीनो मे बाटना तथा अधिक लोगो के लिए रोजगार व्यवस्था करना।

उच्चतम सीमा निर्धारण के दो पहलू हैं—पहला वर्तमान जोतो पर सीमा निर्धारण तथा दूसरा भावी जोतो पर सीमा निर्धारण करना जिससे भविष्य मे कोई किसान कितनी अधिकतम भूमि रख सकेगा उसका निर्धारण हो जाता है।

वर्तमान जोतों की सीमा निर्धारण का कार्य उच्चतम सीमा से अधिक भूमि कानून पास कर सरकार द्वारा ले ली गई है और अतिरिक्त प्राप्त भूमि को भूमिहीन किसानो मे बाटने की व्यवस्था की गई है। विभिन्न राज्यों से नवीनतम अधिनियम पास कर वर्तमान जोतो का आकार निश्चित कर दिया गया है जैसा अग्र तालिका से स्पष्ट है—

भूमि सीमा निर्धारण

(हेक्टर मे)

राज्य	जोत की सीमा	राज्य	जोत की सीमा
ग्रान्ध्र प्रदेश	4 05 से 21 85	गुजरात	4 05 से 21 85
ग्रासाम	6 71	कर्नाटक	4 86 से 21 85
बिहार	6 07 से 18 21	पजाब	7 00 से 21 80
मध्य-प्रदेश	4 05 से 21 85	उडीसा	4 05 से 18 21
राजस्थान	7·25 से 21 85	तामिलनाडू	4 86 से 24 28
हरियाणा	7 25 से 21 85	त्रिपुरा	2 00 से 7 20
पश्चिमी बगाल	5 00 से 7·00	हिमाचल-प्रदेश	4 05 से 12 14
महाराष्ट्र	7 2〉से 21 85	जम्मू काश्मीर	3 86 से 7 77
केरल	4 86 से 6 07		
उत्तर-प्रदेश	7·25 से 18 21		

उच्चतम सीमा निर्धारण का ग्राधार—भूमि की उर्वरा शक्ति मे भिन्नता, प्रकृति मे भिन्नता स्थान की भिन्नता ग्रादि के कारण एकसी सीमा निर्धारित करना ग्रसम्भव है । 1971 मे केन्द्रीय भूमि सुधार समिति ने सीमा निर्धारण के सम्बन्ध मे कुछ सामान्य सिफारिश की थी जिसम (i) सीमा निर्धारण को परिवार ग्राधार पर लागू किया जाय जिसमे पति-पत्नी व नाबालिग बच्चे सम्मिलित हो । (ii) पाँच से ग्रधिक सदस्यो के परिवार म प्रत्येक ग्रतिरिक्त सदस्य के लिए ग्रतिरिक्त भूमि की छूट हो पर एक परिवार के पास सीमा के दुगुने क्षेत्रफल से ग्रधिक भमि न हो (iii) पाँच सदस्यो के परिवार के लिए सम्मानजनक जीवन बिताने के लिए उच्चतम सीमा 10 से 18 एकड उपजाऊ व सिंचित भूमि की व्यवस्था होनी चाहिए । भूमि की भिन्नता के कारण ही भिन्न-भिन्न भूमि की वर्तमान व भावी जोतो की सीमा मे ग्रन्तर पाया जाता है ।

सीमा निर्धारण के लाभ—जोतो की उच्चतम सीमा निर्धारण के ग्रनेक लाभ हैं । (i) भूमि के वितरण मे समानता लाने मे मदद मिलेगी जिससे समाजवाद का मार्ग प्रशस्त होगा । (ii) सीमा से ग्रतिरिक्त भूमि को भूमिहीन किसानो मे बाँटने से

भूमिहीनो को रोजगार का अवसर प्राप्त होगा। (iii) भूमि की उचित व आर्थिक जोतो के निर्माण से प्रबन्ध कुशलता बढेगी। (iv) आर्थिक विषमता को कम करने मे सहायता मिलेगी। (v) भूमि के समान वितरण से चकबन्दी व सहकारी कृषि का कार्य सरल हो जायगा और दोनो को प्रोत्साहन मिलेगा।

सीमा निर्धारण के दोष—(i) जोतो की सीमा निर्धारण से बडे पैमाने की कृषि का हतोत्साहन होता है अत यन्त्रीकरण सम्भव नही हो पाता। (ii) अतिरिक्त भूमि का हस्तान्तरण अगर साधनहीनो के पास होगा तो उत्पादकता घटेगी और प्रबन्ध कुशलता गिरेगी। (iii) सीमा निर्धारण से प्राप्त कुल भूमि इतनी कम है कि भूमिहीनो की समस्या का समाधान सम्भव नही लगता। (iv) छोटे खेतो के कारण बाजार मे बिकने वाली उपज की मात्रा प्राय घटती है। (v) सीमा निर्धारण के बाद अतिरिक्त भूमि को हस्तगत करने के लिए क्षति-पूर्ति का भार सरकार को उठाने की समस्या उत्पन्न हुई है। (vi) सीमा निर्धारण मे बडे-बडे भू स्वामियो से भूमि लेने मे वर्ग संघर्ष की भावना जागृत हुई है।

फिर भी सीमा निर्धारण के लाभ सम्भावित खतरो के मुकाबले काफी अधिक हैं। कुछ क्षेत्रो मे सीमा निर्धारण की छूट देकर दोषो को दूर करने का प्रयास किया गया है। चाय, कहवा, रबड व इलायची के बागानो मे सीमा निर्धारण से छूट की व्यवस्था है। सरकारी फार्म व चीनी मिलो के गन्ने के फार्मों मे सीमा निर्धारण की छूट दी गई है। विशेष खेत जिनमे पशुपालन, भेड पालन व दुग्ध शालाओ को उच्चतम सीमा निर्धारण मे छूट है।

यह उल्लेखनीय है कि सीमा निर्धारण के कारण अब तक 11 5 लाख हेक्टर, अधिक अतिरिक्त भूमि प्राप्त हुई है जिसमे 6 3 लाख हेक्टर भूमि भूमिहीनो मे वितरित की गयी है। सबसे ज्यादा अतिरिक्त पश्चिमी बगाल मे 3 2 लाख हेक्टर, जम्मू काश्मीर मे 1 8 लाख हेक्टर, उत्तरप्रदेश मे 0 5 लाख हेक्टर भूमि प्राप्त हुई है।

4. कृषि पुनर्संगठन
(Reorganisation of Agriculture)

भूमि सुधारो के अन्तर्गत कृषि का पुनर्संगठन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कृषि पुनर्गठन कार्यक्रमो मे चकबन्दी, भूदान आन्दोलन सहकारी कृषि एव भूमि प्रबन्ध सुधार आदि आते हैं।

(i) चकबन्दी—जब भूमि के छोटे-छोटे बिखरे टुकडो को मिलाकर स्वेच्छा या कानूनी दबाव से बडे चको मे परिवर्तित कर दिया जाता है तो उसे चकबन्दी कहते हैं। भारत मे चकबन्दी का कार्य काफी प्रगति पर रहा है। प्रथम योजना के अन्त तक 33 लाख हेक्टर मे चकबन्दी की जा चुकी है। द्वितीय योजना के अन्त तक चकबन्दी के अन्तर्गत 121 लाख हेक्टर क्षेत्र आ गया। तृतीय योजना के अन्त तक 241 लाख हेक्टर की चकबन्दी की जा चुकी थी, तीन वार्षिक योजनाओ मे लगभग

55 लाख हेक्टर की चकबन्दी की गई। परिणामस्वरूप 1968–69 तक कुल मिला कर 296 लाख हेक्टर भूमि मे चकबन्दी हो चुकी थी, चतुर्थ योजना मे चकबन्दी के लिए 28 4 करोड़ रुपये व्यय की व्यवस्था की गई थी तथा कुल मिलाकर चकबन्दी के अन्तर्गत 390 लाख हेक्टर क्षेत्र करने का लक्ष्य रखा गया था पर वास्तव मे 320 लाख हेक्टर क्षेत्र की चकबन्दी हो पाई है। 1978–79 तक 520 लाख हेक्टर की चकबन्दी हो चुकी थी।

राज्यों के अनुसार पजाब व हरियाणा मे चकबन्दी का कार्य लगभग पूरा हो चुका है। उत्तरप्रदेश में भी 95 लाख हेक्टर मे चकबन्दी की जा चुकी है। इस सम्बन्ध मे देश के प्राय सभी राज्यो म अधिनियम पारित हो चुके हैं।

(ii) सहकारी कृषि—पहली व द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए सहकारी कृषि पर विशेष बल दिया गया। तृतीय योजना म 318 पायलट परियोजनाओ म प्रत्येक मे 10–10 सहकारी कृषि समितियो के सगठन की व्यवस्था की गई। परिणामस्वरूप 30 जून 1974 तक *संयुक्त सहकारी कृषि समितियों की सख्या 4985 तथा उनकी सदस्य सख्या 1·22* लाख थी जबकि सामूहिक कृषि समितियों की सख्या 4740 तथा उनकी सदस्य सख्या 1 48 लाख थी। उनके पास क्रमश 3 2 लाख, 3 1 लाख हेक्टर भूमि थी।

दण्डकारण्य क्षेत्र म सामुदायिक विकास केन्द्रों मे सहकारी कृषि समितियो का सगठन किया गया है जिनम विस्थापितो को बसाने का कार्य किया गया है। मैसूर के तुगभद्रा व आन्ध्रप्रदेश के गोदावरी व कृष्णा नदियों की सिचाई परियोजना क्षेत्र मे सहकारी कृषि समितियो के विकास के लिए मास्टर प्लान बनाया गया है।

सहकारी कृषि समितियो के विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी कृषि सलाहकार बोर्ड तथा राज्यो मे सहकारी कृषि बोर्ड नाये बनये हैं।

(iii) भूमिहीनों को बसाना व भूदान आन्दोलन—भूदान आन्दोलन का सूत्रपात आचार्य विनोबा भावे ने 1951 मे तेलगाना क्षेत्र मे किया जिसके अन्तर्गत भूमि का ⅙ भाग दान के रूप म लिया जाता है। न्याय व समानता के आधार पर भूमि पर सबका अधिकार है। इसके लिए बिना सघर्ष के भूमिहीनो को भूमि का हिस्सा देने का कार्यक्रम है।

व्यावहारिक अर्थ म भू दान आन्दोलन का अर्थ भूमिहीनो म बाँटने के लिए भू-स्वामियों म उनकी भूमि का छठा भाग स्वेच्छा स दान करन का अनुरोध है। अब यह आन्दोलन सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, जीवनदान व ग्रामदान आन्दोलन मे बदल गया है। इसके अन्तर्गत 2 करोड़ हेक्टर भूमि प्राप्त करने का लक्ष्य है।

इसके लिए सभी राज्यों मे भूमि के हस्तान्तरण व वितरण के लिए कानून पास किये जा चुके हैं।

अन्तिम रूप से उपलब्ध आकड़ो के अनुसार भू-दान आन्दोलन के अन्तर्गत

43 लाख एकड भूमि तथा 40 हजार ग्राम दान मे मिल चुके हैं उसमे से 10 लाख एकड भूमि भूमिहीनो मे वितरित कर दी गई है। इसमे भू स्वामियो के दृष्टिकोण मे परिवर्तन आया है। पर जो भूमि प्राप्त हुई है उसमे से अधिकाश भूमि बजर, सिचाई रहित व झगडे की है अत विशेष लाभ की आशा नही है।

(iv) भूमि प्रबन्ध मे सुधार—देश मे योजनाबद्ध विकास के साथ ही भूमि प्रबन्ध मे भी सुधार के प्रयास किये गये हैं जिसके फलस्वरूप बजर भूमि के उपयोग, उत्तम बीजो व अधिक उपज देने वाली फसलो का प्रयोग बढा है, हरित-क्रान्ति इसका परिचायक है। कीटाणुनाशक दवाइयाँ भी प्रयुक्त की जाने लगी हैं। उर्वरको की पूर्ति व प्रयोग भी बढ रहे हैं। यन्त्रीकरण भी बहुत बढा है। बैंको के द्वारा वित्तीय व्यवस्था पर जोर दिया जा रहा है।

भूमि सुधारो की आलोचनात्मक समीक्षा

यद्यपि भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भूमि सुधार कार्यक्रमो को बहुत ही जोश के वातावरण मे लागू किया गया है पर उसमे अनेक कमियो के कारण कार्यान्वियन बडा ही असन्तोषजनक रहा है इस कारण भूमि सुधारो की अनेक आलोचनाएँ की गई हैं।

(i) भूमि सुधारो के क्रियान्वयन मे एकरूपता का अभाव—भूमि सुधार कार्यों का दायित्व राज्य सरकारो पर होने से भिन्न-भिन्न राज्य सरकारो ने जो अधिनियम पारित किये हैं उनमे एकरूपता का अभाव है।

(ii) कानूनी खामियों के कारण अनावश्यक विलम्ब—विभिन्न अधिनियमो मे एकरूपता का अभाव तो है ही बल्कि साथ-साथ उन अधिनियमो मे कानूनी खामियाँ भी रही हैं जिसका निहित स्वार्थों ने छिद्रान्वेषण कर कानूनी दुर्बलताओं का लाभ उठाया है।

(iii) काश्तकारो को सुरक्षा, शोषण से मुक्ति व स्वामित्व कोरी कल्पना बनी हुई है। अब भी देश मे काश्तकारो को बेदखल किया जाता है। उनसे अवैधानिक ढग के ऊचे लगान वसूल किये जाते हैं। भू स्वामित्व अधिकार भी बहुत ही कम काश्तकारो को मिल पाया है। पुनर्गठन कार्य भी असन्तोषजनक रहा है।

(iv) सीमा निर्धारण को लागू करने मे अत्यधिक विलम्ब हुआ है जिसके कारण बडे-बडे भू-स्वामी भूमि का हस्तान्तरण अपने निकटतम सम्बन्धियो आदि को करके कानून के चगुल से बच गये हैं। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ है कि 1971 तक केवल 10 लाख हेक्टर भूमि ही 'अतिरिक्त" (Surplus) घोषित हुई है जो कुल कृषि क्षेत्र का 0 8% भाग है।

(v) प्रशासनिक अकुशलता एव भ्रष्टाचार के कारण भी भूमि सुधार के लक्ष्यो व प्राप्तियो मे काफी अन्तर है। भूमि सुधारो को जिस गति से कार्यान्वित किया जाना चाहिये वह सम्भव नही हो पाता।

(vi) **समन्वय का अभाव**—विभिन्न राज्यो मे जो भूमि सुधार लागू किये गये हैं उनमे परस्पर समन्वय का अभाव पाया गया है अत प्रशासनिक कठिनाइयाँ बढ जाती है और विभिन्न कार्यो मे तालमेल भी नही बैठ पाता।

(vii) **जन सहयोग का अभाव व भूमि सुधारो से बचने के प्रयास**—भूमि सुधार के क्रान्तिकारी कार्यक्रमों को लागू करने मे निहित स्वार्थी-वर्ग ने सुधारो से बचने के लिए सभी प्रकार के हथकण्ड अपनाये हैं। जब सरकारी प्रवक्ता किसी सुधार की घोषणा करते है तब इरादे व वास्तविक कानून बनाने के बीच लम्बी अवधि म सभी प्रकार के बचने के उपाय अपना लिये जाते है। इसके अतिरिक्त अधिकाश कृषको मे अशिक्षा है। वे न तो कानून को समझते हैं और न शोषण से बचने के लिए कानून की शरण लेते है जैसे ऊची लगान व बेदखली के विरुद्ध शरण लेने से काश्तकार कतराते है।

(viii) *भूमि वितरण मे अभी भी असमानता है। बडे बडे भू-स्वामियो के* कब्जे मे अब भी काफी भूमि है जबकि भूमिहीनो की सख्या अब भी बहुत बडी है। काश्तकारो की भरमार है।

उपर्युक्त विवरण व आलोचनाओ से स्पष्ट होता है कि भूमि सुधारो की *प्रगति आशानुकूल व उत्साहवर्धक नही कही जा सकती क्योंकि मध्यस्थो का अन्त* करने के बाद भी सब किसान स्वय भूमि के मालिक नही हैं, अनेक छोटे-छोटे मध्यस्थ काश्तकारो से ऊची लगान वसूल करते है। बेदखली का भय हमेशा बना रहता है। फिर भी यह मानना ही पडेगा कि जमीदारी व जागीरदारी प्रथा के समापन से शोषक वर्ग का उन्मूलन हुआ है। अनेक कृषक स्वय भूमि के स्वामी बन गये हैं। भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण से समाजवाद का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। क्रान्तिकारी भूमि सुधार अगर सच्चे दिल से लागू किये जायें तो अनेक समस्यायें *स्वत समाप्त हो जायेंगी। जमींदारी प्रथा का पूर्ण उन्मूलन हो चुका है।* 30 लाख काश्तकारो को 70 लाख एकड का स्वामित्व प्रदान कर दिया गया है। सभी राज्यो मे भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गई है।

भूमि सुधारो की सफलता के सुझाव

भूमि सुधारो की पर्याप्त सफलता के लिये यह आवश्यक है कि (i) भूमि सुधार अधिनियमो की कानूनी खामियो को दूर कर उन्हे प्रभावी रूप से लागू *किया* जाय ताकि बचने की सम्भावनायें सीमित हो जाये (ii) प्रशासनिक कुशलता बढाई जाय व भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखा जाय ताकि भूमि सुधारो को मुस्तैदी से लागू करना सम्भव हो सके। (iii) भूमि सुधारो को लागू करने म विलम्ब नही किया जाना चाहिए क्योंकि विलम्ब होने म बहुत से स्वार्थी लोग कानून के छिद्रान्वेषण द्वारा कानून के चगुल से बच जाते है। (iv) भूमि का स्वामित्व उस कृषक को ही सौंपना चाहिदे जो वास्तव मे स्वय कृषि करता है। वर्तमान कानून जो कि बेनामो, मुकररी

व व्यावसायिक व्यक्तियो को अधिकाश भूमि खुदकाश्त के अन्तर्गत रखने की अनुमति देता है समाप्त कर देना चाहिय तथा वास्तविक कृपक का ही भूमि का स्वामी बनाना उपयुक्त होगा। (v) किसानो से मनमाने ढग से लगान वसूल करने व बेदखली के विरुद्ध सुरक्षा के लिए विशेप प्रावधान किया जाना चाहिये। (vi) भूमिहीनो को पडत भूमि का आवटन करने मे शीघ्रता बरती जाना परम आवश्यक है पर देखा यह गया है कि वास्तविक भूमिहीनो को भूमि न मिलकर राजनताओ, सरकारी अफसरो, कमचारियो को भूमि का आवटन हुआ है क्योकि वे भी वर्तमान अर्थ मे भूमिहीन ही हैं अत ऐसे कानून मे सशोधन करना जरूरी है। (vii) सीमा बन्दी से प्राप्त भूमि को शीघ्र भूमिहीनो को आवटित की जानी चाहिये। (viii) भूमि के गैर-कृपको के पास हस्तान्तरण पर रोक लगा दी जानी चाहिये।

राजस्थान मे भूमि सुधार

राजस्थान के गठन के समय 1949 मे राज्य के कुल 34648 गाँवो मे से 16780 गाँवो मे (60%) म जागीरदारी प्रथा, 4780 गाँवो (20%) क्षत्र मे जमीदारी व विश्वेदारी प्रथा प्रचलित थी केवल 20% क्षेत्र ही रैयतवाडी प्रथा के अन्तर्गत आता था जिसका सरकार से सीधा सम्बन्ध था। जमीदारी व जागीरदारी प्रथा म कृपको का शोपण होना था, बेगार ली जाती थी। मनमाने ढग से लगान दमूली व बदखली का भय हमेशा व्याप्त रहता था, किसान पूणत. जागीरदारो व जमीदारो की दया पर आश्रित थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के अन्य भागो मे भूमि सुधारो के साथ-साथ राजस्थान मे भी क्रान्तिकारी भूमि सुधारो का सूत्रपात हुआ।

1 बेदखली से रक्षा—सर्व प्रथम सन् 1949 मे जब जमीदारो ने किसानो से अन्धाधुन्ध बेदखली करना प्रारम्भ किया तो किसानो की बेदखली से रक्षा करने के लिए राजस्थान (काश्तकार सरक्षण) अध्यादेश, 1949 (Rajasthan (Protection of Tenants) Ordinance 1949) जारी किया गया। इसके लागू होने से अवधानिक ढग से बेदखल किये गये काश्तकारो को पुनः मिल्कियत अधिकार दिए गए।

2 लगान नियन्त्रण—मनमाने ढग से ऊँचे लगान वसूल करने पर नियन्त्रण करने तथा सभी क्षेत्रो मे लगान मे समानता लाने के लिए सन् 1951 मे राजस्थान उपज लगान नियमन अधिनियम (Rajasthan Produce Rent Regulating Act 1951) जारी किया गया जिसमे काश्तकारो से वसूल किया जान वाला लगान कुल उपज के $\frac{1}{6}$ से ज्यादा नही हो सकता था। इसको अधिक प्रभावी बनाने के लिए 1952 मे कृपि लगान नियन्त्रण अधिनियम 1952 (Agricultural Rents Control Act) पारित किया गया। इसे बाद मे रद्द कर दिया गया और 1954 मे नया अधिनियम राजस्थान कृपि लगान नियन्त्रण अधिनियम (Rajasthan Agricultural Rents Control Act 1954) पारित हुआ जिसके अन्तर्गत मजारो का

मालगुजारी के दुगुने से अधिक लगान वसूली पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। फिर इसके बाद राजस्थान काश्तकारी अधिनियम 1955 पास किया जिसमें कृषकों को लगान की वसूली म शोषण से मुक्त करने की व्यवस्था है।

3 जागीरदारी प्रथा का अन्त—राजस्थान के लगभग 17 हजार गाँवो मे राज्य के 60 ० क्षेत्र म जागीरदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए 1952 म राजस्थान भूमि सुधार व जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम (The Rajasthan Land Reforms & Resumption of Jagirs Act 1952) पास किया गया जिसको बाद में कुछ जागीरदारों न न्यायालय क "स्थगन आदेशों" से लागू करने मे बाधा खडी करदी पर पण्डित नहरू की मध्यस्थता से जागीरदारो को मुआवजा व पुनर्वास अनुदान देने की दरें निर्धारित की गई। 1954–58 की अवधि मे 2 59 लाख जागीरो का पुनर्ग्रहण किया गया। 1 नवम्बर 1959 स पाच हजार रुपये से अधिक आय वाली जागीरो तथा 1 अगस्त 1960 से एक हजार से अधिक आय वाली जागीरो को पुनर्ग्रहण का कार्य प्रारम्भ हुआ। निम्न श्रेणी की जागीरों के पुनर्ग्रहण का कार्य 1963 से प्रारम्म हुआ। अब तक लगभग 2·9 लाख जागीरा का पुनर्ग्रहण किया जा चुका है जिसम धार्मिक और गैरधार्मिक सभी जागीरा का समावेश है। नेहरू अवार्ड 1954 के अनुसार जागीरदारो का खुदकाश्त के लिए भूमि तथा जागीरों के पुनर्ग्रहण का मुआवजा उनके भू राजस्व क 7 गुने के बराबर रखा गया जिसे 15 वार्षिक किस्तो म भुगतान की व्यवस्था की गई।

पुनर्ग्रहण की प्रत्यक्ष लागत 1971 तक 51 3 करोड रु० आंकी गई है जिसमे मुआवजा, पुनर्वास अनुदान, ब्याज व वार्षिक किस्तो का भुगतान भी शामिल है।

4 जमींदारी व बिस्वेदारी प्रथा का अन्त—राजस्थान से लगभग 5 हजार गावा (भरतपुर, अलवर, अजमेर, जयपुर, भीलवाडा, गगानगर, चित्तौडगढ, उदयपुर, कोटा व सीकर जिला) के राज्य क 20% क्षेत्र मे यह प्रथा प्रचलित थी जिसमे काश्तकारो का शोषण होता था। अत 1 नवम्बर स इस प्रथा का अन्त कर दिया गया जिसमें काश्तकार व सरकार म सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

1964 म राजस्थान भूमि सुधार एवं भूस्वामी सम्पत्ति पुनर्ग्रहण अधिनियम 1963 (The Rajasthan Land Reforms & Acquisition Land Owner's Estate Act, 1963) क द्वारा राजस्थान मे विलीन होन वाले सभी राज्यों में शासकों की भू-सम्पत्ति लने की व्यवस्था से मध्यस्थ वर्ग का समापन करने के अन्तिम कदम उठाये गय हैं।

5. काश्तकारी कानून 1955—राजस्थान मे काश्तकारी भूमि सुधारो के लिए एक व्यापक अधिनियम 1955 मे राजस्थान काश्तकारी अधिनियम (Rajasthan Tenancy Act, 1955) मे पारित किया गया जिसमें काश्तकारों को भूमि के अधिकार देने, लगान का नियन्त्रण करने, किसानो को भू धारण की सुरक्षा प्रदान करने, जोतों के हस्तान्तरण करने आदि की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम से

राज्य के सभी भागो मे काश्तकारी कानूनो मे समानता लाकर काश्तकारो को भूमि अधिकार प्रदान किये हैं । इस अधिनियम के अन्तर्गत आसामियो को चार श्रेणियो मे विभाजित किया गया है—

(i) खातेदार—जो काश्तकार 1956 मे भूमि जोत रहे थे उन्हे उस भूमि के खातेदार अधिकार प्रदान कर दिये गये ।

(ii) मालिक काश्तकार—रैयतवाडी क्षेत्रो म काश्तकारो को भूमि का स्वामी बनाकर फसलो की बटाई को मान्यता दे दी ।

(iii) खुद काश्त आसामियो को बटाई का अधिकार नही दिया गया ।

(iv) गैर खातेदार आसामी—इनको भूमि पर कोई स्वत्व अधिकार नहीं दिये गये हैं । इनके भू धारण की सुरक्षा पूर्व नियमो के अन्तर्गत की गई । इस अधिनियम मे समय समय पर सशोधन किये गये हैं ।

राज्य मे काश्तकारो को 15 6 से 125 एकड तक पट्टेदारी की पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जा चुकी है । पुनर्ग्रहण न किये जाने वाले क्षेत्रा म मालिकाना हक देकर हस्तान्तरण की व्यवस्था की गई । लगान उपज के छठे भाग से अधिक नही हो सकता । 1 37 लाख काश्तकारो को लगभग 8 लाख एकड पर खातेदारी अधिकार दिये जा चुके हैं ।

6 भू जोतों की सीमा निर्धारण—राजस्थान भूमि सुधारो की दौड मे अन्य राज्यो के मुकाबले अधिक क्रान्तिकारी रहा है । भू जोतो की अधिकतम सीमा निर्धारण के सम्बन्ध म जाच करने के लिए 1953 म एक समिति बनाई जिसने 1958 म अपना प्रतिवेदन दिया जिसे प्रवर समिति को सौंपा गया और 1960 मे राजस्थान काश्तकारी (सशोधन) अधिनियम पारित कर दिया गया । तत्सम्बन्धी सीमा निर्धारण के नियम 1963 मे प्रकाशित किये गए पर वास्तविक क्रियान्वयन 1966 मे लागू किया गया है । इस प्रकार सीमा निर्धारण म काफी विलम्ब हुआ है ।

राजस्थान मे सीमा निर्धारण की अधिक्तम सीमा 7 5 हेक्टर रखी गई है । सीमा से अतिरिक्त भूमि पर राज्य मुआवजा देकर अधिकार कर सकता है । मुआवजे की दर प्रथम 40 एकड पर भू राजस्व का 30 गुना, दूसरे 25 एकड पर 25 गुना तथा शेष पर भू-राजस्व का 20 गुना रखा गया है । राजस्थान मे वर्तमान भूमि की अधिक्तम सीमा 7 5 से 21 85 हेक्टर रखी गई है । कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रो म यह सीमा 70 82 हेक्टर भी है ।

7 कृषि पुनर्संगठन—कृषि पुनर्संगठन के अन्तर्गत राजस्थान मे आवश्यक अधिनियम समय समय पर पारित किये गये है । चकबन्दी का कार्य भी प्रगति पर है । अब तक लगभग 50 लाख एकड की चकबन्दी की जा चुकी है । सहकारी कृषि पर विशेष ध्यान दिया गया है पर कृषको मे सहकारी कृषि के प्रति उत्साह नहीं होने से विशेष प्रगति सम्भव नही हुई है । भूमिहीनो को सरकारी भूमि आवंटित करने मे

काफी दिलचस्पी दिखाई गई है। भूदान आन्दोलन भी कुछ सीमा तक सफल कहा जा सकता है।

राजस्थान भूमि सुधारो को कार्यान्वित करने वाले प्रदेशो मे अग्रणी है। 21-सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा के पूर्व 8 22 लाख एकड भूमि पर खातेदारी अधिकार दिये जा चुके है। 9 48 लाख भूमिहीन किसानो को 61 15 लाख एकड भूमि नि शुल्क वितरित की गई जिसमे 25 लाख अनुसूचित जाति एव जनजाति के लोगो को दी गई है। इसके अतिरिक्त सिचाई परियोजना के अन्तर्गत आने वाली 5 लाख एकड सिंचित भूमि साधारण दरो पर किश्तो पर भूमिहीनो मे आवटित की गई है।

नरोरा शिविर तथा राज्य स्तरीय रावतभाटा शिविर मे लिए गये निर्णयो के अनुपालनार्थ मार्च 1975 से राजस्व एव भूमि सुधार अभियान के फलस्वरूप 1 25 लाख भूमिहीन किसानो को 4 34 लाख एकड कृषि भूमि का नि शुल्क आवटन किया गया। अब तक लगभग पौने चार लाख एकड भूमि पर ढाई लाख अतिक्रमणो को हटा कर वह भूमि भूमिहीनो मे वितरित कर दी गई है। सीलिंग के अन्तर्गत 3 52 लाख एकड भूमि के अधिग्रहण के आदेश जारी किये गये तथा लगभग दो लाख एकड भूमि पर कब्जा लेकर 50 हजार एकड भूमि को साढे छ हजार भूमिहीनो मे वितरित कर दी गई है। सीलिंग कानून कार्यान्वयन मे आने वाली कठिनाइयो को दूर करने के लिए राजस्थान राजस्व कानून (सशोधन) अध्यादेश 1975 जारी किये गये।

भूमि सम्बन्धी अभिलेख पूर्ण करने की दिशा मे अब तक 2625 ग्रामो के नक्शे 3 42 लाख नामान्तरकरण तथा 22 5 लाख पास बुकें काश्तकारो को वितरित की गयी।

राजस्थान मे भूमि सुधारो की आलोचनात्मक समीक्षा

राजस्थान मे भूमि सुधार के जो क्रान्तिकारी कदम उठाये गये हैं उनमे जागीरदारी व जमीदारी प्रथा का पूर्णत उन्मूलन हो चुका है। कृषको को शोषण से मुक्ति मिली है भू धारण की सुरक्षा व लगान वसूली मे नियन्त्रण रहा है फिर भी कुछ त्रुटिया रहा हैं जिसके कारण आलोचना स्वाभाविक है।

1 अधिनियमो मे पूर्णता रही है जिससे स्वार्थी तत्त्वो ने अनुचित लाभ उठाया है और कानून से बचने के सभी हथकण्डे अपनाये गये हैं।

2 आवश्यक विलम्ब रहा है। जहाँ भूमि सीमा निर्धारण अधिनियम 1953 मे लागू होना चाहिए था वह 1966 मे लागू किया गया। जागीरो का पुनर्ग्रहण भी 19 वर्षो तक चलता रहा।

3 प्रशासनिक अकुशलता व भ्रष्टाचार के कारण भू-सुधारो को जिस जोश से लागू किया गया उसका वांछित लाभ नहीं मिल सका।

4 भूमि-सुधार अधिनियम जटिल, त्रुटिपूर्ण व कठिन है अत सर्व साधारण की समझ से बाहर होने के कारण किसान लाभ नही उठा पाये हैं।

5 ढाचा अवैज्ञानिक है—योजना आयोग की शोध कार्य समिति का मत है कि राजस्थान मे भूमि कर तथा भू राजस्व का ढाचा अवैज्ञानिक है तथा भूमि कानून जटिल व भ्रमात्मक है।

6 मुआवजा चुकाने के कारण तथा खुदकाश्त के लिए भूमि की छूट मे जागीरदारो व जमीदारो ने बहुत सी भूमि पर कब्जा रख लिया है। अत अतिरिक्त भूमि से काश्तकार वचित रह है।

7 भू स्वामित्व सम्बन्धी रिकार्ड अधूरे व अपर्याप्त हैं अत भूमि सुधारो को लागू करने मे कठिनाई आती है।

8 अब भी बेदखली व अधिक लगान वसूली की जाती है।

फिर भी उपर्युक्त प्रगति का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि राजस्थान मे जागीरदारी और जमीदारी प्रथा का पूर्णत उन्मूलन हो जाने से काश्तकार सीधे सरकार के सम्पर्क मे आ गये हैं। 50 लाख एकड म चकबन्दी का कार्य पूरा हो चुका है, लगान की अधिकतम सीमा उपज के छठे भाग के बराबर निर्धारण करके मनमानी लगान वसूली पर नियन्त्रण लगाया है। बेगार प्रथा समाप्त हुई है। भूमि की अधिकतम वर्तमान व भावी सीमा 22 एकड 336 एकड निर्धारित कर अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो मे बाटने का कार्य समाजवाद की ओर कदम है।

अत भूमि सुधार कार्यक्रमो को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए (i) भूमि सुधार अधिनियमो की जटिलता व त्रुटियो को दूर करना चाहिए। (ii) भूमि से बेदखली व भूमि के पुन जमीदारो के पास हस्तान्तरण पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिए। (iii) भूमि की अधिकतम सीमा सम्बन्धी अधिनियम की उपेक्षा को रोकना जरूरी है। (iv) सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए। (v) काश्तकारी भूमि सम्बन्धी रिकार्ड को पूर्णता प्रदान कर काश्तकारो की सुरक्षा की जानी चाहिए। (vi) भूमिहीनो को भूमि के आवटन मे प्राथमिकता व पूर्णत ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए। (vii) प्रशासनिक अकुशलता, भ्रष्टाचार व अनावश्यक विलम्ब पर रोक लगाकर कुशलता लाने का भरसक प्रयत्न जरूरी है।

अन्त म यही कहना पर्याप्त है कि भूमि सुधार कार्यों को जिस जोश से लागू करना चाहिए था वह नही किया गया और वास्तविक लाभ नीति के मुकाबले बहुत कम रहा है। प्रो दातवाला के शब्दो म 'भूमि सुधार के कदम सन्तोषजनक हैं किन्तु उचित रूप से लागू करने के अभाव मे इनका परिणाम सन्तोषजनक नहीं हो पाया है।

परीक्षोपयोगी-प्रश्न मय सकेत

1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत म भूमि सुधारो की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

अथवा

पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत भूमि-सुधार के क्या कदम उठाये गये हैं और वे कहा तक सफल रहे है ?

अथवा

भारत म भूमि-सुधार सम्बन्धी सरकारी प्रयासो का उल्लेख कीजिय तथा उनकी प्रमुख आलोचनाओ की समीक्षा कीजिये।

(सकेत—देश म भूमि सुधार के लिए उठाय गये कदमो का विवरण दूसरे भाग म आलोचनाए देनी है तथा अन्त म मूल्याकन देना है।)

2 राजस्थान मे भूमि सुधार की प्रगति से आप कहा तक सन्तुष्ट है ? कमियो को दूर करने के लिए सुझाव दीजिये।

(सकेत —प्रथम भाग म राजस्थान म भूमि सुधारो का वर्णन देकर दूसरे भाग म आलोचना व तीसरे भाग म सुझाव देना है।)

3 भूमि सीमा निधारण (Ceiling on Holdings) से आप क्या समझते है ? इसके पक्ष-विपक्ष (लाभ हानि) देकर उसकी प्रगति का मूल्याकन कीजिये।

(सकेत —भूमि सीमा निर्धारण का अथ उद्देश्य बताकर पक्ष-विपक्ष म तर्क देने हैं तथा अन्त म उसकी प्रगति का मूल्याकन करना है।)

4 कृषि अर्थव्यवस्था म भूमि सुधार का क्या महत्व है ? भारत मे भूमि सुधार कहा तक अपने उद्देश्यो की पूर्ति कर पाये हैं ?

(सकेत —भूमि सुधारो का महत्व बताकर दूसरे भाग मे भारत म किये गये भूमि सुधारो का विवरण दना है। तीसरे भाग म उनके असन्तोषजनक क्रियान्वयन पर दोष बताकर मूल्याकन दना है।)

5

भारत में कृषि विपणन अथवा कृषि उपज का विक्रय

(Agricultural Marketing in India)

भारतीय कृषि की समृद्धि केवल अधिकाधिक उत्पादन मे ही निहित नही होकर उत्पादित उपज को उचित मूल्यो मे बेचने मे भी निहित है अत कृषक को एक कुशल उत्पादक होने पर भी उचित मूल्य न मिलने पर न तो उसकी आर्थिक समृद्धि मे वृद्धि होगी और न उसे अधिक उत्पादन की प्रेरणा ही मिलेगी। इसी कारण प्राय विद्वान यह मत व्यक्त करते हैं कि किसान के दोनो हाथ हल पर और दोनो आँखें बाजार पर होनी चाहियें। उसे बाजार की मांग के अनुरूप ही उत्पादन करने मे लाभ रहता है।

कृषि विपणन के अर्थ —कृषि का कार्य केवल कृषि-उपज उत्पन्न करना ही नही वरन् उसका कार्य बाजार की परिस्थितियो से पूर्णत परिचित रह कर माग के अनुरूप उत्पादन करना तथा उस उपज को उचित समय पर उचित मूल्यो पर बेचकर अधिकतम लाभ अर्जन करना है अत कृषक की उत्पादन की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद उस उत्पादित वस्तु को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुचाने अथवा कृषि उपज के क्रेताओ से निकट व्यवहार की प्रक्रिया ही कृषि विपणन की क्रिया है। इस प्रकार कृषि उपज के विपणन मे निम्न क्रियाओ का समावेश होता है—(i) कृषि उपज का एकत्रीकरण (ii) सवारना (Procession) (iii) श्रेणीकरण व वर्गीकरण (Grading and Classification) (iv) गोदामो मे सुरक्षित रखना (Storage) (v) वित्त-व्यवस्था करना (Financing) (vi) मडी व विक्रय स्थान पर ले जाना, (vii) विक्रय करना तथा (viii) जोखिम उठाना।

आर्थिक विकास मे कृषि उपज के विपणन की आवश्यकता एवं महत्व

आज के विशिष्टीकरण के युग मे पारस्परिक निर्भरता बढती जा रही है। जब आवश्यकताएँ सीमित थी और आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति प्रबल थी उस समय विपणन की समस्या नही थी। पर आज जब सर्वत्र श्रम विभाजन, बडे पैमाने की उत्पत्ति, व्यावसायिक दृष्टिकोण और विशिष्टीकरण का बोलबोला है तो सभी क्षेत्रो मे उत्पादन के विक्रय की समस्या जटिल हो गई है। कृषि क्षेत्र मे विपणन की समस्या और भी जटिल है क्योकि कृषि उपज मे भिन्नता, कृषको की अज्ञानता,

निर्माण द्वारा आर्थिक विकास मार्ग प्रशस्त किया है। रूस मे तो सामूहिक फार्मों से कृषि पदार्थों की अनिवार्य वसूली से साधन एकत्रित किये गये।

6 कृषकों की समृद्धि व उच्च जीवन स्तर भी अन्ततः कृषि के विपणन योग्य आधिक्य पर निर्भर है। उन्हे अधिक आय प्राप्त होने पर ही वे अधिक उपभोग कर सकेंगे। बचत को विनियोग कर सकेंगे। वैज्ञानिक व आधुनिक कृषि का अनुसरण कर कृषि का तीव्र विकास कर सकेंगे।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि देश मे कृषि उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ उसके विपणन योग्य आधिक्य से औद्योगिक कच्चा माल, श्रमिकों के लिए खाद्यान्न की पूर्ति, विदेशी मुद्रा अर्जन, आयातो का भुगतान, औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार, पूंजी निर्माण का स्रोत तथा कृषि समृद्धि व उच्च जीवन-स्तर का आधार तैयार होता है।

भारत में कृषि उपज के विपणन का संगठन
(Organisation of Agricultural Marketing in India)

भारत मे अपनी कृषि उपज का विपणन सगठन बहुत ही कमजोर व ढीला है। ग्रामीण-स्तर पर कृषक अपनी उपज को या तो स्वय सीधे उपभोक्ताओं को बेचते हैं अथवा ग्रामीण महाजन, व्यापारी या कमीशन एजेन्ट आढ़तिये या दलाल के माध्यम से बेचते हैं। गाँव मे ही फसल बेचने के प्रमुख कारण हैं कि (i) किसान को अपनी उपज घर बैठे अपने ही गाव मे बेचने मे सुविधा रहती है। (ii) भावो मे होने वाले उतार-चढाव व बाजार की धोखा-धडी की जोखिम से मुक्ति मिल जाती है। (iii) यातायात व्यय नही करना पडता। परन्तु इस पद्धति मे किसान को न तो अपनी उपज का उचित मूल्य मिल पाता है और न उसे बाजार मे प्रचलित भावो का ज्ञान होता है। व्यापारी की धोखा धडी की जोखिम अधिक होती है। उसके विपरीत शहरो व कस्बो मे (i) हाट तथा मण्डियो (ii) मण्डियो तथा (iii) कृषि सहकारी विपणन सस्थाओ के माध्यम से कृषि उपज को बेचा जाता है। आजकल खाद्यान्न मे गेहू के व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर देने से सरकारी कर्मचारी अथवा खाद्यान्न निगम के कर्मचारी खाद्यान्न का क्रय करते हैं।

हाटें ऐसा बाजार हैं जहाँ सप्ताह मे एक या दो बार पदार्थों का क्रय-विक्रय होता है जबकि मण्डियाँ लम्बी अवधि वाली हाटे होती हैं जो विशेष अवसरों पर लगती हैं। भारत म लगभग 25 हजार हाटो व मण्डियो मे कृषि उपज का क्रय-विक्रय होता है जिनमे लगभग 4 लाख क्विंटल कृषि उपज बेची जाने का अनुमान है।

मण्डियो मे कृषि उपज का बडे पैमाने पर क्रय-विक्रय होता है जिसमे व्यापारी, उद्योगपति आदि दलालो आढ़तियो के माध्यम से कृषि उपज खरीदते हैं और फिर थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियो को थोडी-थोडी मात्रा आवश्यकतानुसार बेचते रहते हैं। मण्डिया सगठित या असगठित हो सकती हैं। सगठित मण्डियाँ वे हैं जो

नियन्त्रण मे काय करती हैं और उनमे धोखाधडी अनियमितता व अनुचित व्यवहार का अभाव होता है जबकि असगठित मण्डियो मे नियन्त्रण मे काय न करने, अनियमितताओ और धोखाधडी का बाहुल्य होता है । भारत मे सगठित मण्डियाँ कम होने से किसानो को अपनी उपज का उचित मूल्य नही मिल पाता ।

भारत मे कृषि विपणन के दोष
(Defects of Agricultural Marketing in India)

भारत मे कृषि उपज के विपणन मे अनेक दोष हैं उन सबका सामूहिक प्रभाव यह होता है कि किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य नही मिल पाता। मध्यस्थो की एक लम्बी कतार अपना अपना लाभ कमाकर अन्तिम उपभोक्ताओ तक क्रय मूल्य और विक्रय मूल्य मे काफी अन्तर डाल देते है । मुख्य दोष ये है—

1 किसान का स्वभाव भारतीय किसानो मे अधिकाश अशिक्षित, रूढिवादी और अविश्वासी है अत अपनी उपज को सगठित बाजारो मे बेचने की अपेक्षा अपने ही गाव के महाजनो को बेच देते है जो उन्हे ठगने मे कोई कसर नही छोडते। उन्हे बाजार मूल्य व भाव ज्ञात न होने से ग्रामीण बाजार मे मूल्य भी कम ही चुकाया जाता है ।

2 निधनता व ऋणग्रस्तता— भारत मे कृषि व्यवसाय के रूप मे नही वरन् जीवनयापन के साधन के रूप मे है अत अधिकाश किसान गरीब है और गरीबी मे ऋणग्रस्तता का बोलबोला है अत ऋणो को शीघ्र चुकाने के लिये उपज को ऋणदाता महाजन ही हडप जाते हैं । उन ऋणो को चुकाने के लिये शीघ्र बिक्री के लिए बाध्य होना पडता है अत उचित मूल्य नही मिल पाता ।

3 कम उपज व घटिया किस्म—कृषि क्षेत्र मे जनसख्या के अत्यधिक भार, छोटे छोटे बिखरे खेत और साधनो के अभाव मे परम्परागत कृषि से प्रति किसान कृषि उपज बहुत कम ही नही होती वरन् वह किस्म मे भी घटिया होती है। छोटी-छोटी उपज को बाजार मे ले जाकर बेचना अमितव्ययिता पूर्ण है । यही नही कभी-कभी फसल काटने व सम्भालने मे असावधानी से कृषि पदार्थों म धूल मिट्टी, ककड मिल जाते है नमी आ जाती है यहा तक कि रग बदल जाता है। अत कम उपज और घटिया किस्म दोनो के कारण से अपनी उपज का उचित मूल्य नही मिल पाता ।

4 कृषि उपज के श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण का अभाव—कृषक अपनी थोडी थोडी उपज को मिला लेते है अत उपज का श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण के अभाव मे बढिया किस्म का घटिया किस्म से अन्तर हो पाने म कम मूल्य मिलता है। यद्यपि अब हमारे देश म भी कृषक सहकारी विपणन समितियो व स्वय के सगठनो द्वारा कृषि उपज के वर्गीकरण को महत्व देने लगे हैं फिर भी उपज की दृष्टि से यह नगण्य है ।

5 गोदामों व भण्डार गृहों का अभाव—कृषिजन्य वस्तुओं को उत्पादन से बिक्री होने तक की लम्बी अवधि मे सग्रह करने की समस्या भी जटिल है। कृषक निर्धन हैं उनके स्वय के रहने की पर्याप्त व्यवस्था नही तो उपज के सग्रह की व्यवस्था और भी कठिन है। जो कुछ सग्रह की व्यवस्था है भी तो वह अवैज्ञानिक व अपूर्ण है अत कृषक को अपनी उपज को शीघ्र बिक्री के लिये बाध्य होना पडता है। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दिशा मे काफी प्रयास हुआ है पर देश की आवश्यकता की तुलना मे यह अपर्याप्त है।

6 शीघ्र बिक्री के लिये बाध्य होना—किसानो को प्राय अपनी उपज को निर्धनता, ऋण-ग्रस्तता व गोदामो मे सग्रह व्यवस्था के अभाव के कारण शीघ्र बिक्री के लिए बाध्य होना पडता है परिणामस्वरूप बरबस कुसमय पर कृषि उपज की बिक्री के कारण न तो उसे बिक्री की उपयुक्त शर्तें ही मिल पाती हैं और न उपयुक्त मूल्य ही। शीघ्र बिक्री की बाध्यता मे कृषक का शोषण होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश मे गेहू की 80% तिलहन की 75% तथा रुई की 40% उपज अतिशीघ्र ही ग्रामीण बाजारो मे ही बेच दी जाती है। बिहार मे भी 90% गेहू व जूट तथा 85% जूट की उपज फसल के तुरन्त बाद बेच दी जाती है। अब धीरे-धीरे इसमे सुधार हो रहा है।

7 कृषको के विक्रय सगठनो का अभाव—जहाँ विश्व के विकसित देशो मे कृषको के सुदृढ विक्रय सगठन हैं वहाँ भारतीय किसानो मे अशिक्षा, सामाजिक एव आर्थिक पिछडापन, व्यापारी वर्ग की कूटनीति तथा कृषको की स्वाभाविक उपेक्षा से शक्तिशाली विक्रय सगठनो का विकास नही हो पाता है। यद्यपि अब धीरे धीरे सहकारी विपणन समितियो व कृषक सघो के विकास की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है।

8 मध्यस्थों का बाहुल्य—भारत मे कृषक व कृषि उपज के अन्तिम उपभोक्ताओं के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, इन दोनो के बीच मध्यस्थों की एक लम्बी कतार है जैसे गाव का महाजन, नगर के थोक व्यापारियो के प्रतिनिधि दलाल, आढतिये थोक व्यापारी, फटकर व्यापारी, उपभोक्ता भडार, घूमते फिरते विक्रेता, उद्योगपति या निर्यातक आदि हैं। इससे उपभोक्ता और कृषक की उपज के दिये व लिये जाने वाले मूल्य म काफी अन्तर हो जाता है। सर्वेक्षणो से ज्ञात होता है कि चावल उत्पादक किसान को उपभोक्ता द्वारा प्रदत्त मूल्य का 52% तथा गेहू उत्पादको को केवल 6.% मिलता है अर्थात् मध्यस्थ का लाभ-लागत क्रमश 48% तथा 40% है। यही नही दलाल व आढतिये क्रेता और विक्रेता दोनो से कमीशन खा जाते हैं।

9 परिवहन साधनों का अभाव—भारत गाँवो का देश है और बहुत से गाँवो मे अभी भी उपयुक्त व सस्ती परिवहन व्यवस्था का अभाव है। अच्छी सडको व यातायात साधनो के अभाव मे वर्षा ऋतु मे तो बहुत से गाव मण्डियो से कट जाते हैं। अत कृषि उपज विपणन मे शीघ्रता होना स्वाभाविक है।

10 बाजार मूल्यों व अन्य सूचनाओं की जानकारी का अभाव—देश मे सचार साधनो के अर्द्ध-विकसित होने तथा कृषकों मे अज्ञानता, अशिक्षा व सतर्कता की कमी के कारण किसानो को न बाजार भावो की जानकारी होती है और न अन्य उपयोगी सूचनाएँ ही मिल पाती हैं। परिणामस्वरूप किसान की अनभिज्ञता का व्यापारी वर्ग अनुचित लाभ उठाते हैं। यद्यपि अब तो रेडियो पर बाजार भाव प्रसारित किये जाते हैं तथा अखबारो मे भी सूचना प्रकाशित होती हैं पर देश के अधिकाश अशिक्षित किसान उसका लाभ नहीं उठा पाते।

11. बाजारों मे अवाछित परम्पराएं व घोखाघडी—भारतीय कृषि विपणन मे सबसे बडा दोष बाजारो मे अवाछित परम्पराओ व घोखाघडी की क्रियाओ से किसान का शोषण करने की प्रवृत्ति है। देश मे सगठित मण्डियो को इन दोषों से मुक्त करने के लिय कठोर नियत्रण की नीति लागू की गई है फिर भी असगठित मण्डियों व गावो म बिक्री मे ये दोष विद्यमान हैं। ये अवाछित क्रियाए हैं (i) **कडदा अथवा काटा काटना**—अधिकाश व्यापारी कृषको से उनकी उपज क्रय करते समय धूल, ककड व माल म मिलावट के नाम पर प्रति क्विटल 2 से 5 किलो की कटौती कर देते हैं इसके कारण कृषक को एक क्विटल के बदले केवल 98 स 95 किलो का ही मूल्य मिल पाता है। (ii) **अनेक शुल्क व कटौतिया**—कृषक का माल बिक जाने के बाद उससे तुलाई दलाली आढ़त पल्लेदारी, चुगी आदि शुल्क वसूल कर लिये जाते हैं। यही नही व्यापारी उपज के विक्रय मूल्य म से धर्मादा, प्याऊ, कबूतरखाना धर्मशाला, गौशाला पाठशाला, मन्दिर आदि की कटौतिया काट लेता है तथा मौका मिला तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियो मुनीम व चौकीदार शुल्क भी वसूल करने मे नहीं चूकता। (iii) नमूने मे उपज का भाग थोडा-थोडा सब व्यापारी लेते हैं जिससे भी नमूने म दी गई उपज का मूल्य नही मिल पाता (iv) नाप-तौल म धोखाधडी से अधिक तोल लेना, किसान की नासमझी से गलत मूल्य की गणना करना आदि से भी कृषको को काफी हानि उठानी पडती है (v) गुप्त सौदा पद्धति मे दलाल या आढतिये व्यापारी वर्ग के पक्ष म शर्तें तय करवाने म अधिक रुचि रखते हैं तथा उनसे गुप्त सौदे करके कृषको का माल कौडियो मे बिकवाकर स्वय लाभ अर्जन की चेष्टा करते हैं। (vi) सभी कृषकों के द्वारा एक साथ बाजार मे माल लाकर बेचने की प्रवृत्ति से फसल आने के बाद मण्डियो म कृषिजन्य पदार्थों की पूर्ति बढ जाती है अत मूल्य ठीक-ठीक नही मिल पात।

12 वित्तीय साधनो का अभाव—किसानो की निर्धनता व ऋणग्रस्तता के कारण तथा नयी फसल के लिये नय आदान क्रय के लिये किसानो को वित्त साधनो की तत्काल आवश्यकता होती है पर वित्त साधनो के अभाव म कृषि उपज को शीघ्र बेचने मे उनको उचित मूल्य नही मिलता।

कृषि विपणन सम्बन्धी सरकारी नीति व दोषो को दूर करने के लिए किये गये उपाय

(Govt Policy towards Agricultural Marketing & Measures Adopted for Removal of Defects)

कृषि उपज के विपणन मे भी अन्य क्षेत्रो की भाँति सरकार की यह नीति रही है कि कृषक को अपनी उपज का उचित मूल्य मिले ताकि उसे अधिक उत्पादन की प्रेरणा मिले और उपभोक्ताओ को भी उचित मूल्यो पर वस्तु उपलब्ध हो जाय और जन असन्तोष उत्पन्न न हो। वैसे तो प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ब्रिटिश सरकार ने परोक्ष व प्रत्यक्ष तरीको से व्यापारिक फसलो—चाय, कपास, जूट, तम्बाकू, तिलहन आदि व खाद्यान्न वस्तुओ के विपणन मे सुधार के प्रयास किये पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत सरकार ने प्रभावी कदम उठाये हैं। द्वितीय पचवर्षीय योजना में सरकार की नीति का सकेत इस कथन मे झलकता है कि "किसानो को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने तथा उपभोक्ताओ को भी कृषि पदार्थ उचित मूल्यो पर दिलाने के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कृषि पदार्थों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी दोष दूर करने होगे कृषि उत्पादन क्षेत्रो के अतिरिक्त माल उपभोक्ता क्षेत्रों मे भेजने की व्यवस्था करनी होगी और अधिकतम सम्भव सीमा तक सहकारी क्रय-विक्रय का प्रबन्ध करना होगा।" इस नीति की कार्यान्विति व प्रगति का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

1 **नियन्त्रित मण्डियों का विस्तार (Expansion of Regulated Markets)**—कृषि उपज विपणन मे अवांछित परम्पराओ व धोखाधडी की प्रवृत्तियो को रोकने के लिये नियन्त्रित मण्डियो की स्थापना व विस्तार को महत्व दिया गया। अब सम्पूर्ण देश मे नियन्त्रित बाजार व्यवस्था लागू हो चुकी है। समस्त भारत मे लगभग 3300 बडी मण्डियाँ हैं उनम से प्रथम योजना तक केवल 255 नियन्त्रित मण्डियाँ थी। दूसरी योजना के अन्त तक नियन्त्रित मण्डियो की सख्या 725, तृतीय योजना के अन्त तक 1600, (1968–69) तक 1880 तथा जून 1975 तक देश की सभी 3300 बडी मण्डिया नियन्त्रित मण्डियो की श्रेणी मे आ जाने का अनुमान है।

नियन्त्रित मण्डियो मे कृषक तथा व्यापारियो की एक प्रतिनिधि "मण्डी समिति' का कृषि उपज के क्रय-विक्रय पर प्रभावी नियन्त्रण रहता है, वह मूल्य सम्बन्धी सूचना देती है। नाप-तोल पर निगरानी रखी जाती है, केवल अधिकृत कटोतिया व शुल्क ही वसूल किये जाते हैं। दलाल व व्यापारी लाइसेन्स शुदा होते हैं और मण्डी के नियमो का उल्लघन करने पर दण्ड व्यवस्था होती है।

2 **कृषि उपज श्रेणीकरण व चिन्हांकन (Grading & Marking)**—कृषि उपज का श्रेणीकरण व चिन्हाकन भारत सरकार के कृषि उपज (श्रेणीकरण व चिन्हाकन) अधिनियम 1937 (Agricultural Product Grading and Marking Act, 1937) के अन्तर्गत किया जाता है। निर्यात की जाने वाली कृषि

उपज का श्रेणीकरण अनिवार्य है जैसे तम्बाकू इलायची ऊन, पशुओं के बाल आदि सरकार द्वारा अब तक लगभग 45 वस्तुओं की 200 किस्मों के वर्ग निर्धारित किये जा चुके है जिनमे कई प्रकार के फल, चावल गेहू, गन्ना, रूई, आलू, घी, मक्खन, तेल आदि प्रमुख हैं। इन प्रमाणित वस्तुओं पर एगमार्क (Agmark) की सील लगा दी जाती है। चौथी योजना के अन्त तक सभी महत्वपूर्ण पदार्थों के एगमार्क प्रमाणीकरण का लक्ष्य रखा गया था। लगभग 600 ग्रेडिंग इकाइया स्थापित की जा चुकी है।

3. प्रयोग एवं अनुसधान शालाओं की स्थापना—श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण के लिए तृतीय योजना काल मे ही एक केन्द्रीय प्रयोगशाला नागपुर मे स्थापित की गई तथा दूसरी योजना मे स्थापित चार प्रयोगशालाओं—कोचीन बम्बई, राजकोट व कानपुर की क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं मे परिवर्तित किया गया और चार नई प्रयोगशालाए गुटूर मद्रास कलकत्ता व अमृतसर मे स्थापित हुई। 1968 म दो और क्षेत्रीय प्रयोगशालाए स्थापित की गई। अब देश मे लगभग एक हजार श्रेणीकरण इकाइयां कार्यरत तथा 17 प्रयोगशालाएँ है।

4. प्रमाणित माप तोल की उचित व्यवस्था—स्वतन्त्रता के पूर्व तथा बाद मे अप्रैल 1958 से पूर्व देश मे विभिन्न प्रकार के बाट तोल प्रचलित रहे जिसमे 20 सेर से लेकर 100 सेर तक मन होता था और उसमे बहुत अधिक धोखाधडी होती थी। इस दोष के निराकरण के लिये 1 अप्रैल 1958 से नाप तोल की समूचे देश मे एक ही मीट्रिक ताल (किलोग्राम, क्विन्टल) प्रणाली चालू कर दी गई। मूल्य की गणना को भी सरल बनाने के लिये दशमलव मुद्रा प्रणाली (Decimal Coinage System) चालू किया गया। इसके बावजूद भी लोग ठगने मे नही चूकते।

5 बाजार सम्बन्धी शोध एव सर्वेक्षण—देश मे कृषि उपज विपणन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने तथा महत्वपूर्ण कृषि पदार्थों के बाजारो का सर्वेक्षण व अन्वेषण करने का काय भारत सरकार का विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय (Directorate of Marketing & Inspection) करता है। 1937 के बाद इस निदेशालय ने 80 वस्तुओं से सम्बन्धित 130 प्रतिवेदन प्रकाशित किये है। यह 'कृषि विपणन' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करता है।

1935 मे सर्वप्रथम केन्द्र सरकार ने एक कृषि विपणन सलाहकार तथा कई विपणन अधिकारी व निरीक्षक नियुक्त किये जो आज तक कृषि मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्यरत है और उनका विस्तार हुआ है। राज्यो म भी केन्द्र की भांति कृषि विपणन विभाग खोले गये हैं। इन सबका काय बाजार सम्बन्धी सूचना एकत्रित करना, जाच पड़ताल करना अथवा कृषि पदार्थों के श्रेणीकरण की व्यवस्था करना है।

6 परिवहन व यातायात का विकास—योजनाबद्ध विकास के पिछले 28 वर्षों मे यातायात साधनो का तीव्र गति से विकास हुआ है। कोई भी गाँव अब पक्की सड़क से 8–10 मील से दूर नही है। रेलो की लम्बाई 1950–51 मे 54 हजार

किलोमीटर थी जो अब बढकर 61 5 हजार किलोमीटर तथा रेलो की माल ढोने की क्षमता 8 3 करोड टन से बढकर 26 5 करोड टन हो गई है। सतहदार सडको की लम्बाई 1 56 लाख किलोमीटर से बढकर 6 लाख किलोमीटर हो गई है। डाक, तार टेलीफोन आदि मे तीव्र विकास हुआ है।

7 मालगोदामो की व्यवस्था—कृषको की बिक्री योग्य उपज को माल गोदामो मे सुरक्षित रखने तथा उन्हे उचित समय मे बाजार मे बेचने के लिए देश की सरकार ने शुरू से ही रुचि ली है। ग्रामीण साख सर्वेक्षण की सिफारिश पर 1954 मे ही केन्द्र सरकार ने एक राष्ट्रीय सहकारी कृषि एव गोदाम मण्डल की स्थापना की। 1957 मे एक केन्द्रीय गोदाम निगम बनाया गया तथा राज्यो मे भी राज्य गोदाम निगमो की स्थापना हुई। इन निगमो ने क्रमश केन्द्रीय स्तर पर तथा राज्य स्तर पर गोदाम निर्मित करवाये। मार्च 1971 तक देश की सभी सरकारी सस्थाओ के माल गोदामो की सग्रह क्षमता 109 लाख टन थी। चतुर्थ योजना काल मे गोदामो के विकास पर लगभग 18 करोड रुपये व्यय की व्यवस्था थी तथा उससे 10 लाख अतिरिक्त क्षमता की व्यवस्था का प्रावधान था। 20 लाख टन क्षमता के गोदाम सहकारी क्षेत्र मे बढाने का लक्ष्य था। अब भण्डारण क्षमता लगभग 180 लाख टन है।

8 बाजार एव मूल्य सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसारण—कृषि उपज की प्रमुख वस्तुओ के मूल्यो का प्रसारण रेडियो पर किया जाता है। दैनिक समाचार पत्रो मे भी प्रमुख मण्डियो मे प्रचलित भावो को छापा जाता है। साप्ताहिक समीक्षा दी जाती है। 'Agricultural Situation in India" नामक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। यही नही सिनेमा स्लाइडो, वृत्त चित्रो आदि से भी सहारा लिया जाता है।

9 कृषि मूल्य आयोग की स्थापना—भारत मे कृषको को भावो मे होने वाले उतार-चढावो से सुरक्षा व प्रेरणा प्रदान करने, उन्हे अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाने तथा उपभोक्ताओ को भी उचित मूल्यो पर कृषि पदार्थ उपलब्ध कराने के उद्देश्यो से कृषि मूल्य आयोग (Agriculture Price Commission) द्वारा न्यूनतम गारन्टी मूल्यो की घोषणा की जाती है। वर्ष 1975–76 मे कृषिजन्य पदार्थों के मूल्यो की गिरावट को रोकने के लिए सरकारी खरीद मे मूल्य सहायता नीति (Price Support Policy) का सहारा लिया जा रहा है।

10 कृषि विपणन प्रशिक्षण—कृषि विपणन मे लगे अधिकारियो व कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उचित व्यवस्था पर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। प्रशिक्षण के तीन पाठ्यक्रम चालू हैं जिनमे पहला नागपुर मे, राजकीय विपणन उच्च अधिकारियो के प्रशिक्षण का एक वर्षीय कोर्स है। दूसरा पाच माह के लिए सागली तथा हैदराबाद मे क्रय-विक्रय सचिवो व अधीक्षको के प्रशिक्षको के प्रशिक्षण का कोर्स होता है तथा तीसरा वर्गीकरण निरीक्षको के लिए

त्रैमासिक प्रशिक्षण कोर्स है। सहकारी विपणन समितियो के अधिकारियो के प्रशिक्षण की अलग व्यवस्था है। अब तक लगभग 6 हजार कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

11 सहकारी कृषि विपणन व्यवस्था को बढ़ावा—कृषि विपणन के अधिकांश दोषों का निराकरण करने म सहकारी कृषि विपणन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कृषकों को सगठित होकर साख व विपणन की एक एकीकृत योजना को मूर्त रूप देने का मौका मिलता है। 30 जून 1975 तक देश मे सहकारी कृषि विपणन समितियों की सख्या 3300 थी और जहा 1960–61 म 175 करोड रुपये मूल्य की कृषि वस्तुओं का विक्रय किया था वहाँ 1970–71 मे यह राशि बढकर 650 करोड रुपय हो गई। 1950–51 मे तो केवल 47 करोड रुपये मूल्य की बिक्री की थी। 1974–75 म सहकारी विपणन समितियो द्वारा 1215 करोड रुपये मूल्य की कृषि उपज विक्रय की गई। 1978–79 तक यह 1900 करोड रुपय होने का अनुमान है।

12 विविध—कृषि उपज विपणन के दोषों के निराकरण के लिए शिक्षा *का तेजी से प्रसार किया है। अत जहा 1951 मे साक्षरता का प्रतिशत 16 6 था* वह 1961 म बढकर 24 3 तथा 1971 म 29 35 हो गया है। अब यह 32% होन का अनुमान है। सरकार ने गहू के व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। कृषकों को वित्तीय सहायता दी जाती है। बैंकों के द्वारा भी कृषकों को बडी मात्रा में ऋण दिया जाने लगा है।

कृषि विपणन व्यवस्था मे सुधार के सुझाव

यद्यपि भारत म कृषि विपणन के क्षेत्र मे काफी सुधार लाने का प्रयास किया है पर इन प्रयासो की उपलब्धिया देश के कुल माग को देखते हुए नगण्य हैं। यद्यपि अब देश म नियन्त्रित मण्डिया हैं फिर भी जब किसान अपनी उपज को गाव के महाजनो के हाथ सस्ते मूल्यों म बेच देता है तो यह दोष किसका ? कृषकों की *अज्ञानता व उसकी छोटी-छोटी उपजा को शीघ्र भेजन की बाध्यता। अत शिक्षा का* प्रसार किया जाना चाहिए। कृषको के माल को सुरक्षित गोदामो म रखकर सहकारी विपणन व्यवस्था के आधार पर उनका वित्तीय साधना व कृषि की आवश्यक पडतों की पूर्ति करन म "कृषि वित्त व विपणन" की एक एकीकृत योजना लागू की जाना श्रेष्ठ है। सस्त यातायात साधनो व शीघ्र नाशवान वस्तुओं के लिए शीत भण्डारो (Cold Storage) की *व्यवस्था की जानी चाहिये। गोदामो की क्षमता बढानी* चाहिये और यथासम्भव उन्हे आधुनिकतम बनाया जाना चाहिय। बाजार सम्बन्धी सर्वेक्षणो व अन्वेषण कार्यों को प्रोत्साहन देना चाहिये।

निष्कर्ष—भारत म कृषि उपज के विपणन की समस्या समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था के साथ जुडी हुई है। *अत कृषकों की समृद्धि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था के* विकास के लिए न केवल कृषि उत्पादन म वृद्धि आवश्यक है वरन् उन प्रतिकूलताओ के निवारण की आवश्यकता है जिनके अन्तर्गत कृषक को अपनी उपज बहुत ही कम

कीमतो पर बेचने को बाध्य होना पड़ता है। शक्तिशाली व चालाक व्यापारियों द्वारा कृषको का शोषण समाप्त करने की आवश्यकता है। इसके लिए कृषको मे शिक्षा का प्रसार, सहकारी कृषि विपणन को बढावा, मण्डियो पर नियन्त्रण, बाजार भावो की जानकारी तथा कृषि उपज के सरकारी व्यापार को प्रेरित किया जा सकता है। गेहूँ के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण एक असफल प्रयत्न होते हुए भी कटु अनुभव रहा।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1. भारत मे कृषि विपणन के क्या-क्या दोष हैं और इन दोषों के निराकरण के लिए क्या-क्या प्रयास किये गये हैं ?

अथवा

"भारतीय कृषक की सबसे बडी कठिनाई यह है कि उसे प्रतिकूल स्थान पर प्रतिकूल समय मे तथा प्रतिकूल शर्तों के अन्तर्गत अपनी उपज बेचने के लिए बाध्य होना पडता है। इस कथन की विवेचना कीजिये।

(संकेत :—दोनो प्रश्नो के उत्तर मे थोडी बहुत भाषा मे हेर-फेर कर कृषि विपणन के दोषो को बताकर उसके निराकरण के लिए किये गये प्रयत्नो की समीक्षा करनी है।)

2. भारत मे कृषि उपज के विपणन की समस्याओ पर प्रकाश डालिये तथा उन्हें दूर करने के उपाय बताइये।

(संकेत :—कृषि विपणन के दोषो को बताकर उनके दूर करने के सरकारी प्रयत्नो का उल्लेख करते हुए साथ-साथ सुझाव दे देना है।)

3. भारत सरकार ने कृषको को उनकी उपज का मूल्य दिलाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न किये हैं ?

(संकेत :—इसके अन्तर्गत कृषि विपणन सम्बन्धी सरकारी नीति व कृषि विपणन के दोषो के निराकरण के उपचारो का उल्लेख करना है।)

सामुदायिक विकास

(Community Development)

भारत के 5.6 लाख गावो मे बसी 82% निधन व दुःखी ग्रामीण जनसख्या क सर्वांगीण विकास तथा उन्हे विविधतापूर्ण एव समृद्ध जीवन उपलब्ध करने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" के प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्त को मूर्त रूप प्रदान करने का एक सगठित एव आयोजित प्रयत्न है। यह सामूहिक कल्याण को प्राप्त करने का ऐसा सामूहिक प्रयास है जिसमे ग्रामवासियो के स्वय के प्रयत्नो व नेतृत्व को आधार माना गया है और उनमे पारस्परिक सहयोग, आत्म-निर्भरता व परिश्रम की प्रेरणा दी जाती है ताकि उनके व्यक्तिगत एव सामूहिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके। वैसे तो ग्रामीण जनता के पुनरुत्थान व विकास के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन मे, महात्मा गाधी ने सेवाग्राम मे स्पेन्सर हैच ने मार्तण्डम तथा ब्रायन ने पजाब के गुडगाव मे कुछ प्रयास किये थे पर सरकारी स्तर पर ग्रामीण विकास की दिशा मे सुनियोजित कार्यक्रम स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजकोषीय आयोग (Fiscal Commission) 1949 की सिफारिश पर "अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन" के रूप मे चालू हुआ। अधिक अन्न उपजाओ जाच समिति ने जून 1952 मे अपने प्रतिवेदन मे यह सिफारिश की कि (i) ग्राम विकास योजनाओ के अनुकूल ग्राम, जिला तथा राज्य स्तर पर सरकारी व गैर-सरकारी सगठन बनाये जायें, (ii) राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम लागू किया जाय तथा (iii) इस कार्यक्रम के लिए केन्द्र द्वारा आर्थिक सहायता दी जाय।

भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ—अधिक अन्न उपजाओ जाच समिति की सिफारिशो को योजना आयोग तथा सरकार ने स्वीकार कर 2 अक्टूबर 1952 को महात्मा गाधी की जन्म तिथि के अवसर पर सम्पूर्ण देश के 55 केन्द्रो के 500 वर्ग मील क्षेत्र की लगभग 2 लाख जनसख्या पर यह ग्राम-विकास का ऐतिहासिक कार्यक्रम लागू किया गया यद्यपि प्रारम्भ मे 1960 तक देश की सम्पूर्ण ग्रामीण जनसख्या को इस कार्यक्रम की परिधि मे लाने का लक्ष्य था पर यह लक्ष्य 1963 मे ही पूरा हो सका।

सामुदायिक विकास का अर्थ—सामुदायिक विकास का अभिप्राय उस व्यापक एव सुनियोजित कार्यक्रम से है जिसके द्वारा ग्रामीण जनता का सर्वांगीण एव

सर्वतोन्मुखी विकास किया जाता है ताकि उनका आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक एव नैतिक उत्थान हो और उन्हे अपने ही प्रयत्नो व प्ररणाओ से आर्थिक दृष्टि से समृद्ध, विविधतापूर्ण एव सुखी जीवनयापन का अवसर उपलब्ध हो सके। यह सामूहिक कल्याण का एक ऐसा गहन विकास कार्यक्रम है जिसके कार्यान्वियन मे पिछड़ी व निर्धन ग्रामीण जनता की आर्थिक समृद्धि, सामाजिक सबलता व राजनैतिक सुदृढता का स्वप्न सजोया गया है। इस कार्यक्रम मे ग्रामीण विकास के समस्त पहलुओ का समावेश होता है और इसी कारण पण्डित नेहरू ने ठीक ही कहा है, "सामुदायिक विकास परियोजनाए सम्पूर्ण भारत मे वे चमकीली, जीवन से परिपूर्ण एव प्रावैगिक चिनगारियां हैं जिनसे शक्ति, आशा एव उत्साह की किरणें प्रस्फुटित होती हैं। ये विकास के ऐसे ज्योति स्तम्भ हैं जो घने अन्धकार मे तब तक प्रकाश फैलाते रहेगे जब तक कि समस्त भारतीय अर्थव्यवस्था आलोकित न हो उठे।"

सामुदायिक विकास की विशेषतायें—(i) यह सरकार तथा स्थानीय जनता दोनो का सयुक्त प्रयास है। (ii) स्वेच्छा के आधार पर स्थानीय साहस, प्रयत्नो व प्रेरणाओ को महत्व दिया जाता है। (iii) यह गामीण विकास का एक ऐसा व्यापक व सनियोजित कार्यक्रम है जिसमे ग्रामीण विकास का एक ऐसा व्यापक व सुनियोजित कार्यक्रम है जिसमे ग्रामीण विकास के समस्त पहलुओ का समन्वित समावेश होता है। (iv) कार्यक्रम के सगठन व सचालन मे जनतान्त्रिक आधार पर ग्रामवासियो का सक्रिय सहयोग लिया जाता है। (v) इस कार्यक्रम मे तीन महत्वपूर्ण सस्थायें है—पचायतें सहकारी समितियां तथा पाठशालायें जिसमे पचायतें ग्राम स्तर पर विकास कार्यों का सचालन व देख रेख करती है, सहकारी सस्थाएँ आर्थिक पहलुओ के विकास की आधारशिला हैं जबकि गाँव का स्कूल शिक्षा व सास्कृतिक गतिविधियो का केन्द्र होता है। (vi) यह ग्रामीण जनता के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित है। (vii) 1958 तक यह कार्यक्रम तीन चरणो मे पूरा किया जाता था अब केवल दो ही चरणो मे पूरा किया जाता है। (viii) अब सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण जनता इस कार्यक्रम की परिधि मे आ चुकी है।

सामुदायिक विकास के उद्देश्य
(Objectives)

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का आधारभूत उद्देश्य समस्त ग्रामीण जनता का सर्वांगीण एव सर्वतोन्मुखी विकास करना है। भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम के भूतपूर्व प्रमुख सलाहकार डा डगलस एन्सिमन्जर के मतानुसार सामुदायिक विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं[1]—

1 प्रगतिशील व व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करना—इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो की भाग्यवादी, रूढिवादी एव अशिक्षित जनसख्या मे प्रगतिशील एव

1 Guide to Community Development pp 3-5
—Dr D. Ansemmjer

व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करना है ताकि वे राष्ट्र के सबल, सर्वगुण एवं सजग प्रहरी बन सकें।

2 प्रभावशाली नेतृत्व व स्थानीय साहस को प्रोत्साहन—सामुदायिक विकास का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य स्थानीय साहस तथा नेतृत्व को उनको अपने ही विकास कार्यक्रमो के सचालन के लिये प्रेरित करना है ताकि वे अन्तत राष्ट्र निर्माण कार्यों मे सजग एव प्रभावी नेतृत्व प्रदान करने मे समर्थ हो सकें। इसके लिए युवक सघ, महिला मण्डल, कृषक सगठन, मनोरजन क्लब, सहकारी समितियाँ आदि का विस्तार व विकास करना है।

3 जन सहयोग—किसी भी देश के विकास कार्यक्रमो की सफलता जन-सहयोग पर निर्भर करती है। अत ग्रामीण जनता मे योजनाओ के प्रति उत्साह व विकास के प्रति आत्म विश्वास जागृत कर उनमे सक्रिय सहयोग का वातावरण उत्पन्न करना है।

*4 उत्पादन व आय मे वृद्धि—ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो का यथा-*सम्भव विकास कर उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि करना ताकि ग्रामीण जनता की आय, रोजगार व उत्पादन क्षमता मे वृद्धि हो। कृषि मे उत्पादन की नवीनतम वैज्ञानिक पद्धतियो का प्रयोग, रासायनिक उर्वरको, उन्नत बीजो व कीटाणुनाशक दवाओ का उपयोग, सिंचाई साधनो का विकास, लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास आदि इसके उद्देश्य है।

5 प्राथमिक वस्तुओ मे आत्म-निर्भरता—सामुदायिक विकास का पाँचवा महत्वपूर्ण उद्देश्य समस्त गावो को प्राथमिक वस्तुओ—भोजन, कपडा, आवास की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाना है।

6 युवको को प्रशिक्षण तथा रोजगार मे वृद्धि—आर्थिक विकास कार्यों मे ग्रामीण युवको को इस प्रकार प्रशिक्षित करना ताकि वे भावी विकास मे सक्रिय योगदान दे सके। *यही नही लोगो को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध करने के श्रम-प्रधान* कार्यों का सचालन करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।

7 स्वास्थ्य सुधार मनोरजन साधनो की वृद्धि तथा उच्च जीवन स्तर प्रदान करना—ग्रामीण जनता को अधिकाधिक स्वास्थ्य एव चिकित्सा सुविधाए उपलब्ध कराना तथा स्वास्थ्य सुधार करना। ग्रामीण क्षेत्र मे मनोरजन सुविधाए बढाना तथा ग्रामीणो को विकास व उत्पादन वृद्धि से उच्च जीवन-स्तर के अवसर प्रदान करना है।

इस प्रकार सामुदायिक विकास एक बहुउद्देशीय कार्य-क्रम है जो ग्रामीणों के सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, सास्कृतिक एव नैतिक उत्थान मे उनके सर्वाङ्गीण विकास के लक्ष्य से प्रेरित है।

सामुदायिक विकास के अन्तर्गत कार्य-क्रम

सामुदायिक विकास के उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण जीवन के

सभी पहलुओं का समावेश करते हुए एक अष्ट-सूत्रीय कार्य-क्रम अपनाया गया है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1 कृषि सम्बन्धी कार्य-क्रम—भारत की कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था मे कृषि विकास कार्यक्रम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसके अन्तर्गत कृषि क्षेत्र का विस्तार, उत्पादन की नई विधियो व तकनीक का प्रयोग, रासायनिक उर्वरको, उन्नत बीजो तथा सुधरे उपकरणो का प्रयोग, कृषि विपणन एव वित्त व्यवस्था मे सुधार, भूमि कटाव की रोकथाम, सहकारिता का विकास, पशु-पालन मे वैज्ञानिक प्रयोग आदि का समावेश है।

2 सिंचाई सुविधाओ के विकास व विस्तार के लिए लघु सिंचाई योजनाओ को प्राथमिकता देना तथा ऐसी व्यवस्था करना कि कृषि योग्य भूमि के लगभग 50% क्षेत्र मे सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो जायें।

3 शिक्षा प्रसार—ग्रामीण जनता के दृष्टिकोण मे प्रगतिशील व आत्म-निर्भरता की प्रवृत्ति शिक्षा के व्यापक प्रसार मे निहित है अत सामान्य व तकनीकी शिक्षा सुविधाओ की अभिवृद्धि के लिए व्यवस्था करना, वयस्को के लिए प्रौढ शिक्षा आदि प्रमुख कार्य हैं।

4 ग्रामीण एव लघु उद्योगों का विकास करना ताकि गावो मे व्याप्त बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी का निराकरण कर उपयोगी रोजगार उपलब्ध किया जा सके। इसके लिए कारीगरो व शिल्पकारो के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है।

5 यातायात एवं संचार साधनो का विकास करने के लिए यथासम्भव ग्रामीणो के ऐच्छिक श्रम, सार्वजनिक सस्थाओ तथा सरकारी विभागो को प्रोत्साहित करना ताकि कोई भी गाव मुख्य सडक से आधे मील से अधिक दूर न हो।

6 स्वास्थ्य एवं ग्राम सफाई कार्य-क्रम—इसके अन्तर्गत गावो मे जन-चिकित्सा केन्द्र, पशु-चिकित्सालय तथा चल-चिकित्सालयो की व्यवस्था, छुआछूत की बीमारियो—हैजा, मलेरिया, तपेदिक, टी बी आदि पर नियन्त्रण तथा गावो मे सफाई के कार्य-क्रमो का समावेश है।

7 आवास, प्रशिक्षण व सामाजिक कल्याण कार्य-क्रम—इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनता की सुविधाजनक आवास व्यवस्था के कार्य-क्रम लागू करना ग्रामीण युवको को कार्य, खेलकूद व योजनाओ के सफल कार्यान्वियन के लिए प्रशिक्षण प्रदान करना तथा सामाजिक कल्याण कार्यों को सचालित करना है।

8 महिला विकास कार्य-क्रम—ग्रामीण क्षेत्रो मे महिलाओ की दयनीय दशा को सुधारने के लिए उपयुक्त कार्य-क्रमो को विशेष महत्व दिया गया है।

सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों की सफलता के आदर्श आवश्यक तत्व

सामुदायिक विकास कार्य-क्रमो की सफलता के लिए चार आदर्श तत्वो का

होना आवश्यक समझा गया है। (1) प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तो पर ग्राम पंचायतो का विकास करना जो बिना किसी भेदभाव के स्वयं स्फूर्त एवं क्रियाशील संस्थाओं के रूप में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को मूर्त रूप देने में अधिकारियों को योग दे। (2) ग्रामीण जनता के आर्थिक विकास के सम्पूर्ण पहलुओं के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सहकारी समितियों की लोकप्रियता में निहित है। (3) ग्राम विद्यालयों व अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका है जो सम्पूर्ण गांव में सांस्कृतिक केन्द्र व अशिक्षा निवारण के प्रमुख स्रोत हैं। (4) ग्रामीण जनता का सहयोग योजनाओं की सफलता का आधार स्तम्भ है अतः उनके सक्रिय सहयोग का उचित वातावरण बनाना सफलता की कुंजी है।

सामुदायिक विकास कार्य-क्रम का संगठन व प्रबन्ध

सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू होने के बाद आज तक प्रयोगात्मक दौर से गुजर रहा है अतः समयानुकूल व परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तनों की प्रवृत्ति रही है। संगठन का वर्तमान स्वरूप निम्नलिखित है—

1 केन्द्र स्तर पर देश का सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मन्त्रालय है जो सामुदायिक विकास सम्बन्धी सभी नीतियों का निर्धारण व संचालन करता है। यह मन्त्रालय नीति निर्धारण व संचालन में योजना आयोग खाद्यान्न व कृषि मन्त्रालय आदि से भी परामर्श करता है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की प्रगति का मूल्यांकन योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन द्वारा किया जाता है।

2 राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य में राज्य विकास परिषदों की स्थापना की गई है। इस परिषद् का अध्यक्ष राज्य का मुख्य मन्त्री सदस्य विकास मन्त्री व सचिव राज्य का विकास आयुक्त होता है। राज्य सरकार इस परिषद् के निर्देशानुसार सामुदायिक विकास कार्यों का संचालन करता है। विकास आयुक्त (Development Commissioner) सामुदायिक विकास के मुख्य अधिकारी के रूप में जिलाधीशों (विकास अधिकारियों) के कार्यों की देखभाल करता है।

3 जिला स्तर पर जिला परिषदें होती हैं। जिलाधीश उसका पदेन मुख्य अधिकारी होता है। खण्ड स्तर पर पंचायत समितियां होती हैं जिनमें मुख्य अधिकारी खण्ड विकास अधिकारी (Block Development Officers) होते हैं। प्रायः एक जिला परिषद् के अन्तर्गत तीन खण्ड होते हैं और औसतन प्रत्येक खण्ड में 100 गांव होते हैं।

4 ग्रामीण स्तर पर ग्राम विकास पंचायतें होती हैं। अगर गांव छोटे-छोटे होते हैं तो दो-तीन छोटे गांवों को बड़े गांव की पंचायत में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस स्तर पर मुख्य कार्यकर्ता ग्राम सेवक होता है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जिन राज्यों में प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण नहीं हुआ है उनमें खण्ड विकास समितियां (Block Development Committees)

होती है जिनमे ससद व विधान सभा के सदस्य कुछ प्रगतिशील किसान, सामाजिक कार्यकर्त्ता, युवक-युवतियाँ, सहकारिता व पचायत राज के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। ये सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के आयोजन व क्रियान्वयन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सामुदायिक विकास योजनाओ को कार्यान्वित करने मे सलग्न प्रमुख कार्यकर्त्ता (1) ग्राम सेवक, (2) कृषि विस्तार अधिकारी तथा (3) खण्ड विकास अधिकारी हैं। ग्राम सेवक सम्बन्धित विकास पचायत की देख-रेख करता है, प्रगति एव कार्य-क्रमो का सम्पूर्ण लेखा-जोखा रखता है और गाँवो की समस्याओ को हल करने मे मदद करता है। कृषि विस्तार अधिकारी खण्ड स्तर पर कृषि सम्बन्धी समस्याओ का विशेषज्ञ होता है तथा उनके हल करने म मदद करता है। खण्ड-विकास अधिकारी खण्ड स्तर पर पचायत समितियो के द्वारा आयोजित कार्यक्रमो का क्रियान्वयन करता है तथा खण्ड से सम्बद्ध पचायतो सहकारी समितियो व विकास कार्यक्रमो मे तालमेल बैठाता है।

सामुदायिक विकास योजना के विभिन्न चरण

भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का सचालन प्राय चार चरणो मे रहा है—(1) पूर्व विस्तार अवस्था—प्रथम चरण म जिस क्षेत्र म सामुदायिक विकास खण्ड स्थापित करना होता है उसमे प्राय एक वर्ष की अवधि म खण्ड स्थापना के लिए आवश्यक आधार तैयार किया जाता है। उस क्षेत्र का गहन अध्ययन व सर्वेक्षण किया जाता है व आवश्यक कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है। (2) प्रथम अवस्था वाले खण्ड—द्वितीय चरण मे पूर्व विस्तार अवस्था वाला क्षेत्र इस श्रेणी मे आ जाता है जिसम पाँच वर्ष की अवधि म 12 लाख रुपये व्यय करने की व्यवस्था होती है और इस धन राशि का प्रयोग कृषि विकास कार्यों, लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास खण्ड कार्यालय व सामाजिक सेवाओ के लिए होना है। इन कार्यों का सामयिक मूल्याकन करने के लिए मापदण्ड निर्धारित है। (3) द्वितीय अवस्था वाले खण्ड—तीसरे चरण म प्रथम अवस्था की समाप्ति पर द्वितीय अवस्था प्रारम्भ होती है जिसम अगले पाँच वर्षों म 5 लाख रुपय व्यय स आर्थिक विकास कार्यक्रमो को और सुदृढ किया जाता है। (4) अन्तिम अवस्था—द्वितीय अवस्था की समाप्ति पर प्रत्येक विकास खण्ड म आर्थिक योजनाओ का निश्चित क्रम स्वय स्फूर्त रूप से चालू हो जाता है। अगर पिछले पाँच वर्षों म विकास पर्याप्त न हो तो उस क्षेत्र के विकास को वाछित स्तर पर लाने के लिए अगले एक या दो वर्ष तक 1 लाख रुपये की विशेष राशि व्यय की जाती है।

सामुदायिक विकास एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा मे अन्तर

सामान्यत सामुदायिक विकास (Community Development) तथा राष्ट्रीय विस्तारसेवा (National Extension Service) मे कोई अन्तर नही समझा

जाता पर दोनो मे अन्तर है। (i) सामुदायिक विकास ग्रामीण विकास की एक पद्धति (System) है जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को मूर्त रूप देने का साधन (means) है। (ii) सामुदायिक विकास का क्षेत्र विस्तृत तथा लक्ष्य व्यापक गहन एव महत्वाकाक्षी होता है जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा का क्षेत्र एव उद्देश्य सीमित है। (iii) सामुदायिक विकास पर काफी राशि व्यय की जाती है जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा पर तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम व्यय किया जाता है। (iv) सामुदायिक विकास ग्रामीण जनसख्या के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित योजना है जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा कृषि के विकास से उन्हे उच्च जीवन स्तर प्रदान करने तक सीमित है।

सामुदायिक विकास की पचवर्षीय योजनाओ मे प्रगति

प्रथम योजना भारत म सामुदायिक विकास कार्यक्रम का श्रीगणेश 2 अक्टूबर 1952 को 55 चुने हुए केन्द्रो पर लागू हुआ। प्रथम योजना मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर 45 98 करोड रुपये व्यय हुआ और योजना की समाप्ति तक 988 विकास खण्डो के अन्तगत 1 40 लाख गांवो की 7 75 करोड जनसख्या इस कार्यक्रम की परिधि मे आ गई। इस योजना के अन्तर्गत सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रगति पर था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना– इस योजना मे भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के विस्तार पर जोर दिया *गया और साथ ही 1956 मे सामुदायिक विकास आन्दोलन* की प्रगति का मूल्याकन करने के लिए बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई जिसने 1957 म प्रकाशित प्रतिवेदन मे महत्वपूर्ण सिफारिशें *की जिनमे मुख्य थी—(i) सत्ता का प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण* (Democratic Decentralisation) कर स्थानीय जन प्रतिनिधियो को सत्ता का हस्तान्तरण करना। (ii) सामुदायिक विकास के समूचे काय को सुदृढ करने के लिए उचित प्रशासन की स्थापना। (iii) सामुदायिक विकास कायक्रम को तृतीय योजना तक बढाना और (iv) सामुदायिक विकास कार्यक्रमो व राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर का समापन करना। ये सभी सिफारिशे स्वीकार कर ली गई और **राजस्थान मे 2 अक्टूबर, 1959 को भारत मे सर्वप्रथम प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सूत्रपात स्वर्गीय पडित नेहरू द्वारा नागौर में किया गया।**

द्वितीय योजना काल म सामुदायिक विकास कार्यक्रमो पर कुल 187 12 *करोड रुपये व्यय किया गया। परिणामस्वरूप 3100 विकास खण्डो के 3 7 लाख गांवो की 20 करोड जनसख्या इस कार्यक्रम की परिधि मे आ गई।*

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना म सामुदायिक विकास पर 294 करोड रुपये व्यय का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 269 12 करोड रु० ही रहा। *योजना के अन्त तक यह कार्यक्रम 5200 विकास खण्डो म प्रगति पर था* और देश का अधिकाश भाग इसकी परिधि मे आ चुका था।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966–69)--इन तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि मे सामुदायिक विकास पर लगभग 92 करोड़ रु० व्यय किया गया। 1968–69 के अन्त मे सम्पूर्ण देश मे 5265 विकास खण्ड थे।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना (1969–74)—इस योजना मे सामुदायिक विकास को कृषि विकास का एक अविभाज्य अग मानकर उस पर 115 2 करोड रु० व्यय का प्रावधान था। चतुर्थ योजना काल मे अनेक राज्यो मे सामुदायिक विकास खण्डो के पुनर्गठन के कारण विकास खण्डो की सख्या 5123 ही रह गई है जबकि योजना के प्रारम्भ मे विकास खण्डो की सख्या 5265 थी। यह योजना भारत के प्राय. सभी क्षेत्रो मे लागू हो चुकी है और समस्त भारतीय ग्रामीण जनसख्या सामुदायिक विकास कायत्रम की परिधि मे आ चुकी है।

पाचवीं योजना—इस योजना मे सामुदायिक विकास कार्यत्रमो पर 27 5 करोड रुपये व्यय का प्रावधान था ताकि ग्रामीण क्षेत्रो में कृषि उत्पादन एव रोजगार अवसरो मे वृद्धि की जा सके और सम्पूर्ण गाँव को एक इकाई मानकर समूचे समाज को समन्वित करना था।

वर्तमान स्थिति एव छठी योजना—इस समय देश मे लगभग 5123 विकास खण्ड हैं जिनके अन्तगत 2 2 लाख ग्रामपचायते, 3863 पचायत समितियां तथा 301 जिला परिषद् कार्यरत हैं। यह योजना देश के 5 44 लाख गाँवो की लगमग 40 7 करोड जनसख्या को लाभान्वित कर रही है और 9०% ग्रामीण जनसख्या इसकी परिधि में आ चुकी है। छठी योजना म भी इस कायक्रम पर विशेष बल दिया जायगा और सभी ग्रामीण सस्थाएँ इसकी परिधि में आ जायेगी।

पचायत राज—पचायत राज भारत के मेघालय व नागालैण्ड को छोड़कर बाकी सभी राज्यो मे लागू हो गया है जिससे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का स्वप्न साकार हुआ है। देश के 5 44 लाख गाँवो की 40 68 करोड जनसख्या इसकी परिधि में आ चुकी है।

प्रशिक्षण—सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को दर्शन व नीति सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एक सामुदायिक विकास राष्ट्रीय सस्थान-हैदराबाद के अतिरिक्त ग्राम सेवको के लिए 98 केन्द्र सहकारी विस्तार अधिकारियो के लिए 13 केन्द्र, पचायत सचिवों के प्रशिक्षण के लिए 80 केन्द्र और पचायत समिति के पदाधिकारियो के लिए 26 प्रशिक्षण केन्द्र कार्यरत हैं। कुल 200 प्रशिक्षण केन्द्र सक्रिय हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की समीक्षा, आलोचनाएँ व कठिनाइयाँ

यद्यपि सामुदायिक विकास कार्यत्रम में कार्यान्वयन के ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है, ग्रामीण जनता मे नई आवश्यकताओ, आशाओ और आकाक्षाओ का प्रादुर्भाव हुआ है। कृषकों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है उनमें अधिकारो के प्रति जागरूकता, नवीन आधुनिक उत्पादन विधियो के प्रति रुचि और

ग्रामीण नेतृत्व के साथ साथ आर्थिक विकास की भावना प्रबल हुई है। पिछले 24-25 वर्षों मे कृषि उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है—शिक्षा चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाओ तथा परिवहन साधनो मे उल्लेखनीय प्रगति हुई है फिर भी कार्यक्रम मूल्याकन सगठन के प्रतिवेदनो से इसकी प्रगति के साथ इसकी दुर्बलताओ व असफलताओ की ओर भी ध्यान दिलाया जाता है। मुख्य आलोचनाए असफलताए, व कठिनाइया ये है

1 सामुदायिक विकास एक खोखला कार्यक्रम है जिससे पैसे का दुरुपयोग कर मनगढन्त आकडो से कागजी घोडे दौडाये जाते हैं और विकास के ऐसे हवा-महल बनाये जाते है जो जाच करते ही ढह जाते हैं इसमे व्यावहारिकता की अवहेलना कर औपचारिकता व नौकरशाही को आवश्यक महत्व दिया गया है। न तो इसमे भूमिहीन किसानो की दशा सुधारने का कोई कार्यक्रम है और न कार्यक्रमो मे सुनियोजित प्राथमिकताए ही हैं। लाल फीताशाही व नौकरशाही के बोलबाले मे सरकारी पैसे का अपव्यय होता है। कर्मचारियो के आवश्यक प्रशिक्षण के अभाव मे योजना के क्रियान्वयन के लिये कुशल कर्मचारियो का अभाव है। यह कार्यक्रम तो पूँजीवादी अमेरिका की एक औपनिवेशिक विस्तार नीति का पहला कदम है।

2 गन्दी राजनीति का अखाडा सामुदायिक विकास कार्यक्रम के केन्द्र बिन्दु ग्राम विकास पचायते सहकारी समितिया पचायत समितिया व जिला परिषदें ग्रामीणो के सर्वाङ्गीण विकास के लिये स्थापित किये गये पर वे अब गन्दी राजनीति के शिकार है। घिनौने व घृणित राजनैतिक हथकण्डो के कारण विकास के केन्द्र विनाशकारी सिद्ध हो रहे है। जिन क्षेत्रो मे सत्ताधारी दल पचायत पर अधिकार जमा लेता है उनमे विरोधी अडचनें उत्पन्न करते हैं और जिन क्षेत्रो मे सरकारी विरोधी दल पचायत सत्ता प्राप्त कर लेता है सरकार उनके सब विकास कार्यो मे जान बूझकर अडचनें डालती है। राजस्थान म ग्रामपचायतो के लम्बी अवधि से चुनाव न करना इस घिनौनी राजनीति का एक छोटा सा उदाहरण है। सहयोग के स्थान पर दलबन्दी पनपी है।

3 अधिकारियो और जन प्रतिनिधियो मे मतभेद—सामुदायिक विकास स्थानीय लोगो तथा सरकार का एक सयुक्त प्रयास है। एक तरफ चुनाव द्वारा मनोनीत सरपच प्रधान तथा जिला प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ ग्राम सेवक, पटवारी कृषि विस्तार अधिकारी खण्ड विकास अधिकारी। इनमे परस्पर मतभेद हो जाने पर विकास या कहीं रह जाता है व अपनी शक्तियाँ एक दूसरे को नीचा दिखाने मे लगा देते है विकास ठप्प हो जाता है घृणा लडाई झगडे व असहयोग पनपता है।

4 कृषि ग्रामोद्योग व सहकारिता की बहुत धीमी प्रगति—पिछले 24-25 वर्षों के प्रयासो के बावजूद अभी भी ग्रामीण क्षेत्रो म कृषि, ग्रामोद्योग व सहकारिता

का बहुत ही कम विकास हो पाया है। अधिकाश कृषको मे प्रगतिशील दृष्टिकोण का अभाव है, चकबन्दी, भूमि सरक्षण, सिंचाई, वैज्ञानिक उपकरणो व कृषि की उन्नत विधियो का नितान्त अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रो के उद्योगो व सहकारिता का पर्याप्त विकास नही हुआ है। लक्ष्य व उपलब्धियो मे काफी अन्तर रहा है।

5 सरकारी सहायता मे अपर्याप्तता व विलम्ब—सरकारी कार्यालयो मे व्याप्त लालफीताशाही नौकरशाही व ढील आजकल विकास खण्डो, पचायतो व सहकारी समितियो मे भी परिलक्षित होती है। अत विकास कार्यक्रमो के क्रियान्वयन मे आर्थिक सहायता समय पर न मिलने से वाछित लाभ नही मिल पाता और विकास अवरुद्ध हो जाता है। आपात स्थिति की घोषणा के बाद कुछ सुधार हुआ है।

6. सामुदायिक भावना व जन सहयोग का अभाव—भारत मे दूषित राजनीति का प्रभाव ग्रामीण जनता पर भी पडा है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण ने गावो मे घिनौनी व घृणित राजनीति से दलबन्दी, परस्पर मतभेद व सघर्षों को जन्म दिया है। चरित्र व छीटाकशी, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के हथकण्डो आदि के कारण सेवा भावी, ईमानदार व योग्य व्यक्ति इनके नेतृत्व से दूर रहना चाहते हैं जबकि भ्रष्ट, चोर, बेईमान तथा गुण्डे अपने स्वार्थी हितो के कारण इन सस्थाओ पर प्रभुत्व जमाने के प्रयास करते हैं। नि स्वार्थ भोले भाले लोग इनका तमाशा देखने मे लग जाते हैं। इस प्रकार के वातावरण मे सामुदायिक भावना व जन सहयोग की कल्पना निरर्थक नही तो भी कठिन अवश्य है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सफलता के लिए सुझाव

यद्यपि सामुदायिक विकास कायक्रम को वाछित सफलता नही मिली है और यह कार्यक्रम अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने मे काफी असफल रहा है फिर भी इसे सफल होना है। भारत की 82% जनता का सर्वाङ्गीण विकास हुए बिना भारत का भविष्य अन्धकारमय है अत इस कार्यक्रम की सफलता के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं।

1. शिक्षा का तेजी से प्रसार—ग्रामीण जनसख्या मे शिक्षा का अभाव ही उनकी रूढिवादिता, अज्ञानता, अन्धविश्वास व सकीर्ण दृष्टिकोण का प्रमुख कारण है। यद्यपि पिछले 20 25 वर्षों मे शिक्षा क विकास पर काफी ध्यान दिया गया है पर इसका अधिकाधिक लाभ शहरी जनता को ही मिला है। ग्रामीण जनता उसके पूरे-पूरे लाभ से वंचित रही है। सुविधा उपलब्ध करना ही पर्याप्त नही उन्हे उस सुविधा के प्रयोग की अभिरुचि व प्रेरणा जाग्रत करना भी जरूरी है।

2 भूमि सुधारो व कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देना आवश्यक है। भूमि सुधारो का कार्यान्वयन सच्चे मन से होना चाहिये। खामियो से परिपूर्ण कानूनो व उन्हे ऊपरी मन से लागू करने का परिणाम हमारे सामने है। 20–25 वर्षो के बाद भी गावो मे व्याप्त निधनता, बडे भू-स्वामियो द्वारा शोषण, भूमि आवण्टन मे भ्रष्टाचार, भूमि हीनो की दुर्दशा ये सब इस दिशा मे प्रभावी कदम का आह्वान कर

रहे हैं अन्यथा हिंसा का वातावरण और अधिक तेज हो सकता है। हरित क्रान्ति की असफलता लाल क्रान्ति में बदल सकती है।

3. ग्रामीण सहायक उद्योगों का विकास एवं विस्तार—सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में जनता के लाभ के लिये ग्रामोद्योगों व लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन व आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहिये। इससे एक ओर बेरोजगार या अर्द्ध-बेरोजगार व्यक्तियों को काम मिलेगा तथा दूसरी ओर आय, उत्पादन व उपभोग बढ़ने से जीवन-स्तर में सुधार होगा।

4 गन्दी राजनीति से छुटकारा—प्रजातन्त्र की सफलता सजग एवं कर्त्तव्य-निष्ठ राजनैतिक दलों पर निर्भर करती है अतः पंचायतों को गन्दी राजनीति से दूर रखने के लिये सभी दलों द्वारा एक निश्चित आचार-संहिता का पालन करना चाहिये व विकास कार्यों में दलगत मतभेदों को परे रखना चाहिये। इसमें पहल अगर सत्ता-धारी दल करे तो श्रेष्ठ रहेगा।

5 प्रशासनिक कुशलता—सामुदायिक विकास कार्यों के कार्यान्वयन में प्रत्येक अवस्था व चरण पर कुशल, ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ व प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की नियुक्ति करना चाहिये तथा उन्हें समय व परिस्थितियों के अनुकूल योजनाओं में समायोजन व समन्वय बैठाने की सीमित स्वतन्त्रता देनी चाहिये। उन्हें सुरक्षा व सुविधाएँ प्रदान करने के साथ साथ योजनाओं के क्रियान्वयन की एक निश्चित जिम्मे-दारी होनी चाहिये व एक निश्चित मापदण्ड से कम प्रगति के कारणों के अवलोकन के बाद दोषी अधिकारियों के कठोर दण्ड की व्यवस्था जरूरी है। वर्तमान पद्धति में सफलता को पदोन्नति व राष्ट्रीय पुरस्कार तथा कर्त्तव्यनिष्ठ व ईमानदार व्यक्तियों को उनकी कुशलता की सजा की परम्परा को तोड़ना होगा।

6 मतभेदों का समापन व उचित समन्वय—विकास खण्डों, विकास पंचायतों आदि में जन प्रतिनिधियों व सरकारी अधिकारियों के बीच मतभेद विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं अतः दोनों के कार्यों व अधिकारों में इस प्रकार का समन्वय बैठाया जाना चाहिये कि पारस्परिक मतभेद उत्पन्न होने के मौके न्यूनतम हो जायें और इन मतभेदों का निपटारा अविलम्ब किया जाना चाहिये। सरपंचों, पंचों, प्रधानों व प्रमुखों को भी कर्मचारियों व अधिकारियों की भांति आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

7 जनसहयोग को प्रोत्साहन—सामुदायिक विकास को जनता व सरकार का संयुक्त प्रयास तभी सफल हो सकता है जबकि जनता अपना पूरा-पूरा सहयोग दे। इसके लिये प्रचार केन्द्रों, फिल्मों तथा ग्रामीण भाषा में आकर्षक कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं की सहायता ली जा सकती है। जन-सम्पर्क विभाग जो अपना बहुत सारा समय शहरों में अप्रभावी फिल्में दिखाने, मिनिस्टरों के आगे पीछे घूमने फिरने, जिला अधिकारियों व मन्त्रियों का गुणगान करने में व्यस्त रहते हैं, ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों में विकास कार्यक्रमों में सहयोग की भावना भर सकते हैं। यद्यपि

आज के राजनैतिक प्रोपेगण्डा के वातावरण मे भोले-भाले ग्रामीण उनके प्रचार को सन्देह की दृष्टि से देखेंगे पर धीरे-धीरे आत्मविश्वास जम जायेगा।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण व विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि सामुदायिक विकास ग्रामीण जनता के सर्वाङ्गीण एवं सर्वतोन्मुखी विकास का गहन एवं विस्तृत कार्यक्रम है जिसकी सफलता में ही भारत की आर्थिक समृद्धि व सम्पन्नता निहित है। यद्यपि देश की भाग्यवादी, अन्धविश्वासी, अज्ञानी एवं निर्धन, मूर्खी ग्रामीण जनसख्या को एकदम चमत्कारी ढग से बदलना एक कठिन कार्य है फिर भी एक सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित विकास कार्यक्रमो द्वारा ग्रामीणो मे उत्साह, विकास के प्रति अभिरुचि, उच्च जीवन-स्तर की लालसा तथा सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इसके लिए गन्दी राजनीति से मुक्ति, परस्पर मतभेदो का समापन, उचित प्राथमिकताओ का निर्धारण, कार्यक्रमो के कुशल आयोजन व क्रियान्वयन के साथ साथ ग्रामीणो मे परस्पर सहयोग की भावना आवश्यक है। अत स्वर्गीय पूज्य बापू व स्वर्गीय पडित नेहरू को सच्ची श्रद्धाजलि यही होगी कि हम सामुदायिक विकास योजनाओ को सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर ग्रामीण जनता को समृद्ध, सबल व सुयोग्य नागरिक बना सके और उनका सर्वाङ्गीण विकास हो सके।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 भारत मे सामुदायिक विकास योजनाओ के उद्देश्यो व उपलब्धियो की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये। अथवा

सामुदायिक विकास योजनाएँ ग्रामो मे उत्पादकता व जीवन स्तर बढाने मे कहाँ तक सफल हुई हैं ? अथवा

भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

(संकेत—प्रथम भाग मे सामुदायिक विकास का अर्थ, उद्देश्य व सफलता बताकर आलोचना करनी है।)

2 "सामुदायिक विकास भारतीय ग्रामीण जनता के सर्वाङ्गीण विकास का कार्यक्रम है" इस कथन की समीक्षा (विवेचना) कीजिये।

(सकेत—सामुदायिक विकास का अर्थ, उद्देश्य बताना है तथा पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत प्रगति की समीक्षा कीजिये।)

3 सामुदायिक विकास की कठिनाइयो व आलोचनाओ का विवेचन कीजिये तथा इस कार्यक्रम की सफलता के लिए सुझाव दीजिए।

(सकेत—सामुदायिक विकास योजनाओ की आलोचनाओ व कठिनाइयो का विवरण देकर अध्याय मे दिए गए शीर्षकानुसार विवरण देना है।)

7

भारत में औद्योगिक नीति एवं लाइसेन्स नीति

(Industrial Policy & Licencing Policy In India)

मानव सभ्यता के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में राज्य आर्थिक क्षेत्र में निर्बाधता की नीति (Policy of laissez faire) अपनाते थे किन्तु विश्व व्यापी आर्थिक मंदी ने मुक्त व्यापार एवं राज्य की आर्थिक निरपेक्षता की नीतियों की अव्यावहारिकता जाहिर कर दी। आर्थिक निर्बाधता की नीति के प्रतिपादक एवं कट्टर समर्थक पूँजीवादी राष्ट्र स्वयं मंदी के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिये राज्य हस्तक्षेप की दुहाई देने लगे। अब विश्व के सभी राष्ट्र चाहे वे पूँजीवादी हो अथवा समाजवादी, आर्थिक क्षेत्र में राज्य के प्रभावी हस्तक्षेप को आवश्यक मानते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में देश के तीव्र औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास के लिये सुनिश्चित, सुनियोजित एवं प्रगतिशील औद्योगिक नीति का प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन भी राज्य की नीतियों का महत्वपूर्ण अंग है। राज्य औद्योगीकरण की स्वस्थ परम्परायें कायम करता है, मार्गदर्शन देता है तथा औद्योगिक नियाओं का नियमन एवं नियन्त्रण करता है ताकि देश का तीव्र सुनिश्चित एवं सन्तुलित औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

औद्योगिक नीति के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व
(Objectives Need and Importance of Industrial Policy)

किसी भी देश में औद्योगिक नीति की आवश्यकता उसके उद्देश्यों से प्रेरित होती है जिनमें निम्न उल्लेखनीय हैं —

1 औद्योगिक उत्पादन में तीव्र प्रगति—यह औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य होता है अगर नीति सफल रहती है तो केवल औद्योगिक उत्पादन तेजी से बढ़ता है वरन् देश के तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

2. उत्पादन की आधुनिकतम पद्धतियों को प्रोत्साहन—औद्योगिक नीति का महत्व औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन की आधुनिकतम एवं नवीनतम वैज्ञानिक पद्धतियों को प्रोत्साहन देने में निहित है क्योंकि इससे कम लागत पर अधिक उत्पादन होता है।

3. सन्तुलित विकास—औद्योगिक नीति का महत्व कृषि एवं उद्योगों के सन्तुलित विकास को गति देने तथा अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सन्तुलित विकास करना होता है।

4. आधारभूत उद्योगों एवं उपभोग उद्योगो में सामन्जस्य स्थापित करना तथा उनमे पारस्परिक सहयोग को बढावा देना ताकि दोनो क्षेत्रो मे सन्तुलन रह सके।

5. पूंजी एवं श्रम मे मधुर सम्बन्धों को बढावा देना ताकि दोनो मे सघर्षों को रोका जा सके और सौहार्दपूर्ण सहयोग से औद्योगीकरण की गति तेज हो।

6 बृहत् एव लघु उद्योगो मे समन्वय एव सहयोग—औद्योगिक नीति बड एव छोटे उद्योगो मे समन्वय एव सहयोग स्थापित करती है जिससे रोजगार मे वृद्धि, उत्पादन का उच्च स्तर एव उत्पादन लागत मे कमी की जा सके। प्रतिस्पर्द्धा न हो।

7 निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकारों एव उत्तरदायित्वों का निर्धारण करना ताकि दोनो क्षेत्रो को अपने-अपने क्षेत्रो मे अबाध गति से आगे बढने का सुअवसर मिल सके।

8. विदेशी पूंजी एवं साहस का राष्ट्रहित मे सदुपयोग करना—विकासशील राष्ट्रो के पास पूजी एव साहस दोनो की कमी होनी है अत औद्योगिक नीति से इन दोनो के लिये विदेशी साहसियो को आकर्षित किया जा सकता है।

9 सन्तुलित क्षेत्रीय विकास—औद्योगिक नीति के द्वारा अर्थव्यवस्था के प्राय सभी क्षेत्रो का सन्तुलित, औद्योगिक एव आर्थिक विकास किया जा सकता है।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व औद्योगिक नीति
(Industrial Policy before Independence)

ब्रिटिश शासन काल मे उपयुक्त औद्योगिक नीति का अभाव रहा। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रारम्भ से उद्योगो को प्रोत्साहन दिया ताकि उनके उत्पादनो के निर्यात से लाभ कमाया जा सके। किन्तु ब्रिटिश उद्योगपतियो ने भारत मे औद्योगीकरण का विरोध किया और ब्रिटिश सरकार ने भारत मे मुक्त व्यापार (Free trade) की नीति एव निर्बाध व्यापार नीति (Laissez-Faire Policy)का अनुसरण किया जिससे भारत को कच्चे माल का उत्पादक एव निर्मित औद्योगिक माल का बाजार बनाया जा सके। इसका भारतीय उद्योगो पर बहुत बुरा प्रभाव पडा और लघु एव कुटीर उद्योगो का पतन हुआ। डॉ० वेराएनस्टे न स्वय स्वीकार किया है कि "1858 से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियो की दमनपूर्ण नीति से भारत के परम्परागत उद्योग नष्ट हो गये।"

यद्यपि 1858 से 19 वी शताब्दी के अन्त तक मुक्त व्यापार नीति से भारतीय उद्योगो की प्रगति का अवसर न मिल सका। किन्तु 1904 मे स्वदेशी आन्दोलन के जोर पकडने से 1905 मे लार्ड कर्जन ने "केन्द्रीय व्यापार एवं उद्योग विभाग" स्थापित किया तथा 1906 मे मद्रास मे एक प्रान्तीय उद्योग विभाग भी खोला गया पर यह दोहरी एव बेमन से लागू नीति भारत क औद्योगीकरण मे सहायक न बन सकी।

प्रथम विश्व युद्ध मे युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ विशिष्ट वस्तुओं की उत्पादन वृद्धि के लिए मुक्त व्यापार नीति का परित्याग कर राजकीय प्रोत्साहन की नीति अपनाई। भारत मे औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं की जांच के लिय एक 'औद्योगिक आयोग" (Industrial Commission) 1916 मे स्थापित किया गया तथा 1917 मे मिनिट्री एव नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इण्डियन ऐम्यूनीशन बोर्ड स्थापित किया गया। 1918 मे औद्योगिक आयोग ने सरकार को अपनी रिपोर्ट दी किन्तु युद्धोत्तर मदी के सकट व विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के कारण आयोग की सिफारिशो पर ध्यान नही दिया गया।

स्वदेशी आन्दोलन एव भारतीय उद्योगो के सामने मदी के सकट के कारण 1921 मे सरकार का बाध्य होकर प्रशुल्क आयोग (Fiscal Commission) की स्थापना करनी पडी और इसी आयोग की सिफारिशो पर ब्रिटिश सरकार ने भारतीय उद्योगो के लिए विभेदात्मक सरक्षक नीति (Policy of Discriminating Protection) की घोषणा की तदनुसार 1923 मे प्रथम टटकर बोर्ड (Tariff Board) बनाया गया और 1924 मे लोहा इस्पात उद्योग को, 1925 मे कागज के उद्योग को 1926 मे सूती वस्त्र उद्योग को तथा 1932 मे चीनी उद्योग को सरक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त दियासलाई, भारी रासायनिक उद्योग तथा अन्य कई छोट उद्योगो को भी सरक्षण दिया गया।

1930 की विश्व व्यापी मन्दी ने भारत के उद्योगो को भी मन्दी के सकट मे डाल दिया। सरक्षण की नीति अपर्याप्त एव अवरोधक होने के कारण औद्योगीकरण वाछित गति से न हो सका। 1931 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यातायात एव आधारभूत उद्योगो के राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया। अन्तत 1939 मे उद्योग मन्त्रियो के सम्मेलन मे औद्योगिक विकास के लिए एक राष्ट्रीय आयोजन समिति गठित की गई।

1939 मे द्वितीय विश्व-युद्ध की चिनगारी भभक उठी। अत युद्ध सामग्री उत्पादन के लिए ग्रेडी मिशन तथा अन्य कई समितियाँ उद्योग विकास के लिए बनीं। युद्धकाल मे भारतीय उद्योगो को तेजी से विकसित होने का मौका मिला। युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण के लिए 1943 मे सरकार ने अनेक औद्योगिक समितियो की नियुक्ति की तथा 1944 मे एक योजना एव विकास विभाग (Planning and Development Deptt) खोला गया। 1946 मे एक योजना सलाहकार बोर्ड भी बनाया गया। ये सब छुट पुट प्रयास थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत मे सुनिश्चित एव प्रगतिशील औद्योगिक नीति का सर्वथा अभाव था। यदा-कदा परिस्थितियो वश सरकार को औद्योगिक विकास के लिए छुट-पुट निर्णयों के लिए बाध्य होना पडा परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कभी उन निर्णयो को भारत के औद्योगिक हितो की रक्षा

एवं संरक्षण के लिए स्वेच्छा से लागू नही किया । स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में जो कुछ औद्योगिक विकास सम्भव हुआ वह सब ब्रिटिश सरकार की नीति का प्रतिफल न होकर भारतीय उद्योगपतियो के साहस, विदेशी पूँजीपतियो के सहयोग तथा अनुकूल परिस्थितियो की देन थी ।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक नीति
(Industrial Policy in India Since Independence)

15 अगस्त 1947 को भारत ने ब्रिटिश दासता से मुक्त होकर अपनी भाग्य डोर सम्भाली । औद्योगिक विकास के प्रति ब्रिटिश सरकार की उदासीन एव अकर्मण्यता पूर्ण नीति का परित्याग देकर देश के नेताओ ने भारत के तीव्र औद्योगिक विकास एव आर्थिक समृद्धि के प्रयास शुरू किए । 1947 के औद्योगिक सम्मेलन मे उद्योगो की प्रगति, औद्योगिक शान्ति तथा धन के केन्द्रीकरण पर रोक आदि मुद्दों पर विचार हुआ । इस सम्मेलन के प्रस्तावो को मूर्त-रूप देने के उद्देश्य से 6 अप्रैल; 1948 को तत्कालीन उद्योग मन्त्री स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने स्वतन्त्र भारत की पहली औद्योगिक नीनि की घोषणा की ।

स्वतन्त्र भारत को पहली औद्योगिक नीति (1948)

देश मे तीव्र औद्योगिक विकास एव आधारभूत उद्योगो को सुदृढ आधार तैयार करने के उद्देश्य से 6 अप्रैल 1948 को तत्कालीन उद्योग मन्त्री स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) पर आधारित स्वतन्त्र भारत की पहली औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसकी मुख्य विशेषताएँ सक्षेप मे निम्नानुसार हैं—

1 उद्देश्य—यह नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था पर आधारित प्रजातान्त्रिक नियोजन द्वारा देश मे औद्योगिक उत्पादन के सुदृढ आधार से आर्थिक समानता और समृद्धि के साथ-साथ रोजगार एव जीवन-स्तर मे सुधार के लिए राष्ट्रीय साधनो का समुचित उपयोग करना था ।

2 उद्योगों का चार भागो में वर्गीकरण—इस नीति मे वृहत् उद्योगो को चार भागो मे वर्गीकृत किया गया—

(i) राज्य अधिकृत क्षेत्र—इसके अन्तर्गत अस्त्र-शस्त्र निर्माण, अणु-शक्ति उत्पादन एव नियन्त्रण तथा रेल यातायात, इन तीनो के विस्तार, विकास एव नये निर्माण का सरकारी क्षेत्र का एकाधिकार रहेगा ।

(ii) राज्य नियन्त्रित उद्योग—इसमे 6 आधारभूत उद्योग—कोयला, लोहा-इस्पात, टेलीफोन, तार-बेतार, खनिज तेल, वायुयान एव जलयान निर्माण का समावेश था । नये निर्माण को पूर्णत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रखा तथा निजी उद्योगो को राष्ट्र-हित के आवश्यक होने पर राष्ट्रीयकरण की भी व्यवस्था थी ।

(iii) मिश्रित उद्योग—इस श्रेणी मे राष्ट्रीय महत्व के 20 उद्योगो को रखा

जिनकी स्थापना, सचालन एव विकास पर सरकारी प्रभावी नियन्त्रण एव नियमन मे रहगा।

(iv) पूर्णत निजी क्षेत्र—इस क्षेत्र मे बाकी शेष उद्योगो को जो निजी क्षेत्र म रहेग तथा उन पर सरकार का सामान्य नियन्त्रण रहेगा।

3 लघु एव कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन देन के लिए वृहद् उद्योगो के साथ तालमल बैठाया गया ताकि दोनो एव दूसरे के प्रतियोगी न होकर सहयोगी एव पूरक रहे।

4 मधुर औद्योगिक सम्बन्धो के लिए औद्योगिक नीति मे औद्योगिक विवादो को निपटाने की उपयुक्त मशीनरी, श्रम-कल्याण कार्यों तथा उचित मजदूरी भुगतान की व्यवस्था की गई थी।

5 प्रशुल्क एव कर नीति—औद्योगिक नीति म उत्पादन वृद्धि एव विनियोग वृद्धि के हेतु उपयुक्त कर-नीति तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से देश के उद्योगो को बचाने के लिए समुचित प्रशुल्क नीति की व्यवस्था थी।

6 विदेशी पूजी एव साहस को मान्यता—इस नीति म विदेशी पूँजी को भारतीय पूँजी के समकक्ष स्थान प्रदान करने तथा राष्ट्रहित मे राष्ट्रीयकरण के साथ साथ ऐसी सस्थाओ का बहुमत-स्वामित्व भारतीयो के हाथ मे रखने तथा भारतीय विशेषज्ञो के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी।

7 विशिष्ट सगठनो का निर्माण एव उत्पादन वृद्धि को प्राथमिकता दी गई थी। वितरण की समस्या भविष्य पर छोड दी गई थी।

1948 की औद्योगिक नीति की समीक्षा

इस औद्योगिक नीति म मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के कलेवर मे तीव्र औद्योगीकरण की व्यवस्था थी। पहली बार औद्योगिक विकास मे सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व स्वीकार किया गया था और सावजनिक एव निजी क्षेत्र के पारस्परिक सहयोग की व्यवस्था थी। आधारभूत एव सार्वजनिक महत्व के उद्योगो के विकास का दायित्व राज्य पर डाला गया था। विदेशी पूँजी एव साहस को भी भारत के औद्योगीकरण मे पर्याप्त भूमिका का अवसर दिया गया था। कुछ विद्वानो ने इसे भारत के औद्योगिक विकास के लिए क्रान्तिकारी कदम तथा लोकतन्त्र की आधार शिला की सज्ञा दी। जहाँ प्रो रगा ने इस नीति को गाधीवादी समाजवाद की विजय बताया वहाँ मीनू मसानी के अनुसार 'इस नीति द्वारा प्रजातान्त्रिक समाजवाद की नींव डाली गई।"

मुख्य आलोचनाएँ—जहाँ एक ओर 1948 की औद्योगिक नीति की काफी सराहना हुई वहाँ दूसरी ओर कुछ लोगो ने इस पूँजीपति विरोधी नीति भी बताया। इसके कारण विदेशी एव देश क पूँजीपतियो म राष्ट्रीयकरण का भय व्याप्त हो गया तथा नियन्त्रण एव नियमन के कारण स वे विनियोग के प्रति उदासीन होन लग।

कुल आलोचनाएँ इस प्रकार थी—(i) मिश्रित अर्थव्यवस्था मे तीव्र औद्योगीकरण सम्भव नही होता। (ii) यह नीति अस्पष्ट एवं अनिश्चित थी क्योकि इसमे वामपक्षी एव दक्षिण-पक्षी दोनो प्रवृत्तियो के समावेश से अनिश्चितता का वातावरण हो गया। (iii) विदेशी पूँजीपतियों मे अविश्वास जागा। (iv) इस नीति मे उत्पादन वृद्धि को महत्व दिया किन्तु वितरण के महत्व की उपेक्षा की। (v) औद्योगिक विकास की सुनिश्चित योजनाओ का अभाव था। (vi) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास पर ध्यान नही दिया गया।

1948 की औद्योगिक नीति का क्रियान्वयन

इस नीति के कार्यान्वयन के लिए औद्योगिक केन्द्रीय सलाहकार समिति की नियुक्ति की गई तथा फिर 1950 मे औद्योगिक विकास समिति बनाई गई जिसका कार्य श्रमिको की कार्य-क्षमता मे वृद्धि करना, उत्पादन व्यय को घटाना, प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा उद्योग विशेष की समस्याओ को हल करना था।

1 अप्रैल 1951 से देश मे योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया पहली पचवर्षीय योजना से शुरू हुई। 1948 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम 1951 (Industrial Development & Regulation) Act 1951 पारित किया गया जिसमे 36 उद्योगो के पजीकरण की व्यवस्था थी और नये उद्योगो की स्थापना एव विस्तार के लिए सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक था। 1952 मे यह अधिनियम लागू हो गया। उद्योगो के विकास के लिए सरकार को उचित सलाह देने के लिए 1952 मे केन्द्रीय सलाहकार परिषद् (Central Advisory Council) बनाई गई जिसमे श्रमिको, उद्योगपतियो तथा सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। विशिष्ट उद्योगो की समस्याओ के अध्ययन एव विकास मे सरकार को सहयोग देने के लिए अनेक उद्योग विकास परिषदें (Development Councils) भी बनाई गई। नये उद्योगो की स्थापना एव विस्तार पर प्रभावी नियन्त्रण हेतु एक लाइसेन्स समिति (Licence Committee) भी बनायी गई।

1951 के औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम मे सशोधन किया गया जिससे यह अधिनियम 1953 मे 45 उद्योगो तथा 1955 मे 89 उद्योगो पर लागू था। लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिए अनेक विशिष्ट सगठन बनाये गये जिनमे खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, दस्तकारी बोर्ड, हाथ करघा बोर्ड, अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड आदि उल्लेखनीय हैं।

1948 की औद्योगिक नीति का मूल्यांकन

देश की प्रथम औद्योगिक नीति 1948 आठ वर्ष तक कार्यशील रही इस नीति के क्रियान्वयन मे अनेक कमियो के बावजूद पहली योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे 40% की वृद्धि हुई। सार्वजनिक क्षेत्र मे 55 करोड़ रु० तथा निजी क्षेत्र मे 233

करोड रुपये का विनियोग हुआ इस नीति के क्रियान्वयन मे पक्षपात, अनावश्यक विलम्ब एव भ्रष्टाचार का बोलबाला रहा क्योकि सरकारी हस्तक्षेप की नीति ने पुलिस मनोवृत्ति का परिचय दिया। बढते सरकारी नियन्त्रण से भी उद्योगो की स्थापना एव विस्तार मे विलम्ब हुआ। कुछ स्वतन्त्रता प्रेमी पूँजीपति एव निरकुश विदेशी पूँजीपति राष्ट्रीयकरण के भय से आतकित रहे। श्रम और पूँजी सम्बन्धो मे भी विशेष सुधार नही हुआ।

इन आलोचनाओ के बावजूद यह कहना न्यायसगत है कि औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम 1951 के कारण सरकार का उद्योगो के विकास एव विस्तार पर भी प्रभावी नियन्त्रण रहा। सार्वजनिक क्षेत्र मे आधारभूत उद्योगो की प्रगति ने भावी विकास का मार्ग प्रशस्त किया। निजी क्षेत्र को सही दिशा मे बढने का मार्ग-दर्शन मिला। यह एक सुनिश्चित एव सुनियोजित औद्योगिक नीति थी जिसमे उन सब पहलुओ पर ध्यान केन्द्रित किया गया था जिनसे औद्योगिक उत्पादन बढन, पूँजी एव श्रम मे मधुर सम्बन्ध बढने तथा औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त होने की पूरी व्यवस्था थी।

भारत मे 1956 की औद्योगिक नीति
(Industrial Policy of 1956)

भारत की द्वितीय पचवर्षीय योजना मे तीव्र औद्योगीकरण तथा आधारभूत उद्योगो के सुदृढ आधार हेतु सरकार ने 1948 की औद्योगिक नीति मे सामयिक परिवर्तन कर 1956 की औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति की आवश्यकता अनेक कारणो से महसूस हुई जिनमे निम्न प्रमुख थे—

(i) भारतीय सविधान मे वर्णित उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु औद्योगिक नीति मे सार्वजनिक क्षत्र क व्यापक विस्तार एव उत्पत्ति के समान वितरण को महत्वपूर्ण स्थान देना था।

(ii) समाजवादी समाज की स्थापना के लिये औद्योगिक नीति मे सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापक विस्तार व निजी क्षेत्र पर प्रभावी नियन्त्रणो की आवश्यकता बढ गई थी।

(iii) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास की जो उपेक्षा 1948 की नीति मे थी उसे दूर करने के लिए 1956 की औद्योगिक नीति जरूरी हो गई।

(iv) द्रुत औद्योगीकरण—द्वितीय योजना मे औद्योगीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता दिये जाने से हुई औद्योगिक नीति जरूरी हुई।

(v) भय एव शकाओ का निवारण करने के लिए 1956 की सुनिश्चित नीति आवश्यक हुई।

(vi) औद्योगीकरण की बाधाओ का निराकरण करने के लिए भी 1956 की नीति की आवश्यकता महसूस हुई।

इस प्रकार हम देखते है कि बदली परिस्थितियो के लिये समयानुकूल तथा

तीव्र औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ही 30 अप्रैल 1956 को तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वतन्त्र भारत की दूसरी औद्योगिक नीति की घोषणा की।

1956 की औद्योगिक नीति की विशेषताएँ
(Salient Features of Industrial Policy of 1956)

1956 की औद्योगिक नीति समाजवादी, प्रगतिशील, स्पष्ट एव सुनिश्चित थी। इस नीति के उद्देश्य बडे व्यापक थे। इसमे न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र विस्तार की व्यवस्था थी वरन् निजी क्षेत्र पर प्रभावी नियन्त्रण के साथ-साथ द्रुत गति से औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त करने का लक्ष्य था। इस नीति मे 1948 की नीति के मुकाबले कई विशेषताएँ थीं —

1 उद्देश्य—इस नीति के उद्देश्य बडे व्यापक थे जिसमे (i) *सार्वजनिक* क्षेत्र के तीव्र विकास एव विस्तार, (ii) आधारभूत एव भारी उद्योगो का सुदृढ आधार तैयार करना, (iii) एकाधिकारी एव केन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियो पर रोक, (iv) विकासोन्मुखी सहकारी क्षेत्र का उत्तरोत्तर विकास करना, (v) आय तथा सम्पत्ति के वितरण मे असमानता को कम करना तथा (vi) द्रुत औद्योगीकरण द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना करना आदि उल्लेखनीय है।

2 उद्योगो का तीन श्रेणियो मे वर्गीकरण—1956 की नीति मे वृहद् उद्योगो को तीन लोचपूर्ण श्रेणियो मे विभाजित किया गया—

(i) अनुसूची "अ" (Schedule A)—इस अनुसूची मे सामरिक महत्व, सार्वजनिक उपयोगिता, आधारभूत परिवहन क्षेत्र तथा खनिज उद्योगो मे से 17 उद्योगो का समावेश था जिनके विकास व नई इकाइयो की स्थापना पूर्ण रूपेण सरकार का दायित्व रखा गया। इसमे अस्त्र-शस्त्र, अणु शक्ति, लोह इस्पात उद्योग, भारी मशीनें व बिजली के यन्त्र, कोयला, खनिज तेल, सोना, मैंगनीज, लोहा, हीरे, आदि खनिज, रेल, जहाज एव वायु परिवहन, अणु-शक्ति के खनिज, टेलीफोन, तार, बेतार का सामान आदि का समावेश था।

(ii) अनुसूची 'ब" (Schedule B)—इस अनुसूची मे 12 उद्योगो का समावेश था जिनको अन्तत केन्द्रीय एव राज्य सरकारो के नियन्त्रण मे लेने की व्यवस्था थी। नई इकाइयो की स्थापना का अधिकार सरकार के पास होते हुए भी निजी साहसियो को भी समानान्तर कार्य करते रहने का अवसर था। इस अनुसूची मे मशीन टूल्स, खाद, कृत्रिम रबर, रासायनिक उद्योगो की आधारभूत सामग्री, रासायनिक घोल, समुद्री एव सडक यातायात, एल्यूमिनियम एव अलोह-धातुएँ आदि का समावेश था।

(iii) अन्य उद्योग—शेष सभी उद्योग तृतीय श्रेणी मे रखे गये जिनके विकास एव विस्तार का दायित्व निजी क्षेत्र पर डाला गया। इनके सहयोग के लिए राजकोषीय एव वित्तीय नीतियो मे उदारता की व्यवस्था थी।

सरकार द्वारा उद्योगो का यह श्रेणीकरण कठोर न होकर बडा व्यावहारिक एव लोचपूर्ण था। अलग अलग सूचियाँ होने पर भी विभिन्न उद्योगो की परस्पर निर्भरता के कारण सावजनिक एव निजी क्षेत्र के उद्योगो म गहरे समन्वय का प्रावधान था।

3 क्षेत्रीय असमानता मे कमी एव सन्तुलित विकास को बढावा—इस नीति म अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो—कृषि, उद्योग परिवहन एव व्यापार के सन्तुलित विकास के साथ साथ क्षेत्रीय असमानता म कमी की व्यवस्था नीति की मुख्य विशेषता थी।

4 सद्भाव एव सौहार्दपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध—इसके लिए नीति मे श्रमिको को लाभ मे सहभागिता, श्रम सन्नियमो म सुधार श्रमिको को औद्योगिक सचालन म हाथ बटाने तथा औद्योगिक विवादो को शान्तिपूर्ण ढग से निपटाने की पर्याप्त व्यवस्था थी।

5. कुटीर एव लघु उद्योगों की बढ़ती भूमिका को स्वीकार किया गया ताकि उत्पादन एव रोजगार म तेजी से वृद्धि हो और राष्ट्रीय औद्योगिक शक्ति के केन्द्रीकरण पर रोक लगे। लघु उद्योगो के विकास हेतु औद्योगिक बस्तियो का निर्माण, लघु एव कुटीर उद्योगो को सस्ती बिजली, सुविधाजनक ऋण उत्पादन विधियो मे सुधार तथा करो म रियायतो की व्यवस्था थी। प्रतिस्पर्धा से बचाव हेतु बडे उद्योगो से तालमेल करना था।

6 प्रशिक्षण एव प्रबन्ध कुशलता—इस नीति मे औद्योगीकरण की सफलता के लिए प्राविधिक शिक्षा, कुशल प्रबन्ध एव पर्याप्त प्रशिक्षण पर जोर दिया गया तथा तदनुसार विश्वविद्यालयो एव विशिष्ट सस्थानो म प्रशिक्षण की सुविधाएँ बढाने पर ध्यान दिया गया। सरकारी उद्योगो को व्यापारिक सिद्धान्तो पर सचालित करने तथा अधिकारो के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था की गई।

7 विदेशी पूँजी एव साहस के भय का निवारण करने के लिए पडित नेहरू की 1949 की घोषणा को आधार बनाया गया कि विदेशी पूँजी एव स्वदेशी पूँजी म कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। इन विशेषताओ के अवलोकन स स्पष्ट होता है कि इस नीति मे तीव्र औद्योगीकरण हेतु सावजनिक एव निजी क्षेत्रो मे पारस्परिक सहयोग एव निर्भरता पर जोर दिया गया। क्षेत्रीय विषमताओ के सशोधन लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास श्रम तथा पूँजी म सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो तथा राष्ट्रहित को दृष्टि स निजी क्षेत्र के औद्योगिक कायकलापों के नियमन एव नियन्त्रण की पर्याप्त व्यवस्था सामयिक थी। कुछ विद्वानो ने इस नीति म भी कमियो की ओर सकेत किया है।

1956 की औद्योगिक नीति की सफलताएँ एव उपलब्धियाँ
(Success & Achievements of Industrial Policy of 1956)

1956 की औद्योगिक नीति काफी सीमा तक अपने उद्देश्यो म सफल रही।

इस नीति के क्रियान्वयन से सन्तुलित एवं द्रुत औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा भावी विकास के लिए आधारभूत उद्योगो का सुदृढ आधार तैयार हुआ। एकाधिकारी प्रवृत्तियो के समापन एव औद्योगिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर जोर रहा। लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास मे तेजी आई तथा बहुत कुछ सीमा तक श्रम एव पूँजी मे सद्भाव बनाया गया। इस नीति की उपादेयता उसकी निम्न सफलताओ मे परिलक्षित होती है—

1 औद्योगिक विकास मे तेजी—1956 की औद्योगिक नीति के क्रियान्वयन से औद्योगिक उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि हुई। 1956 के आधार वर्ष पर औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक 100 से बढकर 1965–66 मे 181 तथा 1977 तक 260 तक पहुँच जाने की आशा है। जहा 1955–56 मे औद्योगिक विकास की दर 4% थी वह 1976–77 मे 10 4% पहुँच गई। 1977–78 मे औद्योगिक उत्पादन 5–6% बढा है।

2 औद्योगिक विनियोग मे निरन्तर वृद्धि— इस नीति के कारण सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो मे विनियोग निरन्तर बढता ही गया। जहा प्रथम योजना मे विनियोग 288 करोड रुपये था वहा पाचवीं योजना मे विनियोग 16,660 करोड रुपये का प्रावधान था जैसा निम्न तालिका 1 मे स्पष्ट है।

3 सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विस्तार—समाजवाद के स्वप्न को साकार करने के लिए इस नीति के द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विस्तार किया गया। सावजनिक क्षेत्र पर औद्योगिक विकास का अधिक दायित्व होने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोग काफी बढा जैसा निम्न तालिका मे स्पष्ट है—

उद्योगों मे विनियोग

क्षेत्र	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुथ योजना	पाचवी योजना
सावर्जनिक क्षेत्र	55	938	1520	3729	9600
निजी क्षेत्र	233	850	1050	2000	7000

4 सार्वजनिक उपक्रमों मे वृद्धि—सार्वजनिक उपक्रमो (Public Enterprises) मे जहा 1950–51 मे सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 5 थी और उनमे कुल 29 करोड रुपये पूजी विनियोग था वहा 1960–61 मे उनकी सख्या 48 तथा 1978–79 मे 155 पहुँच गई तथा उनमे पूजी विनियोग भी क्रमश 2415 करोड रुपये तथा 13500 करोड रुपये हो गया। स्पष्ट है कि सार्वजनिक उपक्रमो की बढती सख्या से समाजवाद का आधारशिला मजबूत हुई है।

5 आधारभूत एव मूलभूत उद्योगों का सुदृढ आधार—1956 की नीति के क्रियान्वयन से देश मे आधारभूत उद्योगो का सुदृढ आधार तैयार हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र म 3000 करोड पूँजी विनियोग से पाच लोह इस्पात कारखाने खोले गये। भोपाल मे हैवी इलेक्ट्रोनिक कारखाना, ट्रोम्बे तथा रावत भाटा अणु भट्टिया,

उदयपुर का जिंक स्मेलटर, खेतड़ी का तांबा शोधक कारखाना, रांची, पिंजौर व बंगलौर के मशीन टूल्स कारखाने, चितरंजन तथा वाराणसी के रेल इंजिन कारखाने उल्लेखनीय उपलब्धियां हैं। पिछले 22 वर्षों मे आधारभूत उद्योगो के उत्पादन मे 200 से 600 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जहा 1950–51 मे लोह-इस्पात का उत्पादन 10 4 लाख टन था वह 1977–78 मे 77 3 लाख टन हो गया। सीमेंट का उत्पादन भी 27 लाख टन से बढकर अब 190 लाख टन है। पेट्रोलियम का उत्पादन 2 लाख टन से बढकर 230 लाख टन हो गया है। ये 1956 की नीति की सफलता के द्योतक ही हैं।

6 आर्थिक विकेन्द्रीकरण एव एकाधिकार पर रोक—इस नीति से औद्योगिक साम्राज्यो की शक्ति घटी। जहा 1951 मे ACC का सीमेंट उत्पादन मे 64% भाग था वह अब घटकर लगभग 15% रह गया है। इसी प्रकार Wimco का माचिस उत्पादन मे एकाधिकार था वहा अब उसका कुल उत्पादन मे लगभग 20% भाग ही है। यद्यपि दत्त समिति एव डा आर क हजारी ने औद्योगिक सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति म वृद्धि के लिए इस नीति को उत्तरदायी ठहराया है किन्तु वास्तव म कर्मचारियो मे व्याप्त भ्रष्टाचार एव प्रशासनिक अकुशलता के कारण ही औद्योगिक सत्ता के केन्द्रीकरण को बल मिला है।

7 लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर बल दिया गया तदनुसार द्वितीय योजना म लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर सार्वजनिक क्षत्र म 180 करोड रु व्यय किये गये। तृतीय एव चतुर्थ योजनाओ म भी इनके विकास पर सरकार द्वारा क्रमश 241 करोड रु. तथा 293 करोड र व्यय किये गये। पाचवी योजना म भी 388 करोड रु व्यय का अनुमान है। 21–सूत्री कार्यक्रम मे 1 6 लाख लघु उद्योग स्थापित करने का लक्ष्य था। लघु उद्योगो के विकास के लिए सुविधाजनक ऋण, करो मे रियायतें बड उद्योगो की प्रतिस्पर्द्धा से सुरक्षा हेतु सरकार द्वारा उदार क्रय नीति का अनुसरण किया गया है।

8 अनुसधान एव प्राविधिक प्रशिक्षण सुविधाओ का विस्तार किया गया। श्रमिको के प्रशिक्षणार्थ पोलीटेक्नीक कालेज खोले गये। एपरेन्टिसो की भर्ती व डिप्लोमा कोर्स की भी व्यवस्था की गई है।

9 क्षेत्रीय विषमताओ मे कमी के लिए हर प्रयास किया गया। लाइसेंसिंग नीति के अन्तर्गत औद्योगिक दृष्टि से पिछडे क्षेत्रो म उद्योग स्थापना के लाइसेन्सो मे प्राथमिकता दी गई। विशेष रियायतें सरकारी अनुदान भी दिया गया। यही कारण है कि राजस्थान एव उडीसा जैसे औद्योगिक पिछडे क्षेत्र अब काफी विकसित हो गये हैं।

10 नये साहसियों एव नव आगन्तुकों को प्रोत्साहन—इस नीति के अन्तर्गत लाइसेन्स देने म नये साहसियो को प्राथमिकता दी गई। इसस जहा एक ओर नये

साहसियों को मौका मिला वहा दूसरी ओर एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण एवं औद्योगिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिला ।

11. विदेशी पूंजी एवं साहस को प्रोत्साहन मिला— जहा 1948 मे भारत मे विदेशी पू जी विनियोग केवल 265 करोड रु के लगभग था वह 1965 मे बढ कर 936 करोड रु हो गया । अब यह लगभग 300 करोड रु के लगभग है । विदेशी पू जीपतियो के साथ सहयोग मे भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई ।

1956 की औद्योगिक नीति की आलोचनात्मक समीक्षा
(Critical Analysis of Industrial Policy 1956)

यद्यपि 1956 की औद्योगिक नीति के नियान्वयन से भारत मे तीव्र औद्योगीकरण हुआ । सार्वजनिक क्षेत्र मे निरन्तर विनियोग बढा, क्षेत्रीय विषमताओ मे भी कमी आई और भावी औद्योगीकरण हेतु आधारभूत उद्योगो का सुदृढ आधार भी तैयार हुआ किन्तु इस नीति मे अनेक कमियो का भी भान होता है जिनके कारण वाछित सफलता न मिल सकी और अन्तत 23 दिसम्बर, 1977 को जनता सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की । 19 6 की नीति की प्रमुख आलोचनाए इस प्रकार थी –

1 निजी क्षेत्र को अत्यधिक संकुचित कर दिया गया—सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक व्यापक बनाये जाने के कारण निजी उद्योगपतियो का क्षेत्र बहुत संकुचित कर दिया गया था । यह आलोचना न्यायसगत नही है क्योकि सरकार ने निजी क्षेत्र को राष्ट्रहित मे कार्य करते रहने के लिए प्रेरित किया यहा तक कि पाचवी योजना मे निजी क्षेत्र का विनियोग 6000 करोड रु रहने का अनुमान है जबकि पहली योजना मे यह 233 करोड रु ही था ।

2 राष्ट्रीयकरण का अप्रत्यक्ष भय बना रहा—इस नीति मे यद्यपि सरकार ने राष्ट्रीयकरण का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया था पर औद्योगिक नीति मे यह वाक्य "सरकार का किसी औद्योगिक उपक्रम को हस्तगत करने का अधिकार सदा बना रहेगा ।" परोक्ष रूप से राष्ट्रीयकरण की धमकी ही थी इससे निरकुश प्रेमी निजी उद्योगपतियो व विदेशी साहसियों मे भय व्याप्त रहा और वाछित गति से विनियोग न हो सका । वैसे यह भय अनावश्यक था क्योकि किसी सम्पत्ति को हस्तगत करने का अधिकार सविधान मे भी है ।

3 विदेशी पूंजी एव साहसियों मे भ्रान्ति व्याप्त रही क्योकि इस नीति मे विदेशी पू जी के सन्दर्भ मे कोई स्पष्ट प्रावधान नही था । यह आलोचना भी बेमानी है क्योकि 1949 की पण्डित नेहरू की विदेशी पूंजी के सन्दर्भ मे घोषणा स्पष्ट थी जिसमे स्वदेशी एव विदेशी पूंजी मे कोई भेद न करने की बात कही गई थी ।

4 राजकीय पूंजीवाद को बढावा—सार्वजनिक क्षेत्र के अत्यधिक विस्तार पर बल देने के कारण कुछ आलोचको ने इसे राजकीय पूंजीवाद की नीति कहा है

किन्तु समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से प्रेरित अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र की बढती भूमिका अवश्यम्भावी होती है अत भारत मे भी यह हुआ ।

5 एकाधिकारी प्रवृत्तियो मे वृद्धि एव औद्योगिक सत्ता का केन्द्रीकरण बढा जबकि नीति का उद्देश्य औद्योगिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा एकाधिकारी प्रवृतियो मे कमी करना था । इस आलोचना की सत्यता दत्त समिति व डा आर के हजारी के प्रतिवेदनो से सिद्ध हो गई है । प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यही आलोचना की थी ।

6 कठोरता का रुख रहा जबकि उद्योगो का विभिन्न श्रेणियो मे वर्गीकरण लोचपूर्ण रखा जाना था । समाजवाद की धारणा मे राष्ट्रहित की सर्वोच्चता भारतीय नेताओ मे भी हावी रही अत निजी क्षेत्र के प्रति कठोर रुख रहा ।

इस नीति मे समय-समय पर आने वाली कठिनाइयो को दूर करने के लिए आवश्यक सशोधन भी किये । 1970 1973 तथा 1975 मे लाइसेन्स नीतियो मे परिवर्तन एव सशोधन किया गया । 1970 की लाइसेन्स नीति मे सयुक्त क्षेत्र को मान्यता दी गई । एक करोड रु से कम पू जी वाले उद्योगो को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया । अनुसूची 'अ' के अतिरिक्त अनिवार्य क्षेत्रो मे निजी उद्योगपतियो के प्रवेश की अनुमति दे दी गई । आयात नियत्रण एव प्रतिस्थापन को प्रोत्साहन दिया गया । 1973 मे बडे औद्योगिक घरानो (Big Business Houses) की परिभाषा की गई । लघु उद्योगो के आरक्षण की व्यवस्था की गई । 25 अक्टूबर 1975 को 21-सूत्रीय कार्यक्रम की सफल कार्यान्विति के लिए पाचवी योजना मे 1 6 लाख नये लघु उद्योगो की स्थापना, एपरेन्टिसो की भर्ती एव उद्योगो मे श्रमिको की सहभागिता पर जोर दिया गया ।

जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति–1977
(New Industrial Policy-1977 of Janata Govt.)

देश मे रोजगार प्रधान लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने तथा देश म सन्तुलित एव विकेन्द्रित औद्योगीकरण की दृष्टि से जनता सरकार के केन्द्रीय उद्योग मन्त्री जार्ज फर्नाण्डीज ने 23 दिसम्बर 1977 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की । यह नीति मौजूदा औद्योगिक ढाचे मे व्याप्त विकृतियो एव व्यावहारिक खामियो को सुधारते हुए लघु उद्योगो की भूमिका निर्धारण करती है । जहा इसमे एक ओर लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास का दृढ सकल्प है वहा दूसरी ओर बडे उद्योगो को अतिरिक्त सम्बल को अनावश्यक मानते हुए उन्हे स्वावलम्बी बनाने की परिकल्पना की गई है । बडे उद्योगो का नियमन एव नियत्रण इस प्रकार किया जायेगा कि बडे उद्योग छोटे उद्योगो के प्रति प्रतिस्पर्द्धा व अवरोध की दीवारें खडी न कर सकें ।

नयी औद्योगिक नीति–1977 की आवश्यकता क्यो ?

यद्यपि भारत मे 1956 की औद्योगिक नीति के क्रियान्वयन से देश मे तीव्र

औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है, भावी औद्योगीकरण के लिए आधारभूत उद्योगो का सुदृढ आधार भी बना है किन्तु भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अकुशलता तथा नीति का क्रियान्वयन घोषित उद्देश्यो के अनुरूप न होने से बडे उद्योगो व नयी तकनीक पर अधिक काम हुआ। पूँजी प्रधान एव आयातित विदेशी तकनीक को अपेक्षाकृत अधिक महत्व मिला, फलत श्रम प्रधान ग्रामीण लघु एव घरेलू उद्योगो की उपेक्षा हुई। बडे उद्योगो के विकास का लाभ चन्द पूँजीपतियो एव सम्पन्न वर्ग को मिला तथा ऐसी वस्तुओ का ही अधिक उत्पादन बढा जो समाज के विशिष्ट एव सम्पन्न वर्ग द्वारा उपभोग की जाती थी। सक्षेप मे इन कारणो को निम्न प्रकार से पक्तिबद्ध किया जा सकता है —

1 1956 की नीति का क्रियान्वयन घोषित उद्देश्यो के अनुरूप नहीं रहा— *पिछले 10 वर्षों मे औसतन औद्योगिक विकास दर 4% ही रही है।* प्रति व्यक्ति आय भी 1 5% की वार्षिक दर से बढी है। लघु उद्योगो की उपेक्षा, बेरोजगारी मे वृद्धि, विकास का लाभ सम्पन्न वर्ग को मिला। ये ऐसी विकृतिया हैं जिनके कारण नई औद्योगिक नीति की आवश्यकता बढी।

2 औद्योगिक विकेन्द्रीकरण कोरी कल्पना रही—*बडे औद्योगिक घरानो ने आर्थिक सत्ता पर केन्द्रीकरण एव एकाधिकारी प्रवृत्तियो को बल दिया।*

3 लघु एव कुटीर उद्योगो की उपेक्षा की गई। यद्यपि 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे लघु एव कुटीर उद्योगो के प्रोत्साहन की बात थी पर क्रियान्वयन मे पूँजी प्रधान एव आयातित विदेशी तकनीक को अधिक महत्व दिया गया। अत जनता सरकार ने नई नीति आवश्यक समझी।

4 एकाधिकार एव औद्योगिक केन्द्रीकरण की बढती प्रवृत्ति—1956 की नीति मे औद्योगिक विकास का लाभ बडे पूँजीपतियो ने ही अधिक उठाया। बडे औद्योगिक घराने कई गुना विस्तृत हो गये। यही नही उत्पादन पर एकाधिकारी प्रवृत्ति बढी। अत जनता सरकार ने इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण के लिये नई औद्योगिक नीति की तीव्र आवश्यकता समझी।

5 उत्पादन वृद्धि —देश मे 1956 की औद्योगिक नीति के क्रियान्वयन से पिछले 10 वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन मे केवल 4% वार्षिक वृद्धि हुई है जबकि जनता सरकार जनता की आकाक्षाओ और आशाओ को मूलरूप देने के लिये 8 से 10% औद्योगिक विकास दर का लक्ष्य रखती है अत वर्तमान नीति मे परिवर्तन आवश्यक हो गया।

6 कृत्रिम अभाव को समाप्त कर उचित वितरण की व्यवस्था हेतु नई नीति की आवश्यकता हुई। पहले एकाधिकारी शक्तियो द्वारा कम उत्पादन करके अधिक *मुनाफा कमाने और कृत्रिम अभाव पैदा करने के हथकण्डे अपनाये जाते थे।* इन विकृतियो को दूर करना आवश्यक हो गया।

7 लागतों एव मूल्यो के विकृत ढांचे को सुधारने के लिये नयी नीति जरूरी हुई ।

इस प्रकार जनता सरकार ने अगले दस वर्षों मे सबको रोजगार देने का जो वायदा किया है उसकी पूर्ति बडे उद्योगो से सभव न होकर श्रम प्रधान ग्रामीण, लघु एव कृषि आधारित उद्योगो के विस्तार एव विकास मे निहित है। इसी प्रकार भारत मे आयातित विदेशी पूंजी तथा तकनीक पर आधारित बडे उद्योगो का विकास देश की भौतिक परिस्थितियो एव निवासियो की रुचि रुझान के अनुकूल भी नही है। इस परिप्रेक्ष्य मे तीव्र उत्पादन वृद्धि, औद्योगिक विकेन्द्रीकरण एव रोजगार अवसरो की वृद्धि के सकल्प के अनुरूप नई औद्योगिक नीति आवश्यक थी।

जनता सरकार की औद्योगिक नीति की विशेषतायें
(Salient Features of New Industrial Policy of Janata Govt.)

जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति ग्रामीण, लघु एव कुटीर उद्योगो के तीव्र विकास, विकेन्द्रीकरण तथा रोजगार अवसरो मे वृद्धि के दृढ सकल्प से प्रेरित होने के कारण 1956 की नीति की विकृतियो व व्यावहारिक खामियो को दूर करने के लिये बनाई गई है उसमे निम्न मुख्य विशेषतायें हैं—

1 उद्देश्य—नई औद्योगिक नीति के उद्देश्य बडे व्यापक एव समयानुकूल हैं। इसके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(i) देश के मानवीय एव भौतिक साधनो का सर्वोत्तम उपयोग।

(ii) आवश्यक उपभोक्ता माल के उत्पादन मे तीव्र गति से वृद्धि।

(iii) रोजगार प्रधान लघु एव कुटीर, ग्रामीण एव कृषि उद्योगो का तीव्र गति से विकास एव विस्तार।

(iv) आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण एव एकाधिकारी प्रवृत्तियो पर रोक।

(v) औद्योगीकरण के मौजूदा ढांचे मे व्यावहारिक विकृतियो एव खामियो का निराकरण करते हुए तीव्र गति से औद्योगिक विकास।

(vi) उद्योगो को सामाजिक आशाओ एव आकाक्षाओ के अनुरूप ढालना।

(vii) अनुसंधान एव विकास मे आधुनिक तक्नीक का राष्ट्रहित मे उपयोग।

2 आरक्षित उद्यम—लघु एव कुटीर उद्योगो को बडे उद्योगो की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिये आरक्षित उद्यमो की सख्या 180 से बढाकर अब नई नीति मे 805 कर दी गई है। इन उद्यमो पर कम लागत पर स्वीकार्य प्रतिमान का उत्पादन का दायित्व रहेगा। इस प्रकार आरक्षित उद्योगो की सख्या मे 625 की वृद्धि उत्साहवर्द्धक है। इस सूची मे निरन्तर समीक्षा करते रहने की भी व्यवस्था की गई है।

3 बहुत छोटे उद्योगो (Tiny Sector) को विशेष सुविधायें प्रदान करने हेतु लघु उद्योग की विद्यमान परिभाषा तो बनी रहेगी। इसके अन्तर्गत बहुत छोटे क्षेत्र जिनमे मशीनों व उपकरणो का विनियोजन एक लाख रु तक है और जो 1971 की जनगणना के अनुसार 50 हजार से कम जनसख्या वाले नगरो या गावों मे

स्थापित किये गये हैं उन्हे विशेष सुविधायें—वित्तीय सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन आदि यथेष्ट सहायता दी जायेगी।

4 कुटीर एवं घरेलू उद्योगों के संरक्षण एवं नये उद्योगपतियों को प्रोत्साहन— नई नीति मे सरकार द्वारा कुटीर एव घरेलू उद्योगो के हितो की रक्षा एव सरक्षण के लिये विशेष विधान बनाने की व्यवस्था है क्योकि अब तक लघु उद्योगो की ही आरक्षण व्यवस्था थी। कुटीर एव घरेलू उद्योगो को कोई विशेष सरक्षण नही दिया गया था। इसी प्रकार इस नीति मे उद्योगपतियो को कारोबार खोलने के लिये प्रोत्साहन हेतु एक विधेयक पारित किया जायगा।

5. जिला उद्योग केन्द्रो की स्थापना—लघु तथा ग्रामोद्योगो की सभी आवश्यकताओ के बारे मे कार्यवाही एव सहयोग देने के लिये प्रत्येक जिले मे एक उद्योग केन्द्र स्थापित किया जायगा। ये केन्द्र जिले मे उपलब्ध कच्चे माल तथा अन्य साधनो का आर्थिक अन्वेषण, मशीनो एव उपकरणो की आपूर्ति, कच्चे माल की व्यवस्था, उधार देने की व्यवस्था करना, प्रभावी विपणन व्यवस्था, किस्म नियन्त्रण, अनुसधान एव विस्तार के लिये एक प्रकोष्ठ की स्थापना करना आदि सभी कार्य करेंगे। लघु उद्योगो से भिन्न कुटीर एव घरेलू उद्योगो की विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये जिला केन्द्र मे एक अलग विग होगा। ये जिला केन्द्र एक ओर विकास खण्डो से सम्पर्क रखेंगे तथा दूसरी ओर विशिष्ट सस्थानो—जैसे लघु उद्योग सेवा सस्थान से भी सम्बद्ध रहेगा। इस वर्ष जनता सरकार ने 180 जिला केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया है और 1979 के अन्त तक 460 जिला उद्योग केन्द्र स्थापित हो जायेंगे। जनता सरकार द्वारा अगले चार वर्षों मे सभी जिलो मे ऐसे केन्द्र स्थापित हो जायेंगे तदर्थ राज्य सरकारो को समुचित वित्तीय एव सगठनात्मक सहायता उपलब्ध करने की व्यवस्था की जायेगी।

6. विकास बैंक खण्ड—लघु एव कुटीर उद्योगो के विकासार्थ प्रभावी वित्तीय सहायता उपलब्ध करने के लिये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India) मे एक अलग खण्ड (wing) खोलने की व्यवस्था कर ली गई है। यह खण्ड सभी प्रकार के वित्तीय सुविधाओ के सम्बन्ध मे *मार्ग-दर्शन, समन्वय एवं व्यवस्था का काम करेंगे।* राष्ट्रीयकृत बैंको से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वे लघु, कुटीर एव घरेलू उद्योगो को निश्चित अनुपात मे ऋण मुहैया करेंगे।

7. खादी-ग्रामोद्योग की बढ़ती भूमिका—इस नीति मे खादी ग्रामोद्योग की भूमिका को समुचित महत्व दिया गया है। फिलहाल मे खादी-ग्रामोद्योग आयोग के क्षेत्र मे 22 उद्योग ही आते थे पर अब यह आयोग ग्रामोद्योगो के विकास के लिये आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल बढाने तथा आधुनिक प्रबन्ध व्यवस्था विकसित करने के लिये योजनायें बनायेगा जिनमे साबुन एव जूतो के उद्योग विशेष रहेंगे। नयी खादी के उत्पादन मे पोलिस्टर धागे का उपयोग सम्बन्धी प्रयोग किया जायेगा।

जनता की कपडे की आवश्यकता की पूर्ति हैण्डलूम क्षेत्र मे बढायी जायेगी। मिल क्षेत्र एव शक्ति सचालित कर्घों के विस्तार की अनुमति नही दी जायेगी।

8 **बडे उद्योगों के सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टिकोण**—नई औद्योगिक नीति मे सगठित बडे उद्योगो के बारे मे पूर्णत व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। वे अब प्रदर्शनात्मक दृष्टि से बहुत बडे तथा अनावश्यक विदेशी तकनीकी से अभिभूत नही होगे। उन्हे छोटे एव कुटीर उद्योगो के लिये बाधक नही बनने दिया जायेगा। अब इस नीति म बडे उद्योगो का कार्यक्षेत्र फिर से परिभाषित किया गया है—

(i) **बुनियादी उद्योग** (Basic Industries)—ये वे उद्योग हैं जो अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक सरचना (Infrastructure) निर्माण करते हैं तथा लघु एव ग्रामोद्योगो को विकास करने के लिये जरूरी हैं जैसे इस्पात, अलोह धातुएँ, सीमेंट, तल शोधक कारखाने आदि।

(ii) **पूंजीगत सामान उद्योग** (Capital Goods Industries)—जो बुनियादी एव छोटे उद्योगो के लिये मशीनें बनाते हैं।

(iii) **उच्च प्रौद्योगिकी वाले उद्योग** (High Technology Industries)—जिनमे बडे पैमाने पर उत्पादन की आवश्यकता होती है तथा जो कृषि तथा लघु इनर के औद्योगिक विकास जैसे खाद, कीटाणुनाशक दवाइयो तथा पेट्रोरसायन आदि से सम्बन्धित है।

(iv) अन्य उद्योग जो लघु क्षेत्र उद्योगो की आरक्षित सूची से बाहर हैं और जिन्हे अर्थव्यवस्था का विकास करने के लिये जरूरी समझा जाता है जैसे मशीनरी, औजार, कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन उद्योग।

9 *बडे औद्योगिक घरानो पर प्रभावी नियन्त्रण*—1956 की नीति से बडे औद्योगिक गृहो की अनुपात से अधिक वृद्धि पर नियन्त्रण म वाछित सफलता नही मिली। बडे उद्योग समूहो का विकास उनके आन्तरिक साधनो से नहीं वरन् उनके द्वारा बैंको तथा वित्तीय सस्थाओ के ऋणो पर आधारित रहा। अन उस प्रक्रिया को बदलने के लिये नई औद्योगिक नीति मे भविष्य के लिये बडे औद्योगिक गृहों (Large Industrial Houses) का विस्तार निम्न मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अनुसार किया जायगा—

(i) मौजूदा उपक्रमो का विस्तार एव नये उपक्रमो की स्थापना दोनो एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम के उपबन्धो के अनुसार हो सकेगा।

(ii) जो उद्योग इस समय क्षमता की स्वत वृद्धि करने योग्य हैं उनके अलावा विद्यमान उपक्रमो द्वारा नयी वस्तुओ का उत्पादन करने तथा बडे औद्योगिक गृहो द्वारा नये उपक्रमो की स्थापना करने के लिये सरकार के विशिष्ट अनुमोदन की आवश्यकता होगी।

(iii) बडे औद्योगिक गृहो को अपनी नई या विस्तार सम्बन्धी परियोजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिये अपने स्वय के साधनो पर ही निर्भर करना होगा। पूंजी प्रधान कुछ उद्योगो जैसे उर्वरको, कागज, सीमेंट, जहाजरानी तथा पेट्रो रसायन आदि के मामले मे उपयुक्त ऋण इक्विटी के लिये अनुमति दी जायगी बशर्ते सार्वजनिक वित्त सस्थाओ पर उनकी निर्भरता कम हो।

बडे औद्योगिक घरानो के कार्य-कलापो को देश के आर्थिक-सामाजिक उद्देश्यो के अनुरूप लाने के लिये सरकार अपनी लाइसेन्स नीति को विनियमित करेगी।

(iv) लघु उद्योगो के क्षेत्र के लिये आरक्षित।

10 सार्वजनिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका—नयी औद्योगिक नीति मे सार्वजनिक क्षेत्र पर काफी दायित्व डाला गया है अत. उसे अर्थव्यवस्था मे बढ़ती भूमिका निभानी होगी। इस क्षेत्र मे न केवल बुनियादी किस्म का महत्वपूर्ण उत्पादन होगा वरन् जन साधारण के लिये आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति बनाये रखने के लिए भी उनका प्रयोग एक स्थायी शक्ति के रूप मे कारगर ढँग से किया जायेगा। यह क्षेत्र विविध सहायक उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन तकनीक एव प्रबन्ध व्यवस्था भी उपलब्ध करेगा। यह क्षेत्र अब एक सफेद हाथी के रूप मे न रह कर कार्यकुशल, लागत मे कमी तथा उत्पादन के क्षत्र मे निजी क्षेत्र से लोहा ले सकने की स्थिति मे होगा। सरकारी क्षेत्र मे प्रबन्धको का एक व्यावसायिक सवर्ग बनाने को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी।

11 स्वदेशी एव विदेशी प्रौद्योगिकी (Technology)—भविष्य मे भारतीय उद्योगो का विकास यथासम्भव देशी प्रौद्योगिकी (technology) पर निर्भर करेगा क्योकि अन्तत स्वदेशी तकनीक ही सस्ती एव कारगर साबित होती है। फिर भी विशिष्ट क्षेत्रो मे विदेशी प्रौद्योगिकी (foreign technology) का रास्ता खुला रहेगा और देश की आवश्यकता के अनुरूप ऐसी प्रौद्योगिकी को अनुकूलित किया जायेगा। जिन भारतीय कम्पनियो को विदेशी प्रौद्योगिकी आयात करने की अनुमति दी जाती है उन पर पर्याप्त अनुसधान एव विकास सुविधायें स्थापित करने का दायित्व रहेगा ताकि आयातित प्रौद्योगिकी को अनुकूलित अथवा आत्मसात किया जा सके।

12 विदेशी विनियोजन एव सहभागिता—नई औद्योगिक नीति मे विदेशी निवेश तथा विदेशी कम्पनियो की सहभागिता को राष्ट्रीय हितो के अनुरूप बनाया जायेगा। विद्यमान विदेशी कम्पनियो पर विदेशी मुद्रा विनिमय कानून को सख्ती से लागू किया जायेगा और विदेशी इक्विटी को कम करने की प्रक्रिया पूरी होने पर 40% से अधिक प्रत्यक्ष अन्यत्रवासी निवेश न रखने वाली कम्पनी को भारतीय कम्पनियो के समकक्ष विस्तार की अनुमति होगी। पूर्ण स्वामित्व रखने की इच्छुक विदेशी कम्पनियो को अब भारत मे कोई स्थान नही है जैसे कोका-कोला एव आई. बी एम.।

13. औद्योगिक आत्मनिर्भरता—औद्योगिक एव आर्थिक नीति का सर्वोच्च उद्देश्य आत्मनिर्भरता की प्राप्ति है इसलिए नयी नीति मे सुदृढ एव विविधापूर्ण औद्योगिक आधार तैयार करने की व्यवस्था है। इसके लिए सरकार, भारतीय उद्योगों को अपनी प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति एव प्रौद्योगिकी मे सुधार के लिए सभी सहायता प्रदान करेगी।

14 सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को महत्वपूर्ण माना गया है अत विभिन्न क्षेत्रो के बीच विकास स्तर की असमानताओ को तेजी से कम किया जायेगा। इसक लिए 1971 की जनगणनानुसार दस लाख से अधिक आबादी वाले महानगरो को निश्चित सीमाओ तथा 5 लाख से अधिक आबादी वाले शहरो मे नये औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने के लिये अनुमनि नही दी जायेगी और जिन उद्योगो मे लाइसेन्स की आवश्यकता नही उन्हे राज्य तथा वित्तीय सस्थाओ से वित्तीय सहायता न देने पर जोर दिया जायेगा जबकि घनी आबादी वाले महानगरो व शहरो से पिछड़े क्षेत्रो को स्थानान्तरित होने वाले बडे उद्योगो को आर्थिक सहायता पर विचार किया जायेगा।

15 कर्मचारियो की सहभागिता—देश मे उपलब्ध मानवीय शक्ति के सदुपयोग का पूरा प्रयास रहेगा। औद्योगिक इकाइयो की अश पूँजी मे सहभागिता और कर्मशाला स्तर से सचालन स्तर तक निर्णय करने मे कारीगरो को सम्बद्ध होना कार्यकुशलता एव उत्पादन वृद्धि मे प्रयुक्त किया जायेगा।

16. सकटग्रस्त बीमार मिलें—औद्योगिक क्षेत्र मे सस्टग्रस्तता की बढती प्रवृत्ति का देखते हुए नई औद्योगिक नीति मे यह प्रावधान किया गया है कि काफी जाच पडताल के बाद ही सक्टग्रस्त इकाइयो को सरकार अपने हाथ में लेगी। सरकार यह भी सोच रही है कि जो प्रबन्धक या मालिक, कुप्रबन्ध के लिए जिम्मेदार पाय जाते हैं उन्हे दूसरी मिलो के प्रबन्ध मे कोई भूमिका निभाने से वचित किया जा सके।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति वडी ही मामयिक एव व्यावहारिक दृष्टिकोण पर आधारित है। देश मे उत्पादन वृद्धि विकेन्द्रीकरण एव रोजगार अवसरो मे पर्याप्त वृद्धि हेतु लघु एव ग्रामीण उद्योगो के विकास एव विस्तार पर विशेष जोर दिया गया है। बडे उद्योगो म स्वदेशी प्रौद्योगिकी पर जार दिया गया है तथा बडे औद्योगिक घरानो के प्रभावी नियन्त्रण की व्यवस्था है। सार्वजनिक क्षेत्र पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का दायित्व है।

नयी औद्योगिक नीनि की आलोचनायें एव शिकायतें
(Criticisms of New Industrial Policy)

यद्यपि जनता सरकार की नई औद्योगिक नीति के अगले दस वर्षों मे सबको रोजगार मुहैया करन के उद्देश्य से लघु एव कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगो के

विकास को सर्वोच्च प्रायमिकता दी गई है फिर भी इस नीति की कई कमिया, शिकायतें एव आलोचनाएँ हैं जो सक्षेप मे इस प्रकार हैं—

1 **लघु उद्योगो की व्याख्या अस्पष्ट**—औद्योगिक नीति मे वर्णित लघु उद्योगो के लिए आरक्षण, वित्तीय सहायता, करो मे रियायतें तथा अन्य सुविधाओ का सही इस्तेमाल किये जाने के लिए यह व्याख्या जरूरी है कि लघु उद्योगो मे किन-किन को सम्मिलित किया जायगा। लघु उद्योगो के द्वारा फिलहाल लगभग 2400 वस्तुओ का निर्माण होता है। उनमे से केवल 805 वस्तुओ के लिए ही आरक्षण के पीछे कौन-सा तर्क है।

2 **लघु उद्योगो की व्यावहारिक कठिनाइयो पर ध्यान नहीं दिया गया है**—आजकल उत्पादन, विक्रय तथा आय पर इतने अधिक नियम, उपनियम तथा कानून लागू होते हैं कि उन्हे लागू करने मे सामान्यत नये उद्यमियों का लगभग 22 निरीक्षको एव अधिकारियो से पाला पडना है जो आमतौर पर उद्योगो के विकास मे उत्सुक न होकर कथित अनियमितताओ को पकडने मे रुचि रखते हैं। भारतीय लघु उद्योग सघ के उपाध्यक्ष नरेन्द्र शास्त्री के अनुसार यह एक प्रकार का नया पटवारी वर्ग है जिसका वेतन कम पर आय अधिक है। लघु उद्यमी सामान्यत अनुभवहीन, नियमो उपनियमो से अनभिज्ञ तथा अर्द्ध शिक्षित होता है और वह नियमो के शिकजे मे निरन्तर फसता ही जाता है अत लघु-उद्योगो के सामने इन व्यावहारिक कठिनाइयो को दूर करने की व नियमो-उपनियमो को सरल बनाने की आवश्यकता है।

3 **लघु उद्योग श्रम नीति मे परिवर्तन का** औद्योगिक नीति मे कोई प्रावधान नही है। चूँकि लघु उद्योगो के श्रम मालिक सम्बन्ध अधिक मानवीय एव घनिष्ठ होते हैं कि जटिल श्रम नियमो की आवश्यकता ही नही रहती और न उनके पालन की क्षमता ही होती है।

4 **बडे उद्योग और आधुनिक ढग के उद्योगो की उपेक्षा**—कुछ आलोचको ने देश मे स्वदेशी तकनीक के प्रयोग पर जनता सरकार के जोर व विदेशी प्रौद्योगिकी पर नियन्त्रण की नीति से देश आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से वचित रह जायेगा।

5 **विदेशी विनियोजको एव कम्पनियों को धक्का लगा है।** वे अब भारत मे अधिक पूँजी विनियोग के लिये प्ररणास्पद नही होगी। ये आलोचनायें अधिक वजनी नहीं हैं क्योकि सरकार स्वय उनके प्रति जागरूक है।

नई औद्योगिक नीति बडी व्यापक, सामयिक एव व्यावहारिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इस नीति मे औद्योगिक विकास की गति को तेज करने, उत्पादन एव कारीगरो की आय मे वृद्धि तथा रोजगार मे वृद्धि के जो उद्देश्य हैं उनके लिये लघु, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगो के विकास पर बल दिया गया है। उन्हे विकास के लिए पर्याप्त अवसर एव सुविधायें दी जायेंगी। बडे उद्योगो को छोटे उद्योगो व

विकास मे बाधायें खडी करने का अवसर नही दिया जायेगा। विदेशी पूँजी एव अयाचित प्रौद्योगिकी को हतोत्साहित कर देश मे आत्म निर्भरता की ओर प्रयास किया जायेगा।

औद्योगिक लाइसेन्सिग नीति
(Industrial Licencing Policy)

निजी क्षेत्र के उद्योगो की स्थापना, विस्तार एव विकास का नियमन एव नियत्रण करने के लिये औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम 1951 पारित हुआ था। उसमे 1952 मे सशोधन कर इसे व्यापक बनाया। इस अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि केन्द्रीय सरकार से लाइसेन्स प्राप्त किये बिना कोई नई औद्योगिक इकाई स्थापित नही की जा सकती अथवा चालू प्लान्ट का काफी विस्तार नहीं किया जा सकता। इस अधिनियम मे लाइसेन्स समिति (Licencing Committee) की भी व्यवस्था है। भारत की औद्योगिक लाइसेन्स नीति मे समय समय पर सशोधन होते रहे हैं जिनमे 1970, 1973, 1975, और 1978 के सशोधन उल्लेखनीय हैं। भारत मे औद्योगिक लाइसेन्स नीति मे मुख्य विशेषताए निम्न है —

1. लाइसेन्सिंग हेतु उद्योगो का वर्गीकरण किया गया है (i) अनिवार्य क्षेत्र मे निजी उद्योगपतियो को प्रवेश की अनुमति नही होगी (ii) मध्यम क्षेत्र मे 3 करोड से 5 करोड रु० पूँजी विनियोग वाले उद्योग गिने जायेंगे तथा (iii) लाइसेंस मुक्त क्षेत्र अब तीन करोड रु० से कम पूँजी वाले उद्योगो को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया गया है।

2 सयुक्त क्षेत्र को मान्यता—सरकार ने सयुक्त क्षेत्र को सैद्धान्तिक मान्यता दे दी है जिसके अनुसार सरकार वित्तीय सगठनो द्वारा बडी परियोजनाओ की अधिक मात्रा मे वित्तीय व्यवस्था करने की अवस्था मे इन परियोजनाओ की साख नीति एव प्रबन्ध मे हिस्सा तथा ऋणों को अश पूँजी मे बदलने का अधिकार होगा।

3 देश के औद्योगिक उत्पादन के प्रोत्साहन हेतु आयात नियंत्रण की नीति अपनाई जायेगी। नई आयात-निर्यात नीति मे देश मे आयात प्रतिस्थापन को ध्यान मे रखते हुए उदारता रखी गई है कि देश के उद्योगो की पूरी क्षमता के उपयोग हो जाने के बाद आवश्यक हुआ तो उपभोक्ताओ के हितो के लिये आयात किया जा सकेगा।

4. एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर कठोर नियंत्रण— सरकार आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण हेतु नई लाइसेन्स नीति मे "बडे औद्योगिक गृहो" की पुन: परिभाषा मे अब 20 करोड रु० से अधिक परिसम्पति वाले व्यवसायिक गृहो को भी शामिल कर लिया है जबकि 1970 की लाइसेन्स नीति मे यह सीमा 35 करोड रु० थी। अब उन्हे अपने विस्तार, लाइसेन्स मुक्त क्षेत्र मे भी इकाइया स्थापित करने पर लाइसेन्स लेना होगा।

5. लघु उद्योगो के आरक्षण की व्यवस्था को विस्तृत किया गया है अब *504 वस्तुग्रो के उत्पादन मे छोटे एव लघ् एव कुटीर उद्योगो को आरक्षण मिल सकेगा। किन्तु जनता सरकार ने आवश्यकतानुसार आयात की उदारता का रुख अपनाया है।*

6. विदेशी बडी तथा MRTP कम्पनियो को 5 करोड रु की समस्त पूँजी विनियोग की व्यवस्था के कानून का पालन करना होगा जबकि दूसरे उद्योगो के लिये इसे हटा दिया गया है। अब वडे औद्योगिक गृहो को भी पिछड़े क्षेत्रो मे औद्योगिक इकाइया स्थापित करने के लिए लाइसेन्स देने मे उदारता का रुख अपनाया जा सकेगा।

अब नई लाइसेन्स नीति मे औद्योगीकरण की गति तेज करने तथा विदेशी विनियोगो को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त उदारता एव सरलता प्रदान की गई है। अब आशयपत्र, विदेशी सहयोग एव पूँजीगत सामान सम्बन्धी आवेदनो को 90 दिन मे निपटाने की व्यवस्था अपनाई जायेगी। पूँजीगत सामान प्राप्ति के लिए सरलीकरण किया गया है। वडे औद्योगिक गृहो को भविष्य मे केवल प्रमुख क्षेत्रो मे ही औद्योगिक इकाइया स्थापित करने की अनुमति दी जा सकेगी।

इस प्रकार नई औद्योगिक एव लाइसेन्स नीतियो मे औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि, विनियोगो को प्रोत्साहन छोटे उद्योगपतियो को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर बडे औद्योगिक गृहो पर कठोर नियन्त्रण, निर्यात सम्वर्धन एव आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने के प्रभावी प्रयास हैं। इससे देश मे औद्योगीकरण की गति तेज होगी व विदेशी पूँजी को नया आकर्षण रहेगा।

8

भारत में औद्योगीकरण एवं औद्योगिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियाँ

(Industrialisation & Main Trends in Industrial Growth of India)

आज विश्व के सभी विकासशील राष्ट्रों में औद्योगीकरण की होड़ सी लगी है और वे अपने आर्थिक विकास का दीर्घकालीन उद्देश्य औद्योगीकरण मान कर अपने अन्तिम लक्ष्य 'आर्थिक सम्पन्नता' की ओर अग्रसर हो रहे हैं। भारत भी उनमें से एक है। भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्राचीन बड़ा गौरवपूर्ण रहा है और यहाँ तक कहा जाता है कि "जब आधुनिक सभ्यता का जन्म स्थान पश्चिमी यूरोप जंगली कबीलों का निवास स्थान था भारत अपने शासकों की सम्पत्ति तथा कारीगरों की कला-कौशल के लिए विख्यात था।" इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति तथा भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की घातक नीति से भारत की औद्योगिक व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट होने लगी। ब्रिटिश शासनकाल में 18वीं शताब्दी के अन्त तक जो उद्योग अन्तिम सांस ले रहे थे वे उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक अपना गौरव पूर्णतया खो बैठे। 1840 से परिस्थितियों के दबाव में आकर अंग्रेज शासकों ने औद्योगीकरण के यदा-कदा कुछ प्रयत्न किये पर आधुनिक ढंग के उद्योगों की स्थापना की सही शुरुआत 1890 के बाद ही हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन तथा स्वदेशी की भावना ने भारत में उद्योगों के विकास का सिलसिला पुनः प्रारम्भ किया। 1914 में प्रथम विश्व-युद्ध ने विकास के लिए वातावरण तैयार किया, पर युद्ध के तुरन्त बाद उद्योगों की विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 1921–22 में विभेदात्मक संरक्षण की नीति का अनुसरण किया गया। 1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने समूची अर्थ-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। 1930 के बाद चीनी उद्योग को भी संरक्षण दिया गया। 1939 तक स्थिति डावाडोल ही चल रही थी। फिर द्वितीय विश्व-युद्ध की चिनगारी भड़क उठी। इस युद्धकाल में भारत का औद्योगीकरण बड़ी तेजी से हुआ। उद्योगपतियों ने *खूब लाभ कमाया तथा तेजी से विस्तार किये।* इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में थोड़ा बहुत औद्योगिक विकास सरकार की सुनिश्चित औद्योगिक विकास की नीति से नहीं— बल्कि परिस्थितियों, भारतीय राष्ट्रवादियों तथा राष्ट्रीय भाव से सम्भव हो पाया था। अंग्रेजों ने तो अपने शासन

काल मे भारत को कगाल बनाने मे कोई कसर बाकी नही रखी थी। भारत मे आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो की स्थापना नाम मात्र की थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक नीति एव विकास

1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ साथ देश का विभाजन हुआ। उनका औद्योगीकरण पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। भारत सरकार ने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारतीय जनता को आर्थिक स्वतन्त्रता, सम्पन्नता तथा विविधता पूर्ण जीवनयापन का सुअवसर प्रदान करने के लिए औद्योगीकरण की आवश्यकता महसूस की। तदनुसार 1948 म स्वतन्त्र भारत की प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी। इस नीति मे मिश्रित अर्थव्यवस्था को आधार बनाकर औद्योगीकरण के लिए सरकार के सक्रिय योगदान की आवश्यकता जाहिर की। इस नीति को सुचारु रूप से कार्यान्वित करने के लिए 1951 मे एक (औद्योगिक विकास एव नियमन) अधिनियम-[Industrial (Development & Regulation Act)] पारित किया गया।

प्रथम योजना एक कृषि प्रधान योजना थी और इसमे कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। भारत के नियोजित विकास का यह प्रथम प्रभावी प्रयास था। परन्तु इस योजना म औद्योगिक विकास को यथोचित स्थान नही दिया गया। औद्योगिक नीति मे औद्योगिक विकास का सुदृढ आधार तैयार करने के लिए लोहा, इस्पात, सीमेट खाद, भारी रसायन व बिजली का सामान, मशीनी औजार तथा अल्यूमिनियम जैस आधारभूत एव बुनियादी उद्योगो की स्थापना की ओर अधिक ध्यान देने का उद्देश्य था।

आर्थिक परिस्थितियो और उद्देश्यो मे परिवर्तनो के अनुकूल नीतियो मे परिवर्तन एक प्रगतिशील नियोजन का लक्षण है। 1948 की औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद 1950 मे भारतीय सविधान मे नागरिको के कुछ मौलिक अधिकारो की घोषणा और सरकारी विषयक नीति निर्देशो प्रथम योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो की आश्चर्यजनक प्रगति, 1945 मे ससद द्वारा "समाजवादी समाज की स्थापना" का प्रस्ताव पारित किये जाने तथा द्वितीय योजना मे उद्योगो के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के कारण एक अधिक स्पष्ट, सुनिश्चित और प्रगतिशील औद्योगिक नीति की आवश्यकता हुई। इसलिए 30 अप्रेल 1956 को तत्कालीन प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने ससद मे नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति मे सावजनिक क्षेत्र का बहुत विस्तार कर उसके उत्तरदायित्व मे वृद्धि कर दी। इसमे समाजवाद की स्थापना, तीव्रगति से औद्योगीकरण, आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो के विकास से देश के भावी विकास का सुदृढ आधार तैयार करने तथा एकाधिकार व केन्द्रीयकरण प्रवृत्तियो पर रोक लगाने के उद्देश्य निहित थे। द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास की गति तन हुई पर विदेशी विनिमय सकट ने मार्ग मे बाधा उपस्थित की। फिर भी द्वितीय याजनाकाल मे उद्योगो का खूब विकास हुआ।

समय-समय पर नीति निर्देश दिये गये तथा वित्तीय व्यवस्था की गई। तृतीय योजना मे भी औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इसमे भी 1962 मे बर्बरता पूर्ण चीनी आक्रमण तथा 1965 मे पाकिस्तानी आक्रमण के बावजूद उद्योगो मे विकास की वार्षिक दर 7 से 8% तक रही।

1966 तथा 1967 मे उद्योगो म शिथिलता (Recession) आ गई। खासतौर से इन्जीनियरिंग उद्योगो को भारी कठिनाइयो का सामना करना पडा। सरकार ने उद्योगो के विकास तथा नियन्त्रण के यथासम्भव सब प्रयत्न किये। 1968-69 तक उद्योगो मे पुन चेतना उत्पन्न हुई। शिथिलता का वातावरण समाप्त होने से विकास और विस्तार का दौर शुरू हुआ। जहा 1966 मे औद्योगिक विकास की दर 1% थी, 1967 मे यह और भी कम थी। 1968 मे यह पुन बढ कर 6 4% हो गई। 1969 मे विकास दर 7 1% थी पर 1970 मे घटकर केवल 4·5% ही होने का अनुमान है। 1974-75 म विकास दर 2 से 3% थी जबकि अब 5% से 6% का अनुमान है।

चतुर्थ योजना (1969-74) मे भी देश ने निर्यात को बढाने, आयात को कम करने तथा अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से उद्योगो के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। चतुर्थ योजना मे अब उद्योगो के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्रो मे 3739 करोड रुपये व्यय हुआ। पाचवी योजना मे लगभग 13528 करोड रुपये लघु व कुटीर, सगठित उद्योग एव खनिज विकास पर व्यय होने का प्रावधान था।

योजना आयोग, प्रशासनिक सुधार आयोग, दत्त समिति तथा डा आर के हजारी की सिफारिशो के अनुसार उद्योगो के विकास मे सार्वजनिक क्षेत्र के तेजी से विस्तार करने आर्थिक केन्द्रीकरण और उद्योगो मे एकाधिकार प्रवृत्तियो पर अकुश लगाने तथा समाजवाद की स्थापना का स्वप्न साकार करने के लिए 18 फरवरी 1970 को भारत सरकार ने नई औद्योगिक लाइसेन्स नीति की घोषणा की है और 2 फरवरी 1973 तथा 25 अक्टूबर 1974 को उसम और महत्वपूर्ण घोषणायें की हैं। इस प्रकार भारत सरकार देश के औद्योगीकरण के लिये कृतसकल्प है।

(1948, 1956 तथा 1977 की औद्योगिक नीतियो और नई लाइसेन्स नीति के विस्तृत विवरण के लिए "भारत मे औद्योगिक नीति" का अध्याय 7 देखिये।

उपर्युक्त सक्षिप्त भूमिका से हम यह देखते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश मे औद्योगिक विकास का सुदृढ आधार तैयार करने के लिए भारत सरकार पिछले 24-25 वर्षों से कृत सकल्प है और आवश्यकतानुसार सुनिश्चित, स्पष्ट तथा प्रगतिशील नीतियो का अनुसरण किया है। इन प्रयासो से भारत के औद्योगिक विकास म कई प्रवृत्तिया दृष्टिगोचर होती हैं जिनका विस्तृत विवरण अग्रलिखित तथ्यो से स्पष्ट होता है—

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे औद्योगिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियां

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 1948 की औद्योगिक नीति, पचवर्षीय योजनाओ मे विकास कार्यक्रमो 1956 की नवीन औद्योगिक नीति तथा निजी क्षेत्र के महत्वपूर्ण योगदान से औद्योगिक विकास मे निम्न प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं—

1 पचवर्षीय योजनाओं मे औद्योगिक विकास पर व्यय मे उत्तरोत्तर वृद्धि— प्रथम योजना मे कृषि विकास पर अधिक ध्यान दिया गया। इस योजना मे उद्योगो के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र म केवल 117 करोड रुपया ही व्यय हुआ। द्वितीय योजना मे उद्योगो और खासतौर पर आधारभूत और मूलभूत उद्योगो के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दिये जाने से सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो के विकास पर 1,125 करोड रुपया व्यय किया गया। तृतीय योजना मे भी विकास का यह क्रम जारी रहा तथा इस योजना मे स्वय-स्फूर्ति अर्थव्यवस्था के लिए उद्योगो के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र मे 1,967 करोड रुपया व्यय किया गया। तीन वार्षिक योजनाओ मे ',719 करोड रुपये तथा चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो के विकास पर 3,729 करोड रुपये व्यय हुआ। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र मे औद्योगीकरण के लिए विकास व्यय म उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। निजी क्षेत्र मे भी प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय योजना मे क्रमश: 233 करोड रुपये 850 करोड रुपये तथा 1,050 करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है। सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय का विस्तृत विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पचवर्षीय योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो पर व्यय

(करोड रुपये)

विवरण	प्रथम योजना 1951-56	द्वितीय योजना 1956 61	तृतीय योजना 1961 66	तीन वार्षिक योजनायें 1966-69	चतुर्थ योजना 1969-74	पाँचवी योजना 1974-78
ग्राम एव लघु उद्योग	43	187	241	144	293	388
सगठित उद्योग एव खनिज विकास	74	938	172	1575	3435	7432
उद्योगो पर कुल व्यय	117	1125	1967	1719	3729	7820
सार्वजनिक क्षेत्र के कुल व्यय का प्रतिशत	4%	24%	23%	25 4%	22 7%	26 5%
सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल व्यय	1960	4600	8577	6757	16774	29571

2 **औद्योगिक विनियोग में निरन्तर वृद्धि का रुख**—भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति, विनियोगो मे निरन्तर वृद्धि है। सार्वजनिक क्षेत्र म प्रथम योजना मे उद्योगो मे विनियोग 55 करोड रुपये था वह द्वितीय पचवर्षीय योजना मे बढकर 938 करोड रुपये तथा तृतीय पचवर्षीय योजना मे बढकर 1520 करोड रुपये होने का अनुमान है। तीन वार्षिक योजनाओ मे विनियोग कुछ कम रहा है परन्तु चतुर्थ पचवर्षीय योजना के पहले वर्ष 1969 मे 1968 के मुकाबले दुगुने लाइसेन्सो की मजूरियाँ दी गईं। निजी क्षेत्र मे निवेशो मे तेजी से वृद्धि हुई है। पहली तीन योजनाओ म सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र मे कुल औद्योगिक विनियोग 4 646 करोड रुपय हुआ। सगठित उद्योग व खनिज विकास मे योजनावार निक्षेप निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पचवर्षीय योजनाओ मे सगठित उद्योगो व खनिज उद्योगो मे विनियोग

(करोड रुपये)

क्षेत्र	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	1966 69	चतुर्थ योजना	पाँचवीं योजना
सार्वजनिक क्षेत्र	55	938	1520	1520	3729	7820
निजी क्षेत्र	233	850	1060	580	000	6000
कुल योग	288	1788	2580	2100	5729	13820

चतुर्थ योजना मे कुल मिलाकर उद्योगो मे 5729 करोड रुपये विनियोग हुआ जबकि पाँचवी योजना मे 13820 करोड रुपये विनियोग की आशा थी। इस तरह विनियोग मे बढावा देने की नीति से विदेशी पूँजी का विनियोग भी बढा है। छठी योजना म 200 अरब रुपये विनियोग की आशा है।

3 **औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि** (Increase in Industrial Produuotion)—पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत उद्योगो के विकास पर भारी व्यय तथा बडी मात्रा म विनियोग से औद्योगिक उत्पादन म तेजी से वृद्धि हुई है। पिछले 28 वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन मे 270 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 1950–51 के मुकाबले 1968–69 मे औद्योगिक उत्पादन तिगुना हो गया है। 1960 – 100 के आधार पर औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक 1950–51 मे 49 था वह 1965–66 मे बढकर 154 तथा 1977–78 मे बढकर 270 तक पहुचने का अनुमान है। जहाँ 1950–51 म औद्योगिक विकास की दर 2 5% थी वह 1976–77 म 10 4% पहुँच गई। 1978–79 मे यह दर 7 से 8% रहने का अनुमान है।

4 *आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो का सुदृढ आधार*—1948 की नीति मे ही स्पष्ट कर दिया गया था कि देश के औद्योगीकरण के लिए देश आधारभूत एव बुनियादी उद्योगो का सुदृढ आधार आवश्यक है। अत 1956 से लागू होने वाली द्वितीय योजना मे आधारभूत उद्योगो के विकास को सर्वोच्च स्थान दिया। लोहा इस्पात की तीन नई इकाइयाँ—रूरकेला भिलाई व दुर्गापुर म भोपाल म हैवी इलेक्ट्रोनिक कारखाना अल्युमिनियम, सीमेन्ट मशीन और औजार निर्माण, रासायनिक उद्योगो का निर्माण तेजी से शुरू हुआ। तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी विकास तथा सुरक्षा की दृष्टि से उद्योगो को प्राथमिकता दी गई। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र मे प्रगति का सक्षिप्त दिग्दर्शन आगे दी गई तालिका से होता है—

योजनाओं में आधारभूत उद्योगों का विकास

क्र० स० उद्योग	इकाई	1950-51	1960-61	1965-66	1968-69	1973-74	1977-78	लक्ष्य 1979-80	छठी योजना का लक्ष्य 1982-83
(1) लौह इस्पात	लाख टन	10 4	23 0	45 1	46 0	48 9	77 3	88	118
(2) सीमेन्ट	लाख टन	27 3	80	108 2	125 0	146 7	190	208	290
(3) मशीनें	लाख रु०	30	700	2900	2500	6500	12000	13000	20000
(4) अल्यूमिनियम	हजार टन	4	18	62	120	147 9	180	310	300
(5) पेट्रोलियम पदार्थ	लाख टन	2	60	97	161	197	220	270	350
(6) नाइट्रोजन उर्वरक	हजार टन	9	—	232	450	1058	2060	3670	4100
(7) विद्युत शक्ति	लाख कि वाट	23	56	102	145	184 56	250	265	430
(8) कोयला	लाख टन	328	557	677	695	790	1032	1240	1490

Source . Compilation from Five Year Plans.

Draft Sixth Plan

इस तरह रासायनिक उद्योगों के उत्पादन में लगभग 10 गुना, मशीन औजार उत्पादन में लगभग 430 गुना, सीमेन्ट उत्पादन में 8 गुना और पेट्रोलियम पदार्थ उत्पादन में 120 गुना वृद्धि हुई है। ये देश में औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ आधार बन पाये हैं। उत्पादन उद्योग में विकास उपभोग उद्योग की अपेक्षाकृत तीव्र रहा है। तीन इस्पात कारखाने—एक आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम्, दूसरा मैसूर में हास्पेट तथा तीसरा तामिलनाडू के सेलम जिले में लगाये जाने हैं।

5. उपभोग उद्योगों में भी तेजी से विकास हुआ है—उत्पादन उपभोग उद्योगों में विकास की गति तेज करते हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं में आधार-भूत उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के साथ-साथ निजी क्षेत्र को उपभोग उद्योगों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान के लिए प्रोत्साहन दिया गया। उपभोक्ता उद्योगों में उत्पादन की वृद्धि इस प्रकार है—

प्रमुख उपभोग उद्योगों का विकास

उद्योग	इकाई	1950–51	1970–71	1973–74	1978–79 (लक्ष्य)
सूती वस्त्र	करोड़ मीटर	421 5	780	795	950
चीनी	लाख टन	11	37 6	39 5	45
रेडियो रिसीवर्स	हजार में	54	1830	3250	5000
कागज उद्योग	हजार टन	116	756	776	1050
जूट उद्योग	लाख टन	8 37	10 5	10 7	12 8
साइकिलें	हजार संख्या	99	2084	2575	3000
बिजली के पंखे	लाख	1 99	17 2	21 2	25

कपड़े के उत्पादन में दुगुनी चीनी के उत्पादन में लगभग तिगुनी, साइकिलों के उत्पादन में लगभग 19 गुनी, बिजली के पंखों में लगभग साढ़े सात गुनी वृद्धि पिछले 28 वर्षों में सन्तोषप्रद स्थिति का संकेत करती है।

भारत में पिछले 28 वर्षों में ही औद्योगिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। इससे भारत का सुदृढ औद्योगिक आधार तैयार हो गया है। यह निम्न सूचकांकों को देखने से स्पष्ट है। सामान्यत 1960=100 के आधार पर 1971 में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 186 हो गया जबकि 1975 के अन्त में सूचनांक 210 तक बढ़ जाने का अनुमान है। 1978–79 में सूचकांक 273 होने का अनुमान है।

औद्योगिक विकास सूचकांक (1960=100)

वर्ष	आधारभूत उद्योग	पूंजीगत उद्योग	मध्यवर्ती उद्योग	उपभोग उद्योग	सामान्य (General) सूचकाक
1961	112 7	118	105 8	106 6	109 2
1965	164 3	244 2	140 1	127 5	153 8
1970	220 8	234 1	158 6	154 4	180·3
1978-79 (अनुमान)	300	320	280	270	270

6 औद्योगिक ढाचे मे परिवर्तन (Change in Industrial Structure)—भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र में सम्पादित विकास कार्यक्रमो मे औद्योगिक ढाचे का आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने को मिलता है। भारत के परम्परागत उद्योगो—सूती वस्त्र, जूट, चीनी, चमडा मे विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ है जबकि उत्पादन व मध्यवर्ती उद्योगो की अभूतपूर्व प्रगति से औद्योगिक ढाचे का कायापलट सा हो गया है। जहा 1950-51 मे कुल औद्योगिक उत्पादन मे पूंजीगत उद्योगो का भाग केवल 8 प्रतिशत था, वह 1965-66 मे बढकर 22% हो गया। इसी प्रकार उपभोग उद्योगो का भाग कुल औद्योगिक उत्पादन म 68% से घटकर 34 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार भारतीय औद्योगिक ढाचे मे यह आमूल-चूल परिवर्तन औद्योगीकरण के उज्ज्वल भविष्य का सकेत देता है। औद्योगिक ढाचे मे तेजी से परिवर्तन का श्रेय द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ को जाता है। निम्न सारणी औद्योगिक ढाचे म परिवतन प्रदर्शित करती है।

भारत मे औद्योगिक ढाचे मे परिवर्तन

(Structural Changes in Indian Industries)

(कुल औद्योगिक उत्पादन मे प्रतिशत भाग)

उद्योग	1950-51	1960-61	1965-66	1978-79 (अनुमान)
उपभोग उद्योग	67 9	45 7	34	26
मध्यवर्ती उद्योग	23 3	37 3	43 0	48
पूंजीगत उद्योग	8·0	16 0	22 0	25
अन्य	0 8	0 8	0 7	1
	100 00	100 00	100·00	100

7 उद्योगो में विविधीकरण तथा संगठित उद्योगों का अपेक्षाकृत अधिक विकास (Diversification in Industries and Speedy Expansion of Large Scale Industries)—देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास कार्यक्रमो से न केवल औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि तथा ढाचे मे परिवर्तन हुआ है बल्कि उद्योगो मे विविधता आई है। जो भारत पहले आलपिन तक के लिए विदेशो पर आश्रित था अब अनेक प्रकार का इजीनियरिंग, रासायनिक, उपभोक्ता माल का उत्पादन करने लगा है। देश मे टेलीफोन, घडिया, रेडियो, टेलीविजन सेट, चीनी-सीमेंट व कागज, कपडा उद्योग की मशीने, मिश्रित प्लास्टिक, सामुद्रिक-जहाज, हवाई जहाज, विभिन्न प्रकार की दवाइया, सिलाई की मशीनें, पखे आदि कतिपय उदाहरण हैं। ये अब विदेशो को बडी मात्रा मे भेजे जाने लगे है।

औद्योगिक विकास की एक विशेषता यह रही है कि सगठित उद्योगो का विकास अधिक तीव्र गति से हुआ है। जहा 1948–49 मे कुल औद्योगिक उत्पादन का 60 प्रतिशत छोटे उद्योगो से तथा 40% बडे पैमाने के उद्योगो से प्राप्त होता था वहा 1966–67 मे लघु उद्योगो का कुल औद्योगिक उत्पादन मे भाग 30 प्रतिशत ही रह गया जबकि बडे पैमाने के उद्योगो का भाग 40% से बढकर 70 प्रतिशत हो गया। बडे पैमाने के उद्योगो मे पूंजी की गहनता औद्योगिक प्रगति का सूचक है।

8 उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र का तीव्र विस्तार—उद्योगो मे एकाधिकार एव केन्द्रीकरण को रोकने तथा समाजवादी लक्ष्य की पूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का तजी से विस्तार हुआ है। विनियोग की तालिका से स्पष्ट होता है कि जहाँ प्रथम योजना मे सार्वजनिक उद्योगो मे विनियोग 55 करोड रुपये था वह बढकर तृतीय योजना म 1520 करोड रुपये हो गया। तीन पचवर्षीय योजनाओ मे सार्वजनिक उद्योगो पर 2513 करोड रुपये विनियोग हुआ। जहा 1950–51 मे सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 5 थी और उनमे 29 करोड रुपये की पूंजी विनियोजित थी, 1965–66 मे सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 74 और विनियोजित पूंजी 2415 करोड रुपया हो गई। 1978 के मार्च म उपक्रमो की सख्या 155 तथा विनियोजित पूंजी 13500 करोड रुपया थी। भारत को सम्पूर्ण उत्पादन सम्पदा मे लोक क्षेत्र का भाग 1950–51 मे केवल 15% था वह अब बढकर 46% हो गया।

इसके अलावा जहाँ 1951 मे सगठित उद्योगो मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग 3% था वहा वह बढकर 1966 मे 30% हो गया। छठी योजना के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र का भाग 60% हो जाने का अनुमान है। सार्वजनिक क्षेत्र मे रूरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर मे लोह-इस्पात कारखाने, भोपाल मे बिजली की भारी मशीनें बनाने का कारखाना, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, चितरजन व वाराणसी के रेल इजन कारखाने, बगलोर मे जहाज बनाने का कारखाना, आदि-आदि कतिपय उदाहरण हैं। विस्तृत विवरण के लिए "सार्वजनिक उद्योग एव समस्याएँ' अध्याय पढ़िये।

सार्वजनिक क्षेत्र में यह विस्तार देश के भावी औद्योगीकरण के उद्देश्य से प्रेरित है।

9. उद्योगो मे विदेशी विनियोग एवं विदेशी सहयोग में वृद्धि (Increase in Foreign Investments and Foreign Collaboration in Industries)—मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाने तथा 1949 मे स्वर्गीय प० नेहरू द्वारा विदेशी विनियोजको को आश्वासन देने से देश मे औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूंजी विनियोग तथा विदेशी सहयोग में वृद्धि हुई है। रिजर्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार जहा 1948 मे भारत मे निजी क्षेत्र मे विदेशी विनियोग का शेष (Outstanding Foreign Investments) 264 6 करोड रुपये था वह बढकर 1960 मे 634 करोड रुपये तथा 1965 में 936 करोड रुपये हो गया। तीन पचवर्षीय योजनाओ की अवधि मे निजी क्षेत्र मे विदेशी पूँजी का विनियोग 671·2 करोड रुपये था। इस विनियोग का 177 8 करोड रुपये प्रथम योजना, 192·3 करोड रुपये द्वितीय योजना तथा 301 करोड रुपये तृतीय योजना काल मे प्राप्त हुआ। विदेशी पूँजी विनियोग की दृष्टि से ब्रिटेन का पहला स्थान है उसके बाद दूसरा स्थान अमेरिका का है।

भारत की अर्थव्यवस्था के विदोहन मे लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से अब विदेशी पूंजीपति भारतीय औद्योगिक साहसियो के साथ मिलकर उद्योग खोलते हैं। विदेशी उद्योगपति भारत सरकार के साथ भी औद्योगिक उपक्रमो मे भागीदार बने हैं। 1957 से 1968 की अवधि मे विदेशी सहयोगो की सख्या 2950 थी। Economic Times के अनुसार 194 कम्पनियो की 206 करोड रुपये की पूँजी मे से विदेशी पूँजी का भाग लगभग 49 करोड रुपये था जो उनके कुल विनियोग का लगभग 24% भाग था। इन इकाइयो मे पूँजी के अतिरिक्त प्राविधिक सहयोग भी मिल रहा है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

10 लघु एवं कुटीर उद्योगो का विकास—भारत जैसी अर्थव्यवस्था मे जहा पूँजी का अभाव है तथा अतुल जन-शक्ति बेकार है लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास का महत्व बढ जाता है। इन उद्योगो का विकास आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि के साथ मानवीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इनके विकास से अधिक लोगो को पूर्ण रोजगार, अनेक लोगो को नये रोजगार, उत्पादन में अल्पकाल मे वृद्धि विकेन्द्रीकरण तथा समाजवाद का आधार बनता है। इन बातो को ध्यान मे रखते हुए प्रथम योजना मे लघु उद्योगो के विकास के लिए 43 करोड रुपये, द्वितीय योजना मे 187 करोड रुपये, तृतीय योजना मे 241 करोड रुपये व्यय किये गये। तीन वार्षिक योजनाओ मे इन उद्योगो के विकास पर 144 करोड रुपये व्यय हुआ जबकि चतुर्थ योजना मे इनके विकास पर 293 करोड रुपये व्यय हुआ। विशिष्ट उद्योगो के लिए निगमो की स्थापना जैसे हस्तकला बोर्ड, हाथकर्घा बोर्ड, कोयर बोर्ड, लघु उद्योग विकास निगम, आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए राज्यो मे राज्य

वित्त निगम आदि के साथ प्रतिस्पर्द्धा को रोकने के लिए उत्पादन सीमा तथा भिन्नता का सिद्धान्त अपनाया गया है। 1965 मे लघु उद्योगो (लघु एव कुटीर) मे उद्योगो की कुल पूजी का केवल 11 3% भाग था पर फिर भी वे कुल औद्योगिक उत्पादन का 32 2% भाग उत्पादन कर रहे थे अब 4% भाग है। फिर भी यह सत्य है कि बडे पैमाने के उद्योगो का विकास लघु एव कुटीर उद्योगो की अपेक्षाकृत तेजी से हुआ है। पाचवी योजना म लघु एव कुटीर उद्योगो की अपेक्षाकृत तेजी से हुआ है। पाचवी योजना मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र मे 388 करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है। छठी योजना मे 1410 करोड रुपये व्यय का प्रावधान है।

11 औद्योगिक क्षेत्र मे एकाधिकार एव केन्द्रीयकरण को बढावा—1956 की औद्योगिक नीति का उद्देश्य एकाधिकारी प्रवृत्तियो का रोकना तथा नये साहसियो को प्रोत्साहन देना था पर औद्योगिक लाइसेन्स नीति के दोषपूर्ण कार्यान्वयन, प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा उद्योगपतियो की स्वार्थपरायणता से विपरीत परिस्थिति देखने मे आई। यद्यपि कुछ क्षेत्रो—दियासलाई मे WIMCO व सीमेंट मे ACC की एकाधिकारी प्रवृत्तियो का ह्रास हुआ है पर साथ ही कुछ बडे उद्योगपतियो के हाथ मे औद्योगिक इकाइयो का केन्द्रीयकरण हुआ है। डॉ० आर० के० हजारी तथा दत्त समिति ने इसके बारे म विस्तृत विवरण दिया है ' एकाधिकार आयोग (Monopoly Commission) के प्रतिवेदन से भी पता चला कि 100 वस्तुओ मे 65 वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उत्पादन कुछ ही उद्योगपतियो के हाथ मे केन्द्रित है और वे अपनी एकाधिकारात्मक प्रवृत्ति स कृत्रिम अभाव से अनुचित मुनाफाखोरी को बढाते हैं। भारत के कुछ बडे व्यावसायिक समूहो—जैसे बिडला, टाटा, डालमिया आदि का अर्थव्यवस्था पर भारी प्रभाव है। अब समाजवाद के नये नारे के रूप मे 23 दिसम्बर 1977 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की है उससे अब सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार होगा आर्थिक एकाधिकार का गढ टूटगा। नये-नये सहयोगियो को औद्योगिक इकाइया स्थापित करने मे प्रोत्साहन तथा लाइसेन्स से उदारता बरती जायेगी। लघु उद्योगो को विकास की पर्याप्त सुविधा होगी तथा बडे उद्योगपतियो को नियन्त्रण के साथ अर्थव्यवस्था के विकास म योगदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जायगा। (इस नीति का विवरण "औद्योगिक नीति" अध्याय मे देखिये)

12 अन्य प्रवृत्तियां—(1) उद्योगो को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विशिष्ट वित्तीय सस्थान स्थापित किये गये हैं—जैसे औद्योगिक वित्त निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, औद्योगिक विकास बैंक, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, राज्य वित्त निगम, औद्योगिक साख एव विनियोग निगम आदि। इसके अलावा 19 जुलाई 1969 को लघु उद्योगो को ऋण देने के लिए तथा वित्तीय सहायता पर बडे उद्योगो को दी जाने वाली वित्तीय सहायता पर नियन्त्रण रखने के लिए 14 बडे बैंको का राष्ट्रीयकरण कर लिया है।

(ii) किसी भी देश मे क्षेत्रीय विषमता सन्तुलित विकास मे बाधक है और इसलिए भारत सरकार ने औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्यो तथा क्षेत्रों के विकास की ओर भी ध्यान दिया है। लाइसेन्स देने में पिछड़े क्षेत्रो को प्राथमिकता दी जाने का उद्देश्य था पर व्यवहार मे ऐसा कम हुआ। 1969 मे सरकार ने पिछड़े क्षेत्रो मे उद्योगो के विकास के लिए साहसियो को विनियोग का 15% अनुदान सहायता (केवल 50 लाख रुपए के विनियोग तक) देने की घोषणा की। राज्य सरकारें भी रियायती दरो पर भूमि, बिजली की व्यवस्था करने मे सतत् प्रयत्नशील हैं। औद्योगिक बस्तियो का निर्माण किया गया है। करो मे भी रियायतें दी जाती हैं। यह उद्योगो के विकेन्द्रीकरण तक पिछड़े क्षेत्रो के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

(iii) औद्योगिक नीति मे सामयिक सशोधन की प्रवृत्ति हमेशा दृष्टिगोचर हुई है। 1948 के बाद 1956 की औद्योगिक नीति इसकी परिचायक है। 1966 से 1968 तक उद्योगो मे शिथिलता (Recession) को रोकने के लिए नई इकाइयो की स्थापना व पुरानी इकाइयो मे विस्तार की मुक्ति प्रदान की। अभी हाल मे ही 18 फरवरी 1970 को नई औद्योगिक लाइसेन्स नीति की घोषणा तथा 14 मार्च को उसमे कुछ ढिलाई की घोषणा तथा 25 अक्टूबर 1975 को लाइसेंसिग नीति मे परिवर्तन नीतियो की लोचता तथा व्यावहारिकता को प्रदर्शित करती है। समय-समय पर इन नीतियो के कार्यान्वयन का मूल्याकन करने तथा आवश्यक सुधार के सुझाव देने के लिए समितियाँ नियुक्त की गई हैं। इसमे डॉ॰ हजारी, दत्त समिति, प्रशासनिक सुधार आयोग तथा एकाधिकार आयोग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अब जनता सरकार ने 23 दिसम्बर 1977 को नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की है।

(iv) पिछड़े क्षेत्रो मे औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने की लाइसेन्स नीति मे इस प्रकार की व्यवस्था पर विचार हुआ कि बडे व्यावसायिक समूहो को लाइसेन्स देने मे उदारता बरती जायगी।

इसके अलावा कृषि-जन्य उद्योगो मे अब सहकारिता का बोलबाला है। भारत जो दूसरो की सहायता से उद्योग स्थापित करता है, स्वय दूसरे देशो मे औद्योगिक सहयोग कर रहा है। भारतीय उद्योगपति अफ्रीका, नेपाल, लेटिन अमेरिका मे उद्योग स्थापित कर रहे हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत म औद्योगिक विकास की गति तेज ही नही हुई वरन् भावी औद्योगीकरण का सुदृढ आधार तैयार हो गया है। उत्पादन मे विविधता आई है। औद्योगिक सरचना मे पूँजीगत व आधारभूत उद्योगो क। आधार मजबूत बना है। समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से प्रेरित होने का कारण उद्योगो मे सार्वजनिक क्षेत्र का काफी

विस्तार हुआ है। औद्योगिक केन्द्रीयकरण को रोकने के प्रयास किये हैं और तदनुसार लाइसेंस नीति का संशोधित किया गया है तथा नये उद्योगपतियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिये।

अथवा

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

(संकेत.—योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियों का उल्लेख *अध्याय के शीर्षकानुसार करना है।*)

2 भारत में योजनाकाल में औद्योगिक विकास पर एक संक्षिप्त लेख (टिप्पणी) लिखिये।)

अथवा

"पंचवर्षीय योजनाओं में भारत के औद्योगिक आधार मजबूत व संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(संकेत —दोनों प्रश्नों के उत्तर में औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक विवेचन देना है और कथन की पुष्टि करनी है।)

9

उद्योगों में राज्य अथवा सरकार की भूमिका

(Role of the State in Industry)

वे दिन हवा हुए जब उद्योग तथा व्यवसाय मे राज्य सरकार के हस्तक्षेप को अवांछित माना जाता था तथा यह धारणा थी कि राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र मे यथासम्भव न्यूनतम हस्तक्षेप ही समाज के लिए सर्वाधिक कल्याणकारी है। परिस्थितियो ने पलटा खाया, निजी हित सार्वजनिक हित पर हावी होने लगा और व्यापार चक्रो ने पूंजीवादी स्वतन्त्र व्यापार नीति के खोखलेपन को जाहिर कर दिया तो अर्थव्यवस्था मे राज्य के हस्तक्षेप के समर्थकों की तीव्र वृद्धि हुई। प्रो. खेरा के शब्दो मे "आज राज्य पहले की भाँति आर्थिक-प्रक्रिया का मूक पर्यवेक्षक मात्र नहीं वरन् वह अब सक्रिय भागीदार के रूप मे सामने आया है। उसने उद्यमी, नियन्त्रक, संरक्षक व रक्षक की भूमिका ग्रहण करली है।"[1] आज अर्थव्यवस्था मे कदम-कदम पर राज्य का हस्तक्षेप, नियन्त्रण एव नियमन है। राज्य आर्थिक क्रियाओ का सचालक, नियन्त्रक व पथ-प्रदर्शक है। इस प्रकार सरकार आजकल उद्योगो की स्थापना, सचालन तथा समापन आदि सभी कार्यों मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

उद्योग में राज्य सरकार के हस्तक्षेप के उद्देश्य अथवा कारण

(Objectives or Reasons for State Interference in Industry)

औद्योगिक क्षेत्र मे राज्य सरकार के हस्तक्षेप के अनेक उद्देश्य अथवा कारण हो सकते हैं, उनमे प्रमुख अधोलिखित हैं—

1. राष्ट्रीय सुरक्षा—राष्ट्रीय महत्व के सुरक्षा उद्योगो पर देश की अखण्डता, स्वतन्त्रता व राजनैतिक सार्वभौमिकता बहुत कुछ निर्भर करती है अत सैन्य सामग्री व सुरक्षा उद्योगो पर राज्य का प्रभावी स्वामित्व एव नियन्त्रण आवश्यक है। यही नही राजनैतिक स्वतन्त्रता को विदेशी शक्तियो से बचाने के लिए भी सुरक्षा उद्योगो पर राज्य का प्रभावी नियन्त्रण होना जरूरी है। सुरक्षा उद्योगो को निजी क्षेत्र मे छोड़ना खतरे एव जोखिम से परिपूर्ण होता है।

2. आधारभूत एवं मूलभूत उद्योगों का सुदृढ़ आधार तैयार करने के लिए

1. Govt. in Business—p. 3–S. S KHERA.

भी सरकार ऐसे उद्योगो की स्थापना, विकास, विस्तार एव नियत्रण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से लोह-इस्पात उद्योग, खनिज तेल उद्योग विद्युत उत्पादन उद्योग, रसायन उद्योग, सीमेन्ट एव महत्वपूर्ण उद्योगो का समावेश होता है।

3 अधिक जोखिम वाले उद्योगो की स्थापना—जिन उद्योगो मे जोखिम अधिक होता है उनमे निजी व्यक्ति पूंजी लगाने का साहस नही करते अत ऐसे उद्योगो की स्थापना सरकार द्वारा की जाती है। रेल, जहाजरानी वायु यातायात आदि।

4 सार्वजनिक उपयोगी उद्योग (Public Utility Services)—जिनके अन्तर्गत पानी, बिजली, यातायात और सचार सेवाओ का समावेश होता है उनमे पूंजी अधिक लगती है और उनके विकास से सार्वजनिक लाभ मिलता है। ऐसे उद्योगो की स्थापना, विकास व नियन्त्रण जनहित मे किया जाता है।

5 औद्योगिक क्षेत्र मे स्थायित्व एवं विकास—सरकारी उद्योगो मे व्याप्त तेजी-मन्दी के दुष्प्रभावो को दूर करने तथा उनके सन्तुलित विकास के उद्देश्य से राज्य हस्तक्षेप करता है क्योकि अगर उद्योगो मे मन्दी आती है तो बेकारी, भुखमरी व निर्धनता फैलती है और अगर तेजी आती है तो उपभोक्ताओ को क्षति होती है अत उद्योगो मे स्थायित्व के साथ विकास को प्रोत्साहन दिया जाता है।

6 सार्वजनिक कल्याण—समाज के अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए उद्योगो का विकास विस्तार एव प्रभावी नियन्त्रण किया जाता है क्योकि सभी आर्थिक क्रियाओ का अन्तिम उद्देश्य ही अधिकतम कल्याण करना है।

7 एकाधिकार पर नियन्त्रण—उद्योगो पर निजी एकाधिकार उपभोक्ताओ और श्रमिको के शोषण को प्रेरित करता है अत उद्योगो मे निजी व्यक्तियो के एकाधिकार को रोकने व उसका समापन करने के उद्देश्य से सरकार हस्तक्षेप करती है।

8 बडे पैमाने की उत्पत्ति की लाभ प्राप्ति व दोहरे व्यय की रोक के लिए भी कभी कभी सरकार हस्तक्षेप करती है। अनेक छोटी छोटी इकाइयो को एक ही सार्वजनिक सस्था के नियन्त्रण मे रखने से मितव्ययता को प्रोत्साहन मिलता है। कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें सार्वजनिक एकाधिकार अपव्यय को बचाता है और अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करके सामाजिक कल्याण मे वृद्धि करता है जैसे अगर विद्युत आपूर्ति, पाइप लाइन टेलीफोन लाइनें, रेल-लाइनें आदि को बिछाने का काम अनेक निजी प्रतिस्पर्द्धी फर्मों को करने दिया गया तो सामाजिक पूंजी का दोहरा अपव्यय होता है।

9 हानिप्रद उद्योगो पर नियन्त्रण—जो उद्योग सार्वजनिक दृष्टि से हानिप्रद व नैतिक पतन के कारण होते है उन पर प्रभावी नियन्त्रण जनहित में

आवश्यक हो जाता है जैसे शराब उत्पादन करने वाले उद्योगो पर नियन्त्रण करना जरूरी होता है।

10 सन्तुलित औद्योगिक विकास व आर्थिक लाभ सरकार सभी प्रकार के उद्योगो के सन्तुलित विकास के उद्देश्य से भी हस्तक्षेप करती है और कभी-कभी हस्तक्षेप का उद्देश्य इन उद्योगो मे प्राप्त होने वाले अत्यधिक लाभ का सार्वजनिक हित कार्यों मे मोडना होता है। देश म तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण करना पडता है।

11 सीमित साधनो का आदर्शतम उपयोग—देश मे उपलब्ध भौतिक एव वित्तीय साधनो के आदर्शतम उपयोग के उद्देश्य से भी सरकार को औद्योगिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप करना पडता है।

उद्योग मे राज्य की भूमिका के विभिन्न स्वरूप

सरकार उपर्युक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये औद्योगिक क्षेत्र मे अनेक प्रकार से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकारी भूमिका (i) उद्योगो को प्रत्यक्ष सहायता देने, (ii) अप्रत्यक्ष सहायता देने, (iii) सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना करने; (iv) औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ अन्त सरचना तैयार करने, (v) उद्योगो के विकास का नियत्रण व नियमन करने तथा (vi) उद्यागो पर सार्वजनिक स्वामित्व एव नियन्त्रण कायम करने आदि अनेक रूपो म हो सकता है। इनका सक्षिप्त विवरण भारतीय उद्योगो के सदर्भ मे सक्षेप म इस प्रकार है—

1 राज्य द्वारा उद्योगो को प्रत्यक्ष सहायता—देश के औद्योगीकरण मे सरकार प्रत्यक्ष योगदान करती है और वह विभिन्न रूपो मे हो सकता है जैस —

(i) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से सरक्षण (Protection)—सरकार देश के उद्योगो को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से सरक्षण प्रदान कर सकती है ताकि वे कालान्तर मे विकसित हो सकें। भारत मे इस दिशा मे सबसे पहला कदम 1921 मे विभेदात्मक संरक्षण नीति (Policy of Discriminating Protection) के अपनाये जाने मे था। उसके बाद स्वतन्त्र भारत मे उद्योगो के सरक्षण के लिये व्यापक, व्यावहारिक व उपयोगी नीति अपनाई गई जिसके अन्तर्गत (A) प्रतिरक्षा सम्बन्धी सभी उद्योगो के हर कीमत पर सरक्षण प्रदान करने, (B) भारी एव बुनियादी उद्योगो को जनहित मे यथा सम्भव सरक्षण देने तथा (C) अन्य उद्योगो को उनकी प्रयोजनीयता के आधार पर सरक्षण की व्यवस्था है।

(ii) वित्त व्यवस्था (Industrial Finance)—भारत सरकार ने देश मे उद्योगो के विकास के लिए पर्याप्त सामाजिक वित्त व्यवस्था के उद्देश्य से अनेक विशिष्ट वित्तीय सस्थाओ की स्थापना की है जो उद्योगो की वित्त व्यवस्था करते हैं। इनमे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, रिजर्व बैंक, जीवन बीमा निगम, लघु उद्योगो की वित्त व्यवस्था मे राज्य वित्त निगमो (State Finance Corporations)

औद्योगीकरण या उद्योगो मे सरकार राज्य की भूमिका के रूप

(1) प्रत्यक्ष सहायता व सुविधाएँ	अप्रत्यक्ष सहायता व सुविधाए	सार्वजनिक उद्योगो की स्थापना	औद्योगिक विकास की सुदृढ अन्तर्संरचना का निर्माण	उद्योगो पर प्रभावी नियत्रण एव नियमन	उद्योगो का राष्ट्रीयकरण
(i) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से सरक्षण (ii) वित्त व्यवस्था (iii) तकनीकी परामर्श (iv) अनुसधान सुविधा (v) औद्योगिक शिक्षा एव प्रशिक्षण (vi) सरकार की क्रय-नीति (vii) यातायात-सचार साधनो का विकास (viii) करारोपण म छूट व रियायतें	(i) श्रम अधिनियम (ii) स्थापना सगठन व सचालन सम्बन्धी अधिनियम (iii) ट्रेड मार्क (iv) विक्रय व वितरण सम्बन्धी अधिनियम (v) प्रसविदा, कम्पनी व साझेदारी अधिनियम	स्वय उद्योगो की स्थापना करना	उद्योगो के विकास के लिये आवश्यक सुविधाएँ, पूँजी, कच्चा माल, पेयजल शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिको आदि की व्यवस्था	इसके अन्तर्गत उद्योगो के सन्तुलित विकास शोषण से मुक्ति एकाधिकार पर रोक, श्रम सुविधाओ का विस्तार व उत्पादन व वितरण पर नियन्त्रण	

की स्थापना उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंक भी उद्योगो को वित्त प्रदान करते हैं। सरकार स्वय भी उद्योगो को ऋण, अनुदान व आर्थिक सहायता देकर उद्योगो को वित्त व्यवस्था करती है।

(iii) तकनीकी ज्ञान व अनुसधान—देश मे औद्योगिक विकास के लिये सरकार अनेक विशेषज्ञो की सेवाएँ उपलब्ध करती है। अनेक अनुसधान कार्यों का सचालन करती है तथा निजी अनुसधान कार्यो म सहायता व प्रोत्साहन दिया जाता है। भारत मे इस प्रकार की अनेक अनुसधान शालाएँ कार्यरत हैं।

(iv) औद्योगिक शिक्षा एव प्रशिक्षण म ही कुल श्रमिको की पूर्ति निहित है। भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक शिक्षा व प्रशिक्षण की सुविधाओ मे तीव्र गति से विकास हुआ है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् इसमे सहायक है।

(v) सरकार की क्रय नीति—सरकार अपनी क्रय नीति से उद्योगो को प्रोत्साहन देती है जैसे लघु एव कुटीर उद्योगो के सामान को सरकारी क्रय मे प्राथमिकता दी जाती है। जिन उद्योगो को प्रोत्साहन देना हो उनके उत्पादित माल का बडा भाग सरकार द्वारा उचित मूल्यो पर खरीदने की प्रक्रिया उद्योग के विकास मे सहायक है।

(vi) करारोपण मे छूट व रियायतें—जब सरकार किसी उद्योग को प्रोत्साहन देना चाहती है तो उन्ह करो से मुक्ति प्रदान करती है या रियायतें देती है। भारत मे अनेक उद्योगो की स्थापना मे लाभ कर मे छूट, विकास, रियायत आदि की व्यवस्था है। प्रारम्भिक हानि का समायोजन अगल वर्षों की आय म कर करारोपण मे छूट के ऐसे अनेक उदाहरण है। किसी पिछडे क्षेत्र मे उद्योग स्थापित करने मे न केवल करो मे रियायतें व छूट दी जाती हैं वरन् उन्हे आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

2 अप्रत्यक्ष सहायता एव सुविधाएँ—सरकार उद्योग को अप्रत्यक्ष रूप से भी अनेक सुविधाए प्रदान कर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है जिनमे श्रम सम्बन्धी अधिनियम, साझेदारी अधिनियम, कम्पनी अधिनियम, प्रसविदा, अधिनियम, वस्तु विक्रय अधिनियम, फैक्टरी अधिनियम, ट्रेड मार्क अधिनियम आदि महत्वपूर्ण हैं।

(3) स्वयं सरकार द्वारा उद्योगो की स्थापना—जब किसी क्षेत्र विशेष मे उद्योग स्थापना मे निजी साहसी आगे नही आते, या निजी साहसियो के पास औद्योगिक इकाइयो के लिये पर्याप्त पूंजी नही होती अथवा वे लम्बे समय तक जोखिम उठाने की क्षमता नही रखते तो स्वय सरकार ऐसे उद्योगो की स्थापना करती है। देश मे आधारभूत एव मूलभूत उद्योगो की स्थापना म राज्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे भारत मे लोह इस्पात उद्योग की चार इकाइयाँ दुर्गापुर भिलाई, रूरकेला व बोकारो मे स्थापित की गई है। इसी प्रकार भोपाल हेवी इलेक्ट्रोनिक कारखाना, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, चितरजन लोकोमोटिव वर्क्स

विशाखापटटम का जलयान निर्माण कारखाना, कानपुर व बंगलौर के वायुयान कारखाने, हिन्दुस्तान फर्टीलाइजर कारपोरेशन के अन्तर्गत 9 इकाइयाँ सार्वजनिक क्षेत्र म स्थापित कतिपय इकाइयां है। यही नही भारत मे अनेक प्रतिरक्षा उद्योगो की स्थापना भी सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत हुई है।

4 औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ अन्तर्संरचना (Infrastructure) का निर्माण--सरकार देश मे औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वातावरण व अन्तर्संरचना का निर्माण करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अन्तर्संरचना के अन्तर्गत क्षेत्र विशेष मे परिवहन सचार एव विद्युत शक्ति का विकास वित्त व पूजी की व्यवस्था, कच्चे माल की पूर्ति, पेयजल व आवास की व्यवस्था, कुशल व तकनीकी श्रमिको की व्यवस्था आवश्यक बाजार का सर्वेक्षण आदि कार्य सरकार करती है। राजस्थान जैसे पिछडे क्षेत्र मे सरकार ने औद्योगीकरण के लिये आवश्यक अन्तर्संरचना तैयार की है। परिणामस्वरूप अब कोटा जयपुर, भरतपुर, चित्तौड, उदयपुर, अजमेर भीलवाडा आदि उद्योगो के प्रमुख केन्द्र बन गये हैं।

5 सरकार द्वारा उद्योगो का नियन्त्रण एव नियमन (Control and Regulation)--सरकार एक सुनिश्चित उपयुक्त औद्योगिक नीति द्वारा उद्योग के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। योजनाबद्ध विकास के अन्तर्गत सार्वजनिक एव निजी उद्योगा के उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। इस नियन्त्रण म उत्पादन पूँजी विनियोग, विदशी पूँजी आयात आदि का समावेश होता है। भारत मे औद्योगिक विकास एव नियमन अधिनियम, श्रम सघ अधिनियम, फैक्टरी अधिनियम, विदेशी विनिमय नियन्त्रण अधिनियम, श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, पूजी विनियोग अधिनियम औद्योगिक लाइसेन्स नीति आदि आदि के द्वारा औद्योगिक विकास विस्तार व अनुशरण पर नियन्त्रण रखा जाता है। नियन्त्रणो का उद्देश्य देश के सीमित साधनो के प्रयोग से अधिकतम वाछित उत्पादन करना व अवांछित उत्पादन को रोकना श्रमिको को शोषण मे बचाना, तथा औद्योगिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना व अत्यधिक सामाजिक कल्याण के अनुरूप उत्पादन का नियमन करना है।

6 उद्योगो का राष्ट्रीयकरण—जब जनहित मे उद्योगो पर प्रभावी नियत्रण नही हो पाता तो सरकार अन्तिम हथियार के रूप मे निजी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर लेती है। राष्ट्रीयकरण का अभिप्राय उद्योग पर सरकार का स्वामित्व, सचालन अधिकार प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करना है। कभी कभी सरकार निजी उद्योग का राष्ट्रीयकरण इसलिए भी कर लेती है कि उद्योग या तो वाछित प्रगति नही कर पा रहा है अथवा प्रगति धीमी है अथवा तात्कालिक परिस्थितियो के उद्योग को निजी हाथों मे छोडना जनहित म नही है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे तो प्राय सभी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीयकरण की गति धीमी है।

भारत मे प्रतिरक्षा सम्बन्धी सब उद्योग राष्ट्रीयकृत (Nationalised)—हैं। इसके अतिरिक्त जनोपयोगी सेवाओ मे रेल डाक तार विद्युत उत्पादन एव वितरण, पेयजल, वायु यातायात का पूर्णत राष्ट्रीयकरण कर लिया है। मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण तेजी से प्रगति कर रहा है। जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण 1956 से हो चुका है, सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण 1972 मे किया गया है। 1969 म 14 बैको का राष्ट्रीयकरण भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण कदम है। चीनी उद्योग के राष्ट्रीयकरण की बात जोरो पर है।

उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के पक्ष व विपक्ष मे तर्क[1]

उद्योगो के राष्ट्रीयकरण द्वारा सरकार उनका स्वामित्व सचालन एव नियन्त्रण अपने हाथ मे ले लेती है। राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध मे लोगो मे काफी मत-भेद हैं किन्तु समाजवाद की बढती प्रवृत्ति पूँजीवाद के खोखलेपन ने राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढावा दिया है। जहा एक ओर राष्ट्रीयकरण के पक्ष म सन्तुलित औद्योगिक विकास, लाभ का सार्वजनिक हित म उपयोग, उपभोक्ता के हितो की सुरक्षा, श्रमिको की दशा मे सुधार, बडे पैमाने की उत्पत्ति के लाभ, औद्योगिक स्वामित्व, पूँजी निर्माण म सुविधा व साधनो के आदर्शतम उपयोग से समाजवाद व सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। निजी एकाधिकारी प्रवृत्तियो का समापन होता है वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीयकरण से सरकार का एकाधिकार होने से सरकार की मनमानी, अकुशल सचालन, उद्योगो में नौकरशाही व लाल फीताशाही से घाटा, राजनीतिज्ञो का प्रभाव निजी क्षेत्र का सकुचन व औद्योगिक अस्थिरता आती है।

अत पक्ष व विपक्ष के तर्कों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब तक उद्योग निजी क्षेत्र मे वांछित सामाजिक लक्ष्यो की पूर्ति के सहायक हैं और केवल नियन्त्रण व नियमन से ही काम चल जाता है उसका राष्ट्रीयकरण नही करना चाहिये पर प्रतिरक्षा उद्योगो का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। जनोपयोगी सेवा उद्योगो का राष्ट्रीयकरण जनहित मे आवश्यक है। जो निजी उद्योग लक्ष्यो के अनुरूप प्रगति नही कर पा रहे हैं अथवा उनका लाभ कतिपय पूँजीपतियो को लाभान्वित कर रहा है अथवा जन कल्याण की भावना कम हो, उनका राष्ट्रीयकरण वांछित है।

---

1 नोट —राष्ट्रीयकरण के पक्ष विपक्ष मे तर्कों का विस्तृत विवरण अगले अध्याय मे 'सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के पक्ष व विपक्ष के तर्क" शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा रहा है। ये दोनो लगभग एक ही हैं केवल शब्दो का भ्रम-जाल है क्योकि राष्ट्रीयकरण के बाद उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे आ जाता है।

10

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास

(Growth of Public Sector Industries)

आधुनिक युग राज्य के बढ़ते हुये हस्तक्षेप व नियन्त्रण का युग है। अर्थतन्त्र में राज्य की निरपेक्षता अब केवल एक कल्पना है। 1917 की रूसी क्रांति, 1930 की विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी और दो विश्व-युद्धों में आर्थिक संकटों के कटु अनुभवों के बाद समूचे विश्व के अर्थतन्त्र में राज्य के हस्तक्षेप में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की भांति उद्योगों में भी सरकार का हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण इतना बढ़ गया है कि वह केवल सहायता, सुविधा व मार्गदर्शन ही नहीं देती वरन् स्वयं उद्योगों की स्थापना, संचालन एवं प्रबन्ध व्यवस्था करती है। समाजवाद के लक्ष्यों से प्रेरित सभी अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक क्षेत्र का तीव्र गति से विकास हो रहा है। भारत भी उनमें से एक है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का अभिप्राय एवं अर्थ—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों से अभिप्राय उन सब उद्योगों व उपक्रमों से है जिनका स्वामित्व, संचालन एवं प्रबन्ध व्यवस्था सरकार के हाथ में होती है। सरकार शब्द का यहां व्यापक अर्थ में प्रयोग है जिसमें हम केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों व स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओं (Local Public Authorities) सभी का समावेश करते हैं। इन सार्वजनिक औद्योगिक इकाइयां उपक्रमों अथवा उद्योगों पर केन्द्र, राज्य सरकारें या स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओं का स्वामित्व होता है। ये केन्द्र राज्य सरकारों या दोनों के द्वारा संगठित एवं संचालित होते हैं। उनके लाभ-हानि की सारी जिम्मेदारी सरकार की होती है। हिन्दुस्तान स्टील लि., हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, हिन्दुस्तान जिंक स्मेल्टर खेतड़ी का तांबा शोधन कारखाना, भारत सरकार के रेल, डाक-तार विभाग आदि इसके कतिपय उदाहरण हैं। जब किसी निजी उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है तो वह भी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग की श्रेणी में आ जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों का महत्व, आवश्यकता अथवा उनके पक्ष में तर्क

आधुनिक कल्याणकारी राज्य में सार्वजनिक उद्योगों का अत्यधिक महत्व है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार में समाजवादी समाज की स्थापना, सन्तुलित

औद्योगिक विकास एव आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। शोषण से मुक्ति मिलती है, साधनो का आदर्श उपयोग करने का अवसर मिलता है तथा देश को बाह्य-आक्रमणो से सुरक्षा प्रदान करने मे योग मिलता है। इसी कारण सार्वजनिक क्षेत्र के समर्थक उसके गुणो का बखान करते है। सक्षेप मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो के पक्ष मे निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं

1 तीव्र गति से आर्थिक विकास—प्रो० एच० हेन्सन के शब्दो मे 'आर्थिक दृष्टि से उन्नति करने के इच्छुक देशो के समक्ष सार्वजनिक उपक्रमो का वृहत-स्तर पर विस्तार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं है।" क्योकि जब निजी साहसी उद्योग स्थापित करने मे तत्पर न हो तो सार्वजनिक क्षेत्र मे सरकार को पहल करना ही होगा।

2. सन्तुलित औद्योगिक विकास—निजी साहसी केवल उन उद्योगो की स्थापना मे रुचि लेते हैं जिनमे लाभ की मात्रा अधिक, विनियोग की मात्रा कम तथा अति अल्पकाल मे ही लाभ अर्जन होने लगे। परिणाम यह होता है कि केवल उपभोग उद्योगो से देश का एकाकी विकास होता है अत सरकार को देश मे पूँजीगत एव मध्यम उद्योगो की स्थापना करना आवश्यक हो जाता है ताकि देश मे सन्तुलित औद्योगिक विकास हो सके।

3 क्षेत्रीय विषमताओ का समापन—निजी साहसी प्राय विकसित औद्योगिक क्षेत्रो मे ही उत्तरोत्तर औद्योगिक इकाइया स्थापित करते हैं जिससे पिछडे क्षेत्र पिछडे ही रह जाते हैं और विकसित क्षेत्र विकसित हो जाते हैं इसमे देश मे क्षेत्रीय विषमता उत्पन्न हो जाती है। जबकि सरकार उपेक्षित क्षेत्रो मे सार्वजनिक औद्योगिक इकाइया स्थापित करके देश मे व्याप्त औद्योगिक क्षेत्रीय विषमता को समाप्त कर सकती है। सरकार की पहल से निजी साहसी भी आकर्षित हो सकते हैं।

4 आधारभूत एव जनोपयोगी उद्योगो की स्थापना—इन उद्योगो मे बडी मात्रा मे पूँजी, तकनीकी ज्ञान एव जोखिम उठाने की क्षमता की आवश्यकता होती है। इनकी गर्भावधि (Gestation period) भी काफी लम्बी होनी है अत· लोह-इस्पात, भारी रसायन, भारी इन्जीनियरिंग एव भारी विद्युत सामान पेय जल व्यवस्था, विद्युत उत्पादन आदि उद्योगो की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र मे ही सम्भव होती है उससे दोहरा लाभ मिलता है। एक ओर भावी औद्योगीकरण के लिये सुदृढ आधार तैयार हो जाता है और दूसरी ओर जनोपयोगी सेवाओ पर सरकार का एकाधिकार मितव्ययतापूर्ण, कल्याणकारी एव उपयोगी होता है।

5 श्रमिको के शोषण का समापन—सरकार का उद्देश्य शोषण से लाभ कमाना न होकर श्रमिको को उचित पारिश्रमिक देना तथा उनका कल्याण करना होता है। अत सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से श्रमिको को निजी उद्योगपतियो के शोषण से बचाया जा सकता है।

6 उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा—लाभ को अधिकतम करने के लक्ष्य से प्रेरित निजी साहसी घटिया किस्म की वस्तुओ का उत्पादन, ऊँची कीमतें, मिलावट तथा कृत्रिम अभाव द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण करने का प्रयास करते हैं जबकि सरकार का उद्देश्य अधिकतम लाभ नही वरन् सामाजिक सेवा होती है अत सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो मे उपभोक्ताओं के हितो की रक्षा अच्छी किस्म का माल, उचित कीमतें तथा उचित वितरण व्यवस्था मे निहित रहती है।

7 साधनों का सर्वोत्तम उपयोग—निजी क्षेत्र मे साधनो का सर्वोत्तम उपयोग प्राय नही हो पाता जबकि सार्वजनिक क्षेत्र मे साधनो का उपयोग पूर्व सुनियोजित योजना के अनुसार दूरदर्शिता, मितव्ययिता व विवेकपूर्ण ढग से होता है अत देश के वित्तीय एव भौतिक साधनो का सर्वोत्तम उपयोग सम्भव होता है।

8 बडे पैमाने की उत्पत्ति के लाभ—सरकार के पास विपुल पूंजी, पर्याप्त तकनीकी ज्ञान एव विशाल साधन होते हैं अत सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो की स्थापना से बडे पैमाने की उत्पत्ति की बाह्य एव आन्तरिक बचतो से लाभ प्राप्त होता है। पूंजी भी प्राप्त सस्ती दर पर सुलभ होती है, तकनीकी एव कुशल श्रमिक उपलब्ध हो जाते हैं सरकार ही बडे उद्योगो का सचालन करने मे सक्षम होती है। लागत म मितव्ययिता आती है।

9 प्रतिरक्षा एव सैन्य सुदृढता—प्रतिरक्षा उद्योगो के विकास को निजी क्षेत्र मे छोडना खतरे से खाली नही है अत देश की प्रतिरक्षा एव सैन्य सुदृढता के लिये ऐसे उद्योगो को सार्वजनिक क्षेत्र म विकसित करना राजनैतिक स्वतन्त्रता एव सार्वभौमिकता के लिये उपयुक्त रहता है।

10 धन व आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण—सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योग का विकास निजी एकाधिकारी प्रवृत्ति पर रोक है अत देश मे सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो का लाभ किसी निजी व्यक्ति का लाभ न होकर सम्पूर्ण समाज का लाभ है। इसी प्रकार सार्वजनिक स्वामित्व व प्रबन्ध भी समाज के सामूहिक स्वामित्व व प्रबन्ध का परिचायक है। अत सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से धन व आर्थिक सत्ता का सकेन्द्रण नहीं हो पाता।

11 मितव्ययिता—सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो का सचालन मितव्ययिता-पूर्ण होता है क्योकि सार्वजनिक क्षेत्र में बडे पैमाने की उत्पत्ति के लाभ तो मिलते ही हैं पर साथ साथ गलाघोट प्रतिस्पर्द्धा, विज्ञापन व्यय आदि से भी छुटकारा मिलता है। मितव्ययिता के कारण उपभोक्ता वर्ग को लाभ मिलता है।

12 समाजवाद की स्थापना—पूंजीवाद का समापन व समाजवाद की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार व विकास में निहित है। सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो के विकास से आर्थिक विषमता का समापन व्यापार चक्रों से मुक्ति, जन कल्याण, लाभ का सार्वजनिक प्रयोग एव सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

13 तीव्र औद्योगीकरण एव औद्योगिक स्थिरता—देश मे तीव्र औद्योगीकरण तथा औद्योगिक स्थायित्व के लिये भी सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो का विकास आवश्यक है क्योकि निजी उद्योगपति शीघ्र लाभ की दृष्टि से अति उत्पादन व कम उत्पादन के दोषो से प्रभावित होते हैं जिससे व्यापार चक्रो का प्रादुर्भाव होना है इसी प्रकार उनके पास पर्याप्त पू जी व तकनीकी ज्ञान भी नही होता है। आधारभूत उद्योगो की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र मे करके तीव्र औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। आवश्यक अन्तसरचना का निर्माण किया जा सकता है।

14 सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि—सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से श्रमिको व उपभोक्ताओ को शोषण से मुक्ति मिलती है। लाभ का प्रयोग सामाजिक कल्याण मे प्रयुक्त होता है विषमता का समापन होता है। सन्तुलित विकास से आर्थिक विकास और सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि होनी है।

सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो के दोष अवगुण अथवा विपक्ष मे तर्क

यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगों का विस्तार एव विकास समाजवाद एव जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है पर फिर भी यह एक अमिश्रित वरदान नही है। इसके अन्तगत भी लालफीताशाही नौकरशाही प्रबन्ध मे अकुशलता, सरकारी एकाधिकार से उत्पादको, श्रमिको व उपभोक्ताओ की स्वतन्त्रता का हनन तथा राजनैतिक प्रभाव आदि दोषो का प्रादुर्भाव होता है जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की सुखद कल्पना धूमिल हो जानी है। प्रमुख दोष अधोलिखित हैं—

1 सरकारी एकाधिकार के दोष—जब सार्वजनिक क्षेत्र म उद्योगो मे एकाधिकारी प्रवृत्ति बढती है तो सरकार एक मात्र उत्पादक, वितरक व नियोजक होने पर जनता के हितो की उपेक्षा करने मे भी नही चूकती। कहावत है कि, "शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्णतया भ्रष्ट कर देती है। (Power corrupts & Absolute Power corrupts absolutely) अगर यह कहावत चरितार्थ हो जाय तो प्रतिस्पर्द्धा के अभाव मे सरकार मनमानी कीमतें मात्रा व पक्षपात बरत कर जनहितों की उपेक्षा कर सकती है, उनका दमन कर सकती है। जैसे रूस मे श्रमिक उद्योगो में गुलाम की भाति होता है।

2 औद्योगिक अकुशलता—सावजनिक उद्योगो का सचालन एव प्रबन्ध वेतनभोगी कर्मचारियो व अधिकारियो के हाथ मे होता है जिनका उनके लाभ से कोई सरोकार नही होता है। वे लापरवाही एव बेमन से काम करत हैं। परिणामस्वरूप कार्यक्षमता म ह्रास होता है उन्हे अधिक कुशलता के लिए कोई उत्प्रेरणा नही होती। नियुक्तियां भी राजनैनिक प्रभाव, भाई भतीजावाद आदि के कारण होने से स्थिर हो जानी है।

3 मितव्ययिता का अभाव एव फिजूलखर्ची—सार्वजनिक उद्योगो मे अकुशलता पनपती है। खरीद बिक्री मे घोटाले होते हैं। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में

उद्योगो मे शिथिलता आती है। उनकी प्रगति का मापदण्ड दूसरा निजी उद्योग न होने से तुलना करना सम्भव नही होता। औपचारिकता मे समय बर्बाद होता है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक उद्योगो मे धन व साधनो का बडी मात्रा मे अपव्यय होता है। सबकी सम्पत्ति किसी की सम्पत्ति न होने की भावना से सार्वजनिक सम्पत्ति मे काफी नुकसान की भी कोई परवाह नही होती।

4 *नौकरशाही एव लालफीताशाही का बोलबाला*—सार्वजनिक उद्योगो का प्रबन्ध एव सचालन वेतनभोगी प्रशासनिक अधिकारियो के हाथ मे होता है जिन्हें प्राय औद्योगिक इकाइयो के सचालन की अनभिज्ञता व आवश्यकता का अनुभव नही होता। इसके अतिरिक्त अन्य सरकारी कार्यालयो की भाति उनमे भी नौकरशाही, भ्रष्टाचार एव लालफीताशाही पनपती है जो अन्तत उद्योग की दृष्टि से अनुपयुक्त है।

5 **औद्योगिक विकास मे अस्थिरता**—आधुनिक प्रजातांत्रिक सरकारें अस्थायी सरकारें होती हैं। *सत्ताधारियो मे परिवर्तन होता रहता है और उद्योगो की विकास* सम्बन्धी नीति भी उनकी मनमर्जी से जुडी रहती है और उनमे भी सत्ताधारियो के साथ साथ हेर फेर होता रहता है। अत अस्थिरता के वातावरण मे कोई ठोस कार्य नही हो पाता। यही नही, निर्वाचित सत्ताधारियो मे आवश्यक तकनीकी एव व्यावसायिक योग्यता का भी प्राय अभाव रहता है अत उनके द्वारा उचित नीतियो का निर्धारण होना भी प्राय कठिन होता है।

6 **उत्पादक, उपभोक्ताओ व श्रमिको की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन**—सार्वजनिक क्षत्र के विस्तार एव एकाधिकार के कारण निजी साहसी उस क्षत्र विशेष म दक्ष होने के बावजूद भी उस क्षेत्र मे प्रवेश नही कर सकता। इसी प्रकार उपभोक्ता भी अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुरूप उत्पादन के लिये बाध्य नही कर सकता और श्रमिक भी एकाधिकारी उद्योग मे सरकार के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं। सर्वत्र सरकारी क्षेत्र होने पर एक मात्र नियोजक सरकार ही रह जाती है अत वह अपनी एकाधिकारी प्रवृत्ति का दुरुपयोग कर सकती है।

7 **राजनैतिक दुष्प्रभाव**—सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो मे निर्णय पूर्णत आर्थिक दृष्टि से प्रेरित न होकर सत्ताधारी पार्टी के राजनैतिक हितो के आधार पर किय जाते हैं। परिणाम यह होता है कि साधनो का आदर्शतम उपयोग सम्भव नही हो पाता। इसके अनेक उदाहरण भारत म विद्यमान हैं और ऐसे उदाहरण चुनावो के समय प्राय बडी मात्रा मे देखने मे आते हैं।

8 **व्यक्तिगत प्रेरणा, उत्साह एव आवश्यक लोच का अभाव**—सार्वजनिक उद्योगों मे वेतनभोगी कर्मचारियो के उद्योग के विकास के प्रति न ही कोई रुचि होती है और न उत्साह एव प्रेरणा ही। परिणाम यह होता है कि सुधार व विकास की सम्भावनाए सीमित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उद्योगो म कोई

परिवर्तन करने या निर्णय लेने में अनेक अनौपचारिकताओं से गुजरना पड़ता है अतः लोच का अभाव होता है।

9. अनुसंधान एवम् अन्वेषणो का अभाव—सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग मे प्रतिस्पर्द्धा न होने तथा सरकार की एकाधिकारी प्रवृत्ति के कारण उद्योग मे अनुसंधान एवम् अन्वेषणो पर उतना ध्यान नही दिया जाता जितना पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे निजी उत्पादक देते हैं। यह कथन आंशिक रूप से पिछड़े राष्ट्रो मे सत्य है। विकसित राष्ट्रो मे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के कारण अनुसंधानों व आविष्कारो को पर्याप्त प्रधानता दी जाती है।

10. राजकीय अधिनायकवाद—सार्वजनिक क्षेत्र का उत्तरोत्तर विस्तार औद्योगिक व आर्थिक क्षेत्र मे सरकार के एकाधिकार द्वारा राज्य की तानाशाही को जन्म देता है। आज रूस मे सर्वत्र सार्वजनिक क्षेत्र के विकास से तानाशाही समाजवाद स्थापित हो गया है जिसमे श्रमिक व उपभोक्ता सब सरकार की दया पर आश्रित हैं।

फिर भी सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्योग का विकास श्रेष्ठ क्यों ?

यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास मे अनेक दोष हैं और सरकार उनकी स्वतन्त्रता का हनन कर राजकीय अधिनायकवाद स्थापित कर सकती है और फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र का विकास अगर कुशलता, विवेक एवम् दूरदर्शिता के आधार पर किया जाय तो देश मे तीव्र आर्थिक विकास, उच्च जीवनस्तर, शोषण से मुक्ति, सार्वजनिक कल्याण, सामाजिक सुदृढ़ता एव राजनैतिक स्थायित्व का मार्ग प्रशस्त होता है अत प्रतिरक्षा उद्योगो को सार्वजनिक क्षेत्र मे रखना सुरक्षा व सार्वभौमिकता के लिए अनिवार्य है। आधारभूत एव जनोपयोगी सेवा उद्योगो का सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत विकास एव विस्तार आर्थिक एव सामाजिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक है। जो उद्योग निजी क्षेत्र मे वांछित गति से विकास नही कर पाते और जो साधनो के अभाव मे पिछड़े रहते हैं उनको सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत लेना वांछित है। इसी प्रकार क्षेत्रीय असमानता के समापन, धन व आर्थिक सत्ता के सकेन्द्रण पर रोक सन्तुलित औद्योगिक विकास एव अधिकतम उत्पादन क्षमता के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार आधुनिक युग का आधार स्तम्भ व युग-धर्म बन गया है।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास
(Growth or Development of Public Sector Industries in India)

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो की परम्परा अति प्राचीन काल से रही है। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे हमे इस परम्परा के सकेत मिलते हैं उसके बाद अग्रेजी शासन काल मे भी सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो का यत्र तत्र विकास हुआ पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है। अध्ययन की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो के क्रमिक विकास का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

(A) स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास—अतीत काल से ही सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण उद्योगो की स्थापना, सचालन एव प्रबन्ध का दायित्व सम्भाला है जिसका चित्रण कौटिल्य अर्थशास्त्र व अन्य ग्रन्थो मे मिलता है। ब्रिटिश शासन काल मे 1766 मे लार्ड क्लाइव ने पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ सेवाओ को प्रथम राजकीय उपक्रम के रूप मे सगठित किया। 1834 मे आर्डिनेन्स फैक्टरी स्थापित की गई। 1914 मे रेलवे पर और 1932 मे प्रसारण सेवा (Broad Casting) पर सरकार ने स्वामित्व एव नियन्त्रण जमा लिया। इसी प्रकार प्रतिरक्षा उद्योगो पर सरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण रहा है। इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो मे रेलें रेलवे वर्कशॉप, अस्त्र-शस्त्र निर्माण कारखाने प्रसारण सेवा डाक तार वर्कशॉप तथा सिचाई व विद्युत उत्पादन इकाइया थीं जिनमे अधिकाश विभागीय सगठन के रूप मे कार्य करते थे।

(B) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो का विकास—जैसा कि पहले बताया जा चुका है स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व केवल प्रतिरक्षा उद्योगो एव जनोपयोगी सेवा उद्योगो तथा प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से ही कतिपय उद्योगो म सावजनिक स्वामित्व एव नियन्त्रण था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अखिल भारतीय काग्रस कमेटी (A I C C) द्वारा नियुक्त आर्थिक आयोजन समिति ने 1948 के अपने प्रतिवेदन मे सुरक्षा सम्बन्धी सभी उपक्रमो, प्रमुख उद्योगो तथा एकाधिकारी उद्योगो को सरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण मे लेन की सिफारिश की। देश म औद्योगिक विकास को गति प्रदान करने के लिए स्वतन्त्र भारत की प्रथम औद्योगिक नीति 1948 म घोषित की गई जिसमे प्रथम बार उद्योगों को—सार्वजनिक उद्योग एव निजी उद्योग दो अलग अलग वर्गों मे विभाजित किया। इन दोनो की कार्य सीमाओ का भी निधारण कर दिया गया।

इस औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखा उद्योगों के विकास मे राज्य को उत्तरोत्तर सक्रिय भाग लेना चाहिये। अस्त्र-शस्त्र, अणु शक्ति एव रेल यातायात जो केन्द्रीय सरकार के एकाधिकार मे रहेंगे, के अतिरिक्त छ अन्य आधारभूत उद्योगो मे नये कारखाने खोलने का सम्पूर्ण दायित्व भी सरकार के उपर रहेगा। कवल कुछ दशाओ मे यदि आवश्यक समभा गया तो राज्य राष्ट्र हित मे निजी क्षत्र का सहयोग प्राप्त कर सकेगा। अन्य समस्त उद्योग निजी क्षेत्र के लिए सुरक्षित रहेगे यद्यपि इनमे भी राज्य को सक्रिय भाग लेने का अधिकार होगा।"

भारतीय सविधान मे भी राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तो मे सार्वजनिक क्षेत्र के लिये व्यापक आधार रखा गया है जैसे राज्य अपनी नीति का इस प्रकार निर्देशन करेगा जिससे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था मे जनता के हितो के विपरीत सम्पत्ति एव उत्पादन के साधनो का केन्द्रीयकरण न हो।

1954 मे समाजवादी समाज की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया गया और उससे प्रेरित होकर सरकार ने 1956 को नई औद्योगिक नीति से सार्वजनिक उत्तरोत्तर विस्तार एव तीव्रगति से विस्तार को बढावा दिया। इस नीति सम्बन्धी प्रस्ताव मे कहा गया कि राष्ट्र मे समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य अपना लेने तथा तीव्र विकास के लिए नियोजन की आवश्यकता के कारण यह जरूरी है कि समस्त आधारभूत उद्योगो, सैनिक महत्व के उद्योगो तथा जनोपयोगी उद्योगो (Public utility Industries) को सार्वजनिक क्षेत्र मे सचालित किया जाय। अत उद्योगो के व्यापक क्षेत्र के विकास का प्रत्यक्ष दायित्व अब सरकार को अपने ऊपर लेना है।"

इस प्रकार तीव्र औद्योगीकरण, उत्पादन एव वितरण के प्रमुख साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व एव नियन्त्रण तथा सम्पत्ति व साधनो के केन्द्रीयकरण पर नियत्रण के उद्देश्य से सार्वजनिक क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इन घोषणाओ व नीति को कार्यान्वित कर उन्हे मूर्त रूप प्रदान करने के लिए पचवर्षीय योजनाओ मे सक्रिय कदम उठाये गये है जिनका सक्षिप्त विवरण योजनावार इस प्रकार है—

(i) प्रथम योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का विकास—यद्यपि प्रथम योजना कृषि प्रधान योजना थी फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र मे वृहत् उद्योगो पर 73 करोड रुपये तथा लघु उद्योगो पर 43 करोड रु० व्यय हुआ। कुल पूंजी विनियोग 55 करोड रु था। इस अवधि मे सावजनिक क्षेत्र मे सिन्दरी खाद कारखाना, चितरजन रेल इजिन कारखाना, बगलौर मे मशीन टूल्स कारखाना, पिम्परी मे पेनिसिलिन कारखाना, पेराम्बूर मे रेल डिब्बो का कारखाना, बगलौर मे हवाई जहाज कारखाना, हिन्दुस्तान शिप यार्ड, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, मध्यप्रदेश म नेपा न्यूजप्रिन्ट कारखाना आदि की स्थापना महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। यही नही, प्रथम योजना काल मे वायु यातायात व इम्पीरियल बैंक का भी राष्ट्रीयकरण किया गया था।

प्रथम योजना के प्रारम्भ मे सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या (केन्द्रीय व राज्य सरकार के विभागीय प्रतिष्ठानो को छोडकर) केवल 5 थी और उनमे 29 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी। प्रथम योजना की अवधि मे 16 नये उपक्रम स्थापित किये जाने से योजना के अन्त म उपक्रमो की कुल सख्या 21 तथा विनियोजित पूँजी 81 करोड रु थी।

(ii) द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक उद्योगो का विकास द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। समाजवादी समाज की स्थापना से प्रेरित हो 1956 की नवीन औद्योगिक नीति मे सार्वजनिक उद्योगो का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक बना दिया गया। अत आधारभूत उद्योगो के अन्तर्गत लोह-इस्पात के तीन कारखाने—रूरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर की स्थापना की गई। 1956 मे जीवन बीमा निगम का राष्ट्रीयकरण किया गया। भोपाल मे

हेवी इलेक्ट्रोनिक कारखाना, खनिज व तेल विकास के लिए ऑयल इण्डिया लि, खाद निगम, कोयला विकास निगम नेशनल इन्स्ट्रूमेन्टेशन, राची मे हेवी इन्जीनियरिंग कारपोरेशन इण्डियन रिफाइनरीज लि आदि मिलाकर 27 नये सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किये। परिणामस्वरूप योजना के अन्त तक सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 21 से बढकर 48 तथा विनियोजित पूँजी 18 करोड से बढकर 953 करोड रु हो गई। इस योजना काल मे सार्वजनिक क्षेत्र का पूँजी विनियोग 938 करोड रुपये था।

(iii) तृतीय पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक उद्योगो का विकास--इस योजना म भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वय स्फूत बनाने के लिए कृषि एव औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। तृतीय योजनावधि मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो पर कुल विनियोग 1520 करोड रु था। इस योजना काल मे चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणो के सकटो का सामना करना पडा अत अर्थव्यवस्था को सुरक्षा एव विकास की ओर उन्मुख करन क लिए आधारभूत पूँजीगत एव उत्पादक उद्योगो के तीव्र विकास की नीति अपनाई गई। अधूरे कार्यों को पूरा करने, पूर्व स्थापित उद्योगो की उत्पादन क्षमता का विस्तार करना तथा नई इकाइयाँ स्थापित करने पर जोर दिया गया। इस योजना म उडीसा मे मिग विमान बनाने का कारखाना, आवाडी म टैंक निर्माण कारखाना तथा अन्यत्र सैनिक वाहनो, स्वचालित राइफिलो आदि क कारखान स्थापित किय गये। बोयली मे तल शोधक कारखाना, निवेली, ट्राम्बे व गोरखपुर मे खाद कारखाने, बगलौर मे जापान की सहायता से घडी बनाने का कारखाना, दुर्गापुर मे माइनिंग मशीन निर्माण कारखाना, कोटा मे प्रैसीजन इन्स्ट्रूमण्ट फैक्ट्री होशगाबाद मे सिक्यूरिटी पेपर मिल आदि की स्थापना तृतीय योजना की महत्वपूर्ण उपलब्धिया हैं।

1960–61 म जहाँ सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 48 तथा उनमे विनियोजित पूँजी 953 करोड रु थी वह 1965–66 में बढकर क्रमश 74 तथा 2415 करोड रुपये हो गई।

(iv) तीन वार्षिक योजनाओ (1966–69) मे सार्वजनिक उद्योगो का विकास—इस अवधि म उद्योगो को आर्थिक शिथिलता के दौर से गुजरना पडा। फिर भी 1969 में सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 74 से बढकर 86 हो गई तथा उनमें विनियोजित पूँजी भी 2415 करोड रुपये से बढकर 3500 करोड रुपये हो गई।

(v) चतुर्थ योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का विकास (1969-74)- इस योजना में स्थायित्व क साथ विकास (Growth with Stability) की नीति अपनाकर आत्मनिर्भरता की व्यूह रचना की गई। अत सार्वजनिक क्षेत्र क व्यय का

अधिकाश भाग चालू योजनाओं को पूरा करने, उपलब्ध क्षमताओं का पूरा-पूरा उपयोग करने तथा उच्च प्राथमिकता प्राप्त करने के लिए नये कारखाने स्थापित करने का कार्यक्रम रखा गया। विभिन्न कार्यक्रमों के फलस्वरूप सार्वजनिक उपक्रमों की सख्या 122 तथा विनियोजित पूँजी की मात्रा 6237 करोड होने का अनुमान है। चतुर्थ योजना काल में ही सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा 19 जुलाई 1969 को 14 बडे बैंको का राष्ट्रीयकरण चौथी योजना की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि योजनाबद्ध विकास के पिछले 27–28 वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का तेजी से विकास हुआ है। जहाँ 1950 51 मे (केन्द्रीय व राज्य सरकारो के विभागीय उपक्रमो को छोडकर) केन्द्र सरकार के उपक्रमो की सख्या 5 थी और उनमें 29 करोड रु की पूँजी विनियोजित थी वहा 1960–61 में उपक्रमो की सख्या 48 तथा पूंजी विनियोग 953 करोड रुपये हो गया।

1968–69 के अन्त मे सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या 86 तथा कुल पूँजी विनियोग 3902 करोड रु था। चतुर्थ योजना के अन्त में सार्वजनिक उपक्रमों की सख्या 122 तथा उनमें पूँजी विनियोग 6237 करोड रुपये होने का अनुमान था जबकि 1977–78 के अन्त म सार्वजनिक उपक्रमा की सख्या 155 तथा पूँजी विनियोग 13500 करोड रुपये था। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की प्रगति का अवलोकन एक दृष्टि में निम्न तालिका से किया जा सकता है—

तालिका–1

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों का विकास
(1950–51 से 1977–78 तक)

विवरण	सावजनिक उपक्रमो की सख्या	पूँजी विनियोग (करोड रुपये)
प्रथम योजना के प्रारम्भ में (1950–51)	5	29
प्रथम योजना के अन्त में (1955–56)	21	81
द्वितीय योजना के अन्त में (1960–61)	48	953
तृतीय योजना के अन्त मे (1965–66)	74	2415
तीन वार्षिक योजनाओं के अन्त में (1966–69)	86	3902
चतुर्थ योजना के अन्त मे (1973–74)	122	6237
(1975–76)	129	8973
(1976–77)	145	11097
(1977–78)	155	13500

जहाँ 1950–51 मे सार्वजनिक क्षेत्र का कुल उत्पादन देश के सगठित

उद्योगो के कुल उत्पादन का केवल 3% भाग था वह बढकर अब 35 से 45% होने का अनुमान है।

क्षेत्रवार सार्वजनिक उपक्रमो मे पूँजी निवेश की संरचना

केन्द्रीय मरकार के अन्तर्गत कार्यशील 14५ सार्वजनिक उपक्रमो मे अप्रैल 1977 को कुल 11097 करोड रुपये का पूँजी विनियोग था जिसका लगभग 26% लोह-इस्पात उद्योग, 18 7% रसायन उद्योग तथा 11½% कोयला उद्योग मे ही विनियोजित था। प्रमुख क्षेत्रो म विनियोग निम्न तालिका से स्पष्ट है —

तालिका–2

उद्योग क्षेत्र	कुल पूँजी निवेश (करोड रु)	कुल का प्रतिशत
1 लोह इस्पात उद्योग	2864	25 8
2 रसायन उद्योग	2076	18 7
3 कोयला उद्योग	1277	11 5
4 इन्जीनियरिंग उद्योग	1019	9 3
5 खनिज एव धातु उद्योग	704	6 4
5 पेट्रोलियम उद्योग	‹90	6 2
7 सेवा-उपक्रम	1943	19 5
(i) व्यापारिक एव विपणन सेवा	528	4 8
(ii) परिवहन सेवाएँ	933	8 4
(iii) वित्तीय सेवाएँ	371	3 3
(iv) विविध	111	1 0
अन्य सहित कुल योग	11097	100

Source—Eastern Economist March 10, 1978, Page 449

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 31 मार्च 1977 तक कुल पूँजी विनियोग का लगभग 6264 करोड रु (56 5% भाग) तो केवल 10 बडे उपक्रमो मे ही लगा था। सर्वोच्च स्थान बोकारो स्टील लि० का है जिसम 1341 करोड रु (कुल का 12%) हिन्दुस्तान स्टील लि० म 129 करोड रु (10 9%) भारतीय खाद निगम मे 1110 करोड रु. (10 ₀), जहाज रानी निगम म 503 करोड रुपय (4 5%) भारतीय खाद्य निगम म 429 करोड रुपय (3 9%) तेल एव प्राकृतिक गैस आयोग मे 421 करोड रु (3 8%), केन्द्रीय कोयला क्षेत्र लि म 403 करोड रु (3 6%), हेवी इन्जीनियरिंग निगम म 307 करोड रु (2 8%), भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि म 297 करोड रु (2 7%) तथा भारत कोकिंग कोल लि म 244 करोड रु लगे थ।

सार्वजनिक उपक्रमो मे अब तक के कुल पूँजी विनियोग म 5413 करोड रु की हिस्सा पूँजी तथा 5684 करोड रुपय ऋण स प्राप्त हुए हैं जिसम केन्द्र

सरकार के 9569 करोड रु, राज्य सरकारो मे 15 करोड रु., भारतीय निजी उद्यमियो के 908 करोड रु तथा विदेशियो के 605 करोड रु लगे है।

सार्वजनिक उपक्रमो की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ 1951–77

पिछले 26 वर्षों म सार्वजनिक उपक्रमो का तजी स विकास हुआ है और उनकी भूमिका निरन्तर बढती जा रही है। जहा 1950–51 म केवल 5 सार्वजनिक उपक्रम थे और उनम 29 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी वहाँ 1 अप्रैल, 1977 को भारत मे 145 सार्वजनिक उपक्रमो मे 11097 करोड रु पूँजी लगी हुई थी। उद्योगवार पूँजी निवेश उपर्युक्त तालिका–2 मे दिया गया है। देश के 10 बडे सार्वजनिक उपक्रमो मे कुल पूँजी निवश 6264 करोड र (कुल का 56 5%) है। इन सार्वजनिक उपक्रमो द्वारा उत्पादित माल सेवाओ का विक्रय मूल्य 1972–73 मे 5299 करोड रु था वह 5 वर्ष मे बढकर 1976 77 मे 14542 करोड रु हो गया है। इसी अवधि मे रोजगार भी 9 32 लाख से बढकर 15 75 लाख हो गया है। प्रारम्भिक वर्षों मे बहुत से सावजनिक उपक्रमो मे घाटे की समस्या विकट थी किन्तु 1972-73 म शुद्ध लाभ 18 करोड र से बढकर 1976 77 म 240 करोड र हो गया है। फिर भी लगभग 26 उपक्रमो मे घाटा चल रहा है जिनमे भारतीय खाद निगम, कोयला कम्पनियो तथा इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी प्रमुख है।

जहाँ चतुर्थ योजना काल मे सार्वजनिक उपक्रमो से केन्द्र सरकार को 3120 करोड र. के साधन प्राप्त हुए वहाँ पाँचवी योजना के केवल तीन वर्षों मे ही 4100 करोड रु के साधन प्राप्त हुए। जहाँ 1974-75 मे सार्वजनिक उपक्रमो ने 1113 करोड रु की विदेशी मुद्रा अर्जित की वहा 1976-77 मे यह राशि 2248 करोड रु (लगभग दुगुनी) हो गई। पिछले पाच वर्षों म हुई प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका–3 सार्वजनिक उपक्रमो की प्रगति की झलक

विवरण	1972 73	1974-75	1976-77
(1) सार्वजनिक उपक्रमो की सख्या	110	129	145
(2) पूँजी विनियोग (करोड रु)	5571	7261	11097
(3) विक्रय मूल्य (करोड रु)	5299	11688	14542
(4) सकल लाभ (करोड रु)	245	559	1054
(5) शुद्ध लाभ (करोड रु.)	18	184	240
(6) कार्यशील पूँजी पर रिटर्न	5%	8·4%	9 7%
(7) रोजगार (लाख सख्या)	9 3	14	15 75
(8) कर्मचारियो पर व्यय (करोड रु)	582	1133	1503
(9) विदेशी मुद्रा अर्जन (करोड रु)	300	1113	2248
(10) सरकार को प्राप्त साधन	717	1130	1597

Source—Eastern Economist—March 10 1978 Pages, 447 454

इन उपक्रमों के अतिरिक्त भी केन्द्र सरकार के विभागीय प्रतिष्ठानो मे भी बडी मात्रा म पूँजी विनियोग हुआ है। एक मोटे अनुमान के अनुसार रेलों मे कुल विनियोग 5000 करोड र, डाक तार मे 500 करोड रु., बिजली व सिचाई परियोजनाओं मे 10000 करोड रु., बन्दरगाहो मे 300 करोड र तथा सडक परिवहन म 500 करोड र पूँजी विनियोग होने का अनुमान है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो के विभिन्न रूप अथवा वर्गीकरण

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का वर्गीकरण मुख्य रूप से उनके कार्य, सगठन तथा स्वामित्व के आधार पर किया जा सकता है—

(A) कार्यात्मक वर्गीकरण (Functional Classification)—कार्य की दृष्टि से सार्वजनिक उपक्रमा के प्राय निम्न 9 रूप हैं—

1 उत्पादन उपक्रम (Manufacturing Enterprises)
2 खनन उपक्रम (Mining Enterprises)
3 निर्माण उपक्रम (Construction Enterprises)
4 परिवहन उपक्रम (Transportation Enterprises)
5 व्यापार उपक्रम (Trade Enterprises)
6 बिजली एव बहु उद्देशीय परियोजनाएँ
7 बैंकिंग वित्त एव बीमा उपक्रम
8. प्रवर्तन एव विकास उपक्रम (Promotional & Developmental Enterprises)
9. सेवा एव विविध उपक्रम

भारत म अधिकाश उपक्रम प्रथम श्रेणी म आते हैं।

(B) स्वामित्व एव विनियोग के आधार पर वर्गीकरण—इस दृष्टि से सार्वजनिक उपक्रमो को मुख्य रूप स 6 वर्गों म बाटा जा सकता है—

1 केन्द्रीय सरकार के उपक्रम—जिनम केन्द्र सरकार द्वारा पूँजी विनियोग किया गया है तथा उन पर केन्द्र सरकार का ही स्वामित्व एव नियन्त्रण है।

2 केन्द्र तथा राज्य सरकार के संयुक्त उपक्रम जिनका स्वामित्व एव नियन्त्रण केन्द्र सरकार व राज्य सरकार दोनो का सयुक्त रूप से होता है।

3 केन्द्र राज्य तथा निजी क्षेत्र के सयुक्त उपक्रम म इन तीनो का सयुक्त स्वामित्व व नियन्त्रण होता है। निजी साहस का भाग नगण्य होता है।

4 केन्द्र तथा निजी क्षेत्र के स्वामित्व वाले उपक्रम जिनम केन्द्र तथा निजी साहसियों का सयुक्त स्वामित्व व नियन्त्रण होता है पर केन्द्र सरकार के पास 51% से अधिक स्वामित्व व नियन्त्रण होता है।

5 पूर्णत राज्य सरकार उपक्रम—इनम किसी एक राज्य अथवा दो या दो से अधिक राज्यो का सयुक्त स्वामित्व एव नियन्त्रण रहता है।

6 राज्य एवं निजी साहस के संयुक्त उपक्रम -इनमे राज्य तथा निजी साहसी मिलकर उपक्रम मे पूँजी लगाते हैं व दोनो का सयुक्त स्वामित्व एव नियन्त्रण रहता है।

यह उल्लेखनीय है कि इन सभी उपक्रमो मे पूँजी विनियोग की मात्रा ही स्वामित्व एव नियन्त्रण का आधार है।

(C) संगठनात्मक वर्गीकरण—(Organisational Classification)

सार्वजनिक उपक्रमो का सगठन मुख्यत चार प्रकार से होता है—

1. विभागीय उपक्रम, 2 सार्वजनिक निगम, 3 सरकारी कम्पनिया तथा नियन्त्रण बोर्ड व कमेटियाँ। इनका विवरण अलग शीर्षक के अनुसार इस प्रकार है—

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो की सगठनात्मक सरचना
(Organisational Structure of Public Sector Industries in India)

उद्योगो का सगठन उद्योग की प्रकृति एव उसके स्वामित्व के अनुसार अलग-अलग हो सकता है इसी कारण भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो की सगठन व्यवस्था मे भिन्नता स्वाभाविक है। सार्वजनिक उपक्रमो की सगठन एव प्रबन्ध की मुख्य चार पद्धतियाँ भारत मे प्रचलित हैं जैसे—

1 विभागीय उपक्रम एव प्रतिष्ठान (Departmental Undertaking)— यह सरकारी उपक्रमो के सगठन की सबसे प्राचीन एव रूढिवादी पद्धति है। यह पद्धति मुख्यत. प्रतिरक्षा, सार्वजनिक सेवा उद्योगो तथा आय की दृष्टि से लाभप्रद उद्योगो मे प्रचलित है जैसे—प्रतिरक्षा उद्योग, रेल, डाक-तार तथा औषध विभाग आदि।

इस प्रकार के विभागीय उपक्रम—नीमच, गाजीपुर तथा मन्दसौर मे अफीम कारखाने, कोलार की स्वर्ण खानें, सिल्वर रिफायनरी परियोजना कलकत्ता वित्त मन्त्रालय के अधीन हैं। ओवरसीज कम्यूनीकेशन सर्विस बम्बई सचार विभाग के अन्तर्गत है। दिल्ली दुग्ध परियोजना, कोल्ड स्टोरेज एव आइस फैक्टरी बम्बई, रिजर्व पूल ऑफ फर्टीलाइजर्स खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय के अधीन हैं। मेडीकल स्टोर्स डिपो तथा बोकारो मिनरल वाटर फैक्टरी राची स्वास्थ्य मन्त्रालय के अन्तर्गत हैं जबकि इन्टीग्रल कोच फैक्टरी, पेराम्बूर-डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, चितरजन का रेल इजन का कारखाना, भरतपुर का रेल वेगन कारखाना व अनेक वर्कशाप रेल मन्त्रालय के अधीन हैं। डाक-तार विभाग भी महत्वपूर्ण विभागीय उपक्रम है।

रेल उपक्रम मे सरकार की लगभग 5 हजार करोड रु की पूँजी विनियोजित है जबकि डाक-तार विभाग मे 500 करोड रु की पूँजी लगी हुई है। अन्य विभागीय उपक्रमो मे भी लगभग तीन हजार करोड रु की पूँजी लगी हुई है।

इस प्रकार की सगठन व्यवस्था के मुख्य लाभ—गोपनीयता, सार्वजनिक हिसाब देयता, पूर्ण राजकीय नियन्त्रण, प्रारम्भिक उद्योगो का विकास तथा राजनैतिक

स्थिरता मे सहायता के साथ-साथ आय प्राप्ति की दृष्टि से उपयोगी है। पर इन उपक्रमो मे लालफीताशाही व नौकरशाही का बोलबाला रहता है। योग्य कुशल एव तकनीकी विशेषज्ञो का अभाव रहता है, अधिकारो का सरकार के हाथ मे केन्द्रीकरण हो जाता है। अनुभवहीनता, ससदीय हस्तक्षेप राजनैतिक प्रभाव के कारण मितव्ययता का अभाव रहता है।

2 सवैधानिक सार्वजनिक निगम (Statutory Public Corporation)—इन्हे स्वशासित निगम (Autonomous Corporations) भी कहा जाता है। ये राजकीय विभाग से भिन्न ऐसी पृथक् अस्तित्व रखने वाली सस्था है जिनकी स्थापना लोक सभा या विधान सभाओ द्वारा पारित विशेष अधिनियमो द्वारा होती है और वे एक स्वतन्त्र उपक्रम के रूप मे अपनी प्रबन्ध व वित्त व्यवस्था स्वय करते है। अकेक्षण व बजट नियमो से मुक्त होते है। ये स्वशासित निगम अश पूँजी सहित या अश पूँजी रहित दोनो प्रकार के हो सकते है जैसे जीवन बीमा निगम तथा इण्डियन एयर लाइन्स कारपोरेशन अश रहित निगम है जबकि रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक, खाद्य निगम आदि केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या सयुक्त पूँजी सहित निगम हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व केवल तीन सार्वजनिक निगम—1 बोम्बे पोर्ट ट्रस्ट, 2 कलकत्ता पोर्ट कमीशन तथा 3 मद्रास पोर्ट ट्रस्ट ही थे किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक निगम व स्वशासित सस्थान स्थापित किए गये हैं जिनमें कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं। 1948 मे दामोदर वेली कारपोरेशन, औद्योगिक वित्त निगम, पुनवास वित्त निगम रिज़र्व बैंक कर्मचारी राज्य बीमा निगम, 1953 मे एयर इण्डिया इन्टरनेशनल, एयर लाइन्स कारपोरेशन, 1955 मे स्टेट बैंक, 1956 मे जीवन बीमा निगम केन्द्रीय गोदाम निगम 1959 मे तेल एव प्राकृतिक गैस प्रायोग, 1965 मे खाद्य निगम तथा इसी प्रकार के अनेक निगम कार्यरत हैं।

सार्वजनिक निगम आधुनिक सगठन व्यवस्था मे एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार है। प्रो. डर्बर्ट मोरिसन के शब्दो मे सार्वजनिक निगम की श्रेष्ठता का कारण उनमे सार्वजनिक हित की दृष्टि से राजकीय स्वामित्व, राजकीय दायित्व एव व्यावहारिक प्रबन्ध नीति का मिश्रण होता है जबकि प्रो एम फ्रेंसाड के अनुसार सार्वजनिक निगम का उपयोग आन्तरिक सगठन अनन्त सीमा तक लोच की अनुमति देता है। यह राजनैतिक प्रशासनिक वित्तीय एव प्रबन्ध सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्रदान कर विभिन्न मात्रा मे सार्वभौमिकता सम्भव बनाता है। इसमे नौकरशाही की कठोरता तथा बार बार राजनैतिक हस्तक्षेप का भय नहीं रहता।

इसके गुणो के साथ अवगुणो का भी मिश्रण है। इनसे एकाधिकारी प्रवृत्ति पनपती है, सरकारी नीति व निगम नीति मे विरोधाभास कठिनाई उत्पन्न करता है। हानि का भार जनता पर पडता है। सचालन म व्यक्तिगत हित न होने से फिजूल खर्ची व अमितव्ययिता पाई जाती है। इनम भा सरकारी विभागो की भांति लाल

फीताशाही पनपती है अकेक्षण सम्बन्धी कठिनाइयाँ हैं क्योंकि ये निगम नियमो का उल्लघन करते रहते हैं।

3 सरकारी संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रबन्ध (Govt Joint Stock Company) सार्वजनिक उपक्रमो के सगठन की व्यवस्था को सरकारी सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल भी कहा जाता है। सरकारी कम्पनी से अभिप्राय एव ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त हिस्सा पूँजी (Paid-up Share Capital) का कम से कम 51% भाग केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या सरकारो या अशत केन्द्रीय और एक या एक से अधिक राज्य सरकारो के पास हो। सरकारी कम्पनी मे वह कम्पनी भी शामिल करली जाती है जो किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी (Subsidiary Company) होती है। इस प्रकार सरकार उस उपक्रम मे प्रमुख अशधारी होती है। अश राष्ट्रपति के नाम आवटित होते हैं और सम्बन्धित मन्त्रालय अथवा राज्य के विभागीय प्रमुख अशधारी के समान सरकार के अधिकारो का प्रयोग करत है। इनके हिसाब-किताब का अकेक्षण भारत के आडीटर जनरल की सलाह से नियुक्त अकेक्षक द्वारा होता है और वार्षिक प्रतिवेदन ससद म प्रस्तुत करना होता है।

इस प्रकार की प्रबन्ध व सगठनात्मक प्रणाली के कतिपय उदाहरण (i) हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, (ii) हिन्दुस्तान केबल्स लि, (iii) हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि, (iv) नाहन फाउन्ड्री लि, (v) सिन्दरी फर्टीलाइजर एण्ड कैमिकल्स, (vi) हिन्दुस्तान मेशीन टूल्स, (vii) भारतीय टलीफोन उद्योग लि (viii) हिन्दुस्तान फोटो फिल्मस मैन्यू कम्पनी लि, (ix) हिन्दुस्तान साल्ट लिमिटड तथा (x) इण्डियन आयल कम्पनी आदि हैं।

पहली योजना के समय सरकारी कम्पनियो की सख्या 36 थी। वह सख्या 1967-68 तक बढकर 241 तथा अब इनकी सख्या 300 से अधिक है। 1955 56 मे इनमे 66 करोड की पूँजी थी वह बटकर 1967-68 मे 1559 करोड रु हो गई। अब इनमे लगभग 3000 करोड की पूँजी होने का अनुमान है।

इस प्रकार की सगठन व्यवस्था के अनेक लाभ हैं। इसमे कोई विशेष विधान की जरूरत नही पडती, लाभ अर्जन के विस्तृत क्षेत्र होत है। पर्याप्त स्वतन्त्रता एव लोच रहती है। इनका सचालन व्यावसायिक आधार पर होता है। राजकीय हस्तक्षेप कम होता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा व निजी एव सरकारी उत्साह प्ररणा एव अनुभव का लाभ मिलता है पर इसके विपरीत कुछ दोष भी हैं। सचालन म असहयोग, गोपनीयता का अभाव, सरकारी प्रतिनिधियो मे आवश्यक तकनीकी, व्यावसायिक एव प्रबन्ध सम्बन्धी ज्ञान का अभाव रहता है अत कार्य मे शिथिलता रहती है।

4. बोर्डों द्वारा प्रतिबन्धित सार्वजनिक उपक्रम (Public Enterprises managed by Boards or Committees)—जब सरकारी उपक्रम का प्रबन्ध किसी "कमेटी" या "बोड" अथवा "मण्डल" के हाथ मे होता है तो उसे बोर्ड द्वारा प्रबन्धित सार्वजनिक उपक्रम कहते हैं। यह सगठन की एक नवोदित, मिश्रित एव ढीली-ढाली

व्यवस्था है जिसमे हारे हुए सत्ताधारी पार्टी के राजनीतिज्ञो व रिटायर्ड अधिकारियो को भी आश्रय मिलता है। इन सगठनो की प्रबन्ध व्यवस्था नियन्त्रण मण्डलों (Control Boards) मे होती है जिनके स्वरूप, अस्तित्व, प्रशासकीय सरचना तथा वित्तीय व्यवस्था मे एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इन नियन्त्रण मण्डलो मे केन्द्रीय सरकार एव सम्बन्धित राज्य सरकारो व अन्य प्रतिनिधियो को नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार की सगठन व्यवस्था सिचाई व विद्युत परियोजनाओ मे अधिक प्रचलित है।

इस प्रकार के सगठन के कतिपय उदाहरण भाखरा कन्ट्रोल बोर्ड, चम्बल कन्ट्रोल बोर्ड, कोसी कन्ट्रोल बोर्ड, कोयना, हीराकुण्ड, रिहन्द, नागार्जुन सागर आदि के कन्ट्रोल बोर्ड, राष्ट्रीय सहकारी एव गोदाम बोर्ड हस्तकला बोर्ड, अखिल भारतीय हस्त करघा बोर्ड चाय बोर्ड आदि है।

सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक इकाइयाँ

1 **हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड**—100 करोड रु प्रारम्भिक पूँजी से 1953 मे स्थापित यह प्रतिष्ठान रूरकेला भिलाई तथा दुर्गापुर स्थित लोह इस्पात कारखाने का सचालन करता है। पूँजी निवेश की दृष्टि से यह सार्वजनिक उपक्रमो मे दूसरे स्थान पर है। इसमे 31 मार्च 1977 को 1209 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी। प्रथम स्थान बोकारो स्टील लि का है जिसमे 1341 करोड रु की पूँजी लगी हुई थी। इन दोनो प्रतिष्ठानो मे सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमो की कुल पूँजी का लगभग 23% भाग विनियोजित है।

2 **भारतीय खाद निगम**—यह निगम रासायनिक खाद उत्पादन करने के लिए 1961 मे स्थापित किया गया। अब इस निगम के अन्तर्गत सात खाद इकाइया क्रमश सिन्दरी (बिहार), नागल (पजाब), ट्राम्बे (महाराष्ट्र), नामरूप (आसाम), गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) कोरबा (मध्य प्रदेश) तथा दुर्गापुर (पश्चिम बगाल) है। पूँजी 1)7 मे 1110 करोड रुपये से अधिक होने का अनुमान है।

3 **हिन्दुस्तान मशीन टूल्स(H M T)**—यह 1953 मे बगलौर मे स्थापित किया गया। इसकी दो इकाइया बगलौर तीसरी इकाई (पजाब), चौथी इकाई कलमसेरी (केरल) तथा पाचवी हैदराबाद म स्थापित की गई है। इन पाँचो इकाइयो मे छोटी बडी मशीन व घडिया बनाई जाती हैं।

4 **राष्ट्रीय कोयला विकास निगम**—यह प्रतिष्ठान कम्पनी एक्ट के अन्दर 1956 म राची के कोयला खानो के विकास व्यवस्था के लिए स्थापित किया गया। इस निगम के अन्तर्गत 24 कोयला खानें हैं और 15 परियोजनाये निर्माण प्रगति पर हैं। यह कारगली सवाग गिडी तथा कठारा मे कोयला धोने की इकाइयो का सचालन करता है।

5 **राष्ट्रीय विकास खनिज निगम**—1958 में यह स्थापित निगम हैदरी

तावा योजना, किरी-बुरी लोहा परियोजना, बैलाडिला लोहा योजना, पन्ना-हीरा खान परियोजना आदि का संचालन करता है।

6 हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि —1941 मे स्थापित इस कम्पनी ने 1952 मे सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी को अपने हाथ मे ले लिया। विशाखापट्नम मे हिन्दुस्तान शिपयार्ड जहाज बनाने व उनकी मरम्मत का कार्य करता है। 1941 से 1971 की अवधि मे इस कम्पनी ने 5 लाख टन क्षमता के लगभग 50 जहाजो का निर्माण किया तथा 1971–72 मे दो जहाज बनाये। 1977 मे इसकी पूंजी 503 करोड रु थी।

7. हेवी इलेक्ट्रीकल्स लि—50 करोड रु की अधिकृत पूंजी से 1956 मे यह प्रतिष्ठान भोपाल मे स्थापित किया गया जिसके अन्तर्गत तीन इकाइयाँ क्रमशः रानीपुर (U P) रामचन्द्रपुरम (आ प्र) तथा तिरूवेराम्बूर (मद्रास) मे हैं। इसमे मार्च 1977 मे 297 करोड रु की पूंजी लगी हुई थी।

8 हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स लि—पेनिसिलीन स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा अन्य एन्टीबॉयोटिक दवाइया निर्मित करने के लिए 1954 मे पिम्परी (पूना) मे स्थापित किया गया। चतुर्थ योजना मे इस कम्पनी ने विटामिन "सी", नियोमाइसिन सल्फट तथा ऑरियोफगिन का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है।

9 हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट लि —1940 मे मैसूर सरकार द्वारा प्राइवेट फर्म के सहयोग से स्थापित किया तथा इसको 1942 मे भारत सरकार ने खरीद लिया। 1951 मे इसकी एक शाखा बैरकपुर (प बगाल) मे खोली गई जिसमे वायुयान निर्माण व मरम्मत की जाती है।

10 चितरजन लोकोमोटिव वर्क्स—रेल मन्त्रालय के अन्तर्गत चितरजन मे रेल इजन कारखाना खोला गया। इसी प्रकार वाराणसी मे डीजल इजिन तथा विद्युत रेल इजिन बनाने का कारखाना खोला गया है। इसी प्रकार पेराम्बूर मे इन्टेग्रल कोच फैक्टरी खोली गयी है।

11 इण्डियन रिफाइनरीज—59 करोड रु की अधिकृत पूंजी से 1958 मे इस कम्पनी की स्थापना हुई। इसके अन्तर्गत बरौनी तथा गोहाटी की तेल शोधशालायें तथा (गोहाटी) सिलीगुडी व बरौनी हल्दिया एव कानपुर पाइप लाइनो का निर्माण एव प्रबन्ध सम्मिलित है। 1964 म इसे इण्डियन ऑयल कम्पनी के साथ मिलाकर इसका नाम इण्डियन ऑयल कारपोरेशन कर दिया गया। बर्मा शैल को भी सरकार ने ले लिया है।

12 एयर इण्डिया एव इण्डियन एयर लाइन्स—एयर इण्डिया की स्थापना 1953 में हुई व एयर इण्डिया इन्टरनेशनल लि का कार्यभार सम्भाला। इस कम्पनी में सरकार की लगभग 80 करोड रु की पूंजी लगी हुई है और यह भारत से इगलैंड, अमेरिका, रूस, जापान, आस्ट्रेलिया, पूर्वी अफ्रीका और पश्चिमी अरब

राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय उड्डयन सेवाएँ उपलब्ध करता है जबकि इण्डियन एयर लाइन्स राष्ट्रीय हवाई यातायात में संलग्न है।

13 नेपा मिल्स—1947 में स्थापित इस मिल को 1949 में मध्य-प्रदेश सरकार ने सम्भाल लिया। 1958 में भारत सरकार ने इसके अधिकांश हिस्से खरीद लिए। देश में अखबारी कागज की 20% भाग की पूर्ति यह मिल करती है। इसकी उत्पादन क्षमता 30 हजार टन से बढ़ाकर 70 हजार टन करने का कार्य प्रगति पर है।

राजस्थान में सार्वजनिक उपक्रम

राजस्थान के कृषि प्रधान पिछड़े राज्य की प्रगति हेतु सार्वजनिक उपक्रमों का विकास किया गया है। कुछ उपक्रम केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित किये गये हैं और कुछ उपक्रम राज्य सरकार ने ही स्थापित किये हैं।

(A) केन्द्र सरकार के उपक्रमों में लगी पूँजी एवं स्वामित्व तथा प्रबन्ध सब केन्द्र सरकार के हाथ में है। इनमें हैं—

1 जावर माइन्स व देबारी में जिंक स्मेल्टर,
2 कोटा में प्रेसिजन इन्स्ट्रूमेंट्स प्लांट,
3 खेतड़ी में राष्ट्रीय खनिज विकास निगम के अन्तर्गत तांबा शोधक कारखाना,
4 साँभर की नमक खानें,
5 अजमेर में HMT का ग्राइंडिंग मशीन टूल्स कारखाना,
6 भरतपुर में रेलवे वेगन कारखाना। (रेल विभाग)।

(B) राज्य सरकार द्वारा संचालित उपक्रम—इनमें विनियोजित पूँजी सरकार की है तथा उनका स्वामित्व प्रबन्ध एवं नियन्त्रण भी राजस्थान राज्य सरकार के हाथ में है—1 गंगापुर शुगर मिल, 2. हाई टेक ग्लास फैक्टरी, धौलपुर, 3 राजस्थान लघु उद्योग निगम, 4 राजस्थान राज्य विद्युत-मण्डल, जयपुर, 5 राज्य गोदाम निगम 6 राज्य वित्त निगम जयपुर, 7 राजस्थान एग्रो इण्डस्ट्रीज लि, 8 राजस्थान स्टेट होटल्स जयपुर, 9 राजस्थान औद्योगिक एवं खनिज विकास निगम, 10 राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम प्रमुख हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों व उपक्रमों की समस्याएं व समाधान के सुझाव

यद्यपि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का तेजी से विकास एवं विस्तार हुआ पर उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ व समस्याएं हैं अतः उनकी उपलब्धियाँ आकर्षक नहीं कही जा सकती।

1. प्रबन्ध की समस्या—सार्वजनिक उपक्रमों के संचालन के कठोर नियमों का अक्षरशः पालन करने में लोच का अभाव रहता है। सैनिक कर्मचारियों में व्यावसायिक कुशलता व तकनीकी ज्ञान का अभाव होने से गलत निर्णय, अनावश्यक

विलम्ब, नौकरशाही एवं लालफीताशाही का बोलबाला होता है। परिणाम यह होता है कि फिजूलखर्ची एवं प्रशासनिक अकुशलता उद्योग की सफलता में बाधक बनती है।

इस समस्या के समाधान के लिए योग्य, तकनीकी एवं व्यावसायिक ज्ञान प्राप्त ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को ही प्रबन्ध का भार सौंपना चाहिये तथा प्रबन्ध के उत्तरदायी व्यक्तियों को सीमित स्वतन्त्रता देनी चाहिये ताकि वे अपनी तर्कशक्ति, निर्णय चातुर्य व उत्पादन प्रेरणा का यथासम्भव प्रयोग कर प्रशासन में कुशलता ला सकें। समय-समय पर प्रशिक्षण व रिफ्रेशर कोर्स भी चालू किये जाने चाहियें।

2. संगठन की समस्याएँ—सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों को संचालित करने के लिए अलग-अलग संगठन व्यवस्था है अतः कोई एक विशिष्ट एवं एकरूप नीति अपनाने में कठिनाई रहती है। सभी एक ही प्रकार की इकाइयों में प्रतिस्पर्धा का अभाव रहने से उनकी तुलनात्मक क्षमता का पता लगाना कठिन है।

अतः इस समस्या के समाधान के लिए संगठन में एकरूपता का प्रयास करना चाहिए। मनुभाई शाह के अनुसार "एक इकाई एक कम्पनी" संगठन का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है। इससे प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। प्रबन्ध में परिस्थिति व समयानुकूल परिवर्तन सम्भव होता है। 1951 में गोरवाला समिति ने सार्वजनिक उद्योगों के संचालन में मन्त्रियों व संसद सदस्यों को शामिल न करने की सिफारिश की थी। –सभी प्रकार के योग्य व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व उपयुक्त रहता है।

3 उत्पादन क्षमता के पूर्ण उपयोग की समस्या—भारत में एक ओर उत्पादन वृद्धि के लिए वैसे ही कुल क्षमता कम है और दूसरी ओर उपलब्ध क्षमता का भी पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पाता। 1965-66 में राची हैवी मशीन बिल्डिंग प्लान्ट की क्षमता का केवल 15% का प्रयोग हो पाया। 1969 में हिन्दुस्तान मशीन टूल्स की केवल 45–48% क्षमता का, हिन्दुस्तान स्टील की 60% क्षमता का, भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्स की केवल 29% क्षमता, हिन्दुस्तान एन्टीबॉयोटिक्स क्षमता के 67% भाग का ही उपयोग हो पा रहा था जबकि शेष क्षमता अप्रयुक्त थी। आपात स्थिति की घोषणा के बाद पूरी क्षमता का प्रयोग किया जा रहा है।

इस समस्या का समाधान करने के लिए पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग जरूरी है। आवश्यक कच्चे माल, कल-पुर्जों आदि के अभाव में कारखाने के बन्द होने की नौबत से बचने के लिए योजनाबद्ध ढंग से उत्पादन किया जाना चाहिए।

4. संसद, केन्द्र तथा राज्य सरकारों के हस्तक्षेप की समस्या भी बड़ी जटिल है क्योंकि व्यावसायिक निर्णयों पर राजनैतिक एवं निजी स्वार्थी हितों का प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के समाधान के लिए स्वायत्त शासन निगमों की स्थापना को प्राथमिकता देनी चाहिए तथा उनका संचालन उन योग्य, कुशल व ईमानदार व कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को सौंपना चाहिए जो राजनैतिक हितों को आवश्यक मान्यता न दें।

5. उचित मूल्यों के निर्धारण की समस्या—उन सार्वजनिक उपक्रमो मे जो जनोपयोगी सेवाओं मे सलग्न हैं अथवा जनहित की महत्वपूर्ण वस्तुओं का उत्पादन करते हैं अत उनकी एकाधिकारी प्रवृत्ति के कारण उचित मूल्य निर्धारण की समस्या आती है ताकि उपभोक्ताओं को उचित लाभ पर वस्तु मिले तथा सरकार को भी घाटा न उठाना पड़े।

इस समस्या के समाधान के लिए सार्वजनिक उपक्रमो मे लागत लेखा तथा प्रबन्ध लेखा पद्धति का यथोचित प्रयोग होना चाहिए। इससे अपव्यय का भी पता लगेगा और उचित मूल्य व उचित लाभ पर वस्तुएँ उपलब्ध की जा सकेंगी।

6. घाटे की समस्या—जब सार्वजनिक उपक्रमो मे विपुल धन-राशि विनियोजित करने के बाद लाभ की बात तो दूर रही—घाटा उठाना पडता है तो वह समस्या अति कष्टदायक है। हिन्दुस्तान स्टील लि० भारत सरकार का सबसे बडा उपक्रम है उसमे लगभग 1400 करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है पर अब तक उसमे लगभग 200 करोड रुपये का घाटा हो चुका है। 31 मार्च 1972 को सार्वजनिक क्षेत्र मे 99 उपक्रमो मे से 54 इकाइयो ने घाटा दिखाया। उनमे 17 इकाइयाँ तो ऐसी थी जो लगातार पिछले तीन वर्षों से घाटे मे चल रही थी। इन तीन वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो का घाटा 65·9 करोड रुपये था। 1971–72 के बाद स्थिति मे कुछ सुधार आया है। 1973–74 मे इनका कुल लाभ 272 करोड रुपये तथा शुद्ध लाभ 64 करोड रुपये था जबकि 1976–77 म कुल लाभ 1054 करोड रुपये तथा शुद्ध लाभ 240 करोड रुपये था।

इस समस्या का समाधान योग्य व्यक्तियो की नियुक्ति, कुशल सचालन, उपयुक्त मूल्य नीति, अप्रयुक्त क्षमता का पूरा-पूरा प्रयोग तथा अतिरिक्त श्रम शक्ति के आधिक्य को हटाने मे निहित है।

7 श्रम आधिक्य व श्रम असन्तोष की समस्या—सार्वजनिक उपक्रमो मे आवश्यकता से अधिक श्रमिक नियुक्त करने की सामान्य प्रवृत्ति है। उपयुक्त श्रम नियोजन नीति के अभाव व भाई-भतीजावाद, राजनैतिक प्रभाव आदि के कारण सार्वजनिक उपक्रमो मे आवश्यकता से अधिक श्रमिक नियुक्त कर लिये जाते हैं। पार्किन्सन नियम के अनुसार बिना काम बढे ही स्टाफ मे वृद्धि हो जाती है। ब्यूरो ऑफ पब्लिक एन्टरप्राइजेज के एक अनुमान के अनुसार 1967 मे अकेले हिन्दुस्तान स्टील लि० म 9200 अतिरिक्त श्रमिक थे जबकि सभी सार्वजनिक उद्योगो मे 15 हजार का श्रम-आधिक्य था। यही नहीं, इन श्रमिको की छटनी करने, वेतन महँगाई भत्ता, काम की सुरक्षा व दशाएँ सुधारने आदि को लेकर हडतालें तालाबन्दी करते हैं। राजनैतिक दल उस आग को और अधिक भडका कर अनुचित लाभ उठाते हैं। इन सबका सार्वजनिक उपक्रमो की उत्पादन क्षमता, लाभ की मात्रा, जिम्मेदारी का प्रभावित करता है। इण्डियन एयर लाइन्स मे चली लम्बी हडताल व तालाबन्दी इसका उदाहरण था। अभी इन उपक्रमो मे 15 75 लाख लोग रोजगार मे हैं।

इस समस्या का समाधान विवेकपूर्ण नियोजन नीति पर निर्भर है अत नियुक्तियो मे सतर्कता बरतनी चाहिये। श्रमिको व प्रबन्ध मे सौहार्दपूर्ण वातावरण, उचित मागो की पूर्ति, सुविधाओ की व्यवस्था तथा अपव्यय पर नियन्त्रण लगाना चाहिए।

8 **उत्पादक नीति का बाजार मांग के अनुसार समन्वय**—निजी उत्पादकों की भाति सार्वजनिक उपक्रमो मे भी उत्पादन की मात्रा बाजार की माग से अधिक हो जाती है। इससे "उत्पादन-आधिक्य" (Over-production) की समस्या उत्पन्न हो जाती है। 1968-69 मे जिन्क स्मेल्टर मे उत्पादन एक महीने बन्द कर दिया था।

इस समस्या का समाधान बाजार के सर्वेक्षणो के आधार पर उत्पादन नीति का निर्धारण करने म निहित है। यही नही, कम उत्पादन होने पर उत्पादन वृद्धि का प्रयास भी जरूरी है।

9 **कर्मचारियों व अधिकारियो मे व्यावसायिक कुशलता का अभाव तथा उत्तरदायित्व हीनता की समस्या**— सार्वजनिक उपक्रमो के सचालन का उत्तरदायित्व प्राय प्रशासनिक अधिकारियो के हाथ म सौंपा जाता है जिनमे व्यावसायिक व तकनीकी ज्ञान का नितान्त अभाव होता है। यही नही, उनका जल्दी-जल्दी एक उद्योग से दूसरे उद्योग म स्थानान्तरण होना रहता है। कोई जिम्मेदारी निश्चित नहीं होती। परिणामस्वरूप अपव्यय एव गैर जिम्मेदारिता का प्रसार होता है। नौकरी की सुरक्षा व व्यवसाय मे कोई उत्प्रेरणा न होने से भी उत्तरदायित्व हीनता पाई जाती है।

इस समस्या का समाधान करने के लिए ऐसे अधिकारियों व कर्मचारियो को नियुक्त करना चाहिये जो उस उद्योग विशेष की सचालन विधियो, तकनीकी मामलो की बीमारियो व समस्याओ से अवगत हो। उन पर एक निश्चित उत्तरदायित्व डाला जाना चाहिये तथा लापरवाही, अकुशलता व गैर-जिम्मेदारी के लिए कठोर दण्ड व सफलता पर पुरस्कार, पदोन्नति व उत्प्रेरणाओ की व्यवस्था होनी चाहिये। जल्दी-जल्दी हस्तान्तरण को हतोत्साहित करना चाहिए।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 सार्वजनिक उद्योग से आपका क्या अभिप्राय है? इनके विकास के पक्ष एव विपक्ष मे तर्क दीजिये। अथवा

सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योग के महत्व एव दोषो (कमियो) का उल्लेख कीजिये।

(सकेत —प्रथम भाग मे सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो का अर्थ बताकर द्वितीय भाग में उसके लाभ, गुण अथवा पक्ष मे तर्क देना है तथा तीसरे भाग मे अवगुण, दोषो या विपक्ष के तर्क देकर समीक्षा करनी है।)

2. भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र, उपक्रमो अथवा उद्योगो के विकास पर प्रकाश डालिये तथा उनकी स्थापना के उद्देश्य बताइये ।

अथवा

भारत मे सार्वजनिक उद्योगो के उद्देश्यो व उनके विकास पर प्रकाश डालिये ।

(सकेत —प्रथम भाग मे सार्वजनिक उपक्रम का अर्थ, दूसरे भाग मे उसके उद्देश्य (पक्ष मे तर्क) देकर विकास पर प्रकाश डालना है ।)

3 सार्वजनिक उपक्रमो के सगठन के विभिन्न रूपो पर प्रकाश डालिये तथा उनमे कौनसी व्यवस्था उपयुक्त है, बताइये ।

(सकेत —सार्वजनिक उपक्रमो के सगठन के चार रूपो का भारतीय सदर्भ मे विवरण देकर उनके औचित्य पर प्रकाश डालना है तथा अन्त मे निगम व्यवस्था को उपयुक्त बताना है ।)

4 सार्वजनिक उपक्रमो के विकास व समस्याओ को समझाइये तथा समस्याओ के समाधान के लिए सुझाव दीजिये ।

(सकेत —सार्वजनिक उपक्रमो के विकास का विवरण योजनावार या सक्षेप मे एक साथ देकर उनकी समस्याओ को अध्यायानुसार समझाना है तथा साथ-साथ सुझाव देना है ।)

5 भारतीय पचवर्षीय योजनाओ मे सार्वजनिक उपक्रम के विकास का आलोचनात्मक विवरण दीजिये ।

(सकेत —पचवर्षीय योजनाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगो के विकास का विवरण व तालिका देना है, फिर समस्यायें व आलोचनायें देनी हैं ।)

6 भारत म सार्वजनिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण इकाइयो का विवरण दीजिये ।

(सकेत —इसम अध्यायानुसार महत्वपूर्ण इकाइयो का विवरण देना है ।)

7 'भारत म सार्वजनिक क्षेत्र इतना सफल नही रहा जितना निजी क्षेत्र" विवेचना कीजिये । भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र की व्यावसायिक इकाइयो की प्रमुख समस्याओ का उल्लेख भी कीजिये । (Raj III Yr B Com 1979)

(सकेत —सार्वजनिक क्षेत्र की उपलब्धिया देकर विवेचना देनी है तथा फिर उसकी समस्याएँ बताना है ।)

———

11

भारत में पूँजी गहन अथवा वृहत्-उद्योग

(Capital Intensive or Large Scale Industries in India)

भारत मे आधुनिक बडे बडे पैमाने के उद्योगो का सूत्रपात 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अनुकूल परिस्थितियो के कारण हुआ । प्रथम विश्व युद्ध के कारण इन उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन मिला । 1921 मे देश मे उद्योगो को विभेदात्मक संरक्षण (Discriminating Protection) दिया जाने से उन्हें विदेशी प्रतिस्पर्धा व मन्दीकाल के सकट से राहत मिली । जैसे तैसे द्वितीय महायुद्ध के पूर्व देश मे पूंजी गहन उद्योगो का ठीक-सा आधार तैयार हो गया था । द्वितीय विश्व युद्ध के कारण उद्योगो को प्रोत्साहन मिला । 1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उद्योगो के योजनाबद्ध तीव्र विकास की आवश्यकता को देखते हुए पचवर्षीय योजनाओ मे औद्योगिक विकास का एक सुदृढ आधार तैयार किया गया और उनकी द्रुत गति से प्रगति हुई । आज भारत बडे उद्योगो की दृष्टि से विश्व के औद्योगिक देशो मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । पूंजी विनियोग, उत्पादन मात्रा एव रोजगार की दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण उद्योगो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

1. सूती वस्त्र उद्योग
(Cotton Textile Industry)

यह भारत का सबसे बडा एव प्राचीनतम उद्योग है । भारत की ढाका की मलमल व सूती वस्त्रो की लोकप्रियता व प्रसिद्धि सम्पूर्ण ससार मे थी पर ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण नीति से इन लघु स्तर पर चलने वाले सूती वस्त्र उद्योगो का पतन हुआ । प्रथम सूती मिल 1818 मे कलकत्ता मे लगायी । 1851 मे श्री डावर ने कताई व बुनाई मिल मे उत्पादन प्रारम्भ किया । 1854 के बाद बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, मद्रास व नागपुर मे इस उद्योग का तेजी से विकास हुआ । 1860 मे देश मे केवल 3 मिलें थी जबकि 1900 तक देश मे सूती मिलो की सख्या 190 थी और 40 हजार करघ एव 1 56 लाख श्रमिक कार्यरत थे । उनमे 82 मिले अकेले बम्बई मे थी ।

1905 मे स्वदेशी आन्दोलन तथा 1914 मे प्रथम विश्व युद्ध के कारण उद्योग मे चमत्कारी प्रगति हुई । अत जहा 1907 मे सूती मिलो की सख्या 224 थी वह 1914 मे बढकर 271 हो गई । प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त भारतीय सूती वस्त्र

उद्योग को जापान मे कठोर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडा। जापान से आयात 1918–19 मे 24 करोड गज था वह 1928–29 तक 59 करोड गज तक पहुच गया। 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी ने तो इसकी कमर ही तोड दी किन्तु सरक्षण ने इस उद्योग को राहत प्रदान की। 1939 मे पुन द्वितीय विश्व युद्ध ने उद्योग को सहारा दिया। जहा 1922 मे सूती कपडे का उत्पादन 173 करोड गज था वह बढकर 1945 मे 485 करोड गज हो गया तथा सूती मिलो की सख्या भी 421 हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत सूती वस्त्र उद्योग की प्रगति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय 1947 मे विभाजन के बाद 380 मिलें भारत मे रही किन्तु कपास उत्पादन करने वाले 40% महत्वपूण क्षेत्र पाकिस्तान मे चले जाने से 'कपास सकट ने उद्योग की प्रगति मे बाधा उत्पन्न की।

प्रथम योजना—योजना के प्रारम्भ मे सूती मिलो की सख्या 378 थी और उनके द्वारा 340 करोड मीटर कपडा तथा 53 4 करोड किलोग्राम सूत का उत्पादन किया जाता था। योजना काल मे उद्योग के विस्तार व उत्पादन क्षमता म वृद्धि के फलस्वरूप 1955–56 मे सूती मिलो की सख्या 412 हो गई तथा उनम 466 5 करोड मीटर कपडा तथा 74 4 करोड किलोग्राम सूत उत्पादित किया गया था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—द्वितीय योजनाकाल म वार्षिक उत्पादन 800 करोड मीटर करने का लक्ष्य था। उसमे से सगठित मिलो के लिए 465 करोड मीटर निर्धारित किया गया। 1960–61 तक सूती मिलो की सख्या 479 हो गई पर करघा की सख्या 203 हजार से घटकर 199 हजार कर दी। उत्पादन-कर मे कमी की गई व आधुनिकीकरण पर जोर दिया गया। योजना के अन्त मे मिलो द्वारा निर्मित कपड का उत्पादन 465 करोड मीटर तथा सूत का उत्पादन 80 करोड किलोग्राम था। प्रति व्यक्ति कपड की खपत 14 7 मीटर से बढकर 15 मीटर तक पहुच गई।

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना म 870 करोड मीटर कपडा उत्पादन का लक्ष्य था जिसमे सगठित मिलो के लिए 540 करोड मीटर का लक्ष्य था। 105 करोड रु आधुनिकीकरण पर व्यय किया गया। विकास के फलस्वरूप मिलो की सख्या 479 से बढकर 57? हो गई पर उत्पादन लक्ष्य से कम रहा। मिलो द्वारा 440 करोड मीटर कपडे का उत्पादन किया गया। प्रति व्यक्ति खपत 15 मीटर से बढकर 16 3 मीटर हो गई।

तीन वार्षिक योजनायें—(1966–69)—1965–66 तथा 1966–67 म अभूतपूर्व अकाल, कपास की कम उत्पत्ति व बाजार माग में शिथिलता से उद्योग को भारी धक्का लगा। 1968–69 में मिल क्षेत्र का उत्पादन 430 करोड मीटर ही रहा। 1968 में सूती वस्त्र निगम की स्थापना की गई जिसका प्रमुख कार्य नयी

मिलो की स्थापना करना, कमजोर मिलो का प्रबन्ध अपने हाथ मे लेने तथा आधुनिकीकरण के लिए ऋण देना है। अब तक इस निगम ने 28 कमजोर मिलो को अपने हाथ मे ले लिया है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना मे सूती वस्त्र का कुल उत्पादन 935 करोड मीटर करने का लक्ष्य रखा गया जिसमे मिलो द्वारा 510 करोड मीटर कपडा उत्पादन होना था। 25 नयी सूती मिलें सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित की जानी थी। योजना के अन्त मे देश मे सूती मिलो की सख्या 680 थी। सूती मिलो के विस्तार पर 134 करोड रुपये तथा पुनर्स्थापन तथा आधुनिकीकरण पर 132 5 करोड रु. व्यय होने का अनुमान है।

पाचवी पचवर्षीय योजना मे सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन लक्ष्य 950 करोड मीटर रखा गया था जिसमे 480 करोड मीटर मिल क्षेत्र मे तथा 470 करोड मीटर विकेन्द्रित क्षेत्र मे उत्पादित करना था किन्तु योजना के चार वर्षों मे ही 1977–78 मे उत्पादन 960 करोड मीटर हुआ जो लक्ष्य से भी अधिक था।

इस प्रकार पिछले 28 वर्षों के योजनाबद्ध विकास के अन्तर्गत सूती वस्त्र उद्योग की काफी प्रगति हुई है जिसकी झलक निम्न सारणी से लगती है—

पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सूती-वस्त्र उद्योग की प्रगति (1951–79)

वर्ष	मिलो की सख्या	मिलो द्वारा उत्पादित कपडा (करोड मी)	हाथ करघो तथा शक्ति करघो द्वारा उत्पादित कपडा (करोड मीटर)	कुल उत्पादन (करोड मी)	प्रति व्यक्ति वस्त्र उपलब्धता (मीटर)
1951	378	373	101	474	10 99
1956	412	486	166	652	14 7
1961	479	470	237	707	14·74
1966	575	424	310	734	13 8
1973–74	680	400	380	780	13 5
1974–75	700	430	400	830	13·3
1975–76	702	402	410	812	13 1
1977–78	702	416	410	826	13 0
1978–79	704	480	470	950	14 8

जहाँ 1950–51 मे सूत व सूती वस्त्र निर्यात मूल्य 138 4 करोड रुपये था वह घटकर 1965–66 मे 90 करोड रु ही रह गया। पर निर्यात प्रोत्साहन के कारण 1973–74 मे निर्यात 371 करोड रु का था। 1977–78 मे निर्यात केवल 457 करोड रु होने का अनुमान है।

वर्तमान स्थिति—अब भारत मे लगभग 704 सूती मिलें है और उनमे 2 5 लाख तकुये तथा 260 लाख तकुए लगे हुए है। उनमे लगभग 550 करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है तथा उनके द्वारा प्रतिवर्ष 1300 से 1400 करोड रु मूल्य का उत्पादन किया जाता है। देश की श्रम शक्ति का लगभग 20% इस उद्योग मे लगा हुआ है। इस उद्योग मे 12 लाख श्रमिक लगे हुए है तथा 30 लाख लोगो को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है। भारत सरकार को भी उत्पादन करो से प्रतिवर्ष लगभग 50 करोड रु की आय होती है।

छठी पचवर्षीय योजना मे सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन लक्ष्य 1220 करोड मीटर रखा गया है जिसमे 460 करोड मीटर मिल क्षेत्र तथा 760 करोड मीटर विकेन्द्रित क्षेत्र मे होगा। 1978–79 मे मिल क्षेत्र मे उत्पादन 480 करोड मीटर तथा विकेन्द्रित क्षेत्र मे उत्पादन 470 करोड मीटर रहा।

सूती वस्त्र उद्योगो की समस्याएँ एव समाधान के सुझाव

पिछले 10 15 वर्षों से इस उद्योग को भारी सकट का सामना करना पड रहा है यहाँ तक कि लगभग 100 मिल बन्द हो चुकी है। इनमे से अधिकाँश बीमार मिल दक्षिण भारत म है। उनकी वित्तीय स्थिति शोचनीय है। कच्चे माल का अभाव विदेशो मे प्रतिस्पर्द्धा तथा अभिनवीकरण की समस्या है। मुख्य समस्यायें व उनके समाधान के सुझाव इस प्रकार है—

1 अभिनवीकरण की समस्या (Problem of Modernisation)—भारत की अधिकाश मिलो मे मशीन 100 वर्ष पुरानी हैं। लगभग 25% मशीनें बिल्कुल बेकार सी हो गई है जबकि आधुनिक स्वचालित मशीनो का अभाव है। इन पुरानी मशीनो के अभिनवीकरण पर 1000 हजार करोड रुपयो की आवश्यकता है। मजदूरी भी अभिनवीकरण के मार्ग म अडचन पैदा करती है। पिछले वर्षों मे केवल 20% मशीनो का ही अभिनवीकरण किया जा सका है। शेष 80% अभी भी पुरानी ही है।

अभिनवीकरण के लिए प्रयासो को मूर्त रूप देने के लिए वित्तीय सस्थाओ द्वारा पर्याप्त ऋण व सरकार द्वारा अनुदानो की व्यवस्था करनी चाहिए। श्रमिकों के विरोध को कम करने के लिए अभिनवीकरण का कार्य इस प्रकार कार्यान्वित किया जाना चाहिए कि बगैर श्रमिकों की छटनी किये ही काम हो जाय।

2 कच्चे माल की कमी—1947 के विभाजन के बाद से ही भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को कच्चे माल की कमी की समस्या का सामना करना पड रहा है। यद्यपि लम्बी रेशे की रूई के उत्पादन में वृद्धि हुई है फिर भी विदेशो के आयात पर

निर्भर करना पडता है। गत दो वर्षों मे भी कच्चे माल की विकट समस्या उत्पन्न हुई है।

बढिया किस्म के कपडे का उत्पादन करने के लिये लम्बे रेशे की रूई के उत्पादन व बोये गये क्षेत्र मे वृद्धि करना आवश्यक है।

3 विदेशी प्रतिस्पर्द्धा तथा निर्यात—भारत को विदेशी बाजारो मे कपडा निर्यात करने मे जापान, चीन, हागकाग तथा पाकिस्तान की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडता है। चूंकि भारत मे कीमतें ऊँची हैं, उत्पादन लागत अधिक है तथा उत्पादन मशीनें पुरानी हैं। भारत का निर्यात जो 1950 51 मे 138 4 करोड रु मूल्य का था वह 1965-66 मे घटकर 90 करोड रु ही रह गया। अब निर्यात प्रयत्नो के फलस्वरूप निर्यात 1975-76 मे 406 7 करोड रु हो गया है। इसमे और कमी आने की सम्भावना है। इस समस्या का समाधान करने के लिए उत्पादन लागत मे कमी, कच्चे माल की पूर्ति मे वृद्धि मिलो मे अभिनवीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौते के द्वारा निर्यात वृद्धि करने की आवश्यकता है। निर्यातक मिलो को प्रोत्साहन देना चाहिये तथा उन्हें करो से मुक्ति या रियायतें आदि का प्रलोभन देना होगा।

4 सगठित मिलो तथा विकेन्द्रित हाथ करघों व शक्ति चालित करघो के उत्पादन मे सामन्जस्य की समस्या रोजगार अभिवृद्धि के उद्देश्य से प्रेरित हो। सरकार द्वारा मिल क्षेत्र पर मनमाने ढग से नियन्त्रण लगाये जाते हैं। उत्पादन को सीमित किया जाता है। इस प्रकार राष्ट्रीय उद्योग के दो अलग अलग भागो मे पक्षपात बरता जाता है।

सरकार को सगठित सूती मिलो के सम्बन्ध मे निश्चित नीति अपनानी चाहिये और सगठित व विकेन्द्रित क्षेत्रो मे परस्पर उचित समन्वय बैठाना चाहिये।

5 कृत्रिम रेशा वस्त्र-उद्योग से प्रतिस्पर्द्धा—आजकल टेरेलिन, नॉयलान आदि कृत्रिम रेशो से उत्पादन कपडो का प्रचलन बढ रहा है। इनका प्रयोग 12 वर्षों मे लगभग तिगुना हो गया है। विदेशी बाजारो मे भी कृत्रिम रेशे के कपडो की रुचि बढ जाने से सूती वस्त्रो की माग घट रही है। क्लीफोड हार्डिन के शब्दो मे "कपास का रेशा जिसका मुकाबला कोई अन्य प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रेशा नहीं कर सकता, अनुसधान, प्रवर्तन और बिक्री की दृष्टि से कृत्रिम रेशों द्वारा पछाड दिया गया है।"

इस समस्या का समाधान करने के लिये सूती-वस्त्र की उत्पादन लागत को कम करने, अनुसधान से उसकी किस्म मे सुधार करने का प्रयास करना चाहिये।

6 अलाभकारी एव अकुशल मिलो की समस्या—अनेक मिलो मे मशीनें इतनी पुरानी एव घिसी हुई हैं कि उन्हे नए यन्त्रो से प्रतिस्थापित किये बिना कुशल उत्पादन व्यवस्था सम्भव नहीं होती। उनके पास वित्त साधनो का अभाव है। इन रुग्ण सूती मिलो की लगभग आधी दक्षिणी भारत मे हैं। राष्ट्रीय कपडा निगम के पास 103 बीमार मिलें हैं जिनमे 1 6 लाख श्रमिक कार्यरत हैं।

7 बढती हुई लागतों की समस्या—पिछले दशक से सभी वस्तुओ की कीमतें बढती ही जा रही है। मजदूरी दरो मे 80 से 120% वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप सूती वस्त्रो की कीमते लगभग दुगुनी हो गई है। बढती लागतो के कारण निर्यात मे वृद्धि नही हो पाती। जनता कपडे के उत्पादन की अनिवार्यता के कारण अनेक मिलों को प्रतिवर्ष लगभग 100 करोड रु का घाटा उठाना पडता है।

इस समस्या का समाधान उचित कीमत नीति अपनाने, अपव्यय को रोकने तथा स्वचालित मशीनो के प्रयोग मे निहित है।

8. सरकार की दोषपूर्ण नीति व क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना—सरकार सूती मिलो के कपडे की उत्पत्ति को सीमित करने की नीति अपनाती रही है परिणामस्वरूप सूती मिलो की पूरी-पूरी क्षमता का उपयोग नही हो पा रहा है। मोट रूप मे कुल क्षमता के 70% का ही प्रयोग होना है। इस समस्या का समाधान करने के लिये सरकार ने अब पूरी पूरी उत्पादन क्षमता के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया है। ऊचे करो के स्थान पर करो मे छूट कर दी गई।

9 श्रम उत्पादकता का नीचा स्तर—भारत मे श्रमिको की उत्पादकता विश्व के अन्य देशो की तुलना मे बहुत कम है। जहां अमेरिका मे 2 श्रमिक लगभग एक हजार तकुओ की देखभाल करते हैं जबकि भारत मे एक हजार तकुओ की देखभाल करने के लिये 10 श्रमिको की आवश्यकता होती है।

इस समस्या का समाधान श्रमिको की नियुक्ति मे सतर्कता, उचित प्रशिक्षण, आधुनिकतम मशीनो का प्रयोग आदि के द्वारा सम्भव है।

जनता सरकार की नई कपडा नीति

भारत सरकार ने सूती कपडो सम्बन्धी नीति की घोषणा 7 अगस्त 1978 को कर दी जिसके अनुसार सूती मिलो के लिय कन्ट्रोल का कपडा बनाने की अनिवार्यता 8 दिसम्बर 1978 से समाप्त करने का फैसला किया है। कन्ट्रोल के कपडे का उत्पादन धीरे धीरे मिलो से हटाकर हाथ-करघा उद्योग को सौंपा जायगा। कमजोर वग को सस्ता कपडा मुहैय्या करने का काम तथा हाथ-करघा उद्योग का विकास दोना एक साथ करने के उद्देश्य से हाथ-करघा उद्योग मे बने कपडे पर सरकार सबसिडी भी समय-समय पर निर्धारित करेगी। अब मिलो म कन्ट्रोल का कपडा 40 करोड वग मीटर ही तैयार किया जायगा जो राष्ट्रीय कपडा निगम के निर्धारित कोटा व शष निजी मिलो का दायित्व होगा। नई जाति के अनुसार न तो पावर-लूम क्षमता मे वृद्धि की जायगी और न मिलो को सूत उत्पादन की क्षमता बढाने की इजाजत दी जायगी। पावर-लूम की अनाधिकृत इकाइयो को भारी जुर्माने के साथ नियमित कर पजीबद्ध किया जायगा।

सरकार की यह कपडा नीति हाथ-करघा एव खादी जैसे विकेन्द्रित क्षेत्र के विकास एव गरीब वर्ग को सस्ता कपडा मुहैय्या करने के साथ-साथ रोजगार अवसरों में वृद्धि की नीति है।

2 लोहा-इस्पात उद्योग
(Iron & Steel Industry)

यह उद्योग आधुनिक युग मे औद्योगीकरण, कृषि विकास, परिवहन विकास सभी का प्रमुख आधार है क्योंकि लोहा एव इस्पात मशीनो, कारखानो, औजारो, पुलो, भवनों सभी मे काम आता है। भारत मे इस उद्योग के अति प्राचीन काल के अवशेष दिल्ली मे "अशोक का स्तम्भ' अब भी विश्व वैज्ञानिको के लिये आश्चर्य का विषय बना हुआ है कि जो स्तम्भ ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी मे निर्मित किया गया उस पर आज तक जग नही लगा है। आधुनिक ढग का कारखाना, सर्व प्रथम 1830 मे मद्रास मे श्री हीथ (Heath) द्वारा स्थापित किया गया पर असफल रहा। उसके बाद 1857 मे आसनसोल बगाल आयरन कम्पनी, 1875 मे बगाल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी बनाई गई पर ये कम्पनियाँ इस्पात बनाने मे सफल न हो सकी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लोह-इस्पात उद्योग का विकास—भारतीय लोह-इस्पात उद्योगो मे प्रथम महत्वपूर्ण एव चिरस्मरणीय प्रयास भारतीय उद्योगपति श्री जमशेदजी नशरवानी टाटा द्वारा 1907 मे सिंहभूमि जिले मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना का था जिसन 1911 मे कच्चे लोहे तथा 1913 मे इस्पात का उत्पादन प्रारम्भ किया। प्रथम विश्व-युद्ध म इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन व सफलता मिली अत 1918 मे हीरापुर इडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी तथा 1923 मे मैसूर राज्य सरकार ने भद्रावती मे मैसूर आयरन वर्क्स की स्थापना की। 1915 मे लोहे का उत्पादन 1 62 लाख टन था वह बढकर 1916-17 में 2·32 लाख टन हो गया व इस्पात का उत्पादन 0 99 लाख टन था।

1921–22 मे लोह-इस्पात की कीमते गिरने से उद्योग मे सरक्षण की माग की जाने लगी। 1924 मे उद्योग को 3 साल के लिये सरक्षण दिया गया तथा इस अवधि मे 2·4 करोड रु. की आर्थिक सहायता भी प्रदान की गई। 1930 की विश्वव्यापी मन्दी मे उद्योगो को भारी सकट का सामना करना पडा जबकि 1927 मे ही सरक्षण की अवधि 7 साल और बढा दी गई थी वह 1947 तक चलता रहा। 1939 मे इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का विस्तार किया गया तथा आसनसोल मे स्टील कारपोरेशन ऑफ बगाल की स्थापना की गई। उस समय कच्चे लोहे का उत्पादन 18 लाख टन तथा इस्पात का उत्पादन 8 लाख टन था।

द्वितीय विश्व-युद्ध मे लोह-इस्पात की माग मे अचानक वृद्धि हो जाने से उसकी कीमतें बढी और उद्योग ने आश्चर्यजनक प्रगति की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लोह-इस्पात उद्योग का विकास

युद्धोत्तर काल में उद्योग की माग कम हो जाने, मशीनो के आधुनिकीकरण की आवश्यकता, पूंजी के अभाव व श्रम समस्या आदि ने उद्योग को पुन सकट में डाल दिया। 1947 में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो देश मे लोह-इस्पात का उत्पादन

9 लाख टन था और लोह-इस्पात उद्योग के तीन बड़े कारखाने—(1) टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (Tisco) (2) इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (Iisco) तथा (3) मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (Misco) कार्यरत थे। 1948 की प्रथम औद्योगिक नीति में इस उद्योग के भावी विकास का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। 1950 तक भी इस्पात का उत्पादन 10 लाख टन से कम ही था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना—इस योजना में सभी चालू कारखानों के आधुनिकीकरण व विस्तार की योजनाओं को कार्यान्वित करने पर 63 करोड़ रु. व्यय हुआ जिसमें टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी पर 34 करोड़ रु., इण्डियन आयरन पर 15 करोड़ रु. तथा मैसूर स्टील कम्पनी पर 14 करोड़ रु. व्यय किया गया। परिणामस्वरूप जहाँ 1950-51 में कच्चे लोहे का उत्पादन 14 लाख टन तथा इस्पात का उत्पादन 10 लाख टन था वह बढ़कर 1955–56 में क्रमश 19·15 लाख टन तथा 12 86 लाख टन हो गया। 1953 में हिन्दुस्तान स्टील कम्पनी लि की स्थापना की गई जिसने दुर्गापुर भिलाई व रूरकेला में सार्वजनिक क्षेत्र के लोह-इस्पात कारखाने स्थापित करने के लिये विदेशी कम्पनियों से समझौते किये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना में औद्योगीकरण एवं आधारभूत उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। 1956 की नीति में भी लोह-इस्पात उद्योग के विकास के सरकारी दायित्व को पुन दोहराया गया। अत लोह-इस्पात उद्योग की नई इकाइयाँ स्थापित करने एवं पुरानी इकाइयों का विस्तार व आधुनिकीकरण पर जोर दिया गया। योजना काल में 431 करोड़ रु. व्यय से सार्वजनिक क्षेत्र में तीन बड़े लोह-इस्पात कारखाने दुर्गापुर (प बंगाल), भिलाई (मध्य प्रदेश) तथा रूरकेला (उड़ीसा) में क्रमश ब्रिटेन, रूस तथा जर्मनी की सहायता से स्थापित किये जिनमें प्रत्येक की उत्पादन क्षमता 10 लाख टन थी पर 1960–61 तक ये तीनों इकाइयाँ केवल 6 लाख टन इस्पात का ही उत्पादन कर रही थीं। तीनों पुराने कारखानों के विस्तार एवं आधुनिकीकरण की योजनाओं को कार्यान्वित कर उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि की गई। योजना के अन्त में कच्चे लोहे का उत्पादन 19 लाख टन से बढ़ाकर 35 लाख टन तथा इस्पात का उत्पादन 12 86 लाख टन से बढ़ाकर 23 लाख टन कर दिया जबकि उत्पादन कुल क्षमता 50 लाख टन इस्पात तैयार करने की थी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—लोहा इस्पात की बढ़ती माँग को देखते हुए इस योजना में इस्पात पिण्डों का उत्पादन 92 लाख टन तथा इस्पात का उत्पादन 68 लाख टन करने का लक्ष्य था। तीनों सरकारी कारखानों की क्षमता दुगनी करने का लक्ष्य रखा गया। सार्वजनिक क्षेत्र के एक नया लोह इस्पात कारखाना बोकारो में स्थापित करने का प्रावधान था। योजनाकाल में इस उद्योग के विकास पर 425 करोड़ रु. व्यय करने की व्यवस्था थी। 1962 में चीनी आक्रमण तथा 1965 में

पाकिस्तानी आक्रमणो के कारण उद्योग के विकास को धक्का पहुचा । योजना के अन्त तक इस्पात पिण्डो का उत्पादन 65 लाख टन तथा तैयार इस्पात का उत्पादन 45 लाख टन ही हो पाया । बोकारो कारखाने की स्थापना भी सम्भव न हो सकी ।

तीन वार्षिक योजनाएँ—(1966–69)—इस अवधि मे उद्योग के विकास की कोई नयी योजना चालू न कर केवल चालू कार्यों को पूरा करने का लक्ष्य रखा । बोकारो कारखाने पर निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया । 1966 67 तथा 1967-68 मे विभिन्न कारखानो की उत्पादन क्षमता को बढाया गया फिर भी उत्पादन प्राय स्थिर रहा । 1968-69 मे इस्पात पिण्डो का उत्पादन 65- लाख टन तथा तैयार इस्पात का उत्पादन 46 लाख टन रहा ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना मे लोह इस्पात की बढती माग को देखते हुए इस्पात पिण्डो का उत्पादन 117 लाख टन तथा तैयार इस्पात का उत्पादन 18 लाख टन करने का लक्ष्य था । बोकारो व भिलाई इस्पात कारखानो की क्षमता क्रमश 1 करोड टन तथा 70 लाख टन तक बढाने का प्रावधान था । तीन नए कारखाने स्थापित करने की योजना को मूर्तरूप देने के लिए तामिलनाडु के सलेम, मैसूर के हास्पेट तथा आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम के तीनो कारखाना का निर्माण काय 1971 मे हाथ मे लिया गया । सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र मे सभी मे उत्पादन वृद्धि हुई पर वास्तविक उत्पादन लक्ष्यो से काफी नीचा रहा । तैयार इस्पात का उत्पादन योजना के अन्त मे 46 लाख टन ही था जबकि लक्ष्य 81 लाख टन का था । कई इकाइयाँ अपनी कुल उत्पादन क्षमता का 50 से 60% भाग का ही उपयोग कर पा रही थी । 1972 मे इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को भारत सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया ।

पाँचवीं योजना—इस योजना के वर्ष 1978–79 तक देश मे इस्पात की आन्तरिक माग 100 लाख टन होने का अनुमान था । अत देश के कारखानो मे 88 लाख टन तैयार इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया और 2237 करोड रुपये व्यय के प्रावधान से (i) भिलाई कारखाने की क्षमता 40 लाख टन करने, (ii) बोकारो की क्षमता बढाकर 47 5 लाख करने, (iii) विजयनगर एव विशाखापट्टनम स्टील परियोजनाओ को शीघ्र कार्यान्वित करने (iv) एलोय स्टील व विशेष इस्पात के लिये सलेम स्टील कारखाने की स्थापना, (v) दुर्गापुर स्टील प्लाट की उत्पादन क्षमता का पूरा पूरा उपयोग करने व मैसूर स्टील प्लान्ट मे अधिकतम उत्पादन के लिये अतिरिक्त सुविधाएँ देने के साथ साथ निजी क्षेत्र के विस्तार की व्यवस्था थी । योजनाकाल मे किये गये प्रयासो से 1977–78 मे इस्पात का उत्पादन 77 3 लाख टन पहुच गया ।

पिछले 28 वर्षों मे लोह इस्पात उद्योग की प्रगति की झलक अग्र तालिका से मिलती है—

योजनाओं के अन्तर्गत लोह-इस्पात उद्योग की प्रगति (1961–79)

(लाख टन)

वर्ष	इस्पात पिण्ड	तैयार इस्पात	वर्ष	इस्पात पिण्ड	तैयार इस्पात
1950–51	14	10 40	1973–74	63 2	48 9
1955–56	19 2	12 86	1975–76	76 5	54 9
1960–61	34 2	23 00	1977–78	108 0	77 3
			लक्ष्य		
1965–66	65 0	45 00	1978–79	113 2	88 0
			1982–83	150	118
			1987–88	200	154

वर्तमान स्थिति एव छठी योजना के लक्ष्य—इस प्रकार योजनाबद्ध विकास के पिछले 27 वर्षों म लोह-इस्पान उद्योग की प्रगति काफी सन्तोषप्रद है। इस समय देश मे (1) टाटा ग्रायरन एण्ड स्टील कम्पनी, (टिस्को) (Tisco), (2) इण्डियन ग्रायरन एण्ड स्टील कम्पनी (Iisco) (इस्को), (3) मैसूर ग्रायरन एन्ड स्टील कम्पनी (मिस्को) (Misco) के ग्रतिरिक्त हिन्दुस्तान स्टील क के ग्रन्तर्गत, (4) दुर्गापुर लोह-इस्पात कारखाना, (5) भिलाई इस्पात कारखाना तथा (6) रूरकेला इस्पात कारखाना ग्रौर ग्रलग ग्रस्तित्व वाला, (7) बोकारो स्टील कारखाना है। पहला कारखाना निजी क्षेत्र मे शेष सभी सार्वजनिक क्षेत्र मे है। सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात कारखानो मे लगभग 2500 करोड रु की पूंजी लगी हुई है ग्रौर देश मे 1977-78 मे इस्पात का उत्पादन 77 3 लाख टन था जो छठी योजना के ग्रन्त तक 1982-83 म 118 लाख टन तक बढान का लक्ष्य है। छठी योजना के ग्रन्त मे एव नये इस्पात सयत्र पर काम शुरू करने की सभावना है। लोह इस्पात उद्योग पर छठी योजना मे 2491 करोड रु व्यय होगा।

भारतीय लोह इस्पात उद्योग की समस्यायें व सुझाव

भारत मे लोह-इस्पात उद्योग की प्रगति मे ग्रनेक ग्रडचनें हैं उनके कारण ऊंचे लक्ष्य निर्धारित किये जाने के बावजूद भी वास्तविक उत्पादन काफी नीचे रहा है।

1 ग्रच्छे कोयले का ग्रभाव—लोहा-इस्पात उद्योग मे ग्रच्छे किस्म के कोकिंग कोल की ग्रावश्यकता होती है जिसका उत्पादन माग के मुकाबले काफी कम है। ग्रत उत्तम कोटि के कोयले के उत्पादन के लिये प्रयास किये जाने चाहिये। कोयले की धुलाई करके उसे ग्रच्छे किस्म का बनाना चाहिये।

2 उत्पादन की निम्न स्तर की तकनीक एव प्रशिक्षण कर्मचारियों का ग्रभाव—इस उद्योग मे उत्पादन तकनीक व प्राविधिक ज्ञान म इतनी धीमी गति से प्रगति हो रही है कि हम नवीन पद्धतियों से काफी दूर हैं, प्रशिक्षित कर्मचारियों का भी ग्रभाव है ग्रत उद्योग मे हम तकनीकी विशेषज्ञ को भी विदेशो से ग्रामन्त्रित करना पडता है। यद्यपि भारत मे ग्रब इस दिशा मे काफी सुधार हुग्रा है। इन्जीनियरिंग कालेजो व ट्रेनिंग स्कूलो की स्थापना की गई है। विदेशों म भारतीय प्रशिक्षण प्राप्त

करके लौटते हैं फिर भी आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती। अतः और अधिक सुविधाओं का विस्तार करना चाहिये।

3 **परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयां**—भारत मे लोहा इस्पात उद्योग मे कच्चा खनिज लोहा, मैंगनीज, कोयला तथा निर्मित माल को बाजारो मे भेजने आदि के लिए सस्ते, पर्याप्त व शीघ्रगामी परिवहन साधनो का अभाव है। इस समस्या का समाधान परिवहन के सभी प्रकार के साधनों को विकसित करने मे निहित है।

4 **ऊंची कीमतों व लागतों की समस्या**—इस्पात उद्योग की सबसे बडी समस्या बढती हुई लागतो व बढते हुये मूल्यो की है। 1958 से 1966 की अवधि मे लोहे का मूल्य 60% तथा कोयले का मूल्य 82% बढा है। मजदूरी दरो मे श्रमिको की उत्पादकता की अपेक्षा तीव्र गति से वृद्धि हुई है। भारत मे मुद्रा-स्फीति के कारण लोहा इस्पात लागतो व उनके उत्पादन मूल्यो मे पिछले दस वर्षों मे 150% की वृद्धि हुई है। इसके लिये मितव्ययिता मजदूरी दरो की अपेक्षा उत्पादकता मे वृद्धि आदि का प्रयास करना चाहिये।

5 **क्षमता के अपूर्ण उपयोग की समस्या**—सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात उद्योगो में उनकी पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग नही हो पा रहा है। 1970–71 मे इण्डियन आयरन की 62%, रूरकेला की 56% क्षमता तथा दुर्गापुर की 43% क्षमता का ही उपयोग हो रहा था जबकि देश मे पूर्ति माग के मुकाबले काफी कम थी। इन कारखानो मे पूरी-पूरी क्षमता के उपयोग न होने मे मुख्य बाधायें—कल पुर्जों के आयात की कठिनाई, मशीनो की देखभाल व मरम्मत की समस्या, श्रमिक विवाद तथा कच्चे माल की समय पर पूर्ति न होना था। अब पूरा उपयोग होने के प्रयास हैं।

अतः सरकार को इन कारखानो की पूरी-पूरी उत्पादन क्षमता के प्रयोग के लिये प्रभावी कदम उठाना चाहिये। इसके लिये कच्चे माल की समय पर व्यवस्था, आवश्यक कल पुर्जों के आयात की व्यवस्था, श्रम विवादो का समय पर निपटारा आदि करना है।

6. **इस्पात उद्योग में घाटे की समस्या**—निजी क्षेत्र मे टाटा आयरन मुनाफा कमा रही है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र की हिन्दुस्तान स्टील कम्पनी जिसमे लगभग 3000 करोड रु की पूँजी लगी हुई है, अपनी स्थापना के बाद से अब तक 200 करोड रु. से भी अधिक घाटा उठा चुकी है। पहली बार 1973-74 मे 22 करोड का लाभ हुआ। अब निरन्तर लाभ हो रहा है।

7. भारत का लोह-इस्पात उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय तुलना मे काफी पीछे है-भारत के लोह-इस्पात का उत्पादन की दृष्टि से तेरहवा स्थान है। जापान का प्रथम स्थान, रूस का (12 करोड़ टन) द्वितीय स्थान, अमेरिका का (10·9 करोड टन) तृतीय स्थान, इंगलैंड का (8 9 करोड टन) चौथा स्थान तथा पाचवा स्थान पश्चिमी जर्मनी का (4 करोड टन) व सातवा स्थान चीन का (2 करोड़ टन) है। भारत का इस्पात उत्पादन विश्व उत्पादन का 1·2% है। प्रति व्यक्ति उपभोग की दृष्टि

से भी भारत का काफी पिछडा व छत्तीसवा स्थान है। जहा भारत मे प्रति व्यक्ति इस्पात उपयोग 11 किलोग्राम है वहा अमेरिका मे 685 किलोग्राम, जापान मे 490 किलोग्राम पश्चिमी जर्मनी मे 488 किलोग्राम, रूस मे 428 किलोग्राम और इगलैण्ड मे 422 किलोग्राम है।

भारत मे लोह इस्पात उद्योग का भविष्य व सरकारी नीति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है लोह इस्पात उद्योग के विकास व विस्तार का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है अत सार्वजनिक क्षेत्र मे नयी इकाइया स्थापित करने तथा उनकी उत्पादन क्षमता मे विस्तार करने की नीति कार्यान्वित की गई है। यहा तक कि 1972 मे इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का राष्ट्रीयकरण किया गया है। उत्पादन वृद्धि के लिये विशाखापट्टनम, सलेम व हास्पेट मे नये इस्पात कारखाने निर्माणाधीन हैं। आधुनिकतम मशीनो के आयात के साथ-साथ देश मे आवश्यक मशीनो व कलपुर्जों के उत्पादन वृद्धि का प्रयास है। एलोय स्टील उत्पादन पर काफी जोर दिया जाने लगा है। यही कारण है कि पाचवी योजना मे इस उद्योग के विकास, आधुनिकीकरण, विस्तार व अन्य योजनाओ पर 2237 4 करोड रु. व्यय किया जाना था। नये कारखानो के निर्माण तथा पुराने कारखानो के विस्तार की योजनाओ को तीन चरणो म पूरा किया जायगा। प्रथम चरण मे कच्चा लोहा, द्वितीय चरण मे इस्पात पिण्ड गलाने तथा तृतीय चरण मे इस्पात तैयार करने की व्यवस्था की जायेगी। प्रथम चरण के पूरा न होने तक दूसरे चरण शुरू नही किये जायेगे।

माग की दृष्टि से भारतीय लोह-इस्पात उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है क्योकि देश मे पयाप्त बाजार व बढती हुई माग, कच्चे माल के पर्याप्त भण्डार, सस्ती श्रम शक्ति तथा आवश्यक अनुभव है। धीरे-धीरे तकनीकी एव प्राविधिकी कर्मचारियो की सख्या भी बढ रही है। यही क्रम चलता रहा तो भारत के लोह-इस्पात उद्योग का विश्व के इस्पात उत्पादक राष्ट्रो म महत्वपूण स्थान हो जायेगा। एक पच्चीस वर्षीय योजना से सन् 2000 तक विक्रय योग्य इस्पात का उत्पादन 75 मिलियन टन करने का लक्ष्य है।

3 जूट या पटसन उद्योग
(Jute Industry)

जूट उद्योग भारत का सगठित एव विदेशी मुद्रा अर्जन करने वाला प्रमुख उद्योग है। उत्पादन की दृष्टि से भारतीय जूट उद्योग का विश्व मे प्रथम स्थान है तथा निर्यात व्यापार म महत्वपूर्ण स्थान है। इसमे लगभग 250 करोड रु की पूँजी लगी हुई है तथा 3 0 लाख लोगो को रोजगार प्राप्त है। जहा 1972-73 में जूट उत्पादनो के निर्यात से 250 करोड रु. की मुद्रा अर्जित हुई जबकि 1975-76 मे

यह घटकर 248 करोड़ रु ही रह गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय 1947 के विभाजन के पूर्व भारतीय जूट उद्योग को एकाधिकार प्राप्त था पर विभाजन के बाद यह उद्योग दो देशो मे बँट गया। कच्चा जूट उत्पादन करने वालो का 72% क्षेत्र पाकिस्तान म चला गया किन्तु जूट उद्योग की प्राय सभी मिलें भारत म ही रही। जूट उद्योग म जूट के बोरे, कालीन दरिया, रग-बिरगे पर्दे, सोफो के कवर, वाटर प्रूफ कवर, रग बिरग फर्श तथा मिश्रित वस्त्रो का उत्पादन किया जाता है।

जूट उद्योग का प्रारम्भिक विकास

कुटीर उद्योग के रूप म चलने वाले इस उद्योग मे आधुनिक ढग का कारखाना 1855 मे जार्ज आकलैण्ड के द्वारा पश्चिम बगाल के रिशरा नामक स्थान पर स्थापित हुआ जिसकी उत्पादन क्षमता 8 टन प्रति दिन थी। यह कारखाना 1858 मे बन्द हो गया पर 1859 मे जार्ज हैण्डर्सन द्वारा जूट का कपड़ा बनाने का नया शक्ति सचालित कारखाना स्थापित किया गया तदुपरान्त 1862 मे तीन कारखाने और स्थापित किये गये। 1868 से 1873 की अवधि मे इस उद्योग ने खूब लाभ कमाया। 1884 मे इण्डियन जूट मिल्स एसोसियेशन को स्थापित किया गया उस समय 21 जूट मिलें थी जबकि उनकी सख्या 1904 मे 38 तक पहुँच गई थी।

1900 से 1913 तक इस उद्योग की तीव्र प्रगति हुई क्योकि निर्यात मे निर्मित माल का प्रतिशत बढा और कच्चे जूट का निर्यात कम हुआ। विश्व युद्ध के दौरान भी उद्योग ने काफी लाभ कमाया क्योकि मित्र राष्ट्रो की सेना के लिए निर्मित बोरे जूट के कपडे व सुतली की बिक्री की गई। इस समय जूट के कारखानो की सख्या 60 हो गई थी। युद्ध के बाद उद्योग का सकट प्रारम्भ हुआ। माग घटने लगी। विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी के कारण 1929–33 तक जूट उद्योग को भारी सकट से गुजरना पडा। 1937 तक ये समस्यायें प्राय समाप्त हो चुकी थी। द्वितीय विश्व युद्ध मे माग बढने से पुन उद्योग को प्रोत्साहन मिला। जहा 1938–39 मे जूट मिलो की सख्या 107 थी और उनमे 68 हजार करघे तथा 13 5 लाख तकुए थे वहा 1945-46 तक मिलो की सख्या 111, तकुओ की सख्या 14 35 लाख तथा करघो की सख्या 69 हजार हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद व पंचवर्षीय योजना मे जूट उद्योग का विकास

1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के विभाजन का जूट उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पडा क्योकि जूट पैदा करने वाला 72% क्षेत्र तो पाकिस्तान मे चला गया और सब मिलें भारत म रह गई। कच्चे जूट की कमी तथा पाकिस्तान द्वारा बहुत ऊँचे मूल्य लिये जाने से तथा 1949 मे भारतीय रुपये का अवमूल्यन किये जाने से पाकिस्तानी जूट भारत को लगभग 50% महगा पडा। यही नहीं, कच्चे माल के अभाव मे बहुत सी मिलें बन्द हो गई। 1947–48 मे पाकिस्तान से लगभग 540 लाख गाठें आयात की गई जोकि कुल आवश्यकता का 80% भाग था। पाकिस्तान पर निर्भरता

कम करने के लिए भारत मे कच्चा जूट उत्पादन करने के प्रयास किये गये, एक साल मे ही निर्भरता 80% से घटकर 52% रह गई।

प्रथम पचवर्षीय योजना—इस योजना मे जूट उद्योग के विस्तार, नवीनीकरण और कच्चे माल की कमी को दूर करने के लिए कच्चे जूट का उत्पादन लक्ष्य 54 लाख गाठे करना था। जूट सामान का उत्पादन 12 लाख टन तथा निर्यात लक्ष्य 10 लाख टन रखा गया। भारत मे ही जूट मशीनरी निर्माण पर ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप जहा 1950–51 मे कच्चे जूट का उत्पादन 33 लाख गाठें, जूट के सामान का उत्पादन 8 37 लाख टन तथा निर्यात 6 5 लाख टन था वह बढकर क्रमश 43 लाख गाठे, 10 6 लाख टन तथा 8 75 लाख टन था जो लक्ष्य से कम था। 1953 मे जूट उद्योग के सम्बन्ध मे एक आयोग ने उद्योग की क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने, नवीनीकरण करने, कच्ची जूट का निर्यात बन्द करने, कच्चे जूट के उत्पादन की वृद्धि के लिये गहन कृषि व न्यूनतम मूल्य, किस्म मे सुधार आदि की सिफारिश की।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—इस योजना मे जूट सामान का उत्पादन 12 लाख टन करने तथा कच्चे माल की दृष्टि से देश को आत्म निर्भर बनाने के लिए कच्चे जूट का उत्पादन 65 लाख गाठे करने का लक्ष्य था। 1957 की जूट जाच समिति की सिफारिशो पर उत्पादन लागत कम करने, विद्यमान क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने मशीनो के नवीनीकरण व निर्यात वृद्धि पर जोर दिया गया। इन सब प्रयत्नो के फलस्वरूप भी प्रगति आशानुकूल नही रही। योजना के अन्तिम वर्ष 1960–61 मे जूट का निर्मित माल 10 97 लाख टन तथा कच्चे जूट की 43 लाख टन गाठें ही उत्पादित हुईं।

इस योजना काल म भारतीय जूट उद्योग को भारी पाकिस्तानी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडा। कई मिलें बन्द हो गई। निर्यात भी 9 लाख टन लक्ष्य की तुलना मे 7 6 लाख टन ही रहा।

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्त तक कच्चे जूट का उत्पादन 75 लाख गाठें तथा जूट के सामान का उत्पादन 13 लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया पर वास्तविक उत्पादन क्रमश 58 लाख गाठे तथा 13 लाख टन ही रहा। निर्यात 9 3 लाख टन रहा।

तीन वार्षिक योजनाय (1966–69) अकालो के कारण इस उद्योग मे कच्चे माल का सकट आया। ऊची कीमते तथा बढती प्रतिस्पर्द्धा से उद्योग की स्थिति म गिरावट आयी। 1968–69 म जूट के तैयार माल का उत्पादन 9 98 लाख टन तथा जूट का उत्पादन केवल 30 5 लाख टन रहा जो 1950–51 के बाद सबसे कम था तथा 1965–66 के मुकाबले आधा ही रह गया था। निर्यात भी 6 5 लाख टन ही रहा।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—चतुर्थ योजना मे निर्यात वृद्धि के उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए कच्चे जूट के उत्पादन की 74 लाख गाठे तथा निर्मित माल का उत्पादन 15 लाख टन करने का लक्ष्य रखा पर अनेक बाधाओ के कारण कच्चे जूट का उत्पादन 1973–74 मे 56 लाख गाठे रहा जबकि जूट के सामान का उत्पादन 10 74 लाख टन था। भारतीय जूट उद्योग मे अभिनवीकरण व विकास के लिए अप्रैल 1971 मे भारतीय जूट निगम की स्थापना की गई। चतुर्थ योजना मे प्रगति सन्तोषजनक न रह सकी क्योकि वास्तविक उत्पादन लक्ष्य से काफी कम रहा।

इस प्रकार पिछले 27 वर्षों मे भारत का जूट उद्योग उत्पादन के उतार-चढाव व अनिश्चितता के वातावरण मे भटक रहा है। बागला देश की बढती प्रतिस्पर्द्धा तथा मुद्रा स्फीति के कारण बढती लागतो व मूल्यो की समस्या उद्योग के भविष्य को चुनौती है। इस उद्योग की पचवर्षीय योजना की झलक एक दृष्टि मे निम्न सारणी से स्पष्ट है—

पंचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत जूट उद्योग का विकास
1950–51 से 1978–79

वर्ष	कच्चे माल का उत्पादन (लाख गाठें)	जूट का निर्मित सामान (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)
प्रथम योजना के प्रारम्भ मे 1950–51	33	8 37	6 5
प्रथम योजना 1955–56	43	10 71	8 75
द्वितीय योजना 1960–61	43	10 97	7 6
तृतीय योजना 1965–66	58	13 02	9 3
तीन वार्षिक योजनायें 1968–69	30 5	9 98	5 8
चतुर्थ योजना 1973–74	56 0	10 74	5 6
1977–78	68	12 0	5 2
पाचवीं योजना 1978–79	70 0	12 5	5 5

पाचवीं योजना—इस योजना के अन्तर्गत जूट उद्योग के आधुनिकीकरण तथा वर्तमान उत्पादन क्षमता के पूरे-पूरे उपयोग पर ध्यान दिया गया। योजना के अन्तिम वर्ष 1977–78 मे जूट का उत्पादन 70 लाख गाठें तथा निर्मित माल 12 5 लाख टन रहा जबकि लक्ष्य क्रमश 77 लाख गाठें तथा 13 8 लाख टन था।

जूट उद्योग की वर्तमान स्थिति एवं छठी योजना

भारत में अभी जूट के 112 कारखाने हैं जिनमें 101 कारखाने पश्चिमी बंगाल, 4 आन्ध्र प्रदेश 3 बिहार, 3 उत्तर प्रदेश तथा एक मध्य प्रदेश में है। उद्योग में लगभग 300 करोड़ रु० की पूँजी लगी है और लगभग 3 लाख श्रमिकों को प्रत्यक्ष रोजगार तथा 40 लाख श्रमिकों को जूट उत्पादन में रोजगार मिला हुआ है। सभी कारखानों की उत्पादन क्षमता 14 से 15 लाख टन है। जूट का निर्मित माल विदेशी विनिमय का प्रमुख स्रोत है। जहां 1950–51 में जूट निर्मित माल के निर्यात से 114 करोड़ रु० मिलते थे 1975–76 में निर्यात 288 करोड़ रु० का अब तक का रिकार्ड है। 1977–78 में जूट तथा जूट के निर्मित माल का निर्यात मूल्य 245 करोड़ रु० रहा।

छठी योजना—इस योजना में भी वर्तमान क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने तथा उद्योग के आधुनिकीकरण पर जोर दिया जायगा। लागत में कमी का प्रयास करना मुख्य लक्ष्य है। 1982–83 तक जूट के निर्मित माल का उत्पादन 14 लाख टन करने का लक्ष्य है।

जूट या पटसन उद्योग की समस्याएं व समाधान के सुझाव

1 कच्चे माल का अभाव—विभाजन के बाद से भारतीय जूट उद्योग में कच्चे माल का अभाव सदा से बना हुआ है। यद्यपि बिहार आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल उत्तर प्रदेश के उपयुक्त इलाकों में इसका क्षेत्र बढ़ाया गया है फिर भी कुल उत्पादन 56 लाख टन है जबकि भारतीय जूट मिलों को अपनी पूरी-पूरी क्षमता का उपयोग करने के लिए प्रतिवर्ष 75 लाख टन कच्चे जूट की आवश्यकता है। अतः जूट उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि करके वैज्ञानिक ढंग से अधिकाधिक उत्पादन करने का प्रयास करना चाहिए।

2 अभिनवीकरण की समस्या—भारत में अधिकांश मिलें पुरानी हैं तथा उनकी मशीनें या तो घिस चुकी हैं या वे इतनी पुरानी हैं कि आधुनिकतम मशीनों के मुकाबले अलाभकारी हैं। बांगला देश जिसमें अधिकांश मिलें नई हैं उनकी प्रतिस्पर्द्धा में टिकने के लिए नयी मशीनों की आवश्यकता है और उनके लिए करोड़ रुपयों की जरूरत है। 1952 से ही देश में इस उद्योग के आधुनिकीकरण का कार्य हाथ में लिया गया। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने भी इसके लिए लगभग 7 2 करोड़ रुपये का ऋण दिया है। अब तक आधुनिकीकरण पर 50–60 करोड़ रुपये व्यय किया जा चुका है। सरकार को अभिनवीकरण को और अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए। मशीनों के आयात लाइसेन्स में उदारता बरतनी चाहिए।

3. बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा—भारतीय जूट उद्योग एक निर्यात प्रधान उद्योग है जिससे पहले पाकिस्तान तथा अब बांगला देश से प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ रहा है जहां 1964–65 में निर्यात में भारत पाकिस्तान (अब बांगला देश) के निर्यातों का अनुपात 80 20 था अब भारत का भाग घटकर 53% तथा बंगला देश का भाग 47% हो गया है। भविष्य में यह प्रतिस्पर्द्धा और अधिक बढ़ेगी क्योंकि थाईलैंड, घाना, नाइजीरिया तथा इन्डोनेशिया में यह उद्योग तेजी से पनप रहा है।

यही नही, जूट के सामान की प्रतिस्थापन वस्तुओ के कारण यह प्रतिस्पर्द्धा और बढेगी।

अत उत्पादन लागत मे कमी, उत्पादन की किस्म मे सुधार, उत्पादन मे विविधता व विदेशो मे विज्ञापन, प्रदर्शनियो व व्यापारिक समझौतो पर बल देना चाहिये।

4 स्थानापन्न वस्तुओ का भय—अब विश्व बाजारो मे जूट की निर्मित वस्तुओ के स्थान पर प्लास्टिक, पोलीथिन, कृत्रिम रेशो आदि की वस्तुओ का प्रयोग बढ रहा है। अमेरिका आदि देशो मे प्लास्टिक थैलो का प्रयोग होने लगा है। अगर इन प्रतिस्थापन वस्तुओ का प्रयोग बढता ही गया तो उद्योग का भविष्य खतरे मे पड जायगा। अत जूट की उत्पादन लागतो व मूल्यो मे कमी करनी चाहिये, उत्पादन मे उपभोक्ताओ की रुचि के अनुरूप विविधता लाना चाहिये। अनुसधानो को प्रोत्साहन देना चाहिये।

5 विविध—जूट उद्योग की सबसे बडी समस्या मुद्रा-स्फीति के कारण बढती लागतो व बढते मूल्यो की समस्या है। आये दिन हडतालें व तालाबन्दी होती हैं। अभिनवीकरण म भी श्रमिको के विरोध की समस्या आती है। जूट उद्योग का केन्द्रीकरण पश्चिमी बगाल मे ही होने से परिवहन की समस्या भी है। जूट उद्योग का भविष्य अनुसधानो मे ही निहित है बल्कि उसके लिए आवश्यक सुविधा तथा साधनो का अभाव है। अभी केवल जूट उद्योग शोधशाला कलकत्ता ही अनुसधान कार्य मे रत है। अत इन समस्याओ का समाधान करने के लिए भी आवश्यक कदम उठाना चाहिए।

4. चीनी (शक्कर) उद्योग
(Sugar Industry)

भारत मे सगठित बडे उद्योगो मे चीनी उद्योग का विशिष्ट स्थान है। बिना चीनी के भारत से कोई भोज फीका और अधूरा ही माना जाता है। इस उद्योग का महत्व इस दृष्टि से भी है कि गन्ना उत्पादन कर कृषक काफी आय अर्जित करते हैं। लगभग 3 0 लाख लोगो को रोजगार प्राप्त है। 20 लाख गन्ना उत्पादको की समृद्धि इस उद्योग की समृद्धि से जुडी हुई है। विदेशी मुद्रा अर्जन होती है तथा सरकार को भी कर के रूप मे काफी आय प्राप्त होती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एव स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व उद्योग का विकास

यह भारत का अति प्राचीन उद्योग है। पहले यह घरेलू उद्योग के रूप मे चलाया जाता था तथा यहाँ के छोटे उद्योगो से खाड यूरोप के देशो को निर्यात की जाती है पर आधुनिक ढग का कारखाना सर्वप्रथम 1903 मे बिहार मे खोला गया तत्पश्चात् बिहार व उत्तर प्रदेश मे कई कारखाने स्थापित किये गये। 1930 तक उद्योग की प्रगति धीमी रही।

1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का इस उद्योग पर भी बहुत दुष्प्रभाव पडा। अत. 1932 मे चीनी उद्योग को 15 वर्षों के लिए सरक्षण दिया गया। उस समय देश मे चीनी उद्योग मिलो की सख्या 32 तथा उत्पादन 1 6 लाख टन था। औसतन प्रतिवर्ष भारत मे 6 7 लाख टन चीनी का आयात किया जाता था। सरक्षण से उद्योग का तेजी से विकास हुआ। 1938–39 मे ही चीनी मिलो की सख्या 132 तथा उत्पादन 6 लाख टन हो गया तथा आयात भी घटकर 22 हजार टन रह गया। 1939 तक तो स्थिति यहाँ तक पहुच गई कि चीनी उद्योग मे 145 कारखानो मे उत्पादन आधिपत्य की समस्या उत्पन्न हो गई और सरकार को चीनी उत्पादन पर नियन्त्रण लगाना पडा तथा चीनी के वितरण को नियन्त्रित करने के लिए बिहार तथा उत्तर-प्रदेश चीनी मिलो द्वारा शुगर सिन्डीकेट बनाया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय चीनी उद्योग की स्थिति मे सुधार आया। चीनी के बढते मूल्यो को नियन्त्रित करने के लिये सरकार को 1942 में नियन्त्रण व राशनिग लागू करना पडा। 1945-46 मे चीनी मिलो की सख्या 158 और उत्पादन 9 लाख टन था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत चीनी उद्योग की प्रगति

1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभाजन का चीनी उद्योग पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा क्योकि चीनी मिले व गन्ना उत्पादन क्षेत्र भारत मे ही रहे। महात्मा गाधी के प्रयत्नो से 1948 मे चीनी पर से नियन्त्रण हटा लिया पर मूल्यो म अप्रत्याशित वृद्धि हो जाने के कारण पुन 1949 मे नियन्त्रण लगाया तथा उसके वितरण व मूल्य निर्धारण की जिम्मेदारी सरकार ने स्वय सम्भाल ली। प्रथम योजना के शुरू होने से पूर्व 1950–51 में देश मे 138 चीनी मिलें थी तथा चीनी का उत्पादन 11 लाख टन था। पचवर्षीय योजनाओ के अन्तगत प्रगति योजनावार इस प्रकार थी

प्रथम पचवर्षीय योजना—इस योजना में चीनी उद्योग के विकास पर 15 करोड रु व्यय किये गए। 1952 में चीनी पर से नियन्त्रण हटा दिया गया। परिणामस्वरूप चीनी की माग मे तीव्र-वृद्धि हुई। अत. 1954 में 83 नयी चीनी मिलो की स्थापना तथा 41 पुरानी मिलो के विस्तार की अनुमति दी। पूर्व निर्धारित 15 लाख टन उत्पादन लक्ष्य को बढाकर 18 लाख टन कर दिया। योजना के अन्त तक चीनी मिलो की सख्या 143 तथा चीनी का उत्पादन 18) लाख टन था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—इस योजना में चीनी उद्योग के विकास पर 51 करोड रुपये व्यय कर सहकारिता क्षेत्र में 35 नयी मिलें स्थापित करने तथा उत्पादन 22 5 लाख टन करने का लक्ष्य था। पुरानी मिलो के विस्तार, नवीनीकरण व विकास पर जोर दिया। योजनाकाल मे चीनी उद्योग के विकास व विस्तार पर 56

करोड रु० व्यय किये । परिणामस्वरूप चीनी मिलो की सख्या 175 तथा चीनी का उत्पादन 30 3 लाख टन हो गया । 1958 मे ही चीनी के निर्यात को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई गई । 1960–61 तक सहकारी चीनी मिलो की सख्या 38 हो चुकी थी ।

तृतीय पचवर्षीय योजना—इस योजना मे 25 नयी चीनी मिलें सहकारी क्षेत्र मे स्थापित करने तथा उत्पादन 33 लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया । विकास के प्रयत्नो के फलस्वरूप चीनी मिलो की सख्या 200 हो गई तथा उत्पादन 35 1 लाख टन था ।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)—पहले दो वर्षों मे अकाल के कारण चीनी का उत्पादन घटकर लगभग 23 लाख टन ही रह गया था । चीनी वितरण पर 1967 मे आशिक नियन्त्रण हटाकर 60% भाग नियन्त्रित दर पर तथा शेष 40% खुले बाजार मे बिकने की व्यवस्था की । 1968–69 मे उत्पादन पुन बढकर 35 6 लाख टन हो गया ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना मे भी चीनी उद्योग उतार-चढाव के दौर से गुजरा है । योजनाकाल मे 70 नये कारखाने खोलने तथा चीनी का उत्पादन 47 लाख टन करने का लक्ष्य था पर योजना के अन्त तक 1973–74 मे चीनी का उत्पादन 39 लाख टन ही रहा । चीनी मिलो की सख्या भी बढकर 228 हो गई है जिनमे से 75 सहकारी क्षेत्र मे थीं । 1974–75 मे चीनी का उत्पादन 48 लाख टन हुआ ।

पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत चीनी उद्योगो की प्रगति (1950–79)

योजना के अन्तिम वर्ष		चीनी मिलो की सख्या	उत्पादन (लाख टन)	निर्यात (करोड रु)
	1950–51	138	11 0	0 50
प्रथम	1955–56	143	18 9	0 96
द्वितीय	1960–61	175	30 3	3 28
तृतीय	1965–66	200	35 1	11 34
वार्षिक	1968–69	215	35 6	10 19
चतुर्थ	1973–74	220	39	42 9
पाचवी	1977–78	293	64 3	5
छठी	1982–83	300	62	

पाचवीं योजना—इस योजना मे चीनी का उत्पादन 50 लाख टन करने का लक्ष्य था किन्तु योजना के अन्तिम वर्ष 1977–78 मे उत्पादन 64 6 लाख टन रहा जो अब तक का रिकार्ड उत्पादन है ।

चीनी उद्योग की वर्तमान स्थिति एवं छठी योजना

पिछले 28 वर्षों मे चीनी उद्योग ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। इस समय देश मे 293 चीनी मिलें हैं और 58 का निर्माण चल रहा है। उत्पादन क्षमता 65 लाख टन से अधिक है। चीनी उद्योग मे 131 मिले सहकारी क्षेत्र मे हैं और कुल उत्पादन का लगभग 50% भाग उत्पादन करती है। देश की कुल 293 चीनी मिलो मे से लगभग 100 उत्तर प्रदेश मे, 80 महाराष्ट्र मे, 30 बिहार मे तथा 3 राजस्थान मे हैं। 1977-78 मे चीनी का रिकार्ड उत्पादन 64 6 लाख टन रहा जबकि 1979-80 मे उत्पादन 58 लाख टन होने का अनुमान है। कुल श्रमिक 3 5 लाख लगे हैं।

छठी योजना मे कोई नया कारखाना नही खोला जायगा किन्तु रोजगार बढाने के लिये खण्डसारी उद्योग को बढावा दिया जायगा। 1982–83 तक चीनी का उत्पादन 62 लाख टन करने का लक्ष्य है।

चीनी उद्योग की प्रमुख समस्याएं व समाधान के सुझाव

1. गन्ने की कम उपज व उसमें चीनी की मात्रा कम—भारत मे गन्ने की प्रति एकड उपज केवल 15 टन की है जबकि जावा हवाई द्वीपो मे प्रति एकड क्रमश 56 टन तथा 52 टन प्रति एकड है जो भारत की उपज की लगभग चौगुनी है। यही नही, भारत का गन्ना नीची किस्म का है उसमे चीनी का प्रतिशत लगभग 9 से 10% होता है जबकि अन्य चीनी उत्पादक देशो—जावा, सुमात्रा, क्यूबा, मारीशस आदि मे चीनी का प्रतिशत 13 से 14% होता है।

अत सरकार को गन्ने की प्रति एकड में उपज की वृद्धि के लिये वैज्ञानिक पद्धतियो व सुधरी किस्मो का प्रयोग करना चाहिए। अनुसधान कार्यों द्वारा उत्पादन वृद्धि पर भी जोर देना चाहिये।

2 गुड तथा खण्डसारी उद्योग से प्रतियोगिता—देश में उपलब्ध गन्ने का प्रयोग चीनी उद्योग तथा गुड खण्डसारी उद्योग मे होता है। अत दोनो मे कच्चे माल गन्ने की प्राप्ति म प्रतिस्पर्द्धा होती है अत उद्योगों को पर्याप्त कच्चा माल नही मिल पाता। अत इनमे परस्पर समन्वय स्थापित किया जाना चाहिय।

3 अनार्थिक आकार व अभिनवीकरण की समस्या—भारतीय चीनी उद्योग मे अनेक अनार्थिक छोटी छोटी इकाइयाँ है तथा उनम आधुनिक मशीनो का अभाव है। एक मोटे अनुमान क अनुसार अभिनवीकरण के लिये 90 करोड रु की आवश्यकता है। ज्हा एक ओर वित्तीय सकट है तो दूसरी तरफ मजदूरो का विरोध भी।

इन समस्याओ का समाधान करने के लिये छोटी छोटी इकाइयो को मिलाकर उन्हें बडी इकाइयो मे बदलना चाहिये ताकि उनकी गन्ना पेरने की दैनिक क्षमता 700–800 टन से बढाकर 300 टन कर दी जाये। अभिनवीकरण की योजना को धीरे-धीरे कार्यान्वित करना चाहिये। अब भारत ने भी चीनी मशीनो के उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करली है यह एक अच्छा सकेत है।

4. अवशेषों से उप-उत्पादनों तथा उत्पादन लागतों में वृद्धि की समस्या—चीनी उद्योगों मे मिलो मे अवशेष के रूप मे खोई (Bagasses) तथा शीरा (Molasses), प्रेसमड तथा केनट्रेस आदि उप उत्पाद (By-Product) प्राप्त होते हैं। प्रतिवर्ष चीनी मिलों मे तीन चार लाख टन शीरा निकलता है जिससे 20-25 मिलियन गैलन अल्कोहल तैयार की जा सकती है। गन्ने के छिलको (खोइ) से कागज, कार्ड-बोर्ड आदि तैयार किया जा सकता है। यही नहीं, उत्पादन की पुरातन मशीनें, उप-उत्पादनो का समन्वित प्रयोग का अभाव आदि के कारण लागतो मे वृद्धि हो जाती है अत: इन सब अवशेषो के आर्थिक उपयोग पर जोर देना चाहिये।

5. विविध—इस प्रकार चीनी उद्योग के सामने परिवहन की समस्या, तकनीकी एवं औद्योगिक ज्ञान, अनुसधान निर्यात आदि की समस्या है। अब रासायनिक तत्वों का भी चीनी के स्थान पर प्रयोग होने लगा है जिसमे सेक्रीन एवं मधुरिन प्रमुख हैं।

चीनी पर कन्ट्रोल हटा—16 अगस्त 1978 से भारत सरकार ने चीनी का कन्ट्रोल हटा दिया है। अब खुले बाजार मे अपना पूरा उत्पादन बेचने की छूट मिल गई है। उपभोक्ताओ के हितों की रक्षा में सरकार चीनी के भाव को 2 75 रु प्रति किलोग्राम बनाये रखने का हर सम्भव प्रयास करेगी।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. भारत मे लोह इस्पात उद्योग के विकास एव समस्याओ का वर्णन कीजिये। (Raj, IIIyr. B. Com. 1979)

12

श्रम-प्रधान लघु एवं कुटीर उद्योग

(Labour Intensive Industries)

किसी भी देश की औद्योगिक संरचना में कुटीर एवं लघु उद्योगों का विशेष स्थान होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था जिसमें पूँजी का अभाव, श्रम की अत्यधिक पूर्ति तथा तकनीकी ज्ञान का अभाव आदि के कारण इन उद्योगों का अत्यधिक महत्व है। इन उद्योगों का अतीत बहुत ही गौरवपूर्ण था पर अंग्रेजी शासनकाल में इन उद्योगों का इतना पतन हुआ कि भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग प्रायः समाप्त हो गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इनके विकास के लिए काफी प्रयास किये गये हैं फिर भी समुचित विकास नहीं हो पाया है।

अर्थ व परिभाषा—कुटीर उद्योगों का आशय उन उद्योग धन्धों से है जो एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा एक ही छत के नीचे पूर्ण या आंशिक रूप से सचालित किये जाते हैं। राजकोषीय आयोग के शब्दों में कुटीर उद्योग वह है जो पूर्णतया या मुख्यतः परिवार के सदस्यों की सहायता से पूर्ण या आंशिक व्यवसाय के रूप में चलाये जाते हैं।" उत्पादन की पद्धति परम्परागत होती है।

लघु-उद्योगों के अर्थ में समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हुआ। राजकोषीय आयोग के अनुसार लघु-उद्योग वे उद्योग हैं जो मुख्यतः 10 से 15 श्रमिकों की सहायता से चलाये जाते हैं। इसमें वे सब इकाइयाँ व संस्थान सम्मिलित होते हैं जिनमें पाँच लाख रुपये से कम पूँजी लगी हुई होती है। वर्तमान में श्रमिकों की संख्या पर ध्यान न देकर विनियोजित पूँजी पर ध्यान दिया जाता है अब 7.5 लाख रुपए से कम विनियोग वाले उद्योगों को लघु उद्योगों की श्रेणी में गिना जाता है।

लघु व कुटीर उद्योगों में अन्तर

यद्यपि दोनों को समान स्तर पर समझा जाता है पर दोनों में अप्रतिबिम्बित अन्तर है—

1 संचालन—कुटीर उद्योगो का सचालन एक ही परिवार के सदस्यो द्वारा अपने ही घर मे परम्परागत ढग से किया जाता है जबकि लघु उद्योगो का सचालन वेतनभोगी श्रमिको द्वारा किया जाता है। श्रम व पूँजी मे पृथकता होती है।

2 यन्त्रो का प्रयोग—कुटीर उद्योगो मे यन्त्रो का प्रयोग सीमित होता है, श्रम की प्रधानता होती है जबकि लघु-उद्योगो मे पूँजी व यन्त्रो का प्रयोग बहुत बढ गया है।

3 पूँजी—कुटीर उद्योगो मे पूँजी परिवार द्वारा लगाई जाती है। बाह्य पूँजी का प्रयोग न के बराबर होता है जबकि लघु-उद्योगो मे बाह्य-पूँजी का प्रयोग बढ जाता है।

4 बाजार—कुटीर उद्योग का बाजार सीमित होता है जबकि लघु-उद्योगो का बाजार विस्तृत है।

कुटीर व लघु उद्योगो का वर्गीकरण

राजकोषीय आयोग ने कुटीर व लघु उद्योगो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

भारत मे कुटीर एव लघु उद्योगो का गौरवपूर्ण अतीत व पतन के कारण

भारत मे लघु एव कुटीर उद्योगो का अतीत बडा ही गौरवपूण रहा है। एक विद्वान् के अनुसार भारत के कुटीर उद्योग बुद्धिमान मस्तिष्क, विलक्षण योग्यता तथा अद्भुत प्रतिभा की उपज थे तथ। 17वी शताब्दी तक विश्व मे भारत के उद्योगो का अद्वितीय स्थान था। ये उद्योग पश्चिम के उद्योगो से कही अधिक उन्नत थे। 1918 के भारतीय औद्योगिक आयोग के शब्दो मे 'जब औद्योगिक विकास मे अग्रणी यूरोप मे असभ्य जातियाँ निवास करती थीं तब भारत अपने शासकों के वैभव व कारीगरो की श्रेष्ठ कला के लिये विश्व प्रसिद्ध था।"

पर अग्रेज शासको ने अपनी स्वार्थ नीति के कारण भारत के लघु एव कुटीर उद्योगो के पतन की नीति अपनाई। ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण विरोधी नीति, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की घातक नीति, प्राचीन नवाबो व राजाओ के सरक्षण का अन्त, पाश्चात्य सभ्यता क प्रभाव मशीनो द्वारा निर्मित माल की कट्टर प्रतिस्पर्द्धा, यातायात के साधनो के विकास व भारतीय कारीगरो मे तकनीकी परिवर्तन की लोचहीनता के कारण भारतीय लघु एव कुटीर उद्योगो का पतन हुआ। प्रो आर सी दत्त के शब्दो मे अठारहवीं शताब्दी मे भारत एक बहुत बडा खेतिहर और औद्योगिक देश था उसे अग्रेजो ने अपनी घोर स्वार्थपरायणता की नीति के कारण मटियामेट कर दिया।

कुटीर एवं लघु उद्योग
कुटीर उद्योग
लघु उद्योग
ग्रामीण कुटीर उद्योग
शहरी कुटीर उद्योग
ग्रामीण लघु उद्योग
शहरी लघु उद्योग
अल्पकालीन
जैसे
टोकरियाँ बनाना,
चटाई बनाना,
सूत बनाना,
बीडी बनाना,
रस्सी बनाना
आदि
पूर्णकालीन
कुम्हार,
लुहार,
तेली, बुनकर,
चमार, सुनार
आदि का काम
अल्पकालीन
पतंग बनाना,
खिलौने व रंगने
का काम
पूर्णकालीन
लकड़ी का
काम
बरतन बनाना,
हस्तकला, मूर्ति
बनाना
अल्पकालीन
गुड़ शक्कर
बनाना,
चावल कूटना
पूर्णकालीन
जूते बनाना,
कालीन बनाना
आदि
अल्पकालीन
ईंटें बनाना
पूर्णकालीन
चमड़े,
होजरी,
जालियाँ
आदि
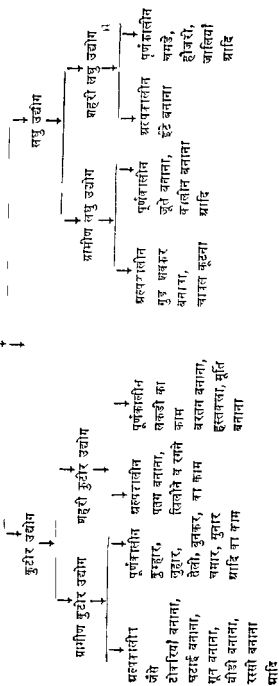
भारत मे लघु व कुटीर उद्योगो का महत्व व आवश्यकता

भारतीय अर्थव्यवस्था म लघु एव कुटीर उद्योगो की अत्यधिक आवश्यकता और विशेष महत्व है। महात्मा गांधी ने तो यहां तक कहा है कि भारत का उद्धार कुटीर उद्योग धन्धो के द्वारा ही सम्भव है। इसी प्रकार के विचार पडित नेहरू ने व्यक्त किये थे। उनके अनुसार 'भारत तभी एक औद्योगिक राष्ट्र होगा जबकि यहा पर लाखो की सख्या मे छोटे-छोटे उद्योग हों।" योजना आयोग ने लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास की आवश्यकता रोजगार क अवसरो मे वृद्धि, आय व रहन-सहन का ऊँचा स्तर तथा सन्तुलित अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए महसूस की है। लघु उद्योगो की आवश्यकता व महत्व निम्न तथ्यो स स्पष्ट हो जाती है—

1 रोजगार—लघु व कुटीर उद्योग रोजगार के प्रमुख स्रोत हैं। इनके विकास से अर्द्ध बेरोजगारी व पूर्ण बेकारी का निराकरण सम्भव होता है। जहां 1931 मे कुटीर उद्योगो मे 61 4 लाख लोगो को रोजगार प्राप्त था अब लगभग 2 करोड व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है।

2 कम पूँजी व अधिक उत्पादन—भारत मे पूँजी का अभाव है, ऐसी परिस्थिति मे लघु एव कुटीर उद्योगो म जिनम श्रम की प्रधानता होती है और कम पूँजी से ही काम चल जाता है। अत लघु एव कुटीर उद्योगो मे थोडी पूजी लगाकर ही आय, उत्पादन व रोजगार मे वृद्धि सम्भव है।

3 आय व सम्पति का न्यायोचित वितरण—बडे पैमाने के उद्योगो का सचालन व स्वामित्व कतिपय बडे-बडे उद्योगपतियो के हाथो म होता है। अत सारे लाभो का वे ही हडप जाते है। इसके कारण आय व सम्पत्ति दोनो की विषमता बढती है जबकि छोटे-छोटे उद्योगो का स्वामित्व अनेक व्यक्तियो म बटा होता है, श्रम की प्रधानता होती है अत आय व सम्पत्ति के समान वितरण की सम्भावनाएँ बढती हैं जो समाजवाद के सिद्धान्तो के अनुकूल हैं।

4 अर्थव्यवस्था का सन्तुलित एव सर्वांगीण विकास—भारत म कृषि की प्रधानता के कारण भूमि पर भार अधिक हो गया है तथा अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास नही हो पाया है जबकि लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास से अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास सम्भव है।

5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था—बडे उद्योगों के केन्द्रीयकरण से आवास, नैतिक पतन, दूषित वातावरण व क्षेत्रीय विषमता की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जबकि लघु एव कुटीर उद्योगो को देश के विभिन्न भागो मे विकेन्द्रित कर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है।

6 सचालन की सरलता लघु एव कुटीर उद्योगो की कार्य-प्रणाली सरल होती है। उसमें विशिष्ट तकनीकी ज्ञान व औद्योगिक प्रशिक्षण की आवश्यकता नही होती। जब भारत में तकनीकी व औद्योगिक ज्ञान का अभाव है तो स्वाभाविक रूप से ऐसे उद्योगो का महत्व बढ जाता है।

7. औद्योगिक शान्ति व संघर्षों से मुक्ति—बड़े पैमाने के उद्योगो मे पूँजी व श्रम मे संघर्ष के कारण घेराव, हड़तालें, तालाबन्दी आदि बढ़ती हैं और औद्योगिक शान्ति भग हो जाती है जबकि लघु एवं कुटीर उद्योगो मे श्रमिको की सख्या सीमित होती है, पूँजी व श्रम मे परस्पर सद्भावना रहती है अत संघर्षों की सम्भावना कम होती है और औद्योगिक शान्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

8 युद्ध मे सुरक्षा—राजनीतिक सुरक्षा के लिए लघु एव कुटीर उद्योगो का विशेष महत्व है। ऐसे उद्योगो की अनेक छोटी-छोटी इकाइयाँ देश के सभी भागो मे विकेन्द्रित होती हैं। अत युद्ध मे बमबारी द्वारा उन्हे नष्ट करना असम्भव होता है जबकि बड़े उद्योगो का नष्ट करना सरल होता है।

9. कलात्मक व श्रेष्ठ वस्तुओं का उत्पादन—लघु एव कुटीर उद्योगो की आवश्यकता व महत्व इस कारण भी है कि विभिन्न उपभोक्ताओं की रुचि के अनुकूल कलात्मक वस्तुयें उत्पन्न की जाती हैं और उत्पादन भी ऊँचे स्तर का होता है।

10 देश की सभ्यता व संस्कृति के अनुरूप—कुटीर व लघु उद्योगो मे परस्पर सद्भावना सहकारिता, समानता व भ्रातृत्व की भावना पनपती है जबकि बड़े उद्योगो मे शोषण, प्रतिस्पर्द्धा, वर्ग संघर्ष व स्वार्थ बढ़ता है अत भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा लघु व कुटीर उद्योगो के विकास मे निहित है।

11 व्यापार चक्रों से मुक्ति व सामाजिक कल्याण—बड़े पैमाने की उत्पत्ति मे उत्पादन आधिक्य की सम्भावनाएँ सदा बनी रहती हैं जबकि लघु एव कुटीर उद्योगो मे उत्पादन का पैमाना छोटा व माग के अनुरूप उत्पत्ति की जाती हैं। अतः व्यापार चक्रों से उत्पन्न बेकारी का उद्भव नही होता। इसके अतिरिक्त लघु उद्योगो मे रोजगार व आय मे वृद्धि, शोषण से मुक्ति व समान वितरण के कारण सामाजिक कल्याण मे अभिवृद्धि होती है।

12 शीघ्र उत्पादन वृद्धि तथा मूल्यो पर नियन्त्रण मे सुविधा—लघु एव कुटीर उद्योगो की स्थापना मे कम समय लगता है अत औद्योगिक उत्पादन शीघ्रता से बढ़ाया जा सकता है और उत्पादन वृद्धि मे मूल्यो पर नियन्त्रण मे भी सुविधा रहती है।

13. राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि—लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास से अधिकाधिक लोगो को पूर्ण रोजगार तथा अर्द्ध बेकारों को सहायक रोजगार प्रदान कर राष्ट्रीय आय म वृद्धि की जा सकती है और इससे प्रति व्यक्ति आय मे भी वृद्धि की जा सकती है। भारत मे किसानो को साल मे 4 महीने काम मिलता है अत. बाकी समय मे लघु एव कुटीर उद्योगो के कारण सहायक रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश का विकास, आत्म निर्भर रोजगार की वृद्धि, मूल्यो पर नियन्त्रण, श्रम पूंजी मे अधिक उत्पादन आदि के लिए लघु एव

कुटीर उद्योग की विशेष आवश्यकता है। वे हमारी परम्पराओ के अनुरूप तथा समाजवाद के अनुकूल हैं।

लघ एवं कुटीर उद्योगो की समस्याएं व कठिनाइयां

यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था मे लघु एव कुटीर उद्योगो का अत्यधिक महत्व है परन्तु उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ व समस्याएँ होने से समुचित विकास नही हो पाया है। मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं—

1 **कच्चे माल की समस्या**—लघु एव कुटीर उद्योगो को अच्छा व पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध नही हो पाता क्योकि एक तो उनके साधन सीमित हैं अत क्रय कम होता है और दूसरे बडे उद्योगो के क्रय की प्रतिस्पर्द्धा मे छोटे उद्योग नही टिक पाते। अत कारीगरो की क्रय की दक्षता मे कमी के कारण अच्छी किस्म का कच्चा माल उचित मूल्य पर उपलब्ध नही होता।

2 **वित्त सम्बन्धी कठिनाइया**—लघु एव कुटीर उद्योगो मे कच्चे माल की खरीद, मशीनो, औजारो, कारखानो, गोदामो आदि के लिए वित्तीय साधनो की आवश्यकता होती है। माल का उत्पादन करके बिक्री से पूर्व मजदूरी का भुगतान भी करना पडता है अत आवश्यक वित्तीय साधनो की समस्या आती है। यद्यपि अब वित्त व्यवस्था के काफी प्रयास किये गये हैं फिर भी आवश्यकता के मुकाबले वित्त साधन अपर्याप्त हैं।

3 **उत्पादन की पुरानी पद्धतियाँ व ऊंची लागत**—भारत मे लघु एव कुटीर उद्योगो मे उत्पादन की रूढिवादी पद्धतिया हैं। नवीन वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग बहुत सीमित है अत उत्पादन का नीचा स्तर और लागत ऊँची बैठती है। उत्पादन वृद्धि के लिए उचित प्रशिक्षण व अनुसधान सुविधाओ का अभाव होने से शिल्पकारो व कारीगरों की हीन दशा है।

4. **विपणन की समस्या**—उत्पादन का नीचा स्तर, ऊँची लागत, कारीगरों की ऋणग्रस्तता व मध्यस्थो के शोषण के कारण कारीगरो को उत्पादन का उचित मूल्य नही मिल पाता। मध्यस्थ उत्पादन मूल्य का लगभग 40% भाग हडप जाते हैं। समय पर उत्पादित माल बिक्री न होने से उत्पादन का क्रम ही रुक जाता है।

5. **बडे उद्योगों की बढती प्रतिस्पर्धा**—देश मे तेजी से बढते बडे उद्योगों मे आन्तरिक एव बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। अत उनकी उत्पादन लागत कुटीर व लघु उद्योगो के मुकाबले कम बैठती है अत बडे उद्योगो का बडी मात्रा मे उपलब्ध सस्ता माल लघु उद्योगो के उत्पादित महँगे माल को प्रतिस्पर्द्धा मे पीछे धकेल देता है। अत लघु कुटीर उद्योगो को कठिनाई आती है। भारत मे लघु एव कुटीर उद्योगो के पतन का एक प्रमुख कारण बडे उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा रही है।

6. **उपभोक्ताओ की अरुचि व संरक्षण का अभाव**—भारत मे बढती महगाई की स्थिति मे उपभोक्ता सस्ता व अच्छा माल खरीदते हैं। लघु एव कुटीर उद्योगों मे निर्मित माल महगा पडता है तथा मशीनो के माल की अपेक्षा घटिया भी रहता है।

प्रभावी कदम उठाये हैं। सरकार के प्रयत्नो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास के लिए समितियो की नियुक्ति

भारत मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास व उनकी समस्याओं के समाधान के लिए सरकार को सुझाव देने के उद्देश्य से समय-समय पर समितियो की नियुक्ति की है और उनकी सिफारिशो को कार्यान्वित करने का प्रयास किया है।

(i) अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल (1954)—फोर्ड फाउन्डेशन के विशेषज्ञों के एक दल ने लघु उद्योगो की स्थिति का अध्ययन कर उत्पादन की नवीन पद्धतियो के अपनाने की सलाह दी। उत्पादन के तरीको के अध्ययन व्यावहारिक शोध तथा नवीन उत्पादन पद्धतियो के प्रचार के लिए चार बहुउद्देशीय औद्योगिक संस्थान स्थापित करने की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त दल ने राष्ट्रीय डिजायन शाला, उद्योगो से सम्बन्धित विशेष संगठनो की स्थापना, लघु उद्योगो के विकास हेतु लघु उद्योग निगम की स्थापना के साथ-साथ व्यापारिक बैंक से वित्तीय व्यवस्था का सुझाव दिया।

भारत सरकार ने इस दल की सिफारिशो के अनुसार राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम व अन्य विशिष्ट संगठनो की स्थापना की।

(ii) ग्रामीण व लघु उद्योग (कर्वे) समिति—1955 मे डॉ० कर्वे की अध्यक्षता में सरकार ने इस समिति की नियुक्ति की। अक्टूबर 1955 मे कर्वे समिति ने महत्वपूर्ण सिफारिशें प्रस्तुत की (A) स्टेट बैंक व रिजर्व बैंक द्वारा लघु उद्योगो की वित्त व्यवस्था, (B) लघु उद्योगो को राज्य वित्त निगमो से दीर्घकालीन ऋण व्यवस्था, (C) लघु एव कुटीर उद्योगों के विकास को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण व लघु उद्योग मन्त्रालय की स्थापना, (D) बड़े उद्योगो के उत्पादन की सीमा निर्धारण, (E) बड़े पैमाने के उद्योगो के उत्पादन पर उपकर लगाकर उस रकम को लघु उद्योगो की सहायतार्थ देना, (F) लघु उद्योगो की स्थापना मे सहकारिता को प्रोत्साहन आदि का समावेश था।

इसकी सिफारिशो को द्वितीय योजना मे प्रमुख स्थान दिया तथा लघु कुटीर उद्योगो के विकास के लिए अनुकूल कदम उठाये।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय दीर्घकालीन आयोजना दल (1963) लघु उद्योगो की प्रगति की समीक्षा करने तथा भावी विकास के सुझाव देने के लिये फोर्ड फाउन्डेशन के विशेषज्ञो का दूसरा दल 1963 मे महत्वपूर्ण सिफारिशें कर गया जिसमे लघु उद्योगो के कच्चे माल, कल पुर्जों व साज सामान के सम्बन्ध में प्राथमिकता व समस्त वस्तुओं के लिए एक कर व्यवस्था अपनाने का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त लघु उद्योगो को किश्तो पर मशीनरी व साज सामान देने तथा विदेशी विनिमय व कच्चे माल के अभाव की स्थिति मे रियायती ब्याज दरो पर ऋण की व्यवस्था पर जोर दिया।

2 विभिन्न विशिष्ट संगठनों की स्थापना

देश में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए अलग-अलग उद्योगों के विकास के लिए विशिष्ट संगठनों की स्थापना की गई है —

(i) कुटीर उद्योग बोर्ड 1948 (Cottage Industries Board)—इस बोर्ड की स्थापना 1948 में की गई तथा इसका पुनर्संगठन 1950 में किया गया। इस बोर्ड का कार्य केन्द्र सरकार को लघु कुटीर एवं उद्योगों के विकास व संगठन के बारे में सुझाव देना, बड़े तथा छोटे उद्योगों में परस्पर समन्वय स्थापना का सुझाव देना तथा राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाओं में सामंजस्य लाना था।

(ii) केन्द्रीय सिल्क बोर्ड 1949 की स्थापना रेशम लघु उद्योग की देख-भाल व विकास के लिए की गयी थी।

(iii) अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड 1952—दस्तकारी के उत्पादन व विपणन में सुधार लाने को इस बोर्ड की स्थापना की गई। यह बिक्री केन्द्रों की व्यवस्था करता है। वह बोर्ड अभी 19 पायलट केन्द्रों को संचालित कर रहा है जिनमें उत्पादन अनुसंधान, प्रशिक्षण व परीक्षण के साथ-साथ विशेषज्ञों की सहायता से उत्पादन वृद्धि के लिए सुझाव देता है। इसके कारण अब देश में लगभग 100 करोड़ रु० मूल्य की वार्षिक उत्पत्ति होती है।

(iv) अखिल भारतीय हाथ-करघा बोर्ड 1952—यह बोर्ड हाथ करघा उद्योग के विकास उत्पादन वृद्धि व विपणन में सुधार की ओर ध्यान देता है। उनकी वस्तुओं का प्रचार करना है तथा उसकी समस्याओं से सरकार को अवगत कराकर समस्या के समाधान के सुझाव देना है।

(v) अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग आयोग 1953—इस आयोग का कार्य खादी, तेल, साबुन दियासलाई, ताड़ गुड़, मधुमक्खी पालन की विकास योजनाएँ बनाना व विकास के प्रयास करना है राज्य स्तर पर खादी-ग्रामोद्योग मण्डल विकास कार्यों में रत हैं।

(vi) नारियल जटा बोर्ड 1954—इस बोर्ड का कार्य नारियल जटा से निर्मित वस्तुओं का प्रचार करना व इस उद्योग के विकास का कार्य करना आदि है। इस बोर्ड ने केरल में एक अनुसंधान संस्थान स्थापित किया है।

(vii) भारतीय दस्तकारी विकास निगम—इस निगम की स्थापना 1958 में दस्तकारी उद्योग के उत्पादन को व्यापारिक आधार पर संगठित करने, उत्पादन के विपणन की व्यवस्था करने व रोगरों को आधुनिक औजारों के प्रयोग के लिए प्रेरित करने तथा दस्तकारी उद्योग के विकास के लिए की गई है।

3 राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Industries Corporation)

1955 में 10 लाख रुपये की पूँजी से इस निगम की स्थापना की गयी। यह निगम (i) लघु उद्योगों की वित्त व्यवस्था करता है, (ii) शिल्पिक व आर्थिक

सहायता देता है, (iii) बडे तथा छोटे उद्योगो मे समन्वय स्थापित करता है ताकि वे एक दूसरे के पूरक के रूप मे काम कर सकें, (iv) केन्द्र व राज्य सरकारो से माल का आर्डर प्राप्त करना व समुचित हिस्सा दिलाना तथा (v) अन्य सस्थाओ द्वारा दिये गये ऋणो की गारन्टी करना आदि कार्य करता है।

4. लघु उद्योग बोर्ड (Small Industries Board)

इस बोर्ड की स्थापना 1954 मे की गई। यह लघु उद्योगो के विकास की योजनाएँ बनाकर उन्हे कार्यान्वित करता है तथा लघु उद्योगो को प्राविधिक व वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है।

5. लघु उद्योगो की तकनीकी सहायता के क्षेत्र मे प्रयास

लघु एव कुटीर उद्योगो को तकनीकी सहायता प्रदान करने के क्षेत्र मे भी काफी प्रगति हुई है जैसा कि निम्न तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं—

(i) केन्द्रीय लघु उद्योग सस्थान की स्थापना की गई है जो सेवा सस्थानो व प्रसार केन्द्रो क माध्यम से प्रशिक्षित व्यक्तियो की व्यवस्था करता है।

(ii) लघु उद्योग सेवा सस्थाएँ—अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन दल 1954 की सिफारिश पर दिल्ली, मद्रास, बम्बई व कलकत्ता मे चार लघु उद्योग सेवा सस्थायें स्थापित की गई हैं। ये सस्थायें लघु उद्योगो की उत्पादन विधियो, कच्चे माल, मशीनो को खरीददारी, बिक्री व प्रबन्ध मे सुधार तथा पूँजी प्राप्त करने मे सहायता देती हैं। इस समय लगभग 19 लघु उद्योग सेवा सस्थाएँ हैं।

(iii) औद्योगिक विस्तार सेवा (Industrial Extension Service)—लघु उद्योगो को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए उपर्युक्त सेवा सस्थाओ के अतिरिक्त 16 बड़ी विस्तार सेवा सस्थाए, 6 शाखा सस्थाए तथा 65 विस्तार, उत्पादन तथा प्रशिक्षण केन्द्र कार्य कर रहे हैं।

(iv) क्षेत्रीय तकनीकी सस्थान—देश म लघु उद्योगो को तकनीकी एव प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार के बारे मे सुझाव के लिए चार क्षेत्रीय तकनीकी सस्थान भी खोले गये हैं।

(v) ग्रामोद्योग अनुसधान सस्थान की स्थापना लघु उद्योगों व ग्रामीण उद्योगो मे तकनीकी अनुसधान करने के लिए की गई है।

(vi) आविष्कार प्रोत्साहन मण्डल—श्रमिकों व कारीगरों को लघु व ग्रामीण उद्योगो मे नये नये तकनीकी आविष्कार मे प्रोत्साहन देने के लिए यह मण्डल इनाम व आर्थिक सहायता देता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम तथा लघु उद्योग बोर्ड भी तकनीकी एव प्राविधिकी सहयोग प्रदान करने को तत्पर रहते हैं।

6 जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना
(Establishment of District Industrial Centres)

1977 की नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत लघु एव कुटीर उद्योगो को सभी

प्रकार की सहायता, वित्तीय, तकनीकी, कच्चा माल, विक्रय आदि एक ही स्थान पर जिला स्तर पर ही प्रदान करने के लिए 1979-80 तक देश मे 460 जिला औद्योगिक केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई। प्रथम वर्ष मे केवल 160 औद्योगिक केन्द्र स्थापित करने का विचार था किन्तु अधिक उत्साह के कारण 346 औद्योगिक केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं और इन्होंने कई औद्योगिक इकाइयो की स्थापना एव सचालन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1979–80 तक देश मे 460 औद्योगिक केन्द्र खोलने से लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास को काफी बल मिलेगा।

1979–80 मे ये 91 हजार नई औद्योगिक इकाइया स्थापित करेंगे।

7. लघु एवं कुटीर उद्योगो को वित्तीय सहायता

लघु एव कुटीर उद्योगो को उत्पादन तथा विकास के लिए आसान शर्तों पर यथासम्भव अधिकाधिक वित्तीय सहायता प्रदान करने का प्रयास किया गया है जिनमे निम्न उल्लेखनीय हैं —

(i) सरकारी सहायता—सरकार लघु एव कुटीर उद्योगो को राजकीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत ऋण एव अनुदान देती है। द्वितीय एव तृतीय योजना के अन्तर्गत सरकार ने क्रमश 13 करोड रु० तथा 17 करोड रु० की वित्तीय सहायता दी। अब यह राशि बढकर 50 से 60 करोड रु० वार्षिक हो गई है।

(ii) राज्य वित्त निगमो द्वारा सहायता—लघु एव कुटीर उद्योगो को दीर्घकालीन ऋण देने के लिए 19 राज्य वित्त निगमो की स्थापना की गई है। जहा 1966–67 मे वित्त निगमो ने लघु एव कुटीर उद्योगो को 25 3 करोड रु० के ऋण दिये वहा 1977–78 मे यह राशि 166 करोड हो गई। जून 1978 तक इन निगमो ने कुल 954 करोड रु० के ऋण स्वीकृत किये हैं और उसमे से 622 करोड रु० के ऋण शेप थे।

(iii) स्टेट बैंक द्वारा वित्तीय सहायता—स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भी लघु एव कुटीर उद्योगो को वित्तीय सहायता देने म महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 31 दिसम्बर 1978 तक स्टेट बैंक तथा उसके सहायक बैंको द्वारा 1 9 लाख इकाइयो को 591 करोड रुपये का ऋण स्वीकृत किया गया है तथा 1 4 लाख कारीगरो को 16 2 करोड रु० सहायता दी है।

(iv) रिजर्व बैंक द्वारा लघु एव कुटीर उद्योगों को अप्रत्यक्ष सहायता दी जाती है। रिजर्व बैंक साख गारन्टी योजना के तहत लघु उद्योगो को दी जाने वाली ऋण राशि के पुनर्भुगतान की गारन्टी देता है। जून 1978 तक रिजर्व बैंक ने 2711 इकाइयो के लगभग 333 करोड रु० के बकाया भुगतानो को चुकाया है।

(v) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम—लघु उद्योगो को किश्तों पर मशीनें एव कच्चा माल खरीदने के लिए राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम ऋण एव वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

(vi) औद्योगिक विकास बंक का विशेष प्रकोष्ठ—लघु एव कुटीर उद्योगो को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए औद्योगिक विकास बैंक का एक विशेष प्रकोष्ठ (CELL) स्थापित किया गया है।

(vii) व्यापारिक बंक—14 बडे बैंको का राष्ट्रीयकरण करने के पीछे एक उद्देश्य यह रहा है कि लघु एव कुटीर उद्योगो को पर्याप्त ऋण मिल सक। राष्ट्रीयकरण के बाद व्यापारिक बैंक का ऋण भी तेजी से बढ़ रहा है। जहां 1960 मे व्यापारिक बैंको का ऋण शेष 28 करोड था वह बढकर 1966 म 91 करोड रु० तथा 1977 मे बढकर 1222 करोड रु० हो गया है। 1978 मे 5 3 लाख इकाइयो को 1830 करोड रु० का ऋण दिया।

(viii) औद्योगिक सहकारी समितिया भी आसान शर्तों पर कारीगरो को ऋण उधार देती हैं।

8. विपणन व्यवस्था मे सुधार

लघु एव कुटीर उद्योगो के निर्मित माल के विक्रय की उचित व्यवस्था के लिए भी सरकार ने कदम उठाये हैं। 1949 से ही केन्द्र सरकार मे केन्द्रीय कुटीर उद्योग एम्पोरियम की स्थापना की गई जो देश विदेश मे विपणन मे सहायता देता है। इस समय देश मे 255 प्रदशन व बिक्री केन्द्र काय कर रहे हैं। विश्व के प्रमुख नगरो मे भी प्रदर्शन गृह स्थापित किये गये हैं। निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया है। 1953 मे एक केन्द्रीय बिक्री सस्था (Central Marketing Organisation) की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त सरकार लघु उद्योगो के उत्पादनो को सरकारी खरीद मे प्राथमिकता देती है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम केन्द्र सरकार व राज्य सरकारो से आर्डर प्राप्त कर उन्ह लघु उद्योगो का माल बेचता है।

9 लघु उद्योगो के उत्पादन क्षेत्रो का आरक्षण (*Reservation*)

लघु एव कुटीर उद्योगो को बडे एव सगठित उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिये सरकार ने समय-समय पर कुछ वस्तुओ के उत्पादन को पूर्णत लघु एव कुटीर उद्योगो के लिये आरक्षित कर दिया है अत उन वस्तुओ का उत्पादन बडे एव सगठित उद्योग नही कर सकते। जहा 1967–68 म आरक्षित उद्यमों की सख्या 46 थी वह बढकर 1976–77 मे 180 पहुच गई। नई औद्योगिक नीति की घोषणा के समय 324 नये उद्यमो को आरक्षण प्रदान करने से जनवरी 1977 मे आरक्षित उद्यमो की सख्या 504 हो गई। उसके बाद म और वृद्धि करने से अब यह सख्या 805 से भी अधिक है।

10. बडे उद्योगों पर विशेष कर (CESS) लगाया गया है

लघु एव कुटीर उद्योगो को बडे उद्योगो की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिये बडे उद्योगो के कुछ उत्पादनों पर विशेष कर (CESS) लगाया गया है। इस कर

राशि का प्रयोग लघु एव कुटीर उद्योगो को अनुदान देने या उनके विकास पर व्यय किया जाता है।

11. औद्योगिक बस्तियों की स्थापना

लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास हेतु सरकार ने औद्योगिक बस्तियो की स्थापना की है। योजनाबद्ध विकास के पिछले 28 वर्षों मे लगभग 670 औद्योगिक बस्तिया स्थापित की गई है जिनमे 580 म उत्पादन कार्य चालू है तथा 90 निर्माणाधीन हैं। इन औद्यौगिक बस्तियो के निर्माण पर सरकार ने लगभग 80 करोड रु व्यय किया है जिससे 580 औद्योगिक बस्तिया के 16500 कारखानो मे लगभग 2 5 लाख श्रमिको को रोजगार मिला है और उनमे 500 करोड रु से अधिक मूल्य का वार्षिक उत्पादन होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत मे स्वतत्रता प्राप्ति के बाद लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास हेतु अनेक कदम उठाये गये है। जनता सरकार ने तो देश मे रोजगार वृद्धि एव विकेन्द्रित औद्योगीकरण के लिये लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। अन लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास तेज हुआ है।

पंचवर्षीय योजनाओ मे लघु एवं कुटीर उद्योगो का विकास
(Development of Small & Cottage Industries During the Plans)

विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ का लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास को विशेप महत्व दिया गया है। योजनावद्ध प्रावधान व व्यय इस प्रकार है--

प्रथम पचवर्षीय योजना--प्रथम पचवर्षीय योजना मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिये 43 करोड रु व्यय का प्रावधान था पर वास्तविक व्यय 42 करोड रु हो हुआ है। प्रथम योजनाकाल मे उद्योगो के विकास हेतु विशिष्ट सस्थाएँ स्थापित की गई। कर्वे समिति की नियुक्ति की गई जिसमे भावी विकास के सुझाव दिये गय। इस योजनाकाल म लघु उद्योगो की वित्तीय व्यवस्था पर ध्यान दिया गया। वड उद्यागो म प्रतिस्पर्द्धा म लघु उद्यागो का संरक्षण देने के लिये व्यवस्था की गई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना—इस योजना मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिए 200 करोड रु व्यय का प्रावधान किया पर वास्तविक व्यय 180 करोड़ रु हुआ। इस अवधि म कर्वे समिति के सुझाव का कार्यान्वित किया गया। तकनीकी व प्रौद्योगिक सहायता के लिए औद्योगिक सवा सस्थायें व उद्योग विस्तार सेवा योजनायो को बढाया गया। 66 औद्योगिक बस्तियो का निर्माण किया। 1961 तक देश मे 3 8 लाख अम्बर चर्खे वितरित किये। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना की गई तथा चार सहायक निगम बनाये गये। 1960-61 मे सरकार द्वारा लघु उद्योगो से 9 5 करोड रु का माल खरीदा था।

तृतीय पंचवर्षीय योजना मे लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास कार्यक्रम पर 241 करोड रु व्यय किया गया। इस अवधि मे बडे और छोटे उद्योगो के परस्पर मिले जुले उत्पादन कार्यक्रमो को बढावा दिया। राज्य वित्त निगमो की स्थापना की गई। रिजर्व बैंक ने गारन्टी योजना प्रारम्भ की। इस योजना मे 300 नयी औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया।

तीन वार्षिक योजनाओं मे लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास पर 144 करोड रु व्यय किया गया जिसस सभी क्षेत्रो मे प्रगति हुई।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे भी लघु एव कुटीर उद्योगो पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस योजना मे इनके विकास व्यय पर 293 करोड रु व्यय करने का प्रावधान थ।। इस विकास व्यय से सभी प्रकार के लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास की ओर ध्यान दिया गया। 18 15 करोड रु व्यय से 147 औद्योगिक बस्तियो की स्थापना की गई। ग्रामीण उद्योगो के विकास कार्यक्रमो पर 5 1 करोड रु तथा शक्ति सचालित करघो के विकास पर 43 करोड रु व्यय किये जाने थे।

पाँचवीं योजना—इस योजना मे भी गरीबी हटाने तथा आर्थिक विषमता कम करने के उद्देश्य से लघु एव कुटीर उद्योगो की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र मे उनके विकास पर 535 करोड रु का प्रावधान था। किन्तु इसकी मध्यावधि समाप्ति के समय 1977-78 तक 387 8 करोड रु व्यय किये जा चुके हैं। 21–सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत 1 60 लाख लघु उद्योग खोले जाने थे जिनमे से 1 23 लाख लघु उद्योग ग्रामीण क्षेत्रो मे खोले जाने थे।

भारत मे लघु उद्योगो की वर्तमान स्थिति[1] एवं छठी योजना

अभी हाल ही मे लघु उद्योग विकास सगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश मे इस समय पजीकृत लघु उद्योग इकाइयों की सख्या लगभग 5 लाख है जिनमे लगभग 1850 करोड रु की पूंजी लगी हुई है। 1978 मे इनके उत्पादन का कुल मूल्य 7200 करोड रु है जबकि 1972 मे लघु उद्योगो मे विनियोजित पूंजी 1054 करोड रु थी और उत्पादन का मूल्य 2900 करोड रु था। औद्योगिक उत्पादन मे लघु उद्योगो का लगभग 40% भाग है। इन लघु उद्योगो मे सगठित उद्योगो के मुकाबले कही अधिक रोजगार क्षमता है। फैक्टरी मे 20 लाख लोग रोजगार मे हैं जबकि फैक्टरी क्षेत्र मे 155 लाख लोग काम पर लगे हुए हैं। पिछले वर्षों मे सरकारी प्रयासो से नये साहसी वर्ग का विकास हुआ है और 2 लाख नई औद्योगिक इकाइया स्थापित हुई हैं।

निर्यात प्रयासो मे भी लघु उद्योगो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जहाँ 1971-72 मे लघु-उद्योग क्षेत्र का निर्यात 155 करोड रु था वह 1977-78

1. Source—Financial Express Feb 20, 1977 Page 1, Col 6-7.

म बढकर 800 करोड र हो गया है जो कि कुल निर्यात मूल्य का लगभग 15% भाग है।

हाथ करघो, शक्ति सचालित करघो व खादी आदि का सम्मिलित सूती कपडे का उत्पादन 1968-69 के 358 करोड मीटर से बढकर 1978-79 मे 410 करोड मीटर तथा कच्चे रेशम का उत्पादन 23 लाख किलोग्राम से बढकर 33 लाख किलोग्राम हो गया है। ग्रामीण उद्योग परियोजनाओ मे उत्पादित वस्तुओ का उत्पादन 1968-69 मे 22 करोड रु से बढकर अब 100 करोड रु से भी अधिक होने का अनुमान है।

छठी पचवर्षीय योजना—सुनियोजित रूप मे रोजगार प्रदान करने के लिये इस क्षेत्र को बहुत ऊँची प्राथमिकता दी जायेगी। इसके लिये विभिन्न मोर्चो पर काम होगा जिनमे नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत आरक्षण 504 उद्योगो के लिये कर दिया गया है। अब यह सख्या 807 है। उत्पादन शुल्क मे भी राहत दी जायगी। योजना के अन्त तक सभी जिलो मे औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये जायेंगे। पर्याप्त एव प्रभावी ऋण व्यवस्था की जायेगी। तकनीकी सहायता, विपणन व्यवस्था एव अन्य सुविधाये उपलब्ध करने तथा विकास हेतु योजनाकाल मे 1410 करोड र व्यय का प्रावधान है जो पाचवी योजना के व्यय के मुकाबले 3 गुना है।

लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के सुझाव

यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं फिर भी अनेक कमियाँ हैं अत उन कठिनाइयो को दूर करने के लिये निम्न सुझाव हैं—

1 **बडे व छोटे उद्योगो मे सहयोग**—दोनो मे प्रतिस्पर्द्धा समाप्त करने के लिये दोनो के उत्पादन क्षेत्र निर्धारित कर एक दूसरे के पूरक बनाने से समस्या हल हो सकती है।

2 **तकनीकी सुधार**--लघु एव कुटीर उद्योगो मे नवीनतम आधुनिक औजारों को प्रोत्साहन देना चाहिये इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिए।

3 **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार**—तकनीकी सुधार के लिए प्रशिक्षण की विस्तृत सुविधायें होनी चाहिये। यद्यपि पोलिटेकनिक कालेज खोले गये हैं पर आधुनिक विधियो की जानकारी के लिए और अधिक सुविधाएँ दी जा सकती हैं।

4 कच्चे माल की पूर्ति करने के लिये सरकार के उद्योग विभाग को सहायता करनी चाहिय तथा आयातित कच्चे माल मे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सहकारी समितियो के निर्माण से भी कच्चे माल की पूर्ति को सुविधाजनक बनाया जा सकता है।

5. **वित्त सम्बन्धी सुविधायें**—यद्यपि पिछले 27–28 वर्षों में लघु एव कुटीर उद्योगो की वित्त व्यवस्था के काफी प्रयास हुए हैं पर उनकी कुल आवश्यकता को

देखते हुए ऋण अपर्याप्त हैं। उन्हें महाजनों के चगुल मे फसना पड़ता है अत. सहकारिता व व्यापारिक बैंकों के मार्फत अधिक साख उपलब्ध की जानी चाहिये।

6. अनुसंधान व सर्वेक्षण के द्वारा भावी विकास का मार्ग निश्चित किया जा सकता है। समस्याओं के मूल कारणों का पता लगाया जाकर आवश्यक सुधार किये जा सकते हैं।

7. मशीनों व औजारों की पूर्ति किश्त खरीद पद्धति द्वारा की जानी चाहिये। देश मे कारीगरो को आधुनिक मशीनो की खरीद के लिए अनुदान व आसान शर्तों पर ऋण दिये जाने चाहियें ताकि वे रूढिवादी पद्धतियो के स्थान पर आधुनिक मशीनो के द्वारा उत्पादन मे प्रेरित हो।

8 सुसंगठित बिक्री व्यवस्था—कारीगरो को अपने उत्पादन का उचित मूल्य दिलाने तथा बिक्री बढाने के लिए देश विदेश मे जनता की रुचि बढाने के लिए बिक्री केन्द्र खोले जाने चाहियें। सहकारी बिक्री समितियां सगठित की जानी चाहियें तथा सरकार को खरीद मे पहल करनी चाहिये।

9 अन्य सुझाव (i)इसके अतिरिक्त लघु एव कुटीर उद्योगो के लिए उत्पादन क्षेत्र सुरक्षित कर उन्हे बड़े उद्योगो की प्रतिस्पर्द्धा से बचाया जा सकता है। (ii)नई-नई डिजाइनो को प्रोत्साहन देना चाहिये।(iii) लघु एव कुटीर उद्योगों के उत्पादन को स्थानीय करो व अन्य करो से मुक्ति प्रदान की जानी चाहिये। (iv) सहकारी औद्योगिक उत्पादन समितियो के गठन को प्रोत्साहन देना चाहिये।

इस प्रकार अगर लघु एव कुटीर उद्योगो की कठिनाइयो का निराकरण किया गया तो उनका तेजी से विकास होगा, रोजगार बढ़ेगा, समाजवाद का मार्ग प्रशस्त होगा और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के निर्माण मे सहायता मिलेगी। देश मे उत्पादन अभाव व बढ़ते मूल्यों की समस्या का समाधान सम्भव होगा।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 भारत के लघु एव कुटीर उद्योगो के महत्व को स्पष्ट कीजिये तथा उनके विकास के प्रयत्नों की विवेचना कीजिये।

(संकेत :—प्रथम भाग मे अर्थ बताकर महत्व देना है और दूसरे भाग मे विकास के प्रयत्नो की विवेचना करना है।)

2 पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिये किये गये प्रयत्न कहाँ तक पर्याप्त हैं? अपनी ओर से भी सुझाव दीजिये।

(संकेत :—पचवर्षीय योजनाओ मे किये गये प्रयत्नो को शीर्षकानुसार दीजिए तथा अन्त मे सुझाव देना है।)

3. भारत के लघु एव कुटीर उद्योगो की क्या-क्या समस्यायें है और उन्हें दूर करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद किये गये प्रयत्नो का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।

(संकेत :—मुख्य समस्याओं का वर्णन देकर सरकार द्वारा समस्याओं के निराकरण के लिए किये गये प्रयत्नों का विवेचन करना है।)

4. भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिये तथा इनके पुनरुत्थान के प्रयत्नों का विवेचन कीजिये।

(संकेत :—ब्रिटिश शासन-काल में लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन के कारण बताकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उनके विकास के लिए किए गये प्रयत्नों का उल्लेख कीजिये।)

13

भारतीय विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा तथा व्यापारिक नीति की प्रवृत्तियां

(Trends in the Composition & Direction of Foreign Trade & Commercial Policy)

दो या दो से अधिक राष्ट्रो के बीच व्यापार क्रिया को विदेशी व्यापार कहा जाता है और यह प्रक्रिया देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। आज एक देश सभी वस्तुओ के उत्पादन की क्षमता रखते हुए भी तुलनात्मक लागत लाभ उठाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी व्यापार से लाभान्वित होने के लिए विदेशी व्यापार का सहारा लेता है। विकासशील राष्ट्रो मे आर्थिक समृद्धि के लिए विदेशी व्यापार मे वृद्धि तथा नियन्त्रण की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है ताकि उन्हे विदेशी भुगतान सकट का सामना कम करना पडे।

विदेशी व्यापार मे भारत का अतीत गौरवपूर्ण रहा। भारत शताब्दियो तक अपनी कलापूर्ण वस्तुओ, कारीगरो की उच्च किस्म तथा नमूनो की वस्तुओ के निर्यात से भारतीय जनता की समृद्धि और भौतिक कल्याण मे वृद्धि करता रहा। पर अठाहरवी शताब्दी मे पश्चिमी राष्ट्रो मे औद्योगिक क्रान्ति, भारत मे ब्रिटिश शासन का उदय और उसकी दृढतापूर्ण कठोर नीति हमारे उद्योगो के पतन के लिए निर्यातो मे बाधा बनी। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ मे 1940–41 मे भारत से 187 करोड रुपये का निर्यात तथा भारत मे 157 करोड रुपये का आयात होता था। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश का विभाजन होने, खाद्यान्न के अभाव तथा विकास कार्यो के लिए पूंजीगत सामान के आयात से व्यापार सन्तुलन जो पहले प्रायः पक्ष मे रहता था, विपक्ष मे रहने लगा। यहां तक कि 1949 तथा 1966 मे मुद्रा का अवमूल्यन करना पडा। 1957 मे देश के सामने भारी विदेशी विनिमय सकट उत्पन्न हो गया। अब भी विदेशी व्यापार मे घाटा अधिक है। भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति एव समस्याओ के अध्ययन के लिए उसकी विशेषताओ की जानकारी आवश्यक है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएं (Salient Features of Foreign Trade of India Since Independence)

15 अगस्त, 1947 को भारत विदेशी परतन्त्रता से मुक्त हो अपने भाग्य का

निर्माता बना। देश मे योजना-बद्ध विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। अतः देश के विदेशी व्यापार मे मात्रा, प्रकृति, बनावट, दिशा आदि मे अनेक नई प्रवृत्तियो का प्रादुर्भाव हुआ है। ये विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1 विदेशी व्यापार मात्रा मे वृद्धि—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के विदेशी व्यापार मे मात्रा व मूल्यो दोनो की दृष्टि से तेजी से वृद्धि हुई है। 1940-41 मे भारत का कुल विदेशी व्यापार 344 करोड रुपये था वह बढकर 1965–66 मे 2,254 करोड रुपये तथा 1970–71 मे 3,158 करोड रु तथा 1973–74 मे 5450 करोड रु होने का अनुमान है जबकि 1978–79 मे विदेशी व्यापार 12322 करोड रु होने का अनुमान है। निम्न तालिका विदेशी व्यापार मे निरन्तर वृद्धि का स्पष्टीकरण करती है—

भारत का विदेशी व्यापार (1950–79)

(करोड रुपये)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल विदेशी व्यापार	व्यापार शेष
1950–51	650 4	600 7	1251 0	– 49 8
1960–61	1122 5	642 1	1764 6	– 480 4
1970–71	1634 20	1535 2	3169 4	– 99 0
1975–76	5265 0	4043 0	9308 0	–1222 0
1976–77	5074 0	5143 0	10217·0	+ 69 0
1977–78	6066 0	5373 0	11439 0	– 693 0
1978–79	6703 9	5618 0	12322 1	–1085 7

2 आयात निर्यात दोनो मे वृद्धि—भारत के निर्यातो एव आयातो का मूल्यों निरन्तर बढा है। देश मे तीव्र औद्योगीकरण के कारण बडी मात्रा मे पूंजीगत सामान का आयात किया जाने से व खाद्यान्नो का भी आयात करने की अनिवार्यता से आयातो मे निर्यातो से प्राय अधिकता का रुख रहा। अब निर्यातो मे तेजी से वृद्धि व आयातो मे कमी की प्रवृत्ति है। जहाँ 1950–51 मे आयात 650 करोड रु, 1973–74 मे 2925 करोड रु था वह 1978–79 मे 5618 करोड रु हो गया। इसी प्रकार

निर्यातो का मूल्य 1950-51 मे 601 करोड रु से बढकर 1973-74 मे 2523 करोड रु तथा 1978-79 मे 6704 करोड रु हो गया है।

3 व्यापार सन्तुलन प्रतिकूलता मे वृद्धि—द्वितीय विश्व-युद्ध तक भारत का व्यापार शेष भारत के पक्ष मे रहता था। 1940-41 मे 30 करोड रु. पक्ष मे था। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद व्यापार सन्तुलन विपक्ष मे रहने लगा और तीव्र गति से वृद्धि के कारण विदेशी विनिमय को सकटो का सामना करना पड रहा है। 1950-51 मे व्यापार का घाटा केवल 49 8 करोड रु था वह 1957-58 में बढकर 640 करोड रु हो गया। 1966-67 में यह घाटा अपनी चरम सीमा 922 करोड तक पहुच गया। अब घटने का रुख है। 1968-69 में व्यापार शेष 552 4 करोड रु विपक्ष में था। 1969-70 मे केवल 154 0 करोड रु. रहा है। 1970-71 मे केवल 98 97 करोड रु विपक्ष मे रहा। 1973-74 मे पुन: बढकर 402 करोड रु, तथा 1975-76 मे 1222 करोड रु था, अब 1978-79 में पुन घाटा 1086 करोड रु हो गया है।

4 व्यापार की संरचना या बनावट (Composition) मे परिवर्तन—ब्रिटिश शासन काल मे आयात मे निर्मित माल का 84% होता था तथा निर्यात मे कच्चा माल तथा खाद्यान्न आदि परम्परागत वस्तुओं का 70% भाग था। अब उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। आयात में खाद्यान्न, मशीनरी तथा अन्य पूंजीगत माल का बाहुल्य होता है। निर्यात मे यद्यपि अब भी परम्परागत वस्तुओ का भाग 40% है पर लोह-इस्पात, इन्जीनियरिंग सामान, सूखे मेवे तथा चमडे का निर्मित माल, बिजली के पखे, सिलाई की मशीन, रेल के इन्जन आदि के निर्यात मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। यह आगे स्पष्ट किया जायगा। पहले भारत खाद्यान्न का निर्यातक था पर अब आयातक है और खाद्यान्न का आयात प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय योजना काल मे क्रमश 595 करोड रु, 850 करोड रु तथा 1,150 रुपये रहा। चतुर्थ योजना मे भारत खाद्यान्न मे आत्मनिर्भर हो जाता पर अकाल के कारण 1973-74 मे 170 करोड रु के खाद्यान्नो का आयात करना पडा। निर्यात मे विविधता आई है। जहाँ 1950-51 मे केवल 100 प्रकार की वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं अब लगभग 3 हजार प्रकार की वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं। प्रमुख आयात-निर्यात मदें आगे दी गई हैं।

5. व्यापार की दिशा (Direction) मे परिवर्तन—स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमारे विदेशी व्यापार से इगलैण्ड को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। अब अमेरिका का स्थान ऊँचा हो गया है। अब हमारा विदेशी व्यापार पश्चिमी यूरोपीय देशो व साम्राज्यवादी देशो से भी तेजी से बढ रहा है। जहाँ द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व अमेरिका का हमारे आयात-निर्यात मे क्रमश 6 और 9 प्रतिशत भाग था वह बढ कर 1971-72 मे क्रमश 35% तथा 18% हो गया। रूस का भाग 1948-49 मे नगण्य था वह 1971-72 मे क्रमश 6 और 11 प्रतिशत हो गया। अब हमारे विदेशी

भारत के विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of Foreign Trade of India)

देश	आयातों का प्रतिशत वितरण (Percentage Distribution)					निर्यातों का प्रतिशत वितरण (Percentage Distribution)				
	1938–39	1951–52	1960–61	1970–71	1976–77	1938–39	1951–52	1960–61	1970–71	1976–77
ब्रिटेन	29 9	17 6	19 0	7 8	5 2	34 3	25 9	26 1	11 1	10 2
अमेरिका	16 3	30 4	28 7	27 7	24 6	8 4	18 1	15 5	13 5	12 9
कनाडा	0 8	2 0	1 8	7 2	4 4	1 3	2 2	2 7	2 1	1 0
फ्रान्स	0 8	1 2	1 9	1 3	3 5	3 8	1 6	1 3	1 2	2 2
प. जर्मनी	10 9	3 0	10 7	6 6	6 7	5 1	1 3	3 0	2 1	3 2
रूस	0 1	0 1	1 4	6 5	5 7	—	0 9	4 4	13 6	10·5
जापान	9 0	2 6	5 3	5 1	6 9	8·7	2 0	5 3	13 3	10 8
बांग्ला देश	—	—	—	—	0 8	—	—	—	0 1	1·2
अन्य सहित कुल योग	100	100	100	100	100	100	100	100	100	100

Source Eastern Economist Page 1383 & 1392 Dec 28, 1973, & 1975-76 from Journal of Industry & Trade, Jan 1977 pp 80-83

व्यापार मे अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस को क्रमश प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त है जैसा कि पृष्ठ 190 पर दी गई तालिका से स्पष्ट है—

इस प्रकार हम देखते हैं कि अब हमारे विदेशी व्यापार मे ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी व फ्रास आदि का महत्व घटा है जबकि रूस जापान व अमेरिका का महत्व निरन्तर बढता जा रहा है। अमेरिका से बागला देश के स्वतन्त्रता सग्राम के समय हमारे सम्बन्ध बिगडने से विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव पडा।

6 विदेशी व्यापार नीतियों मे नये मोड—भारत मे आयात निर्यात नीतियों को देश की विकास नीतियो के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। विदेशी विनिमय सकट से छुटकारा पाने के लिए आयात को कम करने के लिए नियन्त्रणो मे वृद्धि तथा निर्यात मे वृद्धि के लिए प्रोत्साहन की नीतियाँ अपनाई गई हैं। 1970–71 व 1971–72 की आयात नीतियो को उत्पादन निर्यातोन्मुख (Production Cum Export-Oriented) बनाया गया है। यद्यपि विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण तो नही किया गया पर उसके सरकारीकरण का सिलसिला 1969–70 से लागू हो गया है, क्योंकि 1969–70 मे राज्य व्यापार सस्थाओ को 22 वस्तुओ के आयात का एकाधिकार प्रदान किया गया था। 1970–71 मे 38 वस्तुओ के और समावेश से 60 वस्तुओ के आयात का एकाधिकार पाप्त हो गया। सरकार द्वारा राज्य व्यापार निगम के अन्तर्गत एक अलग केन्द्र की स्थापना राज्य अभिकरणो के बढते प्रभाव का द्योतक है। नई आयात नीतियो मे कुछ और वस्तुओ का सरकारी सूची मे समावेश हो जाने से अब 210 वस्तुओ के आयात मे सरकार को एकाधिकार प्राप्त हो गया है। 1977–78 की आयात नीति के अनुसार जो उपक्रम अपने उत्पादन का 20% निर्यात करते थे उन्हे अपने लिए आयातों तथा वित्तीय सहायता मे वरीयता दी जायेगी। लोह-इस्पात के निर्यात को छूट दी गई है।

7 निर्यात सम्वर्द्धन प्रयत्नो में वृद्धि—विकास कार्य-क्रमों के लिए विदेशी विनिमय साधन जुटाने तथा विदेशी विनिमय सकट की समस्याओ का समाधान करने के लिए निर्यात वृद्धि के लिए करो मे रियायतें भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन, निर्यात संस्थाओ की स्थापना, तथा आवश्यक सुविधाओ की समय समय पर घोषणा की गई है। निर्यात सम्वर्द्धन के लिए किये गये प्रयत्नो का उल्लेख आगे विस्तार से दिया गया है। 1978–79 की आयात नीति मे निर्यात सम्बन्धी अनेक सुविधाओ का विस्तार किया है। 1979–80 म और सुविधाएँ दी हैं।

8 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भारत के भाग मे कमी—विश्व के विदेशी व्यापार मे 1950–60 की अवधि मे दुगुनी वृद्धि हुई है। भारत का 1950–51 मे विदेशी व्यापार मे 2 1% भाग था वह घटकर 1960 मे केवल 1 1% ही रह गया। अब यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत का हिस्सा विश्व व्यापार मे केवल 0 6% ही रह गया है। भारत के विदेशी व्यापार मे वृद्धि तो हुई है पर विश्व व्यापार मे इससे कही अधिक वृद्धि हुई है। 1978–79 म विश्व का कुल निर्यात 1300 अरब

डालर था उसमे भारत का निर्यात 8 अरब डालर ही था जो विश्व निर्यात का केवल 0 6% भाग ही है। भारत का स्थान 28 वाँ है।

9 विदेशी व्यापार मे भारतीयकरण—भारत मे विदेशी व्यापार का अधिकाश भाग विदेशी आयात-निर्यात फर्मों, जहाजी कम्पनियो, बीमा कम्पनियों तथा विदेशी विनिमय बैंको के हाथ मे है। अत लाभ उन्हें ही प्राप्त होता है। अब यद्यपि भारतीयकरण करने का कार्य प्रगति पर है पर गति धीमी होने से लाभोपार्जन विदेशियो को हो रहा है।

10 विदेशी व्यापार का केन्द्रीयकरण—भारत के विदेशी व्यापार का लगभग 68% भाग सामुद्रिक मार्ग से होता है। अत विदेशी व्यापार मुख्यत बम्बई, कलकत्ता, मद्रास बन्दरगाहो मे केन्द्रित है। इन बन्दरगाहों पर भीड कम करने के लिए विशाखापट्टनम्, कोचीन और कान्दला बन्दरगाहो को विकसित किया जा रहा है।

भारत के मुख्य आयात
(Principal Imports of India)

भारत के आयातो म पहले निर्मित माल की प्रमुखता थी। अब हमारे मुख्य आयात मशीनें, पूँजीगत सामान लोहा-इस्पात, यानायान उपकरण, रासायनिक पदार्थ तथा अलोह धातुएँ एव खाद्यान्न हैं। आयात की वस्तुओं तथा आयातित देशो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—1978–79 मे पिछले वर्ष के मुकाबले 15% की वृद्धि हुई है।

1 मशीनें बिजली का सामान तथा परिवहन उपकरण—हमारे आयातो मे इस मद का प्रथम स्थान है क्योंकि देश मे औद्योगीकरण की योजनाओ का इनके आयात के बिना क्रियान्वित करना मुश्किल है। 1950–51 मे इनका आयात 91 करोड रुपये का था पर 1965–66 म बढकर 602 करोड रु का हो गया। 1969–70 मे इनका आयात 395 करोड रहा जबकि 1973–74 मे आयात 781 6 करोड रुपये रहा है। 1977–78 म बढकर 1158 करोड रु हो गया है। इन वस्तुओं का आयात ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, जापान, कनाडा से होता है। अब भारत मे चीनी, सीमेंट, बिजली की मशीनें, यातायान उपकरण के उत्पादन मे वृद्धि से भविष्य मे इनके आयात म कमी आयेगी।

2 लोहा-इस्पात—देश मे लोहा-इस्पात की अधिक माग है। यद्यपि तीन लोहा-इस्पात कारखानो से पूर्ति मे वृद्धि हुई है फिर भी आयात करना पडता है पर अब कमी का रुख है। 1960–61 म खाद्यान्न का आयात 163 करोड रु था वह 1965–66 मे 154 करोड रु तथा 1969-70 मे घटकर 81 करोड रुपये ही रह गया है पर 1973-74 म आयात 249 3 करोड रुपये रहा है जबकि 1977-78 में बढकर 350 करोड रु हो गया है। भारत मे लोहा इस्पात मुख्यत इगलैण्ड, अमेरिका तथा पश्चिमी जर्मनी से मगवाया जाता है।

3 खाद्यान्न एवं खाद्यान्न का सामान—देश में बढती जनसख्या और मानसून

के प्रकोपो के कारण भारत जो विभाजन से पूर्व खाद्यान्न का निर्यातक देश थ
अब आयातक हो गया है। जहाँ 1950–51 मे खाद्यान्न का आयात केवल 99 (
करोड रुपये था वह बढकर 1965–66 मे 507 करोड रुपये हो गया। प्रथम,
द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे क्रमश 595 करोड, 850 करोड तथा
1,150 करोड रुपये के मूल्य का खाद्यान्न आयात किया गया। 1969–70 मे भी
लगभग 261 करोड रुपये के खाद्यान्न का आयात हुआ और 1971–72 मे आयात
केवल 197 करोड रु रहा। 1975–76 मे खाद्यान्न का आयात मूल्य 342 8
करोड रु रहा जबकि 1977–78 मे घटकर 122 करोड रुपये रह गया है।
अमेरिका से गेहू एव चावल, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा अर्जेन्टाइना से गहू और बर्मा
तथा थाइलैंड से चावल आयात करते हैं।

4 खनिज, ईंधन एव अन्य चिकने पदार्थ—इस मद के अन्तर्गत आंशिक
साफ या क्रूड पेट्रोल व मिट्टी का तेल एव चिकने पदार्थों का समावेश करते हैं।
इनका आयात 1950–51 मे केवल 55 करोड रुपये था पर 1965–66 मे आयात
का मूल्य 107 5 करोड रुपये था। अब भारत मे ही खनिज तेल साधनो के विदोहन
में प्रगति से आयात मे कमी होनी थी पर माग बढ जाने के कारण आयात मे वृद्धि
हुई है। 1969–70 मे 96 करोड रुपये व पेट्रोल तथा 41 करोड रुपये के अन्य
सामान आयात हुए। 1973–74 मे इसका कुल आयात मूल्य 560 64 करोड रुपये
रहा। 1977–78 मे आयात 1556 4 करोड रुपये का रहा। पेट्रोल बर्मा, रूस,
ईरान व अमेरिका से आयात किया जाता है।

5 रासायनिक तत्व एव घोल—देश म कृषि एव औद्योगिक विकास के
कारण रासायनिक तत्व एव घोल का महत्व बहुत बढ गया है। इसके अन्तगत रगने
का सामान, दवाइयाँ, उर्वरको का सामान तथा रासायनिक तत्व एव घाल आते है।
1965–66 मे उर्वरको का आयात मूल्य 81 करोड रुपये था वह 1968–69 म
150 करोड रुपये हो गया तथा रासायनिक तत्वो एव घोल का आयात क्रमश 56 5
करोड से बढकर 82 करोड रुपये हो गया। 1977–78 मे रासायनिक उर्वरको
तथा रासायनिक तत्वो एव घोल का आयात क्रमश 338 करोड रुपये तथा
194 4 करोड रुपया रहा। इन वस्तुओ का आयात ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रास, पश्चिमी
जर्मनी तथा जापान से होता है। भारत मे रासायनिक खाद का उत्पादन बढाने से
जहा 1968–69 मे आयात 150 करोड रुपये मूल्य का था वह 1976-77 मे घट-
कर 197·7 करोड रु हो गया जबकि 1977–78 मे 338 करोड र का था।

6 कपास व कच्चा जूट—विभाजन से पूर्व भारत जूट के कच्चे माल का
एकमात्र उत्पादक तथा कपास का निर्यातक था पर ये क्षेत्र पाकिस्तान मे चले जाने
से आयात करना पडता है। पचवर्षीय योजनाओ मे भारत म उत्पादन मे वृद्धि से
आयात पर निर्भरता कम होती जा रही है। जहाँ 1950–51 मे कपास व जूट का
आयात क्रमश. 101 करोड तथा 17·5 करोड रुपये था वह 1968-69 मे घट कर

क्रमश 90 करोड तथा 9 करोड रुपये रह गया है। 1977–78 में ग्रायात मूल्य क्रमश 199 करोड रुपया तथा 4 करोड रुपया ही होने का ग्रनुमान है। कपास का ग्रायात मिस्र ग्रमेरिका, सूडान व पाकिस्तान से तथा जूट का ग्रायात पाकिस्तान से होता है। वैसे हम छोट रेशे की घटिया किस्म की रुई का निर्यात करते हैं पर बढ़िया किस्म की लम्बे रेशे की रुई का ग्रायात करते हैं।

7 ग्रन्य ग्रायात—इसके ग्रलावा भारत ग्रलौह वस्तुएँ (ताबा, सीसा, टिन, रागा, निकल) पशुग्रो की चर्बी, रबर पेपर बोड, कच्चा ऊन ग्रौर हीरे-मोतियो का ग्रायात भी करता है। ग्रलौह धातुग्रो का ग्रायात 1960–61 मे 74 5 करोड रु था वह बढकर 1965–66 मे 108 करोड रु हो गया। 1977–78 मे ग्रायात 100 करोड रुपये होने का ग्रनुमान है। इसी प्रकार 1969-70 मे रबड का ग्रायात 9 7 करोड रुपये था वह घटकर 1977–78 म 7 करोड रुपया रहा। कागज, ग्रखबारी कागज व कागज का निर्मित माल 62 करोड रुपये तथा वनस्पति तेल का ग्रायात 712 करोड रुपये रहा क्योकि देश म बढते भावो के नियन्त्रण के लिये ग्रधिक ग्रायात हुग्रा।

भारत के प्रमुख ग्रायात (Imports 1950–78)

(मूल्य करोड रुपये मे)

मद	1950–51	1960–61	1970–71	1973–74	1977–78
1 पूंजीगत सामान मशीनें, बिजली का सामान, परिवहन सामान इत्यादि	91 4	560 5	409	781 6	1158
2. लौह इस्पात	20	193	147	249 3	350
3 खाद्यान्न एव खाद्यान्न सामग्री	99 5	285 7	213	352 5	122
4 पेट्रोलियम व ग्रन्य चिकने पदार्थ	55 0	109 0	136	560 64	1556
5 कपास	100 8	128 8	98 8	52 05	199
6 जूट	27 5	12 0	1 1	1 2	4
7 उवरक एव उर्वरक सामग्री	12 4	23 4	61 0	162 8	338
8. ग्रलौह धातुएँ	28 3	74 5	119 6	140 2	100
9 रासायनिक तत्व एव घोल	9 4	61·9	68 0	109 6	194
ग्रन्य सहित कुल योग	650 3	1795 0	1625 2	2955·7	6066 0

भारत के प्रमुख निर्यात
(Principal Exports of India)

जिस प्रकार भारत के आयात मे कुछ ही वस्तुओ की प्रधानता है ठीक उसी प्रकार हमारे निर्यात व्यापार मे भी परम्परागत वस्तुओ की प्रधानता है। चाय, सूती कपडा तथा जूट मे निर्मित माल का हमारे निर्यात में अब भी लगभग 40 से 43 प्रतिशत भाग है। अब इन्जीनियरिंग सामान, लोहा, इस्पात, रसायन व मछली आदि वस्तुओ के निर्यात मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है और विविधता दृष्टिगोचर हुई है पर जूट के निर्मित माल मे चाय तथा काजू हीरे-मोती व तिलहनो के निर्यात मे कमी का रुख है। हमारे निर्यातो म वृद्धि के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है परिणामस्वरूप निर्यात मे वृद्धि हो रही है। 1978-79 मे निर्यात पिछले वर्ष की तुलना मे 6 5% बढ़े।

1 जूट से निर्मित माल—इसके अन्तर्गत टाट, चटाइया, बोरे, गलीचे व झुलली आदि हैं। 1948-49 मे विश्व व्यापार मे जूट के निर्मित माल के निर्यात मे भारत का हिस्सा 97% था पर अब प्रतिस्थापन वस्तुए काम मे देशो की प्रतिस्पर्द्धा से हमारे निर्यात कम हो रहे हैं। जहाँ 1950-51 मे जूट के निर्मित माल का मूल्य 113·8 करोड रुपये था वह 1965-66 के उच्चतम बिन्दु 288 करोड रुपये पहुंच गया। 1970-71 मे केवल 190 4 करोड रु० ही रहा जबकि 1976-77 मे निर्यात बढ़कर 200 8 करोड रुपये हो गया है। जूट के निर्मित माल के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने निर्यात शुल्क जो 750 रुपये प्रति टन था घटा कर अब 200 रुपये प्रति टन कर दिया है तथा अभिनवीकरण मे सहायता दे रही है। हमारे मुख्य ग्राहक सयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अर्जेन्टाइना, कनाडा, वर्मा, पीरू, क्यूबा, थाईलैंड आदि हैं। 1977-78 मे निर्यात 245 करोड रुपये से अधिक थे।

2 चाय व काफी—चाय हमारे निर्यात की दूसरी सबसे बडी मद है। भारत का विश्व व्यापार मे चाय मे पहले 50% भाग था अब घट कर 40% ही रह गया है। अब हमारे प्रतियोगी के रूप मे लका, अफ्रीका, इण्डोनेशिया आदि हैं। चाय का निर्यात अब देश मे ही खपत बढने से घट रहा है। जहाँ 1950-51 मे निर्यात 80 4 करोड रुपये था वह अपने रिकार्ड बिन्दु पर (1962-63 मे) 203 करोड रु० पहुच गया तब से निरन्तर घट रहा है। 1967-68 मे निर्यात मूल्य 180 करोड रुपये था वह घट कर 1969-70 मे 124 5 करोड रुपये ही रह गया था पर 1973-74 और 1977-78 मे यह बढकर क्रमश 146 तथा 555 करोड रुपये होने का अनुमान है। कॉफी का निर्यात बढा है। 1968-69 मे निर्यात 18 करोड रुपये था जबकि 1977-78 मे निर्यात 191 करोड रुपये से कुछ अधिक है। हमारी चाय के क्रेता राष्ट्र—ब्रिटेन, अमेरिका, मिस्र, कनाडा, आयरलैंड, सूडान, आस्ट्रेलिया,

पश्चिमी जर्मनी तथा नीदरलैंड आदि हैं। ब्रिटेन हमारे कुल निर्यात का लगभग $\frac{2}{5}$ भाग चाय खरीदता है।

3 सूत एवं सूती वस्त्र—इस मद का हमारे निर्यात व्यापार मे तीसरा स्थान है। कुछ वर्षों मे निर्यात के गिरने की प्रवृत्ति रही पर 1969–70 मे फिर वृद्धि हुई है। देश मे खपत बढने तथा सुपरफाइन व बढ़िया किस्म के कपडे के उत्पादन की कमी से तो निर्यात कम हुए हैं पर साथ-साथ विदेशी बाजारो मे जापान, पाकिस्तान, हागकाग, पुर्तगाल व स्पेन की प्रतिस्पर्द्धा भी महत्वपूर्ण घटक रही है। 1950–51 मे हमारे सूत तथा सूती वस्त्रो का निर्यात 138 4 करोड रुपये था वह घटकर 1965–66 मे 90 करोड रुपये ही रह गया। विभिन्न निर्यात प्रयत्नो के फलस्वरूप 1973–74 मे निर्यात बढकर लगभग 265 6 करोड रुपये रहा जबकि 1977–78 मे निर्यात 457 करोड रुपये रहा है।

भारत के कपडो व सूत के सामान के मुख्य ग्राहक ब्रिटेन, लका, बर्मा, ग्रास्ट्रेलिया, मलाया, अदन, इन्डोनेशिया, सूडान, इथोपिया, नाइजेरिया तथा न्यूजीलैंड आदि हैं। निर्यात वृद्धि के लिए निर्यात परिषद् भी प्रयत्नशील है तथा ठहरने के लिए लागत मे कमी तथा हैण्डलूम वस्त्रो के निर्यात को बढाने पर जोर दिया जा रहा है।

4 कच्चा लोहा—भारत मे उच्चकोटि के लोहे के भण्डार हैं पर देश मे ग्रान्तरिक माग कम है। यद्यपि अब नये कारखानो की स्थापना से माग मे वृद्धि हो रही है। भारत से कच्चा लोहा जापान को निर्यात किया जाता है। 1960–61 मे निर्यात मूल्य 34 करोड रुपये था वह 1970-71 मे बढकर 127 3 करोड रुपये हो गया है पर 1973–74 मे पुन बढकर 132 8 करोड रुपये होगा जबकि 1977–78 मे नियात 241 करोड रुपये रहा।

5 इजीनियरिग सामान—देश मे औद्योगीकरण से अब इजीनियरिंग माल की उत्पत्ति मे वृद्धि हुई है और भारत जो पहले इजीनियरिंग सामान का बडी मात्रा म ग्रायात करता था अब निर्यात करने लगा है। यहां से मशीनरी औजार, साइकिलें, स्टील फर्नीचर मशीन टूल्स सिलाई की मशीनें पखे, डीजल इजन रेलवे वैगन, सीमेंट, मशीनरी तथा ट्रासमीटर मुख्यत दक्षिणी पूर्वी एशिया, दक्षिणी अफ्रीका के विकासशील देशो यूरोप के कुछ देशो तथा रूस को निर्यात किया जाता है। जहा 1965–66 मे केवल 29 करोड रुपये मूल्य के इजीनियरिंग सामान का निर्यात होता था वह 1970–71 मे निर्यात मूल्य बढकर 116 5 करोड रु० हो गया है। 1965-66 के मुकाबले इसके निर्यात मे लगभग 300% की वृद्धि हुई है। केवल एक साल में ही पिछले वर्ष के मुकाबले 30% की वृद्धि उज्ज्वल भविष्य का सकेत है। 1973–74 मे इजीनियरिंग सामान का निर्यात मूल्य बढकर 201 7 करोड रु० हो गया है। 1977–78 मे यह बढकर 617 करोड रु० होने का अनुमान है।

6. काजू व मसाले—इन वस्तुग्रो की ग्राजकल विदेशो मे माग तेजी से बढ रही है। भारत मोजम्बिक तथा टागानिका से कच्चे काजू ग्रायात करता है ग्रौर उन्हे तैयार कर ग्रमेरिका, रूस, पूर्वी एव पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन, कनाडा, फ्रास, जापान, लेबनान तथा नीदरलैंड ग्रादि देशो को निर्यात करता है। 1960–61 मे काजू का निर्यात केवल 29 8 करोड रु० का था वह बढकर 1968–69 मे 61 करोड रु० मूल्य का हो गया पर 1977–78 मे यह 149 5 करोड रु० होने का ग्रनुमान है। मसालो का निर्यात भी मुख्यत उपर्युक्त देशो को होता है। 1965–66 मे निर्यात 36 4 करोड रुपये था वह 1968–69 मे घटकर केवल 25 करोड रुपये रह गया पर 1973–74 मे निर्यात 54 9 करोड रु० था जबकि 1977–78 मे निर्यात बढकर 137 करोड रुपये होने का ग्रनुमान है।

7 लोहा-इस्पात—भारत मे लोहा-इस्पात उद्योग के विकास मे भारत निर्यात करने मे सक्षम हुग्रा है। हमारे यहा से लोहा इस्पात का निर्यात विकासशील राष्ट्रो को होता है वैसे हम ग्रायातक ग्रौर निर्यातक दोनो हैं। 1965–66 मे लोहा इस्पात का निर्यात 19 5 करोड रुपये था वह 1969–70 म बढ कर 87 2 करोड रुपये तक पहुच गया। 1965–66 की तुलना मे 1969–70 म लोहा इस्पात के निर्यात मे 3½ गुनी वृद्धि हुई है। 1977–78 मे निर्यात मूल्य 186 करोड रुपये था।

8 वनस्पति तेल व खली—भारत मे ग्रौद्योगीकरण का प्रभाव तिलहन के निर्यात मे कमी पर तेल ग्रौर खली के निर्यात म वृद्धि का कारण बना। ग्रब भारत से मूगफली, ग्ररण्डी ग्रौर ग्रलसी का तेल व खली ब्रिटेन, बर्मा, इटली, फ्रास, बेल्जियम ग्रादि राष्ट्रो को भेजी जाती है। तेल तथा खली का निर्यात 1960–61 मे क्रमश 8 5 करोड रुपये तथा 14 3 करोड रुपये था, ग्रब 1969–70 मे बढकर क्रमश 11 7 करोड रु० तथा 42 करोड रु० पहुच गया है। 1977–78 मे तेलो का मूल्य घटकर 2 करोड रु० तथा खली का मूल्य 133 करोड रु० रह गया।

9 विविध—इनके ग्रलावा भारत से 93 करोड रु० मूल्य तम्बाकू के उत्पादन का निर्यात इगलैंड, जापान, स्वीडन तथा नीदरलैण्ड को किया जाता है। इसी प्रकार घटिया किस्म की कपास ब्रिटेन तथा जापान को निर्यात की जाती है। मैगनीज ग्रौर ग्रभ्रक का भी नियात 1977–78 मे क्रमश 15 तथा 12 कराड रु० था। मछली तथा मछली की वस्तुग्रो का निर्यात 1965–66 मे केवल 10 5 करोड रु० था वह 1977–78 मे बढकर 174 करोड रु० हो गया है ग्रथात् 12 वर्षों मे इसके निर्यात मे 18 गुनी वृद्धि हुई है। हीरा-पन्नो का निर्यात मूल्य ग्रब 242 करोड रु० है।

रासायनिक तत्वो (Chemicals) के निर्यात म भी हमारा कदम सराहनीय है जहा 1965–66 मे रासायनिक पदार्थों का निर्यात लगभग 18 करोड रुपये था वह 1977–78 मे बढकर 117 करोड रुपये हो गया है। चीनी का नियात भी 1968 69 म 10 2 करोड रुपये से बढकर 1975–76 म 72 5 करोड रु० हो

गया था। सरकार द्वारा देश मे उपयोग हेतु निर्यात 1977–78 मे घटाने से 17 3 करोड रु० मूय की चीनी बाहर भेजी।

इस प्रकार भारत के निर्याता म विविधता आइ है और परम्परागत वस्तुओ के स्थान पर नये उत्पादनो से निर्यात म क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। निर्यातो का स्वरूप विकासोन्मुख है।

भारत के प्रमुख निर्यात (Exports)

(करोड रुपये म)

मद	1950 51	1965-66	1970-71	1977-78
1 जूट का सामान	113 8	182 1	190 4	245
2 चाय (Tea)	80 4	144 4	148 2	555
3 सूत सूती वस्त्र आदि	138 4	90 0	115 0	457
4 चमडा चमडे की वस्तुएँ	26 0	28 5	72 2	248
5 इजीनियरिंग सामान	—	80 0	116 5	617
6 रसायन एव रसायन पदाथ	—	14 4	29 4	117
7 चीनी	0 4	3 2	27 6	17
8 काजू	8 6	23 0	52 0	150
9 खली इत्यादि	0 03	34 3	55 4	133
10 फल आदि	—	—	12 9	40
11 तम्बाकू	—	19 6	၁1 4	117
अन्य सहित कुल याग	600 7	805 6	1535 2	5373 0

भारत मे विदेशी व्यापार की मुख्य समस्याए
(Main Problems of Foreign Trade in India)

भारत के विदेशी व्यापार मे अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। जहा एक ओर निर्यातो की अपेक्षा आयातो मे तीव्र वृद्धि से व्यापार असन्तुलन एव विदेशी विनिमय सकट उत्पन्न हो गया है वहा दूसरी ओर निर्यातो मे वृद्धि की समस्या है। देश मे वस्तुओ की आन्तरिक माग मे वृद्धि, ऊँची उत्पादन लागते, बढती विदेशी प्रतिस्पर्द्धा और सभी राष्ट्रो मे बढती राष्ट्रीयता की कट्टर भावना से सरक्षण नीतियो का अनुसरण नई समस्याओ को जन्म द रहा है। यही नही, नये नये आविष्कारो से प्रतिस्थापन वस्तुओ का निमाण और विकसित देशो म परस्पर व्यापारिक गठबन्धनों के कारण भी विदेशी व्यापार की समस्याएँ बढ रही हैं। भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं—

1 आन्तरिक मांग मे वृद्धि—योजना-बद्ध विकास से देश मे जनसाधारण की क्रयशक्ति मे वृद्धि होने तथा जीवन-स्तर मे वृद्धि की लालसा प्रबल होने स देश मे वस्तुओ की माग तीव्रता से बढी है। इससे निर्यातो के लिए उपलब्ध माल मे कमी हो जाना स्वाभाविक है। क्योकि जब निर्यातको को देश मे ही ऊँचे मूल्य प्राप्त हो जायें तो निर्यात का जोखिम क्यो उठाने लगें। यही कारण है कि भारत मे चाय, चीनी, सूती कपडा, जूते, तम्बाकू तथा वनस्पति का निर्यात घटा है या कम गति से बढा है।

इसके साथ-साथ आन्तरिक मांग मे वृद्धि से आयातो मे भी वृद्धि होती है क्योकि विकासशील राष्ट्रो मे उच्चवग मे उत्कृष्ट उपभोग (Conspicuous Consumption) की प्रवृत्ति प्रबल हाती है। सरकार के द्वारा ऐसे माल के आयात पर नियन्त्रण होने पर भी तस्करी से माल आता है अत आन्तरिक माग म वृद्धि दुहरी समस्या है। निर्यात को हतोत्साहित करती है तथा आयात को प्रोत्साहिन, जो कि विदेशी विनिमय सकट एव व्यापार असन्तुलन को जन्म देती है।

2 निर्यात की कट्टर प्रतिस्पर्द्धा—विश्व व्यापार म हमारी परम्परागत वस्तुओ के नियात म नये विकासशील राष्ट्र हमारी प्रतिस्पद्धा कर रहे है जैसे चाय मे लका, पूर्वी अफ्रीका तथा चीनी कट्टर प्रतिद्वन्द्वी हैं। जूट म पाकिस्तान, सूती कपडे म जापान, चीन, पाकिस्तान, मैगनीज म ब्राजील, अफ्रीका व रूस हैं। इस प्रतिस्पर्द्धा मे भारत तभी टिक सकता है जबकि उसकी निर्मित वस्तुओ की किस्म ऊची, मूल्य कम तथा मांग लोचदार हो।

3 भारत मे उच्च मूल्य स्तर—योजनाबद्ध विकास मे हीनार्थ प्रबन्ध का अत्यधिक सहारा लेने तथा मूल्य स्थायित्व के अभाव मे मूल्य-स्तर बहुत ऊँचा है। इससे हमारे विदेशी व्यापार पर मुख्य तीन प्रभाव पडे हैं, ऊँचे मूल्या से आयात को बढावा, निर्यात को हतोत्साहन तथा ऊँची उत्पादन लागत से विदेशी प्रतिस्पद्धा मे टिक पाने की शक्ति मे कमी। अत. विदेशी व्यापार की समस्या विकट हुई है।

4 विकसित राष्ट्रों मे उदार दृष्टिकोण का अभाव—विकासशील राष्ट्रो के सामने यह समस्या अधिक भयावह है क्योकि जब तक विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रो मे आयातो पर पतिबन्ध लगायेगे या उनसे प्रतिस्पर्द्धा करेंगे तो उनके निर्यात की सम्भावनायें सीमित होगी। विकसित राष्ट्रो की प्रतिबन्धात्मक नीतिया भारत के विदेशी व्यापार मे बाधा ह। दिल्ली म आयाजित सयुक्त राष्ट्र सघ के व्यापार-विकास सम्मेलन मे विशेष प्रयत्नो के बावजूद भी आधारभूत निर्णय न हो सके।

5 औद्योगीकरण के लिये आयातो की अनिवार्यता—भारत ने देश मे तीव्र-गति से औद्योगीकरण के लिये सुदृढ आधार तैयार करने का लक्ष्य रखा है और उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये भारी मशीनो, बिजली का सामान तथा परिवहन उपकरणो का आयात अनिवाय है जब तक कि देश इन वस्तुओ के निर्माण मे आत्मनिर्भर न हो जाय।

6 *कच्चे माल व आधुनिकीकरण की समस्या*—देश मे जहा एक ओर निर्यात उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए कल पुर्जे व कच्चे माल की आवश्यकता होती है वहा दूसरी ओर फैशन, रुचि परिवर्तन के साथ-साथ भारतीय उद्योगो मे उत्पादन की किस्म, डिजाइन म ताल-मेल नही बैठाया जाता। अत निर्यात वृद्धि के लिए लम्बे रेशे की रुई, काजू, मसालो के उत्पादन म वृद्धि करने की आवश्यकता है तथा उद्योगो मे विवेकीकरण, आधुनिकीकरण को बढावा देना आवश्यक है।

7 राष्ट्रीय भावना तथा सरक्षण नीति—सभी नवोदित एव विकासशील राष्ट्रो मे अपने आर्थिक विकास के लिए आयात पर प्रतिबन्ध आन्तरिक उद्योगो को सरक्षण देने की भावना अति प्रबल है। जिस प्रकार हम अधिक निर्यात तथा कम आयात की चेष्टा करते है, सभी देशो मे यही प्रवृत्ति प्रबल है। विकासशील राष्ट्र ही नही विकसित राष्ट्र भी आयातो पर प्रतिबन्ध की नीति का अनुसरण करते हैं।

8 व्यापार मे घाटा तथा व्यापार असन्तुलन—हमारे विदेशी व्यापार की सबसे बडी समस्या व्यापार मे घाटा है। देश मे आयातो की अनिवार्यता तथा उनमे निरन्तर तीव्र गति स वृद्धि तथा दूसरी ओर आन्तरिक माग मे वृद्धि से निर्यात मे कम गति से वृद्धि होने स व्यापार सन्तुलन हमारे विपक्ष मे रहा है। जहाँ 1950–51 मे व्यापार का घाटा केवल 49 77 करोड रुपया था वह बढ कर 1957-58 मे 640 करोड़ रुपया तथा 1967-68 मे 921 6 करोड रुपया हो गया। अब निर्यातो मे वृद्धि अधिक होने तथा आयात प्रतिस्थापन मे प्रगति से आयात मे कमी होने से व्यापार व बढती कीमतो का घाटा 1970-71 मे 98 7 करोड रुपये ही रहा पर खाद्यान्न के अभाव व बढती कीमतो स 1973-74 मे घाटा बढकर 402 करोड रुपया था जबकि 1975-76 मे घाटा बढ कर 1216 करोड रुपया होने का अनुमान है। किन्तु 1976-77 मे घाटा 69 0 करोड रुपया बचत मे बदल गया किन्तु 1978-79 मे पुन. घाटा 1086 करोड़ रु हो गया।

9 विदेशी विनिमय संकट तथा सम्वर्द्धन समस्यायें – विदेशी व्यापार मे बढता हुआ असन्तुलन, विदेशी सहायता एव ऋणो की अनिश्चितता से भुगतान असन्तुलन होना स्वाभाविक है और इससे विदेशी विनिमय सकट का हमको सामना करना पडता है । इस सकट का मुकाबला करने के लिए हमारे सामने निर्यातो म वृद्धि के अलावा कोई विकल्प नही रह जाता । एसी परिस्थिति मे निर्यात सम्वर्द्धन की समस्याओ का सामना करना पडता है ।

10 यूरोपीय साझा बाजार व ब्रिटेन (E C M & Brit ı)—हमारे विदेशी व्यापार म ब्रिटन की महत्वपूर्ण भूमिका है । वह हमारी चाय का दो तिहाई भाग आयात करता है और साम्राज्य अधिमान से भी भारत को इगलैण्ड म निर्यात लाभप्रद रहते हैं । इसके अलावा भी अमेरिका के बाद वह हमारे माल का सबसे बडा ग्राहक है । परन्तु जब से ब्रिटेन ने यूरोपीय साझा-बाजार मे सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा है तब से हमे चिन्ता हो गई है क्योकि ब्रिटेन साझा-बाजार मे सम्मिलित होने से वह भी उसके अन्य सदस्यो के अनुकूल हमारे निर्यातो पर प्रतिबन्ध नियन्त्रण की नीति अपना हमारे निर्यातो को धक्का पहुँचायेगा ।

11 विविधता का अभाव—हमारे विदेशी व्यापार मे निर्यातो मे कुछ ही वस्तुओ—जूट का माल सूत एव सूती वस्त्र तथा चाय की प्रधानता है । अगर इनकी फसल मानसून के प्रकोप के कारण खराब हो जाय तो स्वाभाविक रूप से निर्यात की कमी हो जाती है । इसके अलावा इन वस्तुओ की माग कम लोचदार है । अत अन्य विदेशी राष्ट्रो द्वारा प्रतिस्पर्द्धा होने पर मूल्य मे कमी हो जाने से व्यापार का घाटा बढ जाता है । जब प्रतिस्थापन वस्तुओ का प्रभाव बढ रहा है, चाय के मूल्यो मे उतार-चढाव होते रहे हैं तथा प्रतिस्पर्द्धा म हमारा टिकना मुश्किल हो रहा है तो हमारे लिए आवश्यक है कि हम निर्यातो म विविधता लावें । अब परम्परागत वस्तुओ के स्थान पर दूसरी वस्तुओ के निर्यातो म वृद्धि की प्रवृत्ति उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है ।

इस प्रकार य समस्यायें हमारे विदेशी व्यापार मे व्यावहारिक एव विवेकशील मार्ग अपनाने को प्रेरित करती हैं जिनमे व्यापार का घाटा कम हो, निर्यात बढे तथा औद्योगीकरण के माग म बाधा उपस्थित न करते हुए आयातो को आन्तरिक उत्पादन से प्रतिस्थापित करें व आयातो को कम करें ।

भारत मे निर्यात सम्वर्द्धन के सरकारी उपाय
(Government Measures for Export Promotion)

यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारत मे निर्यात नियन्त्रण की नीति अपनाई गई थी पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद योजनाबद्ध विकास की सफलता एव विदेशी भुगतान असन्तुलन से छुटकारा पाने के लिये निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता बढी । प्रथम योजना मे तो आयात की मात्रा प्राय स्थिर रहने से विशेष प्रयास न करने पडे पर ज्योही देश मे औद्योगीकरण की द्वितीय पचवर्षीय योजना का शुभारम्भ

इन्जीनियरिंग सम्वर्द्धन परिषदो ने उल्लेखनीय काम किया है। ये परिषदें सम्बन्धित वस्तु विशेष के निर्यात वृद्धि के लिए बाजारो का अध्ययन, मेलो व प्रदर्शनियो का आयोजन, शिष्टमण्डल भेजने, किस्म-नियन्त्रण पर ध्यान देना आदि कार्य सम्पादित करती हैं।

(v) **निर्यात निरीक्षण परिषद्**—निर्यात अधिनियम 196‿ के अन्तर्गत विदेशी क्रेताओ को भारतीय माल की किस्म की पूरी गारन्टी के लिए, किस्म नियन्त्रण, लदाने से पूर्व निरीक्षण तथा निरीक्षण के लिये आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए निरीक्षण परिषद् की स्थापना की गई।

(vi) **निर्यात साख एव गारन्टी निगम**—यह निगम निर्यातको की वित्त व्यवस्था करता है। माल की सामुद्रिक एव मूल्यो म उतार-चढाव की जोखिम से सुरक्षा प्रदान करता है। अत निर्यात सम्वर्द्धन सगठनो म इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

(vii) **व्यापार मण्डल (Trade Board)**—व्यापार एव वाणिज्य के सभी पहलुओ पर विचार करने, उनके सम्बन्ध मे सरकार को सलाह देने तथा निर्यात सम्वर्द्धन मे योग देने के लिए इस सस्था की स्थापना 1962 मे की गई। इस मण्डल ने सरकार की उत्पादन व्यय म कमी, साख सुविधा के विस्तार, जहाज तथा भाडे की समस्या तथा विदेशो मे व्यापारिक प्रतिनिधियो की नियुक्ति पर महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र खोला है और अध्ययन के लिए दस समितियाँ बनाई हैं।

इन सस्थाओ के अलावा महत्वपूर्ण सस्थायें हैं—

(अ) **खनिज व धातु व्यापार निगम**—खनिजो व धातुओ के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए।

(ब) **भारतीय प्रमाणीकरण सस्थान**—किस्म नियन्त्रण के लिए।

(स) **दस्तकारी व हाथकरघा निर्यात निगम**—दस्तकारी तथा हाथ करघा सामान के निर्यात वृद्धि के लिए।

(द) **इण्डियन कौंसिल ऑफ आर्बिट्रेशन**—आपसी झगडे निपटाने के लिए।

(य) **प्रदर्शनी निदेशालय**—विदेशो मे भारतीय माल की प्रदर्शनी करने हेतु विभिन्न राज्यो मे भी निर्यात सम्वर्द्धन सलाहकार बोर्ड बनाये गये हैं। इस प्रकार निर्यात सम्वर्द्धन के लिए सगठनो का ऐसा जाल बिछ गया है कि उनके कार्यो का विभाजन मुश्किल है और एक दूसरे के कार्य मे हस्तक्षेप (Over-lapping) तथा समन्वय की समस्या उठ खडी हुई है।

3. वित्तीय सुविधाओ का विस्तार—निर्यात सम्वर्द्धन के लिये निर्यातको को सस्ती एव सुविधाजनक वित्तीय सहायता के लिए जहाँ एक ओर निर्यात साख एव गारन्टी निगम तत्पर है वहा दूसरी ओर रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक अल्प तथा मध्यमक लीन ऋण प्रदान करते हैं। विपणन विकास निधि 1963 के अन्तर्गत भी निर्यात-कर्त्ताओ

व उत्पादकों को विदेशी बाजार, विकास योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

4 करों में छूट व रियायत—सरकार ने निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक वस्तुओं पर निर्यात कर समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को उत्पादन-कर से मुक्ति तथा निर्यात वस्तुओं के निर्माण में काम आने वाली वस्तुओं पर चुकाया गया तट-कर वापिस लौटाने की नीति अपनाई गई है। जूट पर निर्यात-कर 750 रुपए प्रति टन से घटा कर 200 रुपए प्रति टन कर दिया गया है। प्राप्त होने वाले लाभांश की आय कर से मुक्ति चाय पर कर 44 पैसे प्रति किलोग्राम से घटा कर 25 पैसे इसके कतिपय उदाहरण हैं।

5 निर्यात प्रोत्साहन योजनाएं—सरकार द्वारा निर्यात सम्वर्द्धन के लिए निर्यातकों को अपने निर्यातित माल से प्राप्त विदेशी मुद्रा का उपयोग विशिष्ट कार्यों में करने मशीनों व पुर्जों के आयात में सुविधा देने भाड़े में रियायत व परिवहन में प्राथमिकता देने की नीति अपनाई गई है जैसे—(i) अग्रिम लाइसेंस—विशिष्ट शर्तों की पूर्ति पर निर्यात किये जाने वाले माल के लिए कच्चा माल आयात करने में लाइसेंस अग्रिम दिया जाता है (ii) मशीनों के आयात में प्राथमिकता उन उद्योगों को दी जाती है जो निर्यात में सलग्न हैं (iii) आयातित कच्चे माल व पुर्जों को निर्यात उद्योगों को उपलब्ध करना (iv) निर्यात उद्योगों को अपने द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा का कुछ भाग कच्चे माल को खरीद व कल-पुर्जों के आयात की सुविधा देना (v) निर्यात के लिए रेल व सामुद्रिक भाड़े में रियायत तथा परिवहन में प्राथमिकता प्रदान करना (vi) निर्यात सदन—निर्यात व्यापार में विशिष्टीकरण तथा उसके स्तर को ऊँचा करने के लिए प्रसिद्ध व्यापारिक फर्मों को मान्यता देकर सुविधायें देना (vii) निर्यात सदनों की स्थापना विदेशी बाजारों का अध्ययन व निर्यात वृद्धि के लिए यात्रा-व्यय के लिए विदेशी विनिमय में प्राथमिकता दी जायगी।

6 व्यापारिक समझौते एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सहयोग—व्यापारिक समझौतों द्वारा विदेशी व्यापार में वृद्धि करने की प्रवृत्ति वर्तमान शताब्दी की प्रमुख विशेषता है। भारत सरकार द्वारा अनेक द्विपक्षीय तथा बहु पक्षीय समझौते किये हैं। भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन G A T T का सदस्य है। 1932 का ओटावा समझौता भारत के विदेशी व्यापार का आधार है। अब भारत पूँजीवादी साम्यवादी तथा गुट निरपेक्ष सभी से व्यापार समझौते कर अपने निर्यातों में वृद्धि करने के सभी प्रयत्न कर रहा है।

7 मुद्रा अवमूल्यन (Devaluation)—भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद निर्यातों में वृद्धि करने तथा व्यापार असन्तुलन को ठीक करने के लिए दो बार भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन किया है। पहली बार अवमूल्यन 1949 में किया जबकि भारतीय मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के रूप में 30.5% कम कर दिया गया। दूसरा बार अवमूल्यन 1966 में किया गया। तब भारतीय मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के रूप में

36 5% कम कर दिया। इसका योगदान दुर्भाग्यवश निर्यात सम्वर्द्धन मे उत्साह-जनक नहीं रहा।

8 विदेशी ग्राहको मे विश्वास सृजन—भारतीय माल की विदेशी ग्राहको मे पैठ जमाने तथा उनकी किस्म की पूरी गारन्टी करने के लिए निर्यात अधिनियम 1963 के अन्तर्गत माल लदने से पूर्व उसका निर्यात परीक्षण परिषद् परीक्षण की सुविधा उपलब्ध करती है। भारतीय प्रमाणीकरण सस्थान (I S I) भी योगदान करता है। व्यापार-मण्डल ने भी अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र की स्थापना मे सहयोग दिया है। आपसी झगडो को निपटाने के लिए भारतीय समझौता-परिषद् है। इस प्रकार विदेशी ग्राहको को सन्तुष्ट रखने का हर सम्भव प्रयास किया जा रहा है।

9 नेशनल ट्रॉफी ऑफ एक्सपोर्टस्—भारत मे निर्यातको को प्रोत्साहन देने के लिये निर्यात मे कीर्तिमान स्थापित करने वालो को पहली बार 28 नवम्बर, 1959 मे 9 ऐवार्ड तथा 25 मेरिट सर्टिफिकेट दिये गये और आगे भी चालू रखे जा रहे हैं।

10 विकासोन्मुख आयात-निर्यात नीति (1978–79 एवं 1979–80)—देश के आयातो-निर्यातो के सम्बन्ध मे जनता सरकार ने "नियत्रणो" की अपेक्षा विकासोन्मुख एव प्रोत्साहन मूलक आयात निर्यात नीति 1979–1980 की घोषणा की है जो उदारता, सरलता और विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियो पर जोर देता है। लघु उद्योगो की आरक्षित वस्तुओ के आयातो पर प्रतिबन्ध लगाता है। विकास के लिए नयी सुविधाओ का समावेश करता है। निर्यातो को प्रोत्साहन दिया गया है।

विदेशी व्यापार नीति
(Foreign Trade Policy)

किसी भी देश के विकास मे उसकी आयात और नियात नीतियो का विशेष स्थान होना है। इस परिप्रेक्ष्य मे भारत के विदेशी व्यापार की नीति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विकासोन्मुख बनाई गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आयात और निर्यात नीतियो मे समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। प्रारम्भ मे आयात नीति उदार रखी गई पर 1949 मे उसे प्रतिबन्धात्मक बनाया गया। 1955-56 मे आयात नीति का उद्देश्य औद्योगीकरण के लिए आवश्यक मशीनरी व भारी सामान के आयात को प्रोत्साहन देना था पर 1957 58 मे विदेशी व्यापार मे भारी असन्तुलन के कारण आयातो पर प्रतिबन्ध लगा। विदेशी विनिमय सकट निवारण के लिए निर्यात प्रोत्साहन देने की नीति का अनुसरण किया। वर्तमान आयात और निर्यात नीतियो का प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था मे आत्मनिर्भरता और विविधता की दशाओ को बढ़ाना है ताकि आयात नियन्त्रण औद्योगिक विकास का साधन, विनिमय सकट मे रक्षक तथा निर्यात सम्वर्द्धन के माध्यम के रूप मे कार्य करें। 1961 मे ही भारत की विदेशी व्यापार नीति को मुदालियर समिति की सिफारिशो के अनुकूल

1 लघु कुटीर एवं छोटे उद्योग क्षेत्र की आरक्षित वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध—लघु छोटे एव कुटीर उद्योगो द्वारा जिन वस्तुओ के उत्पादन को सरकार द्वारा आरक्षित कर दिया गया है अब उन वस्तुओ के आयात पर प्रतिबन्ध रहेगा।

2 छोटे उद्योगो की स्थापना व विकास की सुविधायें—नयी नीति के आधीन छोटे पैमाने के उद्योग लगाने वालो को तीन लाख रुपये तक के लाइसन्स आसानी से मिल सकेंगे।

3 वास्तविक उपभोक्ताओ का दर्जा अब सभी अस्पतालों, शोध तथा उच्च शिक्षा केन्द्र, कृषक सेवा केन्द्रा, छ पे खानों इन सहायक का ना द दिया गया है। देश मे उपलब्ध न होने वाली वस्तुओ का विदेश से मगाने के लिये अब लाइसेन्स लेने की जरूरत नही पडेगी। स्वतन्त्र रूप से वैज्ञानिक एव शोध कार्य मे सलग्न व्यक्ति को भी 10 हजार रु० तक का सामान वैकल्पिक मगाने की सुविधा दी गई है।

4 ओपन जनरल लाइसेन्स के अन्तर्गत पूँजीगत माल की सूची में बिना लाइसेन्स मंगाई जा सकने वाली चीजो की सख्या 2>3 कर दी गई है।

5. 14 बुनियादी उद्योगो के लिए मशीनें खरीदने के वास्ते अन्तर्राष्ट्रीय टेण्डर माँगने की सुविधा दी गई। यह सुविधा उर्वरक, कागज, आधारभूत दवाइयों, बिजली उत्पादन, खनिज तेल की खोज, कीटाणुनाशक औषधियो के लिए बुनियादी कच्चा माल आयात करने के लिए भी है।

6 विदेशो से लौटने वाले भारतीयों को देश मे उद्योग लगाने की सुविधा दी जाने की व्यवस्था है। ये अपनी पिछली बचतो एव जमा पूँजी के बल बूते पर पूँजीगत माल एव साल भर के लिए कच्चा माल सरकार से बिना अनुमति मगा सकेंगे।

7 लाइसेन्सिग व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है। अभी तक जो काम दिल्ली, बम्बई एव कलकत्ता के लाइसेन्स देन वाले कार्यालयो मे होता था अब वह अगरतला, चण्डीगढ, कटक, गोहाटी, जयपुर एव पटना के नये कार्यालयो मे भी होने लगेगा।

8 निर्यात प्रोत्साहन एवं सम्वर्द्धन की दृष्टि से फैसला किया गया है जिनमे औद्योगिक इकाइयो ने पिछले वर्ष अपने उत्पादन का कम से कम आधा हिस्सा निर्यात किया है उन्हे अपने लाइसेन्स की रकम के आधे के बराबर माल आयात करने की सुविधा अपने आप मिल जायेगी। लघु एव कुटीर उद्योगो के माल का निर्यात बढाने के लिए निर्यातक अपने निर्यात के आधार पर अतिरिक्त राशि के लाइसेन्स ले सकेंगे।

9 पिछड़े क्षेत्रों मे पिछड़ी जाति एव जनजाति अथवा तकनीकी दृष्टि से योग्य व्यक्तियों द्वारा नये उपक्रमो की स्थापना हेतु ५ लाख रुपये तक आयात का लाइसेन्स मिल सकेगा।

10 लाइसेन्स व्यवस्था को सरल बना दिया गया है ताकि विकास मे बाधा उत्पन्न न हो।

नई आयात-निर्यात नीति (1979–80)

(New Import & Export Policy of 1979–80)

4 मई 1979 की नई आयात-निर्यात नीति 1979–80 पिछले वर्ष की नीति का ही विस्तार मात्र है जिसमे आयातो मे उदारता तथा अर्थव्यवस्था मे स्थायित्व के साथ अब व्यापार मे बढते घाटे को कम करने के उद्देश्य से निर्यात सम्वर्द्धन की प्ररणा का समावेश किया गया है। इस नीति की मुख्य विशेषताएँ निम्न है—

(1) **आयातो मे आर्थिक उदारता** – पूर्णत निषेध आयात मदो की सख्या गत वर्ष की 96 से घटाकर 65 निषेध मदो की सख्या 751 से घटाकर 658 तथा प्रतिबन्धित (Restricted) मदो की सख्या 498 से घटाकर 362 कर दी गई है।

(2) भारतीय गैर नागरिको को भारत मे विनियोगो को बढावा देने के लिए प्रति व्यक्ति 25 लाख र के मूल्य की मशीनो के आयात मे छूट दी जायगी।

(3) **वैज्ञानिक एव मापक यन्त्रो के आयातो पर रोक लगा दी है** ताकि इनके कारण स्वदेशी उद्योगो को क्षति न हो।

(4) प्रत्येक निर्यात गृहो को अब 2 लाख रु मूल्य तक के स्पेअर पार्ट्स आयात करने का अतिरिक्त लाइसेन्स दिया जा सकेगा।

(5) प्रत्येक आयातित ट्रैक्टर अथवा वाहन के स्पेअर पार्ट्स 2500 रु तक बिना लाइसेन्स आयात किये जा सकेंगे।

(6) सेम्पल्स आयात मे रियायत—पजीकृत निर्यातको को REP के लाइसेन्स के अन्तर्गत पहले 10 हजार र मूल्य के स्थान पर 50 हजार र मूल्य के सेम्पल्स् आयात करने की छूट दी गई है तथा बिना लाइसेन्स आयात मे छूट 500 र से बढाकर 5000 रु. कर दी है अगर सेम्पल्स् डाक या हवाई जहाज से मगाये जाय।

(7) अधिकृत दवाइयो, व्यापारिक नमूनो मुफ्त प्राप्त पशु इजेक्शनो को OGL के अन्तर्गत सूची मे ले लिया है।

(8) प्रथम बार फोटोग्राफिक स्टूडियो को आधुनिक कैमरा मगाने की शर्त सहित छूट दी है जिसमे 2000 र मूल्य के कैमरो का आयात हो सकेगा।

(9) बिक्री तथा स्टॉक के लिए (OGL) सूची मे ग्रास स्क्रेप, जिक स्क्रेप, घडियो के लिए लुब्रिकेटिंग तेल तथा जीवनदायक यन्त्रो को शामिल कर लिया गया है।

(10) लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास के लिए कच्चे माल के आयात तथा स्पेअर पार्ट्स के आयात मे छूट की व्यवस्था की गई है।

(11) एल्यूमिनियम, प्राकृतिक रबर तथा सीमेन्ट का आयात अब सार्वजनिक सस्थाएँ ही कर सकेंगी।

(12) REP के अन्तर्गत पूंजीगत आयात की विधि का सरलीकरण कर दिया गया है।

(13) 10 लाख या उससे अधिक जनसख्या वाले प्रत्येक नगर मे निर्यात सम्वर्द्धन कार्यालय खोला जायेगा।

भारत के विदेशी व्यापार का भविष्य
(Future of India's Foreign Trade)

भारत मे आयात प्रतिस्थापन निर्यात सम्वर्द्धन तथा अर्थव्यवस्था म स्थायित्व के साथ विकास की नीति मे भारत के उज्ज्वल भविष्य का सकेत मिलता है। निर्यातो मे वृद्धि की प्रवृत्ति म विदशी व्यापार का उज्ज्वल भविष्य दृष्टिगोचर होता है किन्तु साथ ही बढते व्यापार घाटे म खतरे की सूचना भी है। जहाँ 1978–79 मे विदेशी व्यापार शष 69 करोड र पक्ष म था वही 1978–79 मे विदेशी व्यापार शेष 1086 करोड रु प्रतिकूल (Deficit) रहने की सम्भावना है। छठी योजना की अवधि मे आयात निर्यात का अनुमान भी बढते आयातो और निर्यातो के साथ-साथ व्यापार के घाटे की वृद्धि का सकेत देते हैं।

भारत मे विदेशी व्यापार (1982-83) तक के अनुमान

(करोड रुपये)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल	व्यापार शेष
1976–77	5074	5143	10217	+69
1978–79	6074	56 8	12322	– 1086
1978–83 (औसत)	8565	6800	15365	– 1765
1982–83	10500	7750	18250	– 2750

Source-Sixth Five Year Plan (Draft)

उपरोक्त आकडे यह दशाते हैं कि यद्यपि निर्यातो मे निरन्तर वृद्धि होगी किन्तु साथ साथ आयात भी अधिक बढते जायेंगे जिससे व्यापार का घाटा निरन्तर बढता ही जायगा। 1982–83 तक आयातो मे 4426 करोड रु की वृद्धि तथा निर्यातो म 2148 करोड र की ही वृद्धि निराशाजनक लगती है।

अत- भारत मे भविष्य मे निर्यातो म तीव्र वृद्धि तथा आयात प्रतिस्थापन की सफलता हेतु आन्तरिक माग पर अकुश रखना जरूरी है। विदेशी बाजारो मे

भारत के माल की प्रतिष्ठा एव रुचि जाग्रत करने के लिए उनकी उत्तमता मे सुधार, लागत मे कमी तथा निर्यात सम्वर्द्धन प्रयासो मे वृद्धि करना चाहिये। सरकार भी उपयुक्त आयात-निर्यात नीति द्वारा देश मे आन्तरिक उत्पादन को बढावा देकर निर्यात बढा सकती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि भारत के विदेशी व्यापार मे आयात प्रतिस्थापन और निर्यात सम्वर्द्धन से देश मे औद्योगीकरण को बल मिला है। विदेशी तकनीकी सुधारो का भारतीय उद्योगो को लाभ मिला है। औद्योगिक कच्चे माल एव मशीनो के आयात से देश के औद्योगीकरण का सुदृढ आधार तैयार हुआ है। परम्परागत माल के स्थान पर इन्जीनियरिंग एव निर्मित माल के निर्यातको को प्रेरणा मिली है। लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास का मार्ग खुला है और ये सब उज्ज्वल भविष्य के सूचक हैं। केवल व्यापार घाटे को कम करने के लिए निर्यातो मे वृद्धि एव आयातो मे कमी के लिए सतर्कता बरतने की आवश्यकता है।

विदेशी व्यापार नीति का मूल्यांकन

उपर्युक्त सक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि जहा भारत की आयात नीति प्रतिबन्धात्मक होने के साथ-साथ औद्योगिक विकास, विविधता तथा आत्मनिर्भरता की दृष्टि से प्रगतिशील और सार्वजनिक सस्थाओ के प्रसार से समाजवाद के अनुकूल है इसी कारण भारतीय अर्थव्यवस्था मे आयात-प्रतिस्थापन की अन्तर्निहित प्रवृत्ति (Built in Tendency) औद्योगिक उत्पादन मे विविधता और आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हुआ है वहा दूसरी ओर निर्यात नीति देश म व्यापार असन्तुलन को कम करने निर्यातो मे अभिवृद्धि करने तथा विदेशो मे भारतीय माल की खपत बढाने म काफी सफल रही है। नई आयात-निर्यात नीतियाँ सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार व उनकी भूमिका को प्रधानता देती हैं तथा निर्यात सम्वर्द्धन के लिए कच्चे माल, मशीनरी व उपकरणो के आयात से आधुनिकीकरण द्वारा भारतीय उद्योगो मे प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता, प्रगतिशील उत्पादन, कुशलता का सृजन करना चाहती हैं। सरकार इसके लिए तकनीकी, वित्तीय तथा विदेशी मुद्रा की आवश्यक सहायता देने म सदा तत्पर है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न मय संकेत

1 भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? विदेशी व्यापार की मुख्य समस्याओ का उल्लेख करते हुए इनके समाधान के लिए किय गय प्रयत्नो का विवेचन कीजिये।

(सकेत –प्रथम भाग म विदेशी व्यापार की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ बताना है तथा दूसरे भाग म समस्याओ का शीर्षकानुसार वर्णन देकर तीसरे भाग मे इन समस्याओ के समाधान के प्रयत्नो का उल्लेख करना है।)

2 भारत के आयात-निर्यात की प्रमुख वस्तुओ का वर्णन दीजिए तथा निर्यात सम्वर्द्धन के लिए किये गये प्रयत्नो का उल्लेख कीजिए।

(संकेत—आयात की मुख्य मदो तथा निर्यात की मुख्य मदो का विवेचन देकर दूसरे भाग मे निर्यात बढाने के प्रयत्नो का क्रमबद्ध विवेचन कीजिये ।)

3 भारत के विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियो का विवेचन कीजिये । पिछले वर्षों मे सरकार ने आयात व निर्यात की किन-किन नीतियो का अनुसरण किया है ?

(संकेत—विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियो का क्रमबद्ध विवेचन दीजिये कि आयात व निर्यात मे वृद्धि व्यापार शेष मे अन्तराल, निर्यात वृद्धि व आयात नियन्त्रण, व्यापार स्वरूप, व्यापार की दिशा सभी का विवेचन देना है तथा निर्यात व आयात सम्बन्धी सरकारी नीति का मूल्याकन देना है ।)

4 भारत सरकार की आयात व निर्यात नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये ।

(संकेत—भारत सरकार की आयात नियन्त्रण व निर्यात सम्वर्द्धन की वर्तमान नीतियो की आलोचनात्मक समीक्षा देना है ।)

5 भारत सरकार की "निर्यात सम्वर्द्धन" तथा "आयात प्रतिस्थापन" नीति पर टिप्पणी कीजिये तथा विदेशी व्यापार के भविष्य पर प्रकाश डालिये ।

(संकेत—दोनो नीतियो का मूल्याकन देना है तथा अन्त मे भविष्य को उज्ज्वल बताना है ।)

6 भारत सरकार की वाणिज्यिक नीति की विवेचना दीजिये ।

(Raj B Com, III yr 1979)

1

भारत का भुगतान सन्तु[illegible]
अथवा भुगतान-शे[illegible]
(Balance of Payments of India)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भुगतान सन्तुलन की समस्या एक प्रकार से अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न पहलुओ, देश की बदलती परिस्थितियो तथा विनिमय दरो मे होने वाले उतार-चढ़ावो का विश्लेषण करती है तथा उनके समाधान का मार्ग-दर्शन देती है।

भुगतान सन्तुलन का अर्थ—विदेशी व्यापार शब्दावली मे 'भुगतान सन्तुलन' शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं। पहले अर्थ मे इसका आ[illegible] किसी देश-विदेश मे उसके द्वारा खरीदी व बेची गई विदेशी मुद्रा के अन्तर से है। दूसरे अर्थ म विदेशो से प्राप्त भुगतान व विदेशो म किय गय भुगतानो का अन्तर बताता है। तीसरे अर्थ राजस्व खाते मे भुगतानो का सन्तुलन प्रदर्शित करता है तथा चौथे अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय ऋणो के सन्तुलन को स्पष्ट करता है। सबसे अधिक प्रचलित अ[illegible] भुगतान सन्तुलन का अभिप्राय विदेशी करेन्सी की सम्पूर्ण माग तथा सम्पूर्ण सम्बन्धी परिस्थिति से है। प्रो एल्सवर्थ के शब्दो मे, 'भुगतान सन्तुलन कि[illegible] के निवासियों और शेष विश्व के मध्य हुए सौदों का संक्षिप्त विवरण है।" अधिक स्पष्ट करते हुए प्रो जेम्स इग्राम (James Ingram) ने लिखा है, "भुगता[illegible] सन्तुलन उन सभी आर्थिक लेन देनो का अभिलेख (लेखा जोखा) है जो कि एक [illegible] निवासियों (व्यक्तियो, फर्मों, सरकार तथा अन्य सस्थाओ) एव शेष ससार के किसी निश्चित समय मे होता है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि भुगतान सन्तुलन एक विवरण है जिसमे देश दृश्य एव अदृश्य आयातो व निर्यातो को (जो शेष ससार से विभिन्न देशो [illegible] होते है) बनाया जाता है। इसमें किसी वर्ष विशेष की विदेशी मुद्रा का सम्पूर्ण एव पूर्ति की परिस्थितियो का समावेश होता है।

व्यापार सन्तुलन तथा भुगतान सन्तुलन मे अन्तर
(Difference Between Balance of Trade & Balance of Payme

व्यापार सन्तुलन (Balance of Trade) का अभिप्राय किसी देश कि